मुद्रक और प्रकाशक-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास

मालिक-" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " स्टीम्-प्रेस, कल्याण-बंबई.

उपोद्घात ।

मैंने सन् १८८९ में ऋग्वैदिक-कालसे लेकर भारतीय साम्राज्य या हिन्दू-साम्राज्यका इतिहास अपनी मातृभाषा-मरहठीमें लिखना प्रारम्भ किया था। यह इतिहास २२ जिल्दोंमें समाप्त हुआ है, जिसकी ग्यारह जिल्दें सर्व साधारणके सामने अबतक उपस्थित की गई हैं। बाकी ग्यारह जिल्दें धीरे धीरे छपरहीं हैं। जब मैं अपने इस कार्यमें संलग्न था तभीसे आर्योंका मूल स्थान, उसकी उन्नति, उसके विकास इत्यादि बातें मेरी निगाहके सामने सदा बनी रहती थी। इन बातोंकी ओर जितनाही अधिक ध्यान दिया जा सके उतनाही अधिक ये उसके पात्र भी हैं। अतएव सब दृष्टियोंसे इनकी छान-बीन करनेमें मैंने कुछ उठा नहीं रक्खा भारतीय आर्य अथवा हिन्दू अपने आपको भारतके मूल-निवासी मानते हैं और भारतीयोंकी जातीय परम्परागत कथाओंमेंभी उनके असली देशके सम्बन्धमें स्पष्ट चिह्न विद्यमान हैं। इनसे यह स्पष्ट सूचित होता है आर्य जातिका सर्व प्रथम घर तथा मूल स्थान भारतही है।

उसी तरह ईरानियोंकी परम्परागत कथाओं और बेन्दीदाद या पारसी धर्मग्रन्थोंमें हप्तहेन्दुका निर्भ्रान्त उल्लेख है. यह हप्तहेन्दु जो ऋग्वेदके अत्यन्त प्राचीन कवियोंको सप्तसिन्धु या प्रसिद्ध सात नदि-योंके देशके नामसे विदित था उसका यह नाम स्पष्टरीतिसे एक अव-स्तिक नाम है। इस नामसेभी हम उस परिणामकी अधिक दृढता प्राप्त करसकते हैं जिसको हम स्वतन्त्र विचार द्वाराही नहीं किन्तु वास्तविक पुष्टप्रमाणों द्वारा निकालनेमें समर्थ हुए हैं। और वह परिणाम यह है कि आर्योंका मूलस्थान आर्यावर्त या प्रसिद्ध सात नदियोंका देश है। सर्व प्रथमकालमें वैदिक ऋषि उसे 'सप्तसिंधवः' कहते थे।

इस तरह आर्योंके मूलस्थान और हमारी मातृभूमि सप्तसिन्धु या आर्यावर्तकी प्रसिद्ध सात नदियोंके देशके सम्बन्धमें जहाँ एक ओर अखण्डित परम्परायें विद्यमान हैं—वहाँ दूसरी ओर प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानोंका एक समूह इस मतके विरुद्ध है। अपना मत सिद्ध तथा प्रमाणित करनेके लिये उसने भाषा विज्ञान, पौराणीक कथा, भूगर्भ-शास्त्र, मस्तिष्क विद्या, नृशंसी, भूगर्भका इतिहास, पुरातत्व शास्त्र और उन दूसरेसे जिनसे इस विषयका जराभी सम्पर्क है' सब प्रकारकी सहायता ली है और निश्चित किया है कि आर्य जातिका मूलस्थान था तो मध्य एशियाकी उच्चसम भूमि है या योरपके उत्तरी तथा दक्षिण पूर्वी भूभाग है या उत्तरी ध्रुव है।

परन्तु इस विषयके विभिन्न स्रोतोंसे प्राप्त प्रमाणोंकी ओर समुचित ध्यान देने और सब दृष्टियोंसे उन्हें जाँच लेनेके अनन्तर मैं यह विचार करनेको बाध्य हुआ हूँ कि आर्योंका मूलस्थान सरस्वती नदीका देशही रहा है। अतएव वह स्थान सात नदियोंका देश आर्यावर्तही हुआ। यह देश वैदिक तथा अवस्तिक साहित्यमें सप्तसिन्धुके नामसे प्रसिद्ध है। भारतीय आर्य इसी मूलस्थानसे निकलकर बाहरके देशोंमें फैले और पूर्व, पश्चिम, उत्तर, और दक्षिण आदि भिन्न भिन्न दिशाओंमें अपने उपनिवेश स्थापित किये. आर्यावर्तकेही आर्योंका मूल स्थान होनेके समर्थन करनेके लिये जब स्वयम् आर्यावर्तमेंही नये नये भूगर्भ शास्त्रीके सामने आये. मैंने अपनी मातृभाषामें एक पुस्तक लिखी उसमें इस सम्बन्धके सारे यदाओं और तदाओंकी मीमांसा कीगई है। उसका नाम "सप्तसिन्धु या प्रान्त अथवा आर्यावर्तांतील आमची जन्म भूमि आणि उत्तर ध्रुवा कडील आमच्या वसाहती" है। इस नामसे वही भाव व्यक्त होता है जो मेरी इस अंगरेजी पुस्तकके मुख पृष्ठपर दिये गये नामसे होता है। परन्तु उस पुस्तकको मरहठीमें लिखनेके बाद मेरे मनमें यह बात उठी कि मरहठी तो

वह भाषा नहीं है जो सर्वत्र प्रचलित हो या जो सामान्य रीतिसे पूर्वी और पश्चिमी देशोंमें समझी जा सके। अतएव उसीको संक्षेपमें अँगरेजीमें लिखनेका यह निर्बल प्रयत्न मैंने इस उद्देशसे कियाहै कि पूर्व तथा पश्चिमके विद्वानों एवं उन लोगों-द्वारा, जो इस विषयपर प्रमाण सहित बोलनेके अधिकारी हैं, समालोचना कियेजाने तथा आलोचना पूर्वक ध्यान दियेजानेका लाभ इस पुस्तकको प्राप्त हो। प्रारम्भमें यहाँ मुझे साफ साफ स्वीकार करना चाहिये कि एक तो मैं कोई प्रसिद्ध आदमी नहीं और दूसरे मेरा यह वर्तमान प्रयत्न समुद्रमें एक बूँदके समान है। यही नहीं, किन्तु जैसा कि जगत्‌के न सही भारतके सर्व श्रेष्ठ कवि कालिदासने अपने प्रसिद्ध महाकाव्यमें कहा है, मेरा भी यह वर्तमान कार्य विषयकी गम्भीरता तथा उसके महत्त्वके विचारसे कठिनतासे उसके अनुरूप है। क्योंकि कविने कहा है–

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्वाल्पविषया मतिः।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्॥ (रघु१-२)

"कहाँ सूर्यसे उत्पन्न वंश और कहाँ मेरी मन्द बुद्धि? मैं समझताहूँ कि मेरी यह निरी मूर्खता है जो मैं समुद्रको एक नौका-द्वारा पार करनेका विचार करताहूँ। यह काम करना (वास्तवमें) बहुत कठिन है।" इसके सिवा विदेशी भाषाके अपूर्ण ज्ञान, उस पर आवश्यक अधिकारका अभाव और इस महत्त्वशाली विषयको हाथमें लेनेके लिये समुचित योग्यताकी शून्यताके कारण मैं उसके प्रति पूर्ण न्याय करनेमें समर्थ नहीं हुआ हूँ। इस बातके लिये मुझे गहरा खेद है।

परन्तु मैंने इन सब बातोंको अपने मनमें रखकर घटनाओंका ठीक ठीक और साफ साफ वर्णन करनेका यथाशक्ति प्रयत्न किया है। बहुकालव्यापी अपने अध्ययनके फल और बहुतही मनोरञ्जक अन्वेषण तथा खोजके परिणाम जनताके सामने उपस्थित करनेके

विचारसे मैंने अपनी दलीलें प्रमाणके सहित दी हैं। कभी न कम होनेवाले कामका परिश्रम और गम्भीर उत्तरदायित्व, निद्रा रहित रातें, अधिक कामके भारसे व्याप्त दिन, सरकारी कामका बोझ और उसके समुचित रीतिसे सञ्चालित कियेजानेके लिये अत्यन्त अधिक सावधानी, हिम्मत तोडनेवाली निराशायें, उकतानेवाली थकावटें, घटनाओंका आद्योपान्त अध्ययन इत्यादि बातोंके साथ साथ मेरा यह काम लगातार पूरे पच्चीस वर्षतक जारी रहा। इसके साथही भारतीय साम्राज्य नामक अपने देशका इतिहास एवं दूसरी पुस्तकों, निबन्धोंके लिखने और अलग अलग साहित्यिक कार्योंमें मैं लगा रहा। ये ऐसे कार्य थे कि जिनमें मेरी सारी शक्तियाँ लग गई। इसके सिवा मुझे दोनों काम करने पडे उनकी रचना तथा उनका प्रकाशनभी करना पडा। यही नहीं, किन्तु उनके प्रूफतक देखने पडे। इसके सिवा तत्सम्बन्धी नानाप्रकारके दूसरे कार्योंका भी भार उठाना पडा। मैंने इस बातकीभी निगरानी की कि प्रेसका सारा काम ठीक ठीक और सुन्दरताके साथ होता है या नहीं। इन सब बातोंमें किसी भी व्यक्तिसे किसी भी बातमें मुझे अल्पमात्रभी सहायता नहीं मिली।

इस बातके यहाँ उल्लेख करनेकी कठिनतासे आवश्यकता है कि खोज तथा अन्वेषणका कार्य कष्ट साध्य है, कभी कभी निरुत्साहभी होना पडता है। क्योंकि हमे अपने परिश्रमकी बिलकुल व्यर्थ हो जानेका भय रहता है। परन्तु परिश्रम करना छोड नहीं दिया जाता. वह दूसरे परिश्रम करनेवालोंके काम आता है। सत्यकी खोजमें कभी कभी विजय प्राप्त करनेकी शर्त असफलता है। इस कामके कर डालनेसे मुझे सन्तोष हुआ है। मैं इसे अपना कर्तव्य मानता था और बहुत आवश्यक समझता था। क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ श्रीमद्भ०गी०२-४७)

" तुम्हारा कर्तव्य काम करना है, फल-प्राप्तिसे तुम्हारा जराभी ताल्लुक नहीं । तुम्हारी भावना फल प्राप्तिकी न हो । और न तुम्हें अकर्मण्यतासे ही विशेष राग रखना चाहिये ।" परन्तु इस कार्यरूपी समुद्र यात्रामें तूफानों और जहाजोंके जलमग्न होनेकी दुर्घटनाओंका सामना होनेका मुझे भय है । यदि केवल पैर भीग जानेके भयसे मैं अपने कामसे भाग खडा होऊँ तो मुझे अपने आपको एक गवाँर नाविक समझना चाहिये । सिद्धान्तोंका खण्डन करनेसे जनताके तिरस्कार और मुँह फुलानेके भयसे यदि मैं अपने कार्यसे विरतहो जाऊँ तो मैं किसी अर्थका आदमी नहीं । जो सिद्धान्त बहुत दिन नहीं बीते सर्व स्वीकृत थे, यही नहीं, जो सुस्थापित वैज्ञानिक परिणामोंके रूपमें बहुतही प्रशंसित थे उनका मैंने खण्डन किया है वे अब किसी भी विश्वसनीय प्रमाण द्वारा समर्थित नहीं प्रतीत होते हैं । उनकी ऐसी स्थिति उन पथ प्रदर्शकोंकी बदौलत उपस्थित होगई हैं जिनपर उनके उद्भावकोंने विश्वास किया था, पर जो स्वयम् उनसे पूर्ण रीतिसे परिचित नहीं थे । ये सिद्धान्त निर्भ्रान्त नहीं है, उनकी कल्पना शीघ्रतासे की गई है, अतएव वे अपने इस रूपमें मानही लिये गये हैं ।

यहां यह बात लिखनेकी काठिनतासे आवश्यकता है कि मैं अपनी असंख्य त्रुटियोंसे पूर्ण तथा परिचितहूँ । ऐसी स्थितिमें आर्योंके मूलस्थानसम्बन्धी जैसे जटिल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा मनोहर विषयको हाथमें लेनेका मैं अधिकारी नहीं । यह जानतेहुये भी कि मैं अनाधिकारी कहलाऊँगा केवल परिश्रम करनेकी उमङ्गसे मैंने उस कामको अपने हाथोंमें लेलियाही है । मैं चाहे जिस अवस्थितिमें पडजाऊँ, मुझे विश्वास है कि इस विषयको अन्तमें लाभही प्राप्त होगा अतएव मैं पाठकोंसे उन अनेक त्रुटियोंके लिये, जो उन्हें इस पुस्तकके

पढते समय निस्सन्देह मिलेंगी, अत्यन्त सन्मानके साथ क्षमा माँगता हूँ। परन्तु जनताके सामने इस तुच्छ वस्तुको उपस्थित करके यह बात मैं कहूँगा ही कि मैंने ईमानदारीसे और मनलगाकर अपनी शक्तिभर काम किया है। जिस विषयकी ओर मेरा ध्यान था मैं उसीपर लगारहाहूँ। दयालु पाठककी प्रशंसा या कुटिल आलोचककी निन्दाकी ओर मेरा मनही नहीं गया।

इसे समाप्त करने तथा इस पुस्तकका विषय प्रारम्भ करनेके पहले मेरा यह कर्तव्य है कि मैं उस भारी ऋणके लिये जो मुझ पर उन सब विद्वानों प्राच्यों तथा पाश्चात्योंका है जिन्होंने इस क्षेत्रमें काम किया है और असली खोज, प्रशंसनीय उत्साह, विचित्र धैर्य और गम्भीर पाण्डित्यसे आर्योंके मूलस्थान सम्बन्धी विषयकी विवेचना की है उनके प्रति अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करूँ अतएव आर्यावर्तमें आर्योंके मूलस्थानकी खोज तथा उसके अन्वेषणके सम्बन्धके कार्य पाठकोंके सामने उपस्थित करके मैं उत्तरी ध्रुवके सिद्धान्त, योरपीय कल्पना और मध्य एशियाई प्रश्नके भिन्न भिन्न समर्थकोंसे प्रार्थना करूँगा कि वे मेरे जीवनकी हीन स्थिति और मेरे कीर्तिमान् न होनेके ही कारण इस पुस्तककी अपेक्षा न करें, किन्तु बिना किसी पक्षपातके यही नहीं बिना पूर्व कल्पित विचारोंकी ओर विना झुकेहुये सब दृष्टियोंसे इसमें उपस्थित किये गये सारे प्रमाणोंको तोलें और तब अपना सच्चा परिणाम निकालें। यह बहुत ठीकही कहागया है कि " कोई भी प्रश्न तबतक हल नहीं होता जबतक अच्छी तरह उसका निर्णय नहीं होता। " कवि कहता है.–

" युद्ध समाप्त हो गया है। यद्यपि विजयी दर्पके साथ आरहा है, उसकी ध्वजायें हवामें फरफरा रही हैं, घोडे हिन हिना रहे हैं और नगाडोंकी गूँज गूँज रही है, तोभी सत्य डंकेकी चोटपर प्रका-

श्यमें यह घोषणा कर रहा है कि कोईभी प्रश्न तबतक हल नहीं होता जबतक अच्छी तरह उसका निर्णय नहीं होता।"

"बलवान् अत्याचारी अपनी एँडीसे निर्बलको धूलमें कुचलता रहें और खुशामदी लोग एकस्वरसे उसे प्रतापी और न्यायी कहते रहें तोभी प्रशंसक सावधान हो जायँ और यह आदर्श वाक्य ध्यानमें रक्खें कि कोई भी प्रश्न तबतक हल नहीं होता जबतक अच्छी तरहसे उसका निर्णय नहीं होता।"

"जो लोग हारगये हैं उनमें यदि हिम्मत होजाय और यद्यपि शत्रु विजयी मालूम पडता है, उसका पक्ष न्यायका नहीं है, उसकी सेना बलवान् है, तो भी युद्ध नहीं समाप्त हुआ है। क्योंकि रातके घोर अन्धकारके बाद प्रातःकाल अवश्य होता है। कोई भी प्रश्न तबतक नहीं हल होता जबतक अच्छी तरहसे उसका निर्णय नहीं हो जाता।"

"हे पुरुषो, परिश्रमसे तुम पस्त हो गये हो। हे स्त्रियो, युवा होनेपरभी मेहनत करनेसे तुम बुड्ढी लगती हो। हे दीप्त परिश्रमीके हृदय, तुम्हारा उत्पीडन हुआ और धन तथा बलसे तुम्हारा दमन किया गया। अतएव तुम इस उकतानेवाले युद्धको विजयी शत्रुके विरुद्ध छेडे रहो। क्योंकि कोई भी प्रश्न तबतक हल नहीं होता जब तक अच्छी तरह उसका निर्णय नहीं होजाता।"

अब मैं अपना कथन रोमन साम्राज्यका पराभव और पतनके रचयिता एडवर्ड गिबनके चिरस्मरणीय शब्दोंमें समाप्त करताहूँ कि जो पुस्तक यद्यपि मेरी इच्छाओंके अनुसार नहीं बन सकी, मेरे लिये आनन्दका एक बडा साधन रही और दूसरे अडचन डालनेवाले कर्तव्यों, उकतानेवाले परिश्रम तथा न समाप्त होनीवाली चिन्ताओंके बीच मेरे परिश्रमी जीवन तथा जवानीके पूरे पचीस वर्ष ले चुकी है उसे मैं सर्वसाधारणके सामने उपस्थित करताहूँ।

अपनी साठ वर्षकी अवस्थामें इस स्व-अङ्गीकृत कार्यको समाप्त करचुकने तथा उससे छुट्टी पानेपर निस्सन्देह क्षणभर मुझे बडा आनन्द मिला। परन्तु वह आनन्द अस्थायी था। वह ज्यादा देरतक न रहसका। क्योंकि मेरे मन पर तुरन्तही गम्भीर उदासी छा गई और यह सोच कर मुझे दुःख हुआ कि मैंने अपने पुराने प्रियसंगी साथियोंसे सदाके लिये छुट्टी लेली।

पूना.
जून. १९१५ } नारायण भवनराव पावगी.

आर्योंकामूलस्थानकी विषयानुक्रमणिका।

अध्याय.	विषय.	पृष्ठांक.
पहला अध्याय	पृथ्वी ग्रह तथा आर्यावर्तका भूगर्भशास्त्रसम्बन्धी युग.	१
दूसरा अध्याय	पृथ्वीपर तथा आर्यावर्तमें जीवनीशक्तिके प्रादुर्भावका युग.	७
तीसरा "	आर्यावर्तमें आर्योंका-मूलस्थान तथा भूगर्भशास्त्रका तत्सम्बन्धी प्रमाण.	१३
चौथा "	उत्तरी ध्रुव-सम्बन्धी सिद्धान्त, योरपीय कल्पना तथा मध्य एशियाई प्रश्नकी आलोचना.	२८
	(उत्तरी ध्रुव संबन्धी सिद्धान्त.	३०
	योरपीय कल्पना	३५
	मध्य एशियाई प्रश्न.)	५३
पांचवाँ "	आर्यावर्तमें आर्यमूल स्थानके सम्बन्धमें स्मृतिका साक्ष्य और पाश्चात्य खोजियोंके प्रमाण. ...	६४
छठां "	श्रुतिका साक्ष्य या वैदिक प्रमाण और आर्यावर्तमें आर्योंके भूमिस्थानपर प्रकाश.	७६
सातवाँ "	आर्योंका मूलस्थान सरस्वती नदीका देश	१२२
	सरस्वती नदीके पूर्व ओर हमारा पहला देशान्तरगमन.	१२८
आठवाँ "	हप्तहेन्दु (अर्थात् सप्तसिन्धु) तथा आर्यावर्तमें आर्य-मूलस्थानके सम्बन्धमें अवस्तिक प्रमाण.	१४६
नववाँ "	आर्यावर्त और ईरानकी पौराणिक कथाओंमें सादृश्य, उसी तरह आर्योंकी दूसरी शाखाओंकी पौराणिक कथओंमें भी.	१६६
	भाषाओंका शब्द भेद	१६८

अध्याय.	विषय.	पृष्ठांक.
दशवाँ ,,	सप्तसिन्धु या सातनदियोंका देश मतभेद और जुदाईका लीला क्षेत्र	... १७५
ग्यारहवाँ ,,	दस्यु, दास, असुर और राक्षस किस जातिके हैं ?	... १८४
	संस्कृत शब्दोंका ईरानी अपभ्रंश. ...	... २१४
बारहवाँ ,,	सप्तसिन्धु देशमें आर्योंके देवताओंकी उत्पत्ति. अग्नि	२२०
	सोम, इन्द्र, सरस्वती और सूर्य. ...	... २२३
तेरहवाँ ,,	तृतीयकालीनयुगके हमारे आर्य पूर्वपुरुष खानेवदोश नहीं, किन्तु आदिम कृषक और आर्यावर्तके मूल अधिवासी ...	... २४२
चौदहवाँ ,,	देशान्तरगमन करनेका हमारा प्रेम और मूलस्थान आर्यावर्तके वाहर हमारे उपनिवेशी साम्राज्यका विस्तार	... २६०
	सुर्सोमें हिन्दू देवता.	... २८८
	देशन्तरगमनका मार्ग.	... २८९
पन्द्रहवाँ ,,	मूलस्थान सप्तसिन्धु देशका छः ऋतुओंका हमारा असली पञ्चाङ्ग और उत्तरी ध्रुवमें हमारे वसनेके समय वाद उसमें किये गये परिवर्तन	... २९९
सोलहवाँ ,,	उन विचारोंकी प्राचीनताका विचार जो ऋग्वेदमें व्यक्त हुए हैं.	... ३२५

इति विषयानुक्रमणिका ।

॥ श्रीः ॥

आर्योंका मूलस्थान.

पहला अध्याय.

पृथ्वी तथा आर्यावर्तका भूगर्भशास्त्रीय युग.

आर्योंके मूलस्थानका विचार करने तथा तत्सम्बन्धी समुचित विवरण देनेके पहले यह बात आवश्यक है कि आर्यावर्तकी भूगर्भ-शास्त्र सम्बन्धी प्राचीनताकी खोज कीजाय यही नहीं, किन्तु उस ग्रह अर्थात् पृथ्वीकी भी जिसपर हम रहते हैं यद्यपि हमारे लिये अपने ग्रहके भूतकालिक इतिहासकी धुंधली प्राचीनताका बोध करना बहुतही कठिन कार्य है, तो भी प्रमाणोंसे उन भिन्न भिन्न चट्टानों, पौधों और पशुओंके आविर्भाके क्रमका ठीक ठीक ज्ञानहोही जाता है, जो इस भूमण्डलके पृष्ठ भागपर क्रमानुसार आबाद होते रहे हैं। अतएव भूगर्भशास्त्र सम्बन्धी परिणाम उच्चतम वैज्ञानिकके हैं। वे प्रकट करते हैं कि, पृथ्वीके ऊपरकी पपडी भूगर्भशास्त्र-सम्बन्धी सारे परिवर्तनोंकी रङ्गभूमि तथा उनका लीलाक्षेत्र है और उनकी भूतकालिक कथाकी सूचीभी है। उनके अत्यन्त प्राचीन इतिहासके सम्बन्धमें तो कुछ कहनाही नहीं। इसका निदर्शन तो उससे होताही है। हमारे पृथ्वी ग्रहक सम्बन्धमें प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्रियों तथा पदार्थ-विद्याके विद्वानों द्वारा बहुतही विभिन्नमत व्यक्त कियेगये मालूम पडते हैं. ये मत हम लोगोंके सामने प्रकट हैं, कुछ विद्वानोंका मत है कि पृथ्वी पिंघलीहुई है और ऊपरसे वह एक ठोस पाप-डीसे आवृत है। उधर लार्ड केलविनकी भाँति दूसरे विद्वानोंका यह निश्चय है कि भूमण्डल पूर्णतः ठोस है। परंतु पृथ्वीकी उत्पत्ति

---

१ क–एक दूसरे सिद्धान्तके अनुसार यह अनुमान किया गया है कि "पृथ्वी गैसका गोला है, जो पहले एक पिघलीहुई भीतरी परतसे और फिर

भूगर्भशास्त्रसम्बन्धी युगोंके समय और भूमण्डलकी दशाके सम्बन्धमें अपने खास सिद्धान्तोंके प्रमाणित करनेके लिये उनकी दलीलें चाहे जैसी हों पर उसके किसी समय सार्वभौमिक मिश्रणकी दशामें होने या पिघलीहोने और तद्-जनित शनैः शनैः ठंढी पड़जानेवाली

-बाहरी ठोस पपड़ीसे आवृत है।" (Vide Lapworths' Intermediate Text Book of Geology E d. 1899. p. 50)-

ख-अमरीकाके प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री डानका यह कथन है "किसी समय सार्वभौमिक मिश्रणकी दशामें भूमण्डलके अस्तित्वकी बात बुद्धि-संयुक्त सन्देहके परे स्थित है" (Vide Dana's Manual of Geology P' 134 Ed. 1863)

१ डानका कथन है "भूगर्भशास्त्रके इतिहासमें प्रथम युगके रूपमें जीवधारी विहीन युग जरूर होना चाहिये चाहे उस युगकी चट्टानोंकी बातको विज्ञान निश्चयपूर्वक बतलावे या न बतलावे" (Vide Manual of Geology p. 134, Ed. 1863). इधर अध्यापक जुडका यह कथन है. "समयके उस युगके सम्बन्धमें, जो केम्ब्रियन युगके आरम्भसे आजतक बीत चुका है, भिन्न भिन्न निरीक्षकों द्वारा निकाले गये ठीक ठीक परिणाम ७,००,००,००० वर्षोंसे (Walcott) ६,००,००,००,००० वर्षोंतक (Megee) भिन्न भिन्न ठहराये गये हैं।" (Vide, The Students Lyell p. 592 Ed. 1896)

२. पृथ्वीके भीतरकी दशाके सम्बन्धमें नीचे दिये हुए भिन्न भिन्न मतमाने गये हैं-

क-वह पिघली हुई है और ठोस पपड़ीसे आवृत है।

ख-वह सम्पूर्ण ठोस है।

ग-उसका भीतर ठोस है; जो चिपचिपे या पिघले हुए परतसे ढका है और फिर यह परत एक ठोस पपड़ीसे आवृत है।

घ-वह गैसका एक ढेर है, जो पहले एक पिघलीहुई तहसे ढका है और बादको एक बाहरी ठोस पपड़ीसे। (Vide Lapworths' Intermediate Txt Book of Geology Ed. 1899 P.49-50)

दशाका सिद्धान्त कार्यतः चरितार्थ है। तथा यह वात स्पष्ट प्रभावोंके कारणभी सूचित हो जाती है। जब भूमण्डल धीरे धीरे शीतल होनेलगा तब उसकी सार्वभौमिक मिश्रणकी दशा या पिघलीहुई अवस्थाकाल पाकर लोप होगई और उसके ऊपर कडे पत्थरकी पपडी होजानेसे तथा अंशतः उसके टूट-फूटजानेसे हमारे पृथ्वीग्रहपर भूमि और पहाड वनने प्रारम्भ होगये परन्तु तापक्रम बहुत उच्च था और उष्णताका ह्रास अभी होही रहाथा। अतएव इस समयको जीवधारी-विहीन युग कहना चाहिये, क्योंकि इस समय सम्पूर्णवायुमण्डल, जल तथा पृथ्वी जीवनके भरण पोषणके लिये अत्यन्तही उष्ण थे। जिस आर्य्यावर्तसे हमारा सम्बन्ध है उसके विषयमें सम्बन्ध है, भूगर्भशास्त्रीमें सर्स मेडलीकट और ब्लैन्फर्ड, जिनके सिपुर्द भारतकी भूगर्भ सम्बन्धी जाँच—पडताल थी, लिखते हैं "अरावली श्रेणीका ऊंचा होना सम्भवतः पूर्व—विन्ध्य—युगके पहले संघटित हुआ है," "विन्ध्य श्रेणी (भारतके) प्राय द्वीपकी जीवधारी-विहीन-समयकी सबसे पिछली चट्टाने हैं," और जहाँतक प्रमाण मिलता है, "वह (प्रमाण) विन्ध्यके अति पुरातन तथा शायद पूर्व-सिलूरियन (अर्थात् जिस कालकी चट्टानेपर कठिनतासे वनस्पतियाँ और पौधे उग सकते थे), के रूपमें श्रेणीबद्ध किये जानेके पक्षमें है" (Vide Medlicott's Manualof the Geology of India, 1879 Preface, Vol I, p. XXIII) भारतकी भूगर्भ-सम्बन्धी जाँच-पड-तालके अध्यक्ष डाक्टर ओल्ढ्म लिखते हैं "चट्टानोंकी जो बनावटें अरावली श्रेणीमें मिलती हैं वे अवस्थान्तरीय चट्टानोंकी हैं और बडे प्राचीन कालकी हैं। (Vide Manual of the Geology of India 2nd Ed. 1893. p. 6) इस सम्बन्धमें मैं यहाँ बहुत ही हालके प्रामाणिक कथनको उद्धृत करनेका साहस करताहूं उससे यह बात प्रकट होतीहै

कि " जो सारे प्राकृतिकरूप भारतके महाद्वीपमें व्याप्त हैं उन सबमें पहाडोंकी वह श्रेणी प्राचीनतम है जो, अरावलीके नामसे विदित है और जो राजपूतानेके रेतीले मरुस्थलकी उपेक्षा करती हुई पुर्वोत्तरसे लेकर दक्षिण-पश्चिमतक प्राय द्वीपके आरपार स्थित है। अरावली उन अत्यधिक ऊँची पहाडी श्रेणियोंका केवल दवा हुआ तथा उतराहुआ चिह्न है जो जीवधारियोंके सर्व प्रथमरूप धारण करने वाले युग (Palæozoic times) में राजपुताना-सागरके किनारे स्थित थी। जो असंयुक्त चट्टाने एक समय अरावलीकी भाग बनी हुई थी वे अव लाल पत्थरके विस्तृत मैदानोंके रूपमें पूर्व ओर फैली पडी हैं। वहाँ विन्ध्य तथा कद्दापहवाले तलछटके संग्रहोंके नीचे नीस (gneiss) एक-प्रकारकी चट्टान तथा ग्रेनाईट (Granite) के प्राचीन रूप दवे पडे हैं। ये नीस और (ग्रेनाइटकी निचली तहके रूपमें उस समय विद्यमान थे जब अत्यन्त सर्व-प्रथम कालमें, जिसको विवरण भूगर्भ-शास्त्र दे सकता है, वह प्राय द्वीप अरावलीसे वर्तमान पूर्व किनारे तक फैला था। pp. I, 2·

" पृथ्वीकी परतोंकी विद्यामें (Stratigraphy) कैम्ब्रियन सिलसिलेवालीपरतकी नींवको पहला स्थान मिला है। यह नींव ओलेनीलसजोन (Olenellus zoine) कहलाती है संसारके भिन्न भिन्न भागोंमें स्थित इस जातिके या इससे वहुत कुछ मिलती जुलती दूसरी जातिके अवशिष्ट नमूनोंसे इनका निश्चय होता है। यह क्रस्टेसिया (Crustacea) के लुप्तप्राय क्रममें शामिल है जो ट्रिलोवाइट्स (Trilobites) के नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रकारके परतकी पंक्तिके नीचे कई हजार फीटकी गहराई तक ऐसी तहें हैं जो निश्चय किये जानेके योग्य फासिल (Fossil) के अवशिष्ट चिह्नोंसे रहित हैं और सामान्यतः उनमें फासिल

पायेही नहीं जाते इस तरहके ऊपर फासिल धारण करने-वाली तहोंके वडे वडे सिल सिले जमें हुए हैं । इन सिलसिलोमें उस विकासके प्रमाण सुरक्षित हैं जो पशुओं और पौधोंके वीच पेलाइजोइक (Palaeozoic,) मसो जोइक (Mesozoic) तथा कैतो जोइक (Caitozoic) युगोंसे लगाकर वर्तमान समयतक होता रहा है । " सौभाग्यसे भारतमें पंजावके नमकके पहाडमें हम उपर्युक्त पंक्तिको सुरक्षितं पाते हैं। यद्यपि जो ट्रिलोवाइटस सुरक्षित हैं वे प्रसिद्ध नालकके ठीक ठीक सदृश नहीं हैं, तोभी ऐसे रूप विद्यमान हैं जो वहुत कुछ उनसे मिलते जुलते होनेके कारण उनके सजातीय कहेजासकते हैं और हम सरलतापूर्वक यह वात निर्धारित कर सकते हैं कि जो तहें निओवोलस (Neobolus) तहोंके रूपमें विस्तारके साथ आगे उल्लेख की गई है, वे योरुपीय ढङ्गके निम्नतर कैम्व्रियनवाली. तहोंके समान हैं " जो निओवोलस तहोंके वननेके पूर्व थे उनकी और हम आगे दीहुई वातोंका सङ्केत करते हैं:-

क-एक प्रकारकी तख्तियोंकी (Schists) विल्लोरी पत्थरकी चट्टानोंका वडा समूह जो प्रायद्वीपके आधे भागमें प्रकट होता है.

ख-फोसिल विहीन तहोंकी वडी मोटाईयां जो ग्वालियर, कछा पह, विन्ध्य जैसे देशी नामोंसे प्रासिद्ध हैं जो युग पिछले कैंव्रियन् समयके वाद हुए हैं उनके प्रमाण भारतमें दो समूहोंसे प्राप्त होते हैं "

ग-फोसिलवाली तहोंके चिंह "कैम्व्रियनसे लेकर कार्वोनीफे-रिअस (Cardoniferious) तक" प्रायद्वीपके सिवा दूसरे क्षेत्रोंमें पाये जाते हैं। " इस युगके कोई प्रमाणप्रायद्वीपमें नहीं सुरक्षित हैं।

घ-परमो-कारवोनी फेरिअस (Permo Carboniferious) के समयसे लेकर आजतक " जीवन तथा घटनाओंके प्रमाण

आयद्वीप तथा भारतके दूसरे भागोंमें दृष्टि गोचर होते हैं। "इस तरह भारतीय चट्टानें स्वभावतः चार बडे बडे समूहोंमें आती हैं। इनमें दो फोसिल विहीन ओलीनीलस (Olenellus) की मानीहुई पंक्तिके नीचे तथा दो उस क्षितिजके ऊपर जहाँ प्राचीनतम पहचानें जाने योग्य फोसिल स्थित हैं।" "प्राचीनतम वह समूह (The Archœant Group) है जो ऊंचे दर्जेकी तहदार तथा दोहरी, बेहद पुरानी, बिल्लोरी तख्तीदार पत्थरकी चट्टानों, नीसों (Gneisses और Platonce) चट्टानोंका समूह है। इस समूहमें योरप तथा अमरीकाके प्राणिशास्त्र-सम्बन्धी सर्व प्रथम (Archaean) समूहके लक्षण मिलते हैं, जिसके साथ उनका संबन्ध उस समूहके नामोंका व्यवहार शुद्ध ठहरानेके लिये पर्याप्त सुगमतापूर्वक स्थापित किया जासकता है।" p.54 (Vide the Imperial Gazetteer of India The Indian Empire Vol I Ed 1907, pp. 1, 2, 53, 54,) भूगर्भशास्त्र-सम्बन्धी प्रमाण यह बात मानंनेको पर्य्याप्त कारण उपस्थित करते हैं कि आर्यावर्त पूर्व विन्ध्य या लारेंटियन (Laurentian) या किसी कदर विन्ध्ययुगमें जो अलगोंकियन एरा (Algonkian, Era) या पूर्वकैम्ब्रियनयुगसे मिलता है, भूमि क्षेत्र था और तबसे आजतक है। (Vide "The Students Lyell" Edited by John W. Judd 1896 p. 438 The Imperial Gazeteer of India Vol. I, Table Showing sequence of Geological Epochs p. 55 Ed 1907)

दूसरा अध्याय.

पृथ्वी तथा आर्य्यावर्तमें जीवन शक्तिके प्रादुर्भावका युग.

यह बात पिछले अध्यायमें कही गई है पूर्व कैम्ब्रियन युगमें आर्य्यावर्त एक भूमिक्षेत्र था इस अध्यायमें हम अपना ध्यान पृथ्वी तथा स्वयम् आर्य्यावर्तमे जीवन शक्तिके प्रादुर्भाव होनेवाले युगकी ओर देंगे. प्रारम्भमें पृथ्वीपर जीवन शक्तिके अभावसे यह अनुमान किया जाता है कि इस समय उसकी दशा पौधे या पशुके अस्तित्वके लिये अनुपयुक्त थी इस दशाका कारण यह था कि जिस तापक्रमके कारण भूमण्डल पिघलाहुआ था वह बहुत ऊंचा चढाथा, अतएव पृथ्वीके इतिहासमें जीवनशक्तिके आविर्भाव होनेके पूर्वका यह समय जीवन-शक्ति-हीनवाले युगके नामसे विदितहै । भूगर्भशास्त्रके इतिहासमें इस युगको प्रथम युगके रूपमें स्थान मिलेगा * जब भूमण्डल क्रमशः शीतल होगया और उष्णता क्षीण होने लगी तब उसने यथासमय जीवनके धार॰ करनेके लिये योग्यता प्राप्त करली. प्रारम्भमें सम्भवतः वनस्पातियां सर्व प्रथम आस्तित्वमें आई थीं । इनके बाद पशु प्रकट हुए. क्योंकि हमारे पुरातन वैदिक भूगर्भशास्त्रियोंने इसी आशयकी बात कही है " या ओषधीः पूर्वा जाताः " (ऋग्० वे० १०–९७–१) प्राचीन कालमें ओषधियाँ प्रथम उत्पन्न हुई और यह बात प्रसिद्ध अर्वाचीन भूगर्भशास्त्रियोंतकके प्रमाणोंसे भी आश्चर्यजनक रीतिसे तथा अकस्मात् समर्थित होती मालूम पडती है । जीवनके भिन्न भिन्न स्वरूपोंके अविर्भावके क्रमके सम्बन्धमें जेम्स डी० डाना लिखते हैं " किसी प्रकारके जीवनका आस्तित्व अनुमान करनेमें पशुकी अपेक्षा वनस्पातिकाही पहले होना अधिक स्वाभाविक है । " (Manals of

---

* देखो पृष्ठ १ टिप्पणी १.

Geology' Ed. 1863, p. 146 Author's "the Vedic Fathers of Geology ch I and IV pp. 16, 18, 21, 22, 109 @ 113, 128, 130)

पृथ्वीपर जीवन शक्तिके आविर्भावका अर्थ-फोसिलवाली चट्टानोंके निम्नतम विभागवाले (Palœozozoic) युगका प्रारम्भ होना है जीवनके प्राचीनतम चिह्न कहाँ पाये जाते हैं । यह बात जानना निस्सन्देह बडा मनोरञ्जक होगा इस बातके भूगर्भ शास्त्रीयप्रमाण मौजूद हैं कि हिम-युगके पहले (Palœozice) तथा उसके पश्चात्के युगोंमें उत्तरीध्रुवप्रदेशोंमें मध्यम तापक्रम था और वहाँ उन युगोंमे निम्नतर अक्षांशोंके अनुरूप जीवनका अस्तित्वही नहीं था, किन्तु अयनीय आधिक्यके साथ उसकी वृद्धि भी हुई थी । ')
(Vide, Dana's Manual of Geology Ed.. 1863 p. 225) अध्यापक डान लिखते हैं-" उत्तरीध्रुवका हलका तापक्रम आगे दिये हुए संयुक्त राज्यों तथा योरपीय उपभेदोंकी उपस्थितिसे और भी स्पष्ट होजाता है । ये उपभेद उन देशोंके विभिन्न स्थानोंमें मिले हैं और इनका उल्लेख आगे हुआ है । " " इसके सिवा कङ्कडोंकी मोटीतहकी बनावट यह प्रगट करती है कि वहाँ निम्नतर अक्षांशोंके अनुरूप केवल जीवनका अस्तित्वही नहीं था, किन्तु उसकी वृद्धि अयनीय आधिक्यके साथ हुई थी, (pp. 224, 225) इसी तरह आर्यावर्तका भी जलवायु एजोइक एज (Azoic Age) की समाप्ति तथा पेलि-

---

१ 'उत्तरीध्रुवदेशोंके' पैलिओजोइक (Palœozoic) समयके सम्बन्धमें अध्यापक डान लिखते हैं- " ट्रेन्टनके कङ्कड उत्तरीध्रुवमें किंग विलियम द्वीपके पश्चिमी किनारेपर बोथियाके पूर्व तथा पश्चिम ओर नार्थ समरसेटके फुरी फायन्टमें पहचाने गयेहैं "(Manual of Geology p. 207 Ed. 1863) मैं यहाँ यह कहसकताहूँ कि ट्रेन्टनयुग निम्न सिलूरियनयुगसे मिलताहै ।

ओज़ोइ (Palœozoic) युगके प्रारम्भसे हलका रहा है । इस बातको हम आगे बतलावेंगे । मेसर्स मेड लीकट तथा ब्लैम्फर्ड जैसे भूगर्भ शास्त्रियोंने लिखा है—"भारतीय भूमिक्षेत्रमें बहुत प्राचीन युगोंमें हलके तापक्रमके प्रवर्तित रहनेके कुछ विचित्र चिह्न वहाँ मौजूद हैं।" (Medlicott's Manual the Geology of India preface p. XXII) इसके सिवा पंजाबके नमकके पहाडके कैम्ब्रियन फोसिलोंके सम्बन्धमें भारतीय भूगर्भशास्त्र-सम्बन्धी जाँचपडतालके अध्यक्ष डाक्टर ओल्ढमके जो विचार है वे भी पृथ्वीके इतिहासके अत्यन्त प्राचीन समयमें आर्यावर्तमें हलके तापक्रमके प्रवर्तित रहने तथा तत्पश्चात् जीवनशक्तिके उत्पत्तिके पक्षमें प्रमाण बलिष्ठ हैं । वे लिखते हैं-(भारतके) प्रायद्वीपके बाहरके भूमिक्षेत्रोंके सम्बन्धमें ऐसे अप्रत्यक्ष प्रमाणसे, जैसा यह है हमें स्वयम् सन्तुष्ट होजानेके लिये कोई आवश्यकता नहीं हैं । क्योंकि स्पष्ट तीन भूमिक्षेत्रोंमें कैम्ब्रियन तथा सिलूरियन फोसिलोंकी खोजसे प्राचीनतर पेलिओजोइक (Palœozoic) चट्टानोंकी उपस्थितिप्रमाणित हो गई है ।" "इनमेंसे पंजाबका नामकका पहाड बडे महत्त्वका है, क्योंकि इसकी खूब अधिक जांच पडताल हुई है । यहाँकी लगभग ३००० फुट मोटाईकी तहोंकी विस्तृत श्रेणियाँ नीचे दिये हुए समूहोंमे विभाजित हैं:—

Salt psendoworph zone	450 ft.
Magnesian sandstone	280 "
Neobolus beds	100 "
Purple sandstone	480 "
Salt marl	1500 "

(Vide manual of the Geology of India by R. D. Oldhaw A. R. S. M. Ed. 1893 p. 109)

इसके आगे ग्रन्थ प्रणेता इस तरह लिखता है-" जिनके सिवा (अर्थात् Olenus Indicus, Orthis warthi इत्यादिके सिवा) मिस्टर मिडिलमिसने (Olenellus) जातिका एक (Trilobite) (नमकके पहाडक कैम्ब्रियन फोसिलोंमें) पाया है " " इस समूहका कोई वर्ग संसारके दूसरे भागोंमें अभीतक नहीं पाया गया है परन्तु फौना (Fauna) का सामान्य सूरतोंपर विचार करनेसे इस बातके सन्देहके लिए कोई स्थान नहीं है कि (पंजावके नमकके पहाडकी,) तहें कैम्ब्रियनयुगकी हैं फलतः वे भारतकी प्राचीनतम तहें हैं, जिनका समय वहुत कुछ निश्चयपूर्वक निर्धारित किया जा सकता हैं "(Ibid p. 113) परन्तु इस बातकी अपेक्षा डाक्टर नोइटलिंगके प्रामाणिक कथनके अनुसार यह अनुमान करनेको हमारे पास अधिक कारण है कि पंजावके नमकके पहाडमें कुछ फोसिल केवल कैम्ब्रियनयुगकेही नहीं हैं, किन्तु वे पूर्व कैम्ब्रियनकालके मालूम पडते हैं। अध्यापक जडने उन्हें "निम्नतम कैम्ब्रियनसमयकी अपेक्षा वास्तवमें प्राचीनतरयुगके" बताया है। (Vide the Student', Lyell Ed. 1896 p. 438) इस युगका मिलान पुराण-समूह तथा विन्ध्य या अलगनकियन (Algon Kian) युगसे स्पष्टतः मिलजाता है। (Vide the ImperialGazetteer of India, Vol I Ed. 1907 p. 55) इस तरह आर्यावर्तके जलवायुने तथा दूसरी देशकालिक अवस्थाओंने जो जीवनके प्रति किसी प्रकार हानिकारक नहीं रहीं, जीवनशक्तिको विकासित होनेका अवसर दिया और ऐसी दशामें परतोंकी एक ऐसी श्रेणी पश्चिमोत्तरभारत तथा पंजावके नमकके पहाडमें पाईगई जिसमें निओबोलस (Neobolus) नामके फोसिल तथा अनेलीडा (Annelida) इत्यादिके भिन्न भिन्न चिह्न वर्तमान थे। अतएव डाक्टर नोइटलिंग, अध्यापक जड इत्यादि विद्वानोंने इन्हे " निम्नतम कैम्ब्रियन

समयकी अपेक्षा वास्तवमें प्राचीनता युगसम्बन्धी" स्वभावतः बतायाहै। अतएव यह बात स्पष्टतः संकेत करती है कि आर्यावर्तमें जीवनका प्रारम्भ पूर्व कैम्ब्रियन तथा एजोइक (Eozoic) युगमें हुआथा इसके सिवा पंजाबके नमकके पहाडके पूर्वभागमें डाक्टर नोइटलिंग द्वारा पायेगये फोसिलों (Fossils) की अत्यधिक प्राचीनताके सम्बन्धमें डाक्टर कार्ल ए०रेडालिचने भारतकी भूगर्भशास्त्रीयजाँच-बडतालके अपने विवरणमें जो मनोरञ्जक तथा विस्तृत कारण उपस्थित किये हैं वे आगे दियेजाते हैं—" नोइटलिंग पहले व्यक्ति हैं जो अधिक ठीक संग्रहोंके द्वारा उत्तरोत्तर क्रमको निश्चयके साथ निर्धारित करनेमें समर्थ हुए हैं। उन्होंने यहभी प्रकट किया कि, जो फोसिल पिचोपोरैया वार्थी (Ptychoparia warthi) एवं ओलिनसइनडीकस (Olenus Indicus) तथा उसकी उपजातियोंके साथ प्राप्त हुए थे वेनिओबोलस-ओलिनीलसफौना (Neobolus Olenellus fauna) की अपेक्षा निम्नतर क्षितिजियोंसे आयेथे। अतएव अपने निरीक्षणके आधारपर उन्होंने मण्डलात्मक अनुक्रमको ठीक ठहरायाहै और यह बात स्थिर की है कि इन तहोंको पिचोपेरियावार्थी तथा ओलीनसइनडिकसके सहित निम्नतर उपविभाग जैसे समझने चाहिये और इन्हे निओवोलस तथा

---

१ मैं यहाँ यह निवेदन करता हूँ कि भूगर्भशास्त्र सम्वन्धीनामोंको उतनी शुद्धतापूर्वक जितनी एक साधारण मनुष्यके रूपमें म करसका, मैंने प्रयोग करनेका प्रयत्न कियाहै। क्योंकि अध्यापक जडने वतलायाहै कि " योरपीय भूगर्भशास्त्रियोंमें भी विशाल भूगर्भ-शास्त्र-सम्वन्धी व्यवस्था तथा उसके प्रधान उपविभागोंके नाम रखने और उनका समय निर्धारित करनेके सम्वन्धमें शब्दोंके प्रयोग तथा तत्सम्वन्धी मतोंमें भारी विभिन्नता है" (Vide the Student's Lyell Edited byjohu W. judd 1896 p. 146) अतएव इस विषयमें मैंने प्रामाणिक ग्रन्थकर्ताओंका अनुसरण करनेका साहस कियाहै।

ओलीनीलस मण्डलके पीछे रखना चाहिये । (Vide Palæontologia Indica New series 1899 Vol. I plate I The Cambrian Fauna of the Eastern salt range p. 10)

इसीके साथ मैं यहाँ यहभी कहसकताहूँ कि, जब आर्य्यावर्तमें जीवनका : अस्तित्व - भूगर्भशास्त्रीयप्रमाण-द्वारा निम्नतम कैम्ब्रियन युगकी भी अपेक्षा प्राचीनतर सिद्ध कियागया है तब उत्तरी-ध्रुव-देशोंमें वही जीवनका अस्तित्व आरडोवीसियन (Ordovician) युग-तकका भी प्रकट होता हुआ नहीं मालूम पडता है और केम्ब्रियन युगका तो बहुतही अध्यापक लापवर्थ भारतके कैम्ब्रियन् युगकी चट्टानोंको बोहेमिया, बवेरिया, फ्रान्स, बेलजियम, स्पेन, सार्डीनिया, उत्तरीचीन, पश्चिमी आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमेरीकाकी तत्कालीन चट्टानोंकी श्रेणीमें परिगणित करते हैं, पर उत्तरी ध्रुव देशोंकी चट्टानोंको नहीं । सम्भवतः वहाँ कैम्ब्रियन युगकी कोई चट्टानही नहीं प्राप्त हुई है । (Vide The intermediate Text Book of Geology p.201 Ed. 1899) हाँ ! वे उत्तरी ध्रुव-देशोंकी सिलूरियन तहोंका उल्लेख करते हैं जो वहाँ सिलूरियन युगसे जीवन शक्तिके आविर्भावका सङ्केत करती हैं। अध्यापक लापवर्थ लिखते हैं कि सिलूरियन तहें ऊत्तरी अमेरिका....के उत्तरी ध्रुव-देशोंमें प्राप्त हुई हैं ।(Vide Ibid p. 288) उसी तरह उत्तरी ध्रुव-देशके पेलोजोइक युगके सम्बन्धसें कथन करतेहुए: जेम्स डी. डाना भी लिखते हैं कि लाइम स्टोनकी तहें जिनमें चेजी फोसिल थे, उत्तरी ध्रुवमें किंग विलियमके द्वीपके नार्थ डिवनमें तथा वेलटके मुहानेके डिपोमें देखी गई हैं (अक्ष ७२, देशां ९४) । (Vide manual of geology by James D. Dana p. 206 Ed. 1863) चेजी फोसिलका मतलब चेजी या ट्रेन्टन युगके फासिलसे है, और यह युग निम्न सिलूरियन्

युगसे मेलखाता है। अतएव उत्तरी ध्रुवदेशोंमें जीवनीशक्तिके अस्तित्वकी बात सिलूरियन युगकी अपेक्षा प्राचीन तर नहीं मालूम पडती. जैसा कि भूगर्भशास्त्रीय प्रमाणसे मालूम किया जा सका है । इस बातका यह अर्थ है कि आर्यावर्तमें जीवनका अस्तित्व उत्तरी ध्रुव-देशोंके जीवनके अस्तित्वकी अपेक्षा प्राचीनतर था ।

उत्तरी ध्रुव-देशोंमें जीवनके अधिक पहले आविर्भाव होनेके सम्बन्धमें सम्भवतः अन्य दूसरे प्रमाणभी हों पर वे मेरी निगाहमें नहीं पडे मैं उन्हें नहीं जानता, तो भी यह परिणाम सरलता पूर्वक निकाला जा सकता है कि आर्यावर्तमें जीवन शक्तिका अस्तित्व उत्तरी ध्रुवकी अपेक्षा किसी भाँति भी पिछले समयका नहीं है जैसा कि एम्. डी. सपोर्टा अनुमान करते हैं और साथही साथ हमभी अपनी कल्पनाको स्वीकार कराना चाहते हैं । चौथे अध्यायमें उत्तरी ध्रुवके सिद्धान्तकी समीक्षा करतेहुए उनके मत विस्तारके साथ उल्लेख किया जायगा तथा उसपर विचार भी किया जायगा ॥

तीसरा अध्याय.

आर्यावर्तमें आर्योंका मूलस्थान तथा तत्संबंधी भूगर्भशास्त्रीय प्रमाण.

सप्त-सिन्धु-देशको आर्योंका मूलस्थान सिद्ध करनेके सम्बन्धमें वैदिक और अवस्तिक प्रमाण प्रस्तुत करनेके पहले मैं इस सम्बन्धमें पाठकोंके सामने उपयुक्त भूगर्भ-शास्त्रीयप्रमाण उपस्थित करूँगा—

पहले अध्यायमें मैंने दिखलाया है कि, विन्ध्य या पूर्व-कैम्ब्रियन युगमें आर्यावर्त भूमि-क्षेत्रके रूपमें था उस युगके पश्चात्के सारे भूगर्भशास्त्रीय युगोंमें वह उसी अवस्थामें ही बनारहाहै । दूसरे अध्यायमें मैंने यहभी बतलायाहै कि आर्यावर्तमें जीवनका अस्तित्व उत्तरीध्रुव-देशोंकी अपेक्षा अधिक प्राचीन समयसे था । उत्तरीध्रुवमें

उसका अस्तित्व केवल सिल्यूरियन युगसे मालूम पडताहै । इधर भारतमें जैसा कि अभी हालमें डाक्टर नोइटलिंगने बतलाया है कि जीवनशक्तिका अस्तित्व निम्नतम कैम्ब्रियनकी अपेक्षा प्राचीनतर युगमें था और ऐसी अवस्थामें वह विन्ध्य या पूर्वकैम्ब्रियन युगमें जरूर रहा होगा । (Vide The Student Lyell Edited by projudd I896, pp. 438. 623)

आर्योंके मूल-स्थानके प्रश्नको हाथमें लेनेपर दो बातें स्पष्ट मालूम पडतीहैं; एक यह कि, विज्ञान सारी मानवजातिकी तो कुछ बात नहीं, आर्योंके मूल-स्थानके प्राच्यमें होनेके विचारका पक्ष पुष्टकरताहै. दूसरी यह कि वैदिकप्रमाण आर्यावर्त या सप्त-सिन्धु-देशके सिद्धान्तका समर्थन करताहै । पहली बातके समर्थनमें मैं अध्यापक डानका कथन उद्धृत करूँगा, फिर दूसरी बात दिखलानेके लिये वैदिक तथा दूसरे प्रमाण उपस्थित किये जायँगे, अध्यापक डान लिखतेहैं—" सारेदेशोंमें फैलने तथा सब प्रकारके जलवायुको अपने अनुकूलकरनेवाला मानव-स्वभाव सृष्टि-रचनाको भूमण्डलके भिन्न भिन्न देशोंमें प्रधानतया अनावश्यक करदेताहै, जो प्रत्यक्ष रीतिसे उसकी निजकी भलाईके विरुद्धहै । इसके विपरीत सृष्टि-रचना मनुष्यके लिये वही कार्य करेगी जो मनुष्य अपनेलिये स्वयम् करसकताहै । वह प्रकृति-राज्यमें उसके विजयक्षेत्रको संकुचित करेगी और इस तरह उसके समुन्नतिके साधनों तथा अवसरोंको घटादेगी " (Vide Manual of Geology p.585 Ed. I863)

अध्यापक डान आगे लिखतेहैं " प्राच्य सदा उन्नतिका महादेश रहाहै " और " वह उन्नतिके क्षेत्रमें शीर्ष-स्थानमें स्थितथा यह बात सारे भूतकालिक सादृश्योंके ही अनुसारहै कि मनुष्य सर्वप्रथम विशाल प्राच्यके किसीभागमें उत्पन्न हुआ होगा और उसके स्वतः इधर-उधर फैलने तथा उसकी आत्मोन्नतिकेलिये दाक्षिण-

पश्चिम एशियाकी अपेक्षा अधिक उपयुक्त कोई दूसरा स्थान नहीं मालूम पडेगा, क्योंकि वह एक ऐसा केन्द्र है जहाँसे योरप एशिया तथा अफ्रीकाके तीन विशाल विभाग निकलते हैं " (Ibid pp. 585, 586) परन्तु वैदिक प्रमाणसे हमे इससेभी अधिक बात मालूम होती है। परन्तु थोडी देरके लिये हम यहां अपना ध्यान आर्यावर्त या भारतकी ओर दिया चाहते हैं। हमें यह देखना है कि, इस सप्त-सिन्धु-देशमें मनुष्यकी अथवा आर्य-मनुष्यही की उत्पत्तिका कोई भूगर्भ शास्त्रीय प्रमाण मिलता है या नहीं? भूगर्भ शास्त्रके अध्यापक लैपवर्थ लिखते हैं कि, " भारतमें तृतीय कालीन युगकी तहोंकी बनावटोंसे परिपूर्ण श्रेणियाँ विद्यमान हैं.(१२००० से १५००० फुट तक) इनमें सबसे पिछली श्रेणियां समुद्री उत्पत्तिकी हैं. ये तृतीय कालीन युगके मध्यभागवाले युग (Miocene) की हैं। " वे लिखते हैं-" सिवालिककी तहें तृतीयकालीन युगके द्वितीय भागकी भारतीय चट्टाने हैं, (Pliocene) इनकी उत्पत्ति नदियोंसे हैं, इन्हें नदियोंने अपनी धारामें बहालाकर और हिमालयके समीप जमा करके बनाया है. ये तहें एलोफस हिप्पोपोटामस इत्यादि लुप्तप्राय मामलों (Mammals) के आधिक्यके लिये प्रसिद्ध हैं, (Intermediate Text Book manuals of Geology p.337 Ed.1899) इसके सिवा मेसर्स मेडलीकट और ब्लैनफर्ड जैसे दूसरे भूगर्भ शास्त्रियोंने यह लिखा है कि-" शिवालिकवाले फौना तथा योरपीय मिओसीनके फौनाके बीच विलक्षण सादृश्य है"(Manal of the Geology of India p. LV Vol. I1879) इन भूगर्भ शास्त्रियोंने अर्थात् मेसर्स मेडलीकट (सुपरिन्टेन्डेन्ट) और, ब्लैंफर्ड (डिप्टी सुपरिंटेन्डेन्ट) ने जिन्हें सरकारने भारतकी भूगर्भ शास्त्र सम्बन्धी जाँच पडताल सौंपी थी. इसके आगे यहभी लिखा है कि "भारतीय प्रायद्वीपकी तराईके कङ्कडों और विशेषकर नर्मदाकी तराईकी कुछ

(Fossiliferous) तहोंमें शिवालिकवाले मामलोंके चिन्ह (Mammalia) विद्यमान हैं, ये वर्तमान समयमें जीवित उपजातियोंसे अधिकांशमें मेलखानेवाली उपजातियोंसे मिलते जुलते हैं " (.Ibid Vol I p. LV) नर्मदा और गोदावरीकी धाराके कङ्कडोंमें मानवीय अस्त्रोंके भग्नावशेष भी ढूंढ निकाले गये हैं। ये (Pliocene) (अर्थात् द्वितीय तृतीय कालीनयुगकी अपेक्षा हालकी तहोंके) मनुष्यकी सृष्टिको प्रमाणित करते हैं। (Vide The Students Lyell Edited by john W. judd pp. 236, 237, 451, Ed. 1896) इसके सिवा (Miocene) (अर्थात् द्वितीय तृतीय कालीन युगवाले) या शिवालिक कालीन मनुष्यकी सृष्टिके चिह्न फरदर इण्डिया (अर्थात् ब्रह्मा, स्याम, कम्बोडिया आदि देशोंके भूमि-खण्ड) में भी पाये गये थे । अतएव फाकलोर सोसायटीके सभापति एडवर्ड क्लार्डने लिखाहै " फरदर इण्डियामें एक ऊपरी (Miocene) तहोंके संग्रहमें चकमक पत्थरकी कुछ नोकदार तहें अभी हालमें खोज निकाली गई हैं, जिसके मानवहस्त-निर्मित होनेमें जराभी सन्देह नहीं है " (Vide "The story of Primitive Man" p. 23 Ed.1895) इस तरह भूगर्भ शास्त्र सम्बन्धी प्रमाण तथा मनुष्योंके अस्त्र-शस्त्रोंके बचेहुए चिह्न मनुष्यके अस्तित्वको हिम-युगमें तथा तृतीय कालीन युगमें भी प्रमाणित करतेहुए मालूम पडते हैं। (Vide, mywork, The vedic Fathers of Geology pp. 32, 33,) परन्तु वैदिक ग्रन्थोंमें पूर्व-हिम-युग तथा तृतीयकालीन-युगके मनुष्यकी सृष्टिके भी स्पष्टचिह्न प्रकट होते हैं । हमारे ऋग्-वैदिक पूर्वपुरुषों और उनके (Pre Pleistocene) अर्थात् पूर्व चतुष्कालीन युग तथा तृतीय कालीन-युगके बापदादोंकी सभ्यताके उच्च मानका भी प्रमाण है ये अपनी इस सभ्य-

ताको आर्यावर्त या सप्त-सिन्धु-देशसे जिसको अपना घर तथा मूलस्थान जैसा सदा समझते थे जैसा कि हम आगे प्रकट करेंगे, पश्चिम तथ पूर्व उत्तर तथा दक्षिण चारों ओर सुदूर देशोंतक गये थे औ र उसका वहा प्रचार किया था। हमारे आर्यावर्तीय मूलस्थानकी कालिक अमिट परम्परायें स्वयम् ऋग्वेदमें भी आश्चर्य-जनक रीतिसे स्थान स्थानपर एकत्र हैं। हमें इस बातको नहीं भूलना चाहिये और न जानबूझकर इसकी उपेक्षा ही करनी चाहिये ये परम्परायें हमारे मनपर अपनी वास्तविकताकी छाप भडकीले रंगमेंसे अङ्कित करती हैं, मानो यह बात प्रकट करती हैं कि, प्रसिद्ध सप्त-सिन्धु देशकी हमारी उत्पत्तिके सम्बन्धमें इन्होंने जो चिह्न हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंपर स्पष्ट रीतिसे अङ्कित किये थे वे केवल असलीही नहीं थे, किन्तु स्मृति-पटलसे उनका किसी भाँति मिटजाना सम्भवभी नहीं था। हाँ, समयानुसार वे चिह्न अपरिमेय भूतकालकी गहरी प्राचीनताके कारण धुंधले जरूर होगये। क्योंकि यह बात स्पष्ट मालूम पडती है कि हमारे आदिम मूल-पुरुषोंके प्राथमिक चिह्नोंको हमारे ऋग्वैदिक बापदादोंने परम्परागत प्राप्त किया था, और उनका प्रवाह तथा धारायें नितान्त शुद्ध थीं, वे किसी भाँति जरा भी अशुद्ध नहा थीं। इस कारण हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंने बहुत अधिक ध्यानसे उन सब परम्पराओंको जमा किया, बडीही सावधानीसे उनको बचाया, और उन अनमोल स्रोतोंकी रक्षा कंजूसकी चिन्ता तथा सावधानीके साथ की थी। वे परम्परायें बहु मूल्यवान् धरोहर समझी गई और बहुतही ठीक समझी गई क्योंकि वे हमारे उस इतिहासके सच्चे तथा उज्ज्वल लेख होगई हैं जो हमारे मूलस्थानसे प्रारम्भ होता है। उदाहरणके लिये आर्यावर्तका वह भूखण्ड जिसमें पंजाबकी नदियाँ बहतीं और उसे तरकरती हैं और जो सिन्धु तथा सरस्वतीके बीचमें स्थित है, ऋग्वेदमें "देवनिर्मितदेश" (योनिं

देवकृतं-ऋग्वेद ३-३३-४) अथवा देवताओंका देश और सृष्टिके लीलाक्षेत्रके नामसे अभिहित होता मालूम पडता है।

जो पहला सर्प विशालसिन्धुके किनारे पडाथा वह इसी देशमें मारा गयाथा। वह सर्प सारे सापोंमें प्राचीनतम तथा विशालकाय था। उसके मारेजानेपर पहले-पहल मेघोंने जल बरसाया, जिससे आर्यावर्तकी सातों नदियाँ उमडचलीं। इन नदियोंके बहनेका यही पहला अवसरथा। पहले पहल उद्दीयमान उषाभी हमारे आदिम पूर्व-पुरुषोंको वैदिक-विपश या आधुनिक व्यासनदीके समीपही क्षितिजपर दिखलाई पडी थी। इसके बाद सूर्यके दर्शन हुएथे, जिसे ऋग्वैदिक कवियोंने इन्द्रके रूपमें वर्णन किया है और उसे उषाको आत्मसात् उसके रथको भग्न करते हुए

१ प्रथमजा महीनां ... ऋ. वे. १-३२-३

२ महां सिन्धुमाशयानं.........ऋ. वे. २-११-९ .

३ अहन्नेनं प्रथमजामहीनां...ऋ. वे. १-३२-३

अहन्नहिं......ऋ. वे. ४-२२-१

४ वृत्रं वृत्रतरं......ऋ. वे. १-३२-५

५ अवासृजः सर्तवे सप्तसिन्धून्॥ ऋ. वे. १-३२-१२

......अरिणात्सप्त सिन्धूनयाव्रणो दपिहितेव खानि॥ ४-२२-१

इसी पुस्तकका छठा अध्यायभी जिसमें आर्यावर्तमें आर्यमूल स्थानके सम्बन्धमें वैदिक प्रमाण तथा उसपर प्रकाश डाला गयाहै।

६ सूर्यके उदय होनेके पूर्व प्रातःकालकी प्रभा,

७ ऋ. वे. ४-३०-११ जो आगे १० वीं टिप्पणीमें दिया गयाहै।

८ उषा सामिन्द्रसंपिणक्॥ ऋ. वे. ४-३०-९;४-३०-८भी।

९ शब्दशः अर्थ मारडालताहै। इन्द्रं चकर्थ पौंस्यम्।...

...वधीर्दुहितरं दिवः। ऋ. वे. ४-३०-५.

१० एतदस्या अनः। शये सुसंपिष्टं विपाश्या॥ ४-३०-११.

सोदंचं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः संपिपेष॥ ११-१५-८.

दिखलाया है। और वह उषा स्वयम् अपने भग्न तथा विनष्टरथसे भयभीत होकर बहुत दूर भागती हुई हमारे ऋग्वैदिक बापदादों द्वारा स्पष्टव्यक्त की गई है॥ इस पुस्तकका छठाँ अध्यायमें मैंने इन बातोंका यथोचित विवरण दियाहैं। वास्तवमें यह सप्त-सिन्धु-देश ही देवनिर्मित देश (योनिंदेवकृतं ऋ० वे० ३-३३-४) था सृष्टि-रचनाका लीलाक्षेत्र बनाथा। हमें आगे चलकर मालूम पडेगा कि यहीदेश यागप्रेमी आर्य मनुष्यको प्रदान किया गयाथा (अहं भूमि-मददामार्याय—दाशुषे मर्त्याय। (ऋ० वे० ४-२६ २.) उताक्षिति र्योऽस्वनीरविन्दः—ऋ० ६-६१-९) यह उसे तब प्राप्त हुआ था जब वह प्रथम जलवर्षण (अददामार्यायाऽहंवृष्टिं—ऋ० वे० ४-२६ २—ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दन् (१-१०-१-५) तथा प्रकाशकी न्यामं तकोभी (अपावृणोज्योतिरार्याय ऋ० वे० २-११-१८,) प्राप्तकर चुकाथा। निदान, इस सप्त-सिन्धु-देशमें जैसा कि इसके नामसे सूचित होता है, सात नदियाँ बहतीं तथा उसको अपने जलसे सींचतीं थीं। यही नहीं, उक्तदेश उन नदियोंके कारण पालित तथा पोषित होता था. वे नदियाँ जैसा हम सबलोग जानते हैं, ऐतिहासिक दृष्टिसे बडी प्रसिद्ध, दूसरी नदियोंकी अपेक्षा पर-म्परागत अधिकमहत्त्वशालिनी और वैदिक समयसे बहुत प्रख्यात हैं वे (१) गङ्गा, (२) यमुना (३) सरस्वती, (४) सतलज (शुतुद्रु), (५) रावी (परुष्णी), (६) चीनाब (चन्द्रभागा) और (७) सिन्धुके नामसे विदित हैं। परन्तु उनमें सरस्वती नदीका ऋग्वेदमें अत्यन्तही महत्त्व तथा गौरवत्वपूर्ण उल्लेख हुआ है, वह सबमें पवित्रतम मानी गई है यद्यपि तुलनात्मक दृष्टिसे वह-

---

१ अपोषा अनसः सरत्सं पिष्टादहं बिभ्युषी। ४–३०–११

२ ससारसीं परावतः॥ ४–३०–११.

आकारमें छोटी है। ऋग्वेदमें लिखा है–" सरस्वतीनदी नदियोंकी माता है तथा उनमें यह सातवीं है " (सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता...ऋ० वे० ७–३६–६)। यही नहीं, यह भी मालूम पडताहै कि वह उन सबमें सबके आगे तथा शीर्षस्थानमें रही है। इसके पूरेपूरे कारण मैं यहाँ पर उपस्थित करना आवश्यक समझताहूँ. पहला कारण यह कि तृतीयकालीनयुगकी तो कुछ वातही नहीं, पुरातन ऋग्वैदिकसमयसे ही सरस्वतीनदी अपनी पवित्रताके लिये प्रख्यात है जैसा कि क्रमशः प्रकट किया जायगा। दूसरा यह कि उसके पवित्र किनारोंपर या उसके पुनीतदेशमें अनुष्टित यागों तथा यागीय अधिवेशनोंने उसकी पवित्रताके सम्बन्धमें उसकी कीर्ति स्थाईकरने तथा उसके गौरवके वढानेका कार्य किया. तीसरा यह कि वह श्रेष्ठतममाता, श्रेष्ठतम नदी, श्रेष्टतमदेवी निश्चित रक्षा-स्थल और लौह-दुर्गअभिहित की गई है (देखो ऋग्वेद १-३-१०,२-४१-१६,७-९५-१; ऐत० ब्रा० १-१९; कौश० ब्रा० १२-२; इस पुस्तकका छठाँ अध्याय)। परन्तु इससे मनकी उत्कण्ठा तथा इन सब वातोंकी तहतक पहुँचनेके लिये उसकी आतुर लालसा शान्त न होगी। क्योंकि इस प्रकारके प्रश्न मनमें पद पदपर उठतेही रहेंगे कि " सरस्वती नदीकी यह पवित्रता कहाँसे आई, इस वातका रहस्य कहाँ स्थितहै, सारीवातंकी जड कहाँ तक गईहै, और इनवातोंका असली कारण कहाँ विद्यमानहै ? " इन सबका विवरण ऋग्वेदमें है. और अकेले ऋग्वेदमेंही मिलेगा यही नहीं किन्तु जिज्ञासु मनको उसके भिन्नभिन्न प्रश्नोंका उत्तर ४. क ऋग्वेदमें ही मिलेगा वहीं पूर्णध्यानके साथ उसकी शङ्कायें सुनी जायँगी, और वहीं सूचनारूपी द्वार उसे बुलानेके हेतु खुले मिलेंगे अतएव जब हम ऋग्वेदकी ओर ध्यानदेतेहैं तब हम उसमें सरस्वती-नदीकी पवित्रताकी वातपर वहुतही अधिक प्रकाश पडता देखते हैं। अभीतक यह पुस्तक एक-

मुहरबन्द पुस्तककी भाँतिपडीथी अतएव इसकी उपयोगिता रहस्यमेंही दबी पडी रही । ऋग्वेदमें सरस्वतीनदीपर पूर्वोक्त सारी प्रशंसाओंकी वर्षा इस कारण की गई मालूम पडती है कि वह आर्य तथा मानव-जातिके मूल-स्थानका केवल लीलाक्षेत्र ही नहीं अनुमान की गई, किन्तु, वह मानवजीवन या स्वयम् जीवन-शक्तिकी उत्पत्तिका देश समझी गईथी। वहाँ उसका आगे लिखे अनुसार सम्बोधन करके उल्लेख हुआ है-" ते विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् " । (ऋ० वे० २-४१-१७) " हे सरस्वति, साराजीवन तुझमें है, तू दैवी है " । इसी कारणसे वह श्रेष्ठतम माता, श्रेष्ठतम नदी और श्रेष्ठतमदेवी कहकर पुकारी गईहै । (ऋ० वे० २-४१-१७) भूगर्भ शास्त्रकी दृष्टिसे उपर्युक्त ऋचा बडे मौकेकी है उसके अत्यन्तमहत्त्वपूर्ण होनेके सम्बन्धमें तो कुछ सन्देहही नहीं । क्योंकि ऋग्वैदिक कविका कवित्वमय उद्गार किसी अतिव्यवहृत प्रसङ्ग या सामान्य विषय सम्बन्धी विचार या किसी निरर्थक कथनका प्रवाह नहीं मालूम पडता है किन्तु उसका यह उद्घोष भूगर्भ शास्त्रकी गहरी खोजोंका एक मौलिक विचार प्रतीत होता है । इस खोजके कार्यमें हमारे ऋग् वैदिक पूर्वपुरुष ध्यान-पूर्वक लगे हुए थे। यह बात उन अत्यन्त मनोरञ्जक खोजोंसे साफ साफ जानी जा सकती है जो उन्होंने उस समय विना किसीकी सहायताके की थीं (Vide author's The vedic Fathers of Geology) पूर्वोक्त ऋचामें कविने इस भूगर्भ शास्त्रीय खोजका संकेत किया है कि, पृथ्वीके शीतल तथा जीवनके पोषणके समर्थ हो जानेके अनन्तर जीवन-शक्तिका आविर्भाव पहले पहल सरस्वती नदीके देशमें हुआ था. यह विचार अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है अतएव मैं पाठकोंके सामने उस ऋचाको भिन्न भिन्न प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों-द्वारा अँगरेजीमें किये गये अनुवाद उद्धृत करनेका साहस करता हूँ-" तुझ देवीमें

सारा:जीवन है, ऐ सरस्वति " (ऋ० वे २-४१-१९ एस पी. पण्डित) " तुझमें, हे सरस्वति! हे देवि! सारी सन्तान अपना सहारा रखती है " (आर. टी. एच. ग्रीफिथ) " तुझमें, हे सरस्वति, जो तू देवी है, सारे आस्तित्व एकत्र हैं " (एच. एच. विलसन) ,

इस ऋचाका अभिप्राय तो स्पष्ट ही है। सारे विचारों तथा उद्देशोंके प्रति एवं भूगर्भ शास्त्रकी वैदिक तथा अवैदिक खोजोंकी दृष्टिसे भी (Vide my work, The vedic Fathers of Geology pp. 35 @ 38, 99, 102) वह यहीभाव प्रकट करती है कि, हमारे वैदिक भूगर्भ शास्त्रियोंने यह बात अनुमान की थी कि पृथ्वीके शीतल हो जानेके उपरान्त जीवन-शक्तिका लीलाक्षेत्र तथा वह देश जहाँ जीवन सर्व प्रथम, आविर्भूत हुआ था सरस्वती नदी है जैसा कि उस ऋचामें लिखा है कि सारा जीवन या सन्तान या आस्तित्व सरस्वती नदीमें है। सम्भवतः वैदिक ऋषियों और भूगर्भ शास्त्रियोंको इस नदीके तलभाग तथा इसके देशमें कुछ फोसिल मिले होंगे! और इन्हें उन लोगोंने जीवनके सर्व प्रथम नमूने समझा होगा। अतएव यह बात स्वभावतः विचार की गई कि जीवन शक्तिकी उत्पत्ति उसी देशमें हुई और इस कारण जीवनके आविर्भावका मूलस्थान सरस्वती नदीके किनारे या उसका देश समझा गया (ते विश्वा सरस्वती श्रितायूंषि देव्याम् ऋ० वे० २-४१-१७) अतएव सरस्वती की पवित्रताका मुख्य कारण यही बात मालूम पडती है। क्योंकि वस्तुस्थितिके विचार से हमारे वैदिक बापदादोंने सरस्वती-देशको जीवन-शक्तिका लीला क्षेत्र अनुमान किया था अथवा वह एक ऐसा देश माना था, जहाँ भूगर्भ शास्त्रकी दृष्टिसे पहले पहल जीवनका प्रारम्भ हुआ था।

अस्तु-ऋग्वेदका यह प्रमाण अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण मालूम पडता है, उसके बहु मूल्य होनेके सम्बन्धमें तो कुछ कहनाही नहीं है।

वास्तवमें हमारे वैदिक कवि तथा प्राचीन भूगर्भशास्त्री हस्तगत प्रमाणकी उपेक्षा नहीं कर सके और उन लोगोंने सरस्वती नदी तथा उसपर स्थित देशको उनके सच्चे रूपमें व्यक्त करनेका प्रयत्न किया। उन्होंने यह काम इस दृष्टिसे किया था कि वे उस वर्णनको उसपर विना कुछ रंग चढायेहुए ज्योंका त्यों अनन्तकालके लिये छोड जायँ। उन्होंने उसकी जो बढी चढी वन्दनाएँ की थीं वे केवल सच्ची तथा वहुत स्पष्ट ही नहीं थी, किन्तु गहरी तथा वास्तविक अर्थसे गर्भित भी थीं, क्योंकि जीवनका पहले पहल अस्तित्वमें आना इस नदीके देशमें ही प्रतीत हुआ था। इसके सिवा डाक्टर नेटलिंगकी भूगर्भ-सम्बन्धी अर्वाचीन खोजसे भी उपर्युक्त बात सत्य सिद्ध होती है। उन्हें पश्चिमोत्तर भारत तथा पंजाबके नमकके पहाडमें पृथ्वीके कुछ ऐसे परत मिले हैं जिनमें प्राचीनतम जीवनके नमूने विद्यमान हैं। ये नमूने पूर्व कैम्ब्रियन या विन्ध्य-फोसिलोंके नमूने हैं। इस खोजसे उपर्युक्त वैदिक सिद्धान्तकी पुष्टि होती है और सरस्वती-नदीका जीवनका लीलाक्षेत्र होना तथा उसके देशमें सर्वप्रथम जीवनका आविर्भाव होना प्रमाणित होता है। उसी तरह भारतके भूगर्भ-सम्बन्धी खोजके सुपरिन्टेन्डेन्ट मिस्टर मिडलीकटका वक्तव्यभी इस मतका समर्थन करता है। वे कहते हैं और जीवनके अत्यन्त प्राचीनस्वरूप (भारतमें) उन पहाडियोंके पूर्वी छोरके समीप मिलते हैं। (अर्थात् पंजावका नमकका पहाड (Vide manual of Indian Geology p. XXIV) इसी वक्तव्यमें आगे (P. XXV) लिखा है औरभी आगे पूर्व-कुमाऊँके उत्तरमें सिलूरिअन (अनुविन्ध्य) फोसिल विशालपरिमाणमें खोज निकाले गये हैं। इस तरह आर्य्यावर्तमें पूर्वकैम्ब्रियन या विन्ध्यकालीन जीवनके प्रमाणित होजानेपर हमारे पुरातन पूर्व-पुरुषोंकी भूगर्भशास्त्रीय खोजें, जिनसे आर्य्यावर्तका वरन सरस्वती

नदीके देशका आदिमजीवनशक्तिका लीलाक्षेत्र. और वह भूभाग होना जहाँ जीवन सर्वप्रथम उत्पन्न हुआथा निर्दिष्ट होजाता है, केवल लक्ष्यके भीतरही आतीहुई नहीं किन्तु वस्तुतः विलक्षणताके साथ शुद्धभी मालूम पडती हैं क्योंकि वे जमानेकी जाँचके सामने स्थिर रहीं और उनके सम्बन्धकी बातें स्वतन्त्र प्रमाण-द्वारा जाँची गईभी मालूम पडती हैं उनके सम्बन्धमें जो विदेशी प्रमाण यहाँ उद्धृत कियेगये हैं उनकी तो कुछ बातही नहीं. हमारी आर्यावर्तीय आवास-भूमिके सम्बन्धमें सरस्वती-नदीकी भाँति विशाल हिमालय पर्वतभी ध्यानमें लानेके योग्य मालूम पडता है और वहभी भूगर्भशास्त्रीय दृष्टिसे. क्योंकि महाहिमयुगके समय जब जलप्लावनने उत्तरी ध्रुवदेशोंको आप्लावित करलिया था और वहाँकी भूमिको हिम तथा तुषारके मोटी मोटी तहोंके नीचे दबादियाथा तब हमारे तृतीयकालीन पूर्वपुरुष आर्यावर्तकी ओर हिमालयकेही मार्गसे लौटनेको बाध्य हुए थे। वे लोग सप्त-सिन्धु-देशके अपने मूलस्थानसे वहाँ गयेथे और उन अत्यन्त दूरस्थ भूभागोंमें बसकर उन्होंने उन्हें आबाद कियाथा। यही नहीं किन्तु वे वहाँ दीर्घकालतक निवासभी करते रहे परन्तु हिमयुगके प्रारम्भ होजानेसे भयंकर जलप्लावनके आपडनेपर उन लोगोंने आर्यावर्तकी ओर हिमालयके मार्गसे प्रयाण किया। क्योंकि आर्यावर्त उन लोगोंकी प्यारी मातृभूमि थी, जिसे वे कभी नहीं भूलेथे और अपने अतुलनीय उस हृद्गत प्रेमके साथ सदा स्मरण करते रहेथे। यह मालूम करके कि इन उपनिवेशोंमें ठहरना निरापद नहीं है, मनुने—हमारे उत्तरीध्रुवके उपनिवेशोंके नेताने अपने मूलस्थान आर्यावर्तकी ओर लौटनेके लिये उस अत्युच्च हिमालयपर्वतके मार्गसे दक्षिणओर खैंचलेनेका विचार कियाथा. जो हमारे विशाल संस्कृतसाहित्यमें सदा स्मरण करने योग्य "उत्तरी पर्वतसे" (उत्तरं गिरिं शतपथ० बा० १-८-१-५) अभिहित किया

गया है। इस वाक्यांशसे मतलब उस विशाल हिमालयपर्वतमालासे है जो उस आर्यावर्तकी उत्तरी सीमा रही है जिसमें वे (मनु) और उनके प्राचीनतर पूर्व पुरुष तथा इनके आदिम मूल पुरुषभी उत्पन्न हुए थ, आबादरहे थे और अपने उत्तरकी ओर विशालपर्वतीय दीवाल सदव देखते रहे थे। अतएव यह सर्वोच्च उत्तरी हिमालयपर्वतमाला सदा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण की जाती थी। क्योंकि उसने मनु तथा दूसरे मार्गभ्रष्टोंको बचाया था और उन्हें एक विश्वासी पथदर्शकका काम उस समय दियाथा जब वे महा हिमयुगके आगमनपर उत्तरी ध्रुवदेशोंके अपने उपनिवेशोंमे आपदाके समय अपने आवास भूमि आर्यावर्तकी ओर अग्रसर हो रहेथे। अतएव यह बात पर्याप्तरूपसे स्वाभाविक है कि हम इस विलक्षण हिमालयपर्वतमालाको बडे जलप्लावनके वर्णनोंके साथ उल्लिखित तथा उत्तरीपर्वत (उत्तरं गिरिं) के नामसे वाणत पावें सप्त-सिन्धु-देशकी (सप्त सिन्धवः) उत्तरी सीमाके रूपमें यही पर्वतमाला शतपथ ब्राह्मण जैसे प्राचीन वैदिक ग्रन्थमें वर्णित है, जिसकी प्राचीनता २५०० वर्ष ईसाक पूर्व पहुँचती है, (Vide Mr. Tilak's Hrctic home in the vedas, Preface p.1) शतपथ बा १-२-१ १० (Also my work the vedic Fathers of Geology pp. 72 @ 149, 155) यहाँ मैं "उत्तरी पर्वत" (उत्तरं गिरिं) वाक्यांशके सम्बन्धमें कुछ उपयुक्त निरूपण करनेका साहस करूँगा। यह वाक्यांश शतपथ ब्राह्मणसे उद्धृत किया गया है और एक अत्यन्त प्रधानांश है। गम्भीर अर्थोंसे गर्भित है। यही नहीं, किन्तु वह निश्चयके साथ असली चिह्नोंका वास्तविक प्रकाश सूचित करता है, अविनाशीस्मृति एवं मनकी सहन करनेवाली क्षमताकोभी प्रकट करताहै जिससे वह भूतकालिक घटनाओंका ज्ञान तथा उनके भाव धारणकिये रहताहै।

वह यह बातभी प्रमाणित करताहै कि हमारा आर्य-निवास उपर्युक्त " उत्तरी पर्वत " (उत्तरं गिरिं) के दक्षिण ओरही था, क्योंकि आर्योंका उत्पत्तिस्थान या आर्यावर्त्त उसके दक्षिण स्थित है। हमारे आदिम आर्य-पूर्व-पुरुष अपनी सुध सँभालनेके समयसे इस विशाल पर्वती दीवारको अपनी जन्मभूमिके उत्तर ओरही देखते थे, इससे वे इसे " उत्तरं गिरिं " या उत्तरीपर्वतके नामसे पुकारते थे। उन लोगोंने इस बातकाभी निरीक्षण कियाथा कि यह पर्वत सदैव हिमाच्छादित मालूम पडता है, क्योंकि उसपर सदैव हिम जमा रहताथा। अतएव बहुत पहले समयसे वह हिमवत्, हिमालय, या हिमेय-पर्वतके नामसे विदितथा (यस्येमे हिमवन्तो महित्वा...आहुः) " जिसकी (सृष्टिकर्ताकी) महत्तायें हिमाच्छादित पर्वत बतलाते हैं " (ऋ० वे० १०-१२१-४)

अस्तु—हमारी आर्यावर्तीय आवसभूमि तथा आर्योंके मूलस्थान एवं उत्तरीगिरिके दक्षिण उसकी स्थितिके सम्बन्धमें यह हिमालय बोधक ' उत्तरं गिरिं ' वाक्यांश केवल प्राचीनतम परम्पराओंका एक असली चिह्नही नहीं है, किन्तु अतीतके एक अलिखित इतिहासके एक सच्चे विवरणकी एक भव्य स्मृतिहै। उत्तरीध्रुवके हमारे उपनिवेशोंसे महाहिमयुगके आगमन पर उत्तरीपर्वत या हिमालयसे होकर हमारे उत्तरीध्रुवके प्रवासियोंको आर्यावर्तको लौट आनेके सम्बन्धमें वही वाक्यांश भूगर्भशास्त्रीय प्रमाणकाभी काम देताहै। अपने तर्ककी गुरुता पाठकोंके मनमें बैठानेके लिये, यहां प्राच्य तथा पाश्चात्य दोनों प्रकारके विद्वानोंके सिद्धान्तोंका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। उन लोगोंका यह निरूपण है कि आर्योंका मूल-स्थान यातो (१) उत्तरी ध्रुव-देश या (२) योरुपमें या (३) मध्य एशियाके उच्च-सम भूमियें हैं। इन्हीं स्थानोंमेंसे किसी एक स्थानसे आर्यलोग चारोंओर ईशान तथा आर्यावर्तमेंभी

फैलाये थे। चाहे स्वेच्छासे हो और चाहे स्वाभाविक प्रेरणासे या आभ्यन्तरीय तथा बाह्यकारणोंसे हो, वे लोग इन भूभागोंका परित्याग करनेको वाध्य हुए थे। परन्तु ये सिद्धान्त ठीक जँचते नहीं मालूम पडते जैसा कि दूसरे प्रमाणों-द्वारा क्रमशः प्रकट किया जायगा। यदि आर्योंका मूल-स्थान उपर्युक्त भूभागोंमेंसे कोई एक होता तो आर्योंकी किसी शाखाके दक्षिणकी ओर, या भारतकी ओर कहिये, अपनी यात्रा करनेके प्रथम, वे लोग इस देशकी भौगोलिक स्थितिसे अवश्य अपरिचितरहे होते। क्योंकि उस दशामें यह अनुमान करलेना स्वाभाविक है कि उन्होंने न तो इसदेशको कभी देखा था और न कभी पहले सुनाही था। फलतः वे लोग इसे नहीं जानसके थे। अतएव जब वे किसी कारण इस देश विशेषकर सप्त-सिन्धु-नामसे प्रसिद्धदेशकी ओर खदेडे गये थे तब उन लोगोंने संसारके सर्वोच्च पर्वतको दूरसे देखकर स्वभावतः उसे दाक्षिणी पर्वत (दाक्षिणं गिरिं) के नामसे अभिहित किया होता। विशेषकर जब वे उस पर्वतकानाम पहले नहीं जानतेथे और जब यह पर्वत आर्योंके उपर्युक्त कल्पित मूल-स्थानोंके अर्थात् उत्तरीध्रुवदेश या योरपके किसी भाग या मध्य एशियाके दक्षिणओर स्थित था। परन्तु जैसा कि हमें पर्याप्तरूपसे मालूम है। यह पर्वत उत्तरी पर्वत (उत्तरं गिरिं) कहलाताथा और वहभी उस सुदूर समयमें जब शतपथ ब्राह्मण लेख बद्धकिया गयाथा या यह कहो कि रचागयाथा, जिसका समय अब २५०० वर्ष ईसाके पूर्व निर्धारित हुआ है। (Vide mr. Tilak's Aretic home of the vedas p. 1, 387) और इससे यह बात प्रकट होती है कि मनु तथा अन्य दूसरे लोग उत्तरीध्रुव या दूसरे उत्तरी देशोंमें प्रवासी मात्रथे इसके सिवा वे आर्य्यावर्तको पहलेहीसे जानते थे। उनकी असली आवासभूमि आर्यावर्तमें ही थी अतएव मनु तथा दूसरे लोग

जो उत्तरीध्रुवके उपनिवेशोंमें अपने ऊपर आपडनेवाली वडी भारी आपदासे वच निकलनेके उपरान्त इस देशको लौट आये थे, इस देशके पर्वतों तथा नदियोंको, इसकी झीलों तथा प्रसिद्धस्थानोंको स्वभावतः जानतेथे। इस कारण उत्तरीपर्वतका उल्लेख एक विशेष मतलव रखता है। जिस वडे जल-प्लावन तथा हिमके विकट तूफानसे, उच्चतर अक्षांशोंके विशाल भूभाग तक आच्छन्न हो गये थे उस समय उनसे वही पर्वत अर्थात् उत्तरी पर्वत अपने सर्वोच्च होनेके कारण रक्षा तथा वचावका एकमात्र स्थान था सिरपर फूलतेहुए भयको वही दूरकर सकता था और घोर आपदासे वच निकले भूले-भटकोंकी सहायता करसकताथा। फलतः इस उत्तरीपर्वतका उल्लेख मात्रही हमारे मूल-स्थान तथा हमारे उसकी भौगोलिक स्थितिके ज्ञानके सम्वन्धमें प्राचीनतम ऐतिह्योंके (परंपराओंके) प्रभावों तथा अत्यन्त पुरातन-भूतकालिकस्मृतिका विश्वसनीय सङ्केत करता मालूमपडता है।

चौथा अध्याय.

उत्तरी ध्रुव-सम्बन्धी सिद्धान्त, योरपीय कल्पना तथा मध्य एशियाईप्रश्नकी आलोचना।

उत्तरीध्रुव-सम्बन्धीसिद्धान्तसे इस वातके निरूपण करनेका प्रयत्न किया जाता है कि, मानवजातिका मूलस्थान, जिसे कोई कोई इस तरह कहेंगे कि सम्पूर्ण आर्य-जातिका मूल-स्थान, उत्तरीध्रुव हैं। प्रसिद्ध फरासीसी विद्वान् एम. डी. सपोरटाने इस आशयका एक सिद्धान्त निर्धारित कियाहै कि "सम्पूर्णमानव-जाति उस समय ध्रुवसमुद्रके किनारे पर उत्पन्न हुई थी जब उत्तरी गोलार्द्धका अव-शिष्टभाग उसके वसनेके लिये अत्यन्तही उष्ण था"। पैराडाइज-फाउन्ड नामक अपनी पुस्तकमें डाक्टर वारेननेभी इस सिद्धान्तका

प्रतिपादन किया है कि " मानवजातिका मूलस्थान उत्तरीध्रुव था" । मिस्टर तिलकने अपनेको मुख्यतः वैदिकसाहित्यके प्रमाणोंके भीतर रखतेहुए यह दिखलानेका प्रयत्न किया है कि " वैदिक लोगोंके पूर्वपुरुषोंकी आवासभूमि विगतहिम-युगके पहले, उत्तरीध्रुवके निकट किसी जगह थी । योरपीयकल्पनासे यह मत सूचित होताहै कि आर्यजातिकी उत्पत्ति पूर्वकी अपेक्षा पश्चिममें और वहभी केवल योरपमें ढूँढनी चाहिये । इस तरह तोमश्चीक तथा अन्य दूसरे लोगोंका मत पूर्वीयोरपके सम्बन्धमें है । वानलोहर जैसे कुछ लोगोंका मत जर्मनीके सम्बन्धमें है । फेडरिचमुलर, कूनो आदि-विद्वान् मध्ययोरपके सम्बन्धमें अपना मत स्थिर करते हैं । लिडेश्च-मिट तथा अन्यलोग उत्तरी योरुपमें आर्योंका उत्पत्ति स्थान मानते हैं पेनकाकी उक्ति है कि सारी आर्य-जातिका मूलस्थान स्केन्डिनेवियां था । और पोश्चेका यह निश्चय है कि आर्य-जाति प्रीपेट, वेरीसीना और नीपरनदियोंके बीच रोकिटनोनामक वडे दलदलमें उत्पन्न हुई थी । इनका हय कथन है कि " इस स्थानके पडोसकी लिथूनिया-भाषाके प्राचीन अक्षरोंसे मैं यह माननेको बाध्य हुआहूँ कि लिथूनियावासी प्राचीनतम आर्यजातिके बचेहुए चिह्न थे । (Vide The origin of the Aryans by Issack Taylor pp. 20, 22, 26, 29, 42, 51, 52, 53, 54, Second Edition)

मध्य एशियाईप्रश्नसे यह सिद्धान्त प्रतिपादित होताहै किआर्योंका मूलस्थान मध्य एशिया था । यह वह भूभाग है, जहाँसे सर और अमूदरिया निकली है, और जो विशाल एशिया महा द्वीपके बीचो बीच एवं कास्पिअनसागरके पडोस तथा उसके पूर्व ओर स्थित है । अतएव मध्य एशियाई सिद्धान्तके अनुसार यह भूभाग आदिम आरियाना है । उस देशके जो भाग हिन्दू कुश, वेलूरताग, सर, और कासिअन समुद्रके बीचोबीच विद्यमान है वह सम्भवतः इस

देशके भीतर आजाता है। और शायद उन दोनों नदियोंके-सर और अमूके-उद्गमस्थानोंकी ओरका सोगदियाना भूखण्ड भी इस देशमें शामिल हो जाता है। आर्य या मानव-जातिके मूलस्थानके सम्बन्धमें अन्य दूसरे सिद्धान्तोंका हम यहाँ उल्लेख नहीं करेंगे। क्योंकि उनका उतना महत्त्व नहीं है। मैं यहाँ केवल उपर्युक्त तीन सिद्धान्तोंकीही परीक्षा करूँगा और उनको परित्याग करदेनेके लिये ऐसे कारण उपस्थित करनेका साहस करूँगा जो वैज्ञानिक प्रमाणों तथा पुरातन समयसे स्वीकृतसच्ची परम्पराओंपर अवलम्बित हैं।

उत्तरी-ध्रुव सम्बन्धी सिद्धान्त।

उत्तरी ध्रुव-सम्बन्धी सिद्धान्तके पक्षमें जो लोगहैं उनमेंसे कुछ लोगोंकी दलीलें उदाहरणके लिये यहाँ दी जाती हैं। प्रसिद्ध विद्वान् एम० डी० सपोरटा लिखते हैं कि सारी मानव-जाति उस समय उत्तरी ध्रुव-समुद्रके किनारेपर उत्पन्न हुई थी जब उत्तरी गोलार्द्धका अवशिष्ट भाग मनुष्योंके आवाद होनेके लिये अत्यन्त उष्णथा।" परन्तु यह बात वैज्ञानिक भूगर्भशास्त्रीय प्रमाणसे गलत सिद्ध होती है। स्वयम् अध्यापक रीसनेभी एम०. डी० सपोरटाके सिद्धान्तोंकी शुद्धतापर सन्देह किया है। वे लिखते हैं कि "वह विद्वान् लेखक स्पष्ट तथा जोरदारशब्दोंमें व्याख्या अवश्य करता है। परन्तु मैं नहीं कह सकता कि उसकी कल्पना इस लुभानेवाले विषयके अन्य दूसरे विद्यार्थियोंको कहाँतक सन्तुष्ट करती है"॥ (Vide Rhy's Hibbert Lecture pp. 631-3) परन्तु इतने परभी एम० डी० सपोरटाकी दलील नहीं टिकती, वह सच्ची बातोंके विरुद्ध तथा भूगर्भशास्त्रीय प्रमाणोंसे असम्बद्ध प्रतीत होती है। क्योंकि आर्यावर्तमें जीवनके अस्तित्वका उतनाही प्राचीन होना प्रतीत होताहै जितना कि स्वयम् कैम्ब्रियन युगका, पूर्व कैम्ब्रि-

यनकी तो कुछ बातही नहीं। यह बात द्वितीय अध्यायके देखनेसे स्पष्ट हो जायगी। परन्तु मुझ जैसे साधारण आदमीके लिये एम० डी० सपोर्टके उपर्युक्त सिद्धान्तके खण्डनकरनेको अधिक प्रमाण प्रस्तुत करनेकी अपेक्षा उत्तरीध्रुवदेशोंके आवाद होजानेके अनन्तरभी जीवनके अस्तित्वके लिये अयन-सीमाके अत्यन्त उष्ण होनेकी सम्भावनाके सम्बन्धमें वैज्ञानिकोंके प्रमाण संक्षेपमें उपस्थित करदेना अधिक श्रेयस्कर होगा। क्योंकि एक तो भूगर्भशास्त्रियोंने–मेडलीकट तथा ब्लैन्फर्डने साफ साफ लिखा है–"परन्तु भौतिक कारणोंसे इस बातपर शङ्का की जातीहै और दक्षिणी गोलार्द्धके सिलूरियन्-फोसिल-सका उत्तरी गोलार्द्धवालोंके सादृश्यसें यह बात खण्डित भी होती मालूम पडती है (p. XXII) दूसरे, ये ग्रन्थकारद्वय औरभी आगे लिखते हैं कि "बहुत प्राचीन युगोंमें निम्न तापक्रमकी अवस्थाके प्रवर्तित रहनेके बडे विलक्षण चिन्ह भारतीय भूमिमें मौजूद हैं" (Vide manual of Geology of India p. 22) तीसरे न तो उत्तरीध्रुवसे और न उत्तरी योरुपसे और न उत्तरसे दक्षिणकी ओर ही, किन्तु पूर्वसे पश्चिमकी ओर भूमण्डलके दूसरे देशोंको मनुष्योंके देशान्तरगमनके पक्षमें एक दूसरे विद्वान्का साक्ष्य उपस्थित है। वे लिखते हैं–"अतएव जिस पूर्वीकेन्द्रसे मानव-जातिकी लगातार इतनी बोट योरुपको आती रही हैं उससे मानव-जातिके प्रारम्भिक देशान्तरगमनोंपर प्रकाश पडता हमें दिखाई देता हैं (Ency Clopœdia Britannica vol. X p, 369 Ed, 9 th.) चौथे, अमरीकाके भूगर्भशास्त्री डाक्टर डानाने इस आशयकी बात लिखी है कि "उन्नतिका महादेश सदैव प्राच्यही रहा है" "अतएव यह बात सारी भूतकालिक समानताओंके अनुसार है कि मनुष्यकी उत्पत्ति प्राच्यदेशोंमेंसे किसी एकमें हुई होगी" (Vide Dana's manual of Geology p, 585 Ec.1863)पाँचवें, भूगर्भशास्त्रीभी

स्वीकार करते हैं कि: " उत्तरसे दक्षिणकी ओर देशान्तर गमन-सम्बन्धी व्यवस्था सूचित करनेको पर्याप्तरीतिसे अगणित घटनायेंभी नहीं हैं " इसके आगे वे लिखतें हैं-" और न भारतमें (उत्तरी जातियोंके,) अस्तित्वके सम्बन्धकी भावनाही आमतौरसे विद्यमान है" (Modlicott and Blanford's manual of the Geology of India p. LXX) इसके सिवा योरपीय कल्पनाके कट्टर अनुयायी इसाकटेलरभी अपनी पुस्तकमें यह निर्धारित करते हैं " सामान्यरीतिसे यह बात मालूम हुई है कि यदि उत्तरी जातियाँ दक्षिणमें बसाई जायँ तो मरजाय आर यदि दक्षिणी जातियाँ उत्तरमें तो वे लोप होजायँ" । वे यहभी लिखते हैं कि " साधारण-तौरपर गोरी जातियाँ समशीतोष्णदेशमें अपना अस्तित्व कायम रखनेमें सफल होती हैं और कालीजातियाँ केवल उष्ण या अल्पोष्णदेशमें (Vide p. 201 Second Edition of Dr, Issack Taylor's work ' The origin of the Aryans ') अतएव यदि हमारा मूल-स्थान उत्तरीध्रुव-देशमें या योरुपमेंभी रहा होता तो, जैसा कि कुछ लोग अनुमान करते हैं, (भारतीय आर्यों या भरतवंशियोंकी)[1]हमारी जाति पूर्वोक्त कारणों तथा प्राकृतिक नियमोंके प्रभावसे अबतक बिलकुल नष्ट होगई होती । परन्तु इन बातोंका आशय कुछ दूसराही है, ये अपने आपही स्पष्ट हैं । क्योंकि यद्यपि हमारा अस्तित्व अत्यन्तही प्राचीन है, यही नहीं, किन्तु वह महान् पुरातन समयका तथा तृतीयकालीन युगकाभी है तथापि हमारी शक्ति सदा उतनीही नवीन तथा हमारा साहस सदा-

१ हमारी जातिके सम्बन्धमें शेरिङ्ग महोदयने लिखा है-" हलकारङ्ग प्रशस्त ललाट, विलक्षण प्रतिष्ठा-सूचक मुख छवि, पतले ओंठ, उद्बोधक मुख, लम्बी उंगलियाँ, चञ्चल तथा तेज आँखे, श्रेष्ठ तथा कुलीनता व्यञ्जक धज आदि लक्षण उस सच्ची ब्राह्मण जातिके हैं जो परमात्माकी पृथ्वीपर विचरनेवाली मानव जातिका

उतनाही ताजा रहा है जितना कि पहले। वैसेही हमारे मूलस्थानके विनष्ट होजानेके कोई लक्षण नहीं है और न हमारी जाति मृत्यु-मार्गमें ही प्राप्त है या उसके लोप हो जानेकी सम्भावना है. क्योंकि आर्यावर्त हमारा मूलस्थान है और न हम भारतमें प्रवासीके रूपमें आये और न सप्तसिन्धु देशमें विदेशी या नवागन्तुकके रूपमें, अतएव यह बातभी जो पाठकोंके सामने उपस्थित कीजानेको है,

---

–एक आश्चर्य पूर्ण नमूना है, जो योरपीय प्रभावों तथा व्यवहारोंसे भ्रष्ट नहीं है जिसका गम्भीर आत्मबोध एवं उच्चताके गर्वीले विचार जिसके मुखाकृतिसे टपकते हैं तथा उसके शरीरके प्रत्येक हावभावसे प्रस्फुटित होते हैं।"
(Vide, " Sherrings Hindu Tribes & Canstes")
इसके सिवा, डा. सर, डब्ल्यू. डब्ल्यू. इन्टर अपने भारतके इतिहासमें लिखते हैं–
" अतएव ब्राह्मण वे लोग थे जिन्होंने इस संसारके इतिहासके प्रथम चरणमें अपने आपको जीवनके नियमोंसे वाँध दिया था और जिनमें आत्म–सुधार तथा आत्म-संवरणके नियम प्रचलित थे। लगभग तीन हजार वर्षोंकी वंशगत शिक्षा तथा आत्मसंवरणके फल स्वरूप वर्तमान कालके ब्राह्मण हैं और उन्होंने ऐसे अध्यवसायसे मानवजातिका एक ऐसा नमूना विकसित किया है जो अपने समीपवर्ती जनतासे विल्कुल पृथक् है। भारतका राहचलता यात्रीभी उन्हें पहचान लेता है। ब्राह्मण-जाति दोनों (अर्थात् राजपूतों या योद्धाजाति तथा अनार्यो) से स्पष्ट रीतिसे भिन्न मालूम पडती है। ब्राह्मण केन्द्रीभूत आत्मगत विमलताका मनुष्य है। वह मनुष्योंके उस वर्गका उदाहरण है जो शस्त्रवलसे नहीं, किन्तु वंशगत सुधार तथा संयमके वलसे देशकी शासन करनेवाली शक्ति वनगयी है। एक जातिके वाद दूसरी जातिने भारतपर अपनी धाक जमाई, वंशपर वंश उदय हुए और अस्त हुए, मतमतान्तरोंने भी देशमें अपनी धूम मचाई और वादको स्वयम् लुप्त हो गये, परन्तु ब्राह्मण इतिहासके प्रारम्भिक कालसे वरावर शान्तिपूर्वक शासन करते रहे। जनताके मनोंपर उन्हीका अधिकार रहा और जनताभी सदा उनके अधीन वनी रही। विदेशी जातियोंने भी उन्हें उच्चकोटिकी भारतीय जातिके उच्चतम नमूनेके रूपमें ग्रहण किया। जो सर्वप्रधान-पद ब्राह्मणोंने प्राप्त किया है, उससे

दूसरे कारणोंके साथ प्रमाणित करती है कि, हम लोग भरतके मूल निवासी हैं और इस देशके प्रवासी नहीं हैं।

अस्तु-वैज्ञानिक प्रमाण और प्रामाणिक साक्ष्य उत्तरी ध्रुव-सम्बन्धी सिद्धान्तके विरुद्ध ही मिलते हैं। वे उत्तरसे दक्षिणको या योरुपसे आर्यावर्तकी ओर देशान्तरगमन करनेके भी विरुद्ध हैं,जसा हम अन्तमें

-लोगोंको लाभभी कम नहीं हुए। इसके सिवा अध्यापक सीली लिखते हैं कि, "शायद किसी जातिने सभ्यतामें इस जातिसे अधिक योग्यता नहीं प्रकट की इस जातिके रवाज कानूनमें परिणत होगये और धर्मशास्त्रमें लिपिवद्ध करके उन्हें पुष्टता प्रदान की गई। इसने परिश्रमके विभागका विचार किया कविता तथा दर्शनकी रचना की और विज्ञानके प्रारम्भका सूत्रपात किया। इसीसे बौद्धधर्म्मनामक एक शक्तिशाली धार्म्मिक सुधारका जन्म हुआ जो आजभी संसारके अग्रगण्यधर्मोंमें एक गिनाजाताहै, यहाँतक कि इसने उन भाग्यशाली जातियोंका सादृश्य प्रकट किया जिन्होंने खास हमारी सभ्यताको जन्म दिया" P.24 इसके आगे वही विद्वान् लेखक दृढताके साथ कहता है कि-" हमलोग (अंग्रेज लोग) हिन्दुओंकी अपेक्षा अधिक चतुर नहीं हैं, उनकी अपेक्षा हमारे मास्तिष्क अधिक सम्पन्न तथा विस्तृत नहीं हैं। जैसे हमलोग जंगलियोंके सामने अपने विचार, जिन्हें उन्होंने कभी स्वप्नमें भी नहीं देखा, उपस्थित करके चमत्कृत करते हैं, वैसे हम हिन्दुओंको चमत्कृत नहीं कर सकते हैं। वे अपनी कवितासे हमारे श्रेष्ठतम विचारोंका मुकावला कर सकते हैं; हमारे विज्ञानमें शायदही कुछ ऐसे विचार हैं जो उन्हें बिलकुल नई वस्तु समझ पड़ें। " (Vide, The Expansion of England by Professor J. R. Seeley) M, A, Ed, 1890, pp, 241, 244)

अन्तमें किन्तु किसीसे कुछ कम नहीं, हमारे तैलङ्ग तथा रनाडे हमारे बोस और सिंह, हमारे गोखले और गान्धी, यही नहीं किन्तु रवीन्द्रनाथ टगोर, जो कवि सम्राट् कहलाये, जगत-कवि कहना तो कुछ बातही नहीं, (और जिन्होंने नोवेल-प्राइज पाया है,) के सदृश लोग इस सूचीमें जोड दिये जायं, क्योंकि ये लोग अभी हालमें हुए हैं। (ग्रन्थकर्ता)

प्रमाणित करनेका प्रयत्न करेंगे। परन्तु यह बात मानलेनी पडेगी कि हमलोग उत्तरी-ध्रुव देशको गये और वहाँ दीर्घ कालतक आबाद रहे थे। पर हम लोग वहाँ आर्यावर्तके प्रवासियोंके ही रूपमें थे। मूल-निवासियोंके रूपमें नहीं जैसा कि आगेके विचार-क्रमसे ज्ञात हो जायगा.

योरपीय कल्पना।

इस कल्पनाका आधार पूर्व-ऐतिहासिक पुरातत्त्व-शास्त्र, भूगर्भ-विद्या, मानव-शास्त्र और अस्थि-ज्ञान-शास्त्र है। इसी कल्पनाके बल पर योरपीय विद्वान् अनुमान करते हैं कि मनुष्य ऊनवाले गैंडों तथा मानव प्राणीका समकालीन था। योरपमें पाई गई मनुष्यकी अस्थियों तथा खोपडोंसे जो निष्कर्ष निकाले गये हैं उनसे यह बात प्रमाणित की जाती है कि वे लोग उन जातियोंके पूर्व पुरुष थे जो इस समय योरपके भिन्न भिन्न भागोंमें आवाद हैं। परन्तु जो कुछ हम योरपमें मिलता है वह सब वही है जैसा उसे होना चाहिये। अतएव इस बातकी कोई आवश्यकता नहीं कि, हम लोग उन्हें देखकर चकित हों। क्योंकि आदिम भारतीय-आर्य-समुदायके हमारे पुरातन बाप-दादोंने जैसा कि कुछ पाश्चात्य विद्वानोंने भी स्वीकार किया है नई भूमिकी खोज तथा बाहरके देशोंको विजय करनेकी लालसासे अपनी आवास भूमि तथा मूलस्थान आर्यावर्तको त्याग करनेके उपरान्त

---

१ यह बात कुछ योरपीय विद्वानों तथा खोजियों द्वारा भी स्वीकृत हो चुकी है। एम० लुई जैकोलिअट लिखते हैं—“ भारत संसारका मूल स्थान है. ... वह सबकी माता है ” P. VII “ भारत तुमको मानव जातिकी माता—हमारी सारी पारंपराओंका मूलस्थान--प्रतीत होगा। ” P. 17 “ इस प्राचीन देशके सम्बन्धमें, जो गोरी जातिका मूलस्थान है, हमने सत्य बातका पता पाना प्रारंभ कर दिया है। ” P. 178 Vide La Bible Dans L, Inde, or the Bible in India “ Hindu Origin of Hebrew and christian Revelations ” Edition 1870; vide also

तृतीय कालीन युगके अन्तिम भागमें एशिया और योरपमें अपनी विशाल वस्तियाँ आवाद की थी, और दूरतम उत्तरीध्रुव देशोंमें भी अपने विस्तृत उपनिवेश स्थापित किये थे। जब हम इन उपनिवेशोंमें आवाद थे तव अपनी मातृभूमि-आर्यावर्त-सप्तसिन्धुदेशसे हमारा अभङ्ग सम्बन्ध कायम था, क्योंकि हम लोग उसका बहुत अधिक प्रेम करते थे। उत्तरी ध्रुव-देश उर्वर था, उसका जलवायु अनुकूल तथा समय आनन्ददायक था, अतएव हमलोग उस देशमें दीर्घ काल तक आवाद रहे। परन्तु जव एकाएक हिमयुगका आगमन हुआ और हम लोग उत्तरी ध्रुवदेशके अपने उर्वर उपनिवेशोंको परित्याग करनेको वाध्य हुए तव हम लोगोंमेंसे वे लोग, जो अपनी मातृभूमि आर्यावर्तको अत्यन्त गहरा प्रेम करते थे. उस हिमालयके तुषारावृत-शिखरोंको पार करके अपनी आवास भूमिकी ओर लौटनेको प्रयत्नशील हुए जो हमें प्रारम्भिक कालसे ही याद था। क्योंकि वह संसारमें सवसे ऊँचा और आर्यावर्तकी उत्तरी सीमा थी। (उत्तरं गिरिम्। श० प० ब्रा० १-२-१-५)। जो दूसरे लोग हमारी जातिके उपशाखाओंके रूपमें थे और जिनकी इच्छा आर्यावर्तकी ओर वापस आनेकी न थी वे उन भूभागों और देशोंके आश्रित हुए—जो हिम तथा तुषारसे आवृत होजानेसे वच गये थे।

स्पष्टतः एशिया और योरप इन्हीं दो महाद्वीपोंके केवल दाक्षिणी भागही ऐसे देश थे जहाँ हिम तथा तुषारकी वाढसे वचाव या रक्षा मिली थी। उत्तरी ध्रुव-देशोंके हमारे प्रवासी लोग हिम तथा तुषारकी

–Curzons Essay on the original extent of the Sanskrit Language Journal Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland vol, XVI. Parts I, II 1854, and in fra pp. 48, 51.

असहनीय प्लावनसे एकाएक आक्रान्त होनेके कारण अपनी सारी चालाकी भूलगये। अतएव वे योरप तथा एशियाके सभी भागोंमें फैल गये और उस सङ्कटके अवसरपर अपने प्राण बचानेमें जहाँतक उन लोगोंसे हो सका उन्होंने अपनी शक्तिभर कोई प्रयत्न बाकी नहीं उठा रक्खा।

अस्तु—हमारे आर्य पुरुषोंके जिन वंशजोंने तृतीयकालीन युगसे उत्तरीध्रुव देशोंमें अपने उपनिवेश स्थापित किये थे, भयंकर महाहिम युगके आगमनपर सर्वत्र फैल गये थे। इसीसे उनकी एवं दूसरी जातियोंकी भी अस्थियाँ और खोपडे योरप और एशियाके उत्तरी तथा दूसरे भागोंमें पाये गये हैं और जिनकी ये अस्थियां हैं उनके अनुसार यातो ये (Dolichs-Cephalic, Brachy-Cephalic या (or the Cephalic) हैं। ऐसी अवस्थामें इस कथनकी अपेक्षा दूसरी बात सत्यसे परे नहीं हो सकती. कि आर्यलोग रे देशसे भारतमें आये थे, क्योंकि (Dolichs-Cephalic) या (Brachy-Cephalic) खोपडे योरुपमें पाये गये थे और वे लोग यातो उत्तरी ध्रुव-देशों या योरप अथवा उसी कारण मध्य, एशियासे भी यहाँ आये थे। परन्तु इस मध्य-एशियाई प्रश्नके विषयमें म आर्यावर्तकी—प्रसिद्ध सप्तसिन्धु देशके अपनी अवासभूमि तथा मूलस्थानके विषयमें सारे अगरमगरका निर्णय करते हुए अन्तमें ब्योरेके साथ उल्लेख किया जायगा। उस समय यह बात प्रकट करनेके लिए कि हमलोग आर्यावर्तके मूल निवासी हैं और हमने भारतसेही देशान्तरगमन किया था, वैदिक तथा दूसरे प्रमाण उपस्थित किये जायँगे. नई भूमिकी खोजमें तथा बाहरके देशोंको विजय करनेके लिए हम लोगोंने उस समय चारों ओर एशिया और योरप, अफ्रीका और अमरीकाकी ओर प्रयाण किया था। यही नहीं, किन्तु हम लोग उत्तरी ध्रुवदेशोंकी ओर भी गये थ, जहाँ हम लोगोंने बडी बडी वस्तियाँ आवादकर अपना विस्तृत

उपनिवेशीय साम्राज्य स्थापित कियाथा । कुछ प्रसिद्ध योरपाय विद्वानोंने एशियामें आर्योंके मूल-स्थान-सम्बन्धी सिद्धान्तका समर्थन इस भित्तिपर किया है कि आर्योंकी यात्राकी तथा उनके दिग्विजयोंकी एवं मानवजातिके देशान्तर्गमनकी भी दिशा पूर्वसे पश्चिम ओर होती मालूम पडती है, न कि पश्चिमसे पूर्व और उत्तरसे दक्षिण ओर, जैसा कि कुछ लोग भ्रमपूर्वक अनुमान करते हैं । उदाहरणके लिये मानवजातिका प्राथमिक देशान्तर्गमन पूर्वसे होता हुआ मालूम पडता है और विशालजन समूहकी लगातार बाढ उस दिशासेही योरपकी ओर जाती हुई प्रतीत होती हैं ।[1] (Vide, "The Eucyclopaedia Britannica" vol, X, p, 369 Ed, 9 th,) इसके सिवा अमरीकाके[2] भूगर्भशास्त्री अध्यापक डानानेभी सारे भूतकालिक साहश्योंके अनुसार मानवजातिका मूल-स्थान प्राच्यदेशकेही सब तरहसे सम्भव होनेके पक्षमें अपना मत व्यक्त

---

१ प्रमाण देनेसे बचनेके लिये मैं इस ग्रन्थसे यहांपर एक अवतरण उद्धृत करताहूं जिससे सारी बात आपही स्पष्ट होजायगी । "चूंकि उस पूर्वीय केन्द्रसे मानव जातिके कुछ प्राथमिक देशान्तर गमनोंपर प्रकाश पडता हमें दीखपडता है जहांसे मानव समूहकी लगातार अनेक बाढें योरपकी ओर अग्रेसर हुई हैं ।"

२ उल्लेखके सुभीतेके विचारसे, मैं उस भूगर्भशास्त्रीके ग्रन्थसे एक अवतरण यहांपर उद्धृत करनेका साहस करता हूं । वे लिखते हैं, "इस तरह प्राच्यदेश अनुक्रम पूर्वक आस्ट्रेलिया तथा अमरीकाकी स्थितिसे होकर आगे बढगया था और वह दूसरे महाद्वीपोंको अपने पीछे छोड उन्नतिके शीर्षस्थानमें पहुंचाथा । अतएव यह बात सारे भूतकालिक साहश्योंके अनुसार है कि मानवजाति विशाल प्राच्यके किसी भागमें जरूर उत्पन्न हुई होगी । और दक्षिण पश्चिमी (एशियाकी उस केन्द्रकी जिससे योरप एशिया और अफ्रीकाके तीन विशाल महाद्वीपीय विभाग प्रकट होते हैं) अपेक्षा कोई दूसरास्थान मानवजातिके इधर उधर फैलने तथा आत्मोन्नतिके लिए अधिक उपयुक्त नहीं मालूम पडता ।" (Dana's Manual of Geology pp, 585, 585, Ed, 1863 p.79)

किया है। पोशे और दूसरे लोगोंकी दलीलेंकी ओर ध्यान देनेपर मैं कह सकता हूँ कि होफरने उसका उत्तर संक्षेपमें दे दिया है। उन-लोगोंकी यह दलील यह है कि योरपकी लिथूआनिआ–भाषामें एक ऐसा प्राचीनरूप वर्तमान है जो किसी दूसरी भाषामें नहीं है, न तो वह अवेस्तामें है और न वैदिक संस्कृतमेंही है। अतएव लिथू-आनिआवाले प्राचीनतम तथा अत्यन्त पुरातन आर्यजातिके अव-शिष्ट चिह्न मालूम पडते हैं। इस दलीलके उत्तरमें होफरने लिखा है कि "आर्योंकी बोलीका अत्यन्त प्राचीनरूप ऋग्वेद और अव-स्तामें सुरक्षित है"। अतएव, "आर्योंका मूल–स्थान उस देशमें जरूर रहाहै, जहाँ संस्कृत और जेन्द बोली जाती थी।" (Vide "The Origin of the Aryans" By Issac Taylor 2 nd, Ed 1892, pp, 39, 42, 43,) और वह देश आर्यावर्त और केवल आर्यावर्तही है, जहाँ अतीत कालसे संस्कृत भाषा प्रचलित और बोली है जहाँ वह अब भी समझी जाती है। यही नहीं, किन्तु वह एकमात्र आर्यावर्त देशही है, जहाँ उन विभिन्न भाषा–भाषी मनुष्योंमें जिनमें प्राच्य और पाश्चात्य जैसा भारी पार्थक्य विद्यमान है, पारस्पारिक मनोगत विचारोंके प्रकटीकरणक साधन संस्कृत भाषा हो गई है। यदि पाठक यह समझते हों कि मन इस तरह लिखकर अतिशयोक्ति की है तो मैं यहाँ मैक्समूलरका मत उद्धृत करनेकी अनुमति लेताहूँ और उन बातोंके प्रमादजन्य सारे अन्धकारके हटानेकी दृष्टिसे उनके सामने उसे उपस्थित करताहूँ। यह निपुण विद्वान् मैक्समूलर लिखते हैं–" तोभी भारतमें भूत और वर्तमान कालके बीच ऐसा विचित्र सिलसिला जारी है कि सामाजिक उथलापथल धार्मिक सुधारों और विदेशी आक्रमणोंके बारबार होते रहते भी केवल संस्कृत–भाषाकाही नाम अबभी लिया जसकता है जो उस सम्पूर्ण विशाल देशमें बोली जाती है।" P.78

" मैं विश्वास करता हूँ कि अँगरेजी शासन और अँगरेजी शिक्षाके प्रचलित रहनेके एक शताब्दी बाद वर्तमान समयमें भी भारतमें संस्कृत, डान्टेके समयके योरुपमें लेटिनकी अपेक्षा अधिक रूपमें समझी जाती है।" जब कभी मैं भारतके किसी शिक्षित मनुष्यका पत्र पाता हूँ तभी वह संस्कृतमें लिखा मिलता है। जब कभी उस देशमें कानून तथा धर्म-सम्बन्धी विवाद उठ खडा होता है, तभी वहाँ प्रकाशित होनेवाली तत्सम्बन्धी व्यवस्थायें संस्कृतमेंही लिखी रहती हैं। वहाँ संस्कृतमें सामयिकपत्र निकलते हैं जिनका अस्तित्व बिलकुल पाठकोंकी सहायता पर निर्भर है। ये लोग ग्रामीण बोलियोंकी अपेक्षा उस श्रेष्ठ भाषाको अधिक पसन्द करते हैं। काशीसे एक पण्डित नामका एक पत्रही निकलता है। इसमें केवल प्राचीन ग्रन्थोंके संस्करणही नहीं निकलते, किन्तु आधुनिक विषयोंपर निबन्ध, इँगुलेंडमें प्रकाशित पुस्तकोंकी आलोचनायें तथा अलोचनात्मक लेखभी प्रकाशित होते हैं। ये सब संस्कृतमेंही होते हैं।"p .79" यह अभी उस दिनकी बात है कि, केशवचन्द्रसेनके दलके (सन् १८८२ के १२ वीं मार्चके) 'लिबरल' पत्रमें नदियाके एक वेदज्ञ विद्वान् सत्यव्रत सभाध्यायी और बम्बई-विश्वविद्यालयके एम० ए० काशीनाथ त्र्यम्बककी भेंटका वृत्तान्त मैंने पढाथा। इनमें एक पूर्वसे आये और दूसरे पश्चिमसे, तोभी ये दोनों विद्वान् धाराप्रवाह संस्कृतमें बातचीत करसके" (p. 80 Vide India What it can teach us Ed, 1885) यह विषय अत्यन्त रुचिकर और उच्चतम दार्शनिक महत्त्वका है, अतएव इस सम्बन्धमें एक फरासीसी विद्वान्‌काभी पाठकोंके मत सामने उपस्थित करना अनुपयुक्त न होगा. वे लिखते हैं-" भारतके मातृत्वका और योरपकी जातियोंके भारतीय उत्पत्तिका एक अत्यन्त अखण्डनीय तथा अत्यन्त सरल प्रमाण स्वयम् संस्कृत-भाषाही है।"

P. 21 " यह आदिम भाषा "–(संस्कृत)–" जिससे प्राचीन तथा अर्वाचीन महाविरे निकले हैं, " कोलब्रुक, हीगल, वरनफ और दूसरे अविश्रान्त काम करनेवाले तथा खोजियों–द्वारा " चकित जगत्की आखोंके समक्ष प्रकाशमें लाई गई ।" P. 178 "हम लोगोंने इस प्राचीन देशके सम्बन्धमें–जो गोरी जातिका उत्पत्तिस्थान और जो जगत्का उत्पत्ति स्थान था. सत्यकी खोज करनी प्रारम्भ की" P. 178 है । " P. VII "जो कुछ मैं कहनेको हूँ वह किसी व्यक्तियोंके लिये चाहे कोई नई बात न हो परन्तु वह इस बातको न भूलजांय कि किसी नये विचारकी कल्पना करते समय मैं स्वयम् उन सारे आविष्कारोंका उपयोग करता हूँ जो उस विचारका समर्थन करते हुए मालूम पडते हैं । मैं यह काम सर्व साधारणको इससे परिचित करानेकी दृष्टिसेही करूँगा, क्योंकि उनके पास उस असाधारण प्राचीन सभ्यताके सम्बन्धमें अध्ययनके लिये न पर्याप्त समय है और न. श्रेष्ठ साधन है ।" P. 21 " यदि संस्कृतसे ग्रीक–भाषा निकली है जैसा कि वास्तवमें प्राचीन तथा अर्वाचीन सारी दूसरी भाषायें निकली हैं, (जिनके सम्बन्धमें मैं अनेक प्रमाण आगे उपस्थित करूँगा), तो संस्कृत भाषा भिन्न भिन्न देशोंमें केवल लगातारके देशान्तरगमनोंके द्वाराही पहुँचसकी होगी । इसके विपरीत अनुमान करना असम्भव है और इतिहासभी यद्यपि वह इस विषयमें अभी अपना मार्गही टटोल रहा है, इस कल्पनाका विरोध करनेकी अपेक्षा सहायताही करताहै " । P. 21, 22 " प्राचीन भारतकी गहराई जाननेके लिये योरपका तत्सम्बन्धी सारा ज्ञान किसी मतलबका नहीं है । जैसे कोई बच्चा पढना सीखता है उसी तरह उसके सम्बन्धका अध्ययन फिर आरम्भ करना चाहिये । जिस अध्यवसायमें हिचक होती है उसके लिये तो कार्यक्षेत्र अत्यन्तही दूर है " " तब तुम दीक्षित हो जाओगे और भारत तुम्हें मानवजातिकी माता–हमारे सारी परम्पराओंका

मूलस्थान-प्रतीत होगी।" P.17 "क्या यह सम्माति असङ्गत हो सकती है कि विगत छः हजार वर्षके दीप्तिमान्, सभ्य और जनाकीर्ण भारतने मिस्र, ईरान, जूड़िया, यूनान और रोमपर ऐसी छाप, जो अमिट हो, और ऐसे चिन्ह, जो गहरे हों, अङ्कित कर दिये. जैसे कि इन देशोंने हम लोगपर वादको अङ्कित किये हैं" "और प्राचीनता तथा भारतके बीचकी जोडनेवाली जञ्जीरकी जो कडियाँ थीं वे जमानेसे गुम हैं। अतएव सम्भावित समाधानके खोजे विना हमारे भ्रममें पडे रहनेका अभीतक पर्य्याप्त कारण है। P. 18 "स्मरणकरो' अर्वाचीन मानव-समाज अन्धकारमें तबतक कैसे टटोलता रहा जबतक कुस्तुन्तिनियाके पतनसे प्राचीन प्रकाशकी प्रभा फिर न चमक उठी" "हिन्दुओंके देशान्तरगमनने मिस्र, ईरान, जूडिया, ग्रीस और रोमके साथ जो काम किया है वह एक ऐसी बात है जिसे सिद्ध करनेका मैं प्रस्ताव करताहूँ" P. 19 "जिन जाँच-पडताल करनेवालोंने मिस्रको अपनी खोजका क्षेत्र माना है और जिन्होंने उस देशकी मन्दिरसे लगाकर कब्रतककी खोजपर खोज की है वे लोग उसे हमारी सभ्यताकी जन्म-भूमि होनेका विश्वासकराते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो ढोंग करते हैं कि भारतने मिस्रसे उसकी वर्णव्यवस्था उसकी भाषा, तथा उसके कानून अङ्गीकार किये जब कि इसके विपरीत स्वयम् मिस्रकी ही बिलकुल भारतीय उत्पत्ति है"। "वे लोग शीघ्रही सत्य सिद्धान्तके सदृश एक प्रस्ताव उपस्थित करेंगे कि, भारतको जाननेके लिये मानवजातिके उद्गम-स्थानतकका पता लगाना होगा।" "दूसरे लेखक यूनानी

---

१ भारत स्पष्टरीतिसे प्राचीनतर है, क्योंकि हमारे आदिम पूर्व-पुरुष, जो भारतके मूल निवासी थे, तृतीय कालीन युगके है। (इस पुस्तकका १, २, ३, १४ १५, और १६ अध्याय देखो)

प्रकाशकी प्रशंसासे चौंधाकर उसीको सर्वत्र पाते हैं और इस कारण अपने आपको असम्भव सिद्धान्तोंके अर्पण करदेते हैं। " " ऐसी सम्मति निरी ऐतिहासिक असम्भवत है " (p. 20 Vide " La Bible Dans L, Inde " or " The Bible in India, and the Hindoo Origin of Hebrew and christian Revelation " By M. Lonis Jacolliot Ed. 1870 Translated from the original, in to English). इसके सिवा कर्जन लिखते हैं-" मैं यह समर्थन करनेका साहस करता हूँ कि वे सब भाषायें (अर्थात् दूसरी भाषाय जेन्द, ग्रीक, लेटिन, गाथ इत्यादि) विभिन्न ऐतिहासिक युगोंमें संस्कृतसे निकली है अर्थात् उस वैदिक संस्कृतसे निकला हैं जो आर्यजातियां मुख्य भारतके प्राचीन हिन्दुओंकी आदिम लिखित भाषा थी (Essay onthe original extension of the Sanskrit Language Journal R. A. S. of great Britani and Ireland vol XVI Part 1 p. 177)संस्कृतभाषाके सम्बन्धमें मिस्टर डबल्यू० सी० टेलर लिखते हैं-" राज्योंके परिवर्तन और समयके उथल-पुथल होनेपरभी हिन्दुस्तानमें एक सम्पन्न तथा विचित्र भाषा बनीही रही यह एक चकित करनेवाली खोजकी बात है। वह भाषा उन बोलियोंकी जननी है जिन्हें योरप शौकसे श्रेष्ठ भाषाओंमें गणना करता है-वह यूनानीकी कोमलता तथा रोमनकी दृढताका एक समान स्रोत है। " (Vide mr. Taylor's Paper on Sanskrit Literature, inthe Journal of the Royal Asiatic, Society vol. II 1834) इन सब बातोंके परे मध्य एशियाई सिद्धान्तके कट्टर पक्षपाती अध्यापक मैक्समूलरने लिखा है-" यदि आदिमसे हमारा मतलब उन लोगोंसे है जो आर्यजातिसे पहले हुये हैं और अपने अस्तित्वके साहित्यक चिन्ह अपने पीछे पृथ्वीपर छोड गये हैं तो मैं कहता हूँ कि वैदिक कवि आदिम हैं, वैदिक भाषा आदिम है, वैदिक धर्म

आदिम है और जिस बातको हम अपनी जातिके इतिहासमें कदाचितही प्राप्त करते हैं उसकी अपेक्षा अधिक आदिम नहीं है" । P. 123, 124 "केवल भारतमें और वहभी मुख्यत: वैदिक भारतमें हम एक पौधेको अपनी भूमिपर और वहींके वायुद्वारा संवर्द्धित पाते हैं। इस कारण वेदका धर्म सारी विदेशी छूतोंसे पूर्णरूपसे सुरक्षित है। वह उन शिक्षाओंसे परिपूर्ण है जो धर्मके अध्ययन करनेवाले अन्यत्र नहीं पासकते। (p. 125 Vide India what can it teach us 1883 Ed.) जिस लिथूआनियाई भाषाको लोग अधिक प्राचीन रूप रखनेवाली भाषा अनुमान करते हैं उसके सम्बन्धमें इसाक टेलर लिखते हैं-" संस्कृत-साहित्य लिथूआनिआई साहित्यकी अपेक्षा.जो अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भसे शुरू होता है, लगभग तीन हजार वर्ष अधिक प्राचीन है" । (Vide Issac Taylor's Origin of the Aryans p. 258 1893 Ed.) अतएव वैदिक संस्कृतकी अपेक्षा जिसे स्पीजल संस्कृत जैसी प्राचीनतम भारतीय भाषा वेदोंमें अङ्कित कहता है. कोई भाषा अधिक प्राचीन, पुरानेरूपोंवाली और आदिम नहीं है । (Vide. Spiegel'stranslation of the Avesta Vol. II p. 294) इसीसे यह अवतरण लियागया है। इसके सिवा मिस्टर वीम्सनेभी यह कहकर इस बात बातको मान लिया है कि "हम पसन्द करते हों या न करते हों, परन्तु ' भाषाके प्राचीनतम अप्राप्यरूपोंके लिए संस्कृतका मुँह ताकनेको' हम बाध्य हैं, और प्राकृत तथा पालीके सामनेही ' हमें निस्सन्देह उन्हें संस्कृत उसमें पाते हैं। (Vide J R. A. S. 1870 Vol. V new series p. 149 mr. Beames Article) इस प्रसङ्गमें इस बातकाभी यहाँ विचार हो सकता है- कि पाश्चात्य विद्वानोंने संस्कृतको " आदिम भाषा, जिससे प्राचीन

१-२ शब्द ग्रंथ कर्ताके हैं।

और नवीन महाविरे निकले हैं " कहा है। (La. Bible Dans L' Inde by M. Lonis Jocolliot Ed. 1870 p. 178). और यह मत कर्जनके कथनसेभी, जो ऊपर उल्लेख किया गया है, पुष्ट होता मालूम पडता है। ऐसी अवस्थामें संस्कृत-भाषा प्राचीन तम होनेपरभी " अत्यन्त प्राचीनरूप-वाले स्वरूपोंको बनाये रही है किसी न किसी भांति वह वास्तवमें सभी भाषाओंकी, सारी आर्यबोलियोंकी जननी है और लिथूआनी भाषातो उसकी एक उपशाखामात्र है। अतएव यदि थे। तथा दूसरे प्रमाण, जो क्रमशः आगे उल्लेख किये गये हैं, विचारमें लाये जायें तो योरपको आर्योंका मूल-स्थान होनेका कोई स्वत्व नहीं रह जाता और न पहले दियेगये कारणोंसे तथा उन कारणोंसे जो व्योरेके साथ क्रमशः प्रकट किये जायँगे उत्तरी ध्रुव देशोंकाही रह जाता है।

योरुपमें आर्योंकी उत्पत्ति प्रमाणित करनेके मतलबसे मिस्टर इसा-कटेलरने जो दलीलें दीं हैं यहाँ उनमेंसे कुछकी परीक्षाकरने तथा उनको पाठकोंके ध्यानमें लानेका उपयुक्त स्थान है, क्योंकि वे विचित्र तथा असाधारण प्रतीत होती हैं। वे लिखते हैं, इस भ्रमात्मक विचा-रको (अर्थात् यह विचार कि भाषाकी आदिम एकता जातिकी आदिम एकताका फल मात्र थी,) हम लोगोंके बीच सर्व प्रिय बना-नेमें दूसरे लेखकोंकी अपेक्षा अध्यापक मैक्समूलरने अधिक काम

---

१ मैं यहाँपर कहसकताहूँ कि इन सारी भाषाओंका स्रोत तथा उत्पत्ति वैदिक संस्कृतसे है, जो एक बोली जाननेवाली भाषाथी। इस सम्बन्धमें म्यूरभी कहते हैं कि " संस्कृत (जिससे प्राचीन आर्य-भाषाके उस समयके प्रचलितरूप या रूपोंका मतलब समझना चाहिए) अपने अधिक तर पहलेके रूपमें बोली जाने-वाली भाषा थी।" (Vide Muir's O. S. T. Vol II. pp. 144.-145 Ed. 1871)

किया है " P. 3 मध्यएशियाई सिद्धान्तके सम्बन्धमें अध्यापक मैक्समूलरकी सम्मति उल्लेख करतेहुए वे लिखते हैं कि " वहाँ आर्योंका एक छोटा समूह था, जो सम्भवत: मध्य-एशियाकी उच्च-सम-भूमिपर आवाद था और एक ऐसी भाषा वोलता था जिसका रूप न तो उस समय तक संस्कृतका हुआ था, न ग्रीक या जर्मनका हो । सब भाषाओंके भाषा-सम्बन्धी अङ्कुर उसम विद्यमान थे (P. 4) इसके आगे उन्होंने यह लिखा है कि " इस सुन्दर वाक्यके शब्दोंकी अपेक्षा अधिक हानिकारक शब्द किसी भारी विद्वान्-द्वारा शायद ही कभी उच्चरित हुए हैं। अध्यापक मैक्स-मूलरकी ऊँची कीर्ति इन अधूरी कल्पनाओंको उनके अगणित शिष्योंके मनमें अङ्कित करनेका साधन हुई है, जिन्हें अब वे स्वयं अस्वीकार कर देंगे " । (P. 4)

" ऐसे उतावले पनका समर्थन अपकीर्ति कारक गिना गया हैं, और इससे सम्पूर्ण तुलना-मूलक भाषा विज्ञान वदनाम हो गया है"।

" इस बातका जानना बहुतही शिक्षा प्रद है कि इस प्रकारकी दलीलें जैसे कि आर्योंकी उत्पत्ति एशियामें खोजनी चाहिये जहांसे उन लोगोंने लगाकर देशान्तरगमन करनेवालें झुंडोंमें पश्चिमकी ओर प्रयाण किया था कितना अधिक निराधार हैं। जर्मनी और इँग्लिडके पाट, लैसने, ग्रीम, स्लैचर मोमसीन और मैक्समूलर आदि जैसे श्रेष्ठतम विद्वानोंको विश्वास दिलानेमें यही पर्याप्त सिद्ध हुई हैं।"

इसके आगे मिस्टर इसाकटेलर लिखते हैं कि " वैज्ञानिक भाषाके इतिहासमें इससे अधिक अजीव अध्याय और कोई नहीं है " फिर वे इस तरह कहते हैं कि, ' यातो संस्कृत योरपसे भारतमें पहुँची होगी या केल्ट, जर्मन, लिथूआनिआ स्लाव, ग्रीक और लैटिन एशियासे योरपमें पहुँची होगी । " (P. 20 Vide Issac Taylor's Origin of the Aryans 2 nd. Ed. 1892) योरपमें

आर्योंकी उत्पत्ति प्रमाणित करनेके लिये वे अपने अनोखे ढङ्गसे इस प्रकार लिखते हैं कि " हम आर्योंके मुख्य दलको योरपमें ही पाते हैं और एशियामें उससे अलग हुए उसके एक छोटे समूहको।" P. 20) इसके सिवा जैसा आगे दिखलाया गया है वे दो स्पष्ट समूहोंका उल्लेख करते हैं और उनके भीतर भिन्न भिन्न जातियोंको छोटे वृत्तोंमें वर्णन करते हैं, जो प्रत्येक समूहमें सम्मिलित हैं। यूसे योरपका संकेत है इस समूहको वे मूलसमूह मानते हैं। ऐसे उनका मतलब एशियासे है इसे वे उसका शाखा-समूह मानते हैं। इस सम्बन्धमें वे लिखते हैं-" योरपीय आर्य छः कड़ियोंकी एक सटी
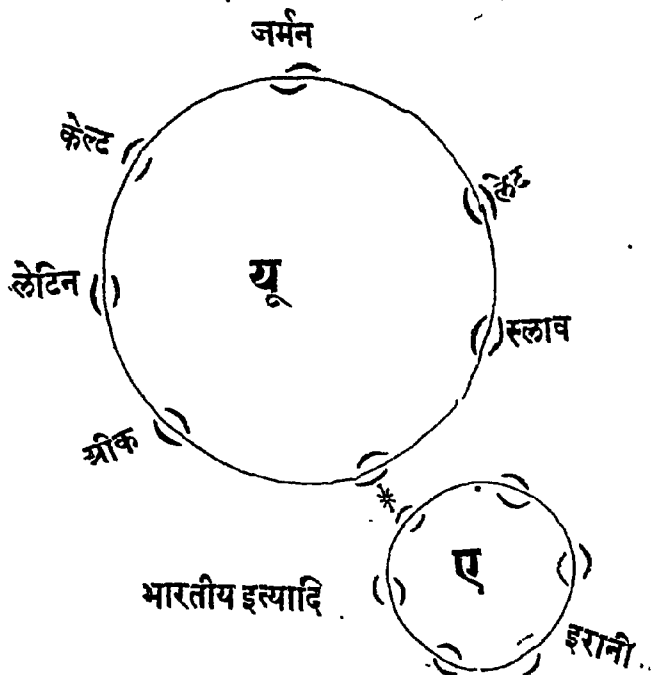
हुई संयुक्त जंजीर हैं, परन्तु इस जंजीरमें एक कडी गुम है। एकका स्थान खाली है। वह सुदूर एशियामें खोजी गयी है.. वहाँ हम भारतीय-ईरानियोंको पाते हैं। " P. 23 टेलर साहबने अपने इस सिद्धान्तको शायद खुशी खुशी सन्तोषके साथ स्थापित किया है इसीसे वे (अपने आप) प्रश्न करते हैं कि " कौनसी अधिक सम्भव कल्पना है-क्या अकेले एक देशान्तर्गमनकी, उन लोगोंके देशान्तर्गमनकी जो अभी थोडे समय पहले खाने वदोशीकी हालतमें थे, या छः विभिन्नजातियोंके स्पष्ट छः देशान्तरगमनोंकी जिनके सम्बन्धमें किसी प्रकारका कोईभी प्रमाण नहीं है कि उन लोगोंने कभी देशान्तर्गमन किया था और जिनकी परम्परागतकथायें समर्थन करती हैं कि वे लोग मूल-निवासी थे। (Vide Issac Taylor's "Origin of the Aryans " 2 nd. Ed.1992 p.23) अपने कथनके पक्षमें कुछभी प्रमाण दिये विनाही मिस्टर इसाकटेलर लिखते हैं-" यह कल्पना करना कि आर्योंका एक छोटा समूह पहले योरप गया, फलतः भिन्न-भिन्न आर्य-भाषायें संवर्द्धित हुई एक प्रकारसे योरपीय उत्पत्ति-सम्बन्धी कल्पनाके समान हैं" Vide the origin of the Aryan's p. 29 यदि इस प्रकारकी दलील स्वीकार की जाने योग्य है तो कोई भी व्यक्ति निस्सन्देह यह पूछनेके लिए तुरन्त लालयित हो उठेगा कि जिस बौद्धमतने दक्षिण और उत्तरमें, और सुदूर पूर्व अर्थात् लङ्का

१ भारतीय-आर्य एक कृषक जातिथे। वे खानेवदोश नहीं थे। यह अनुमान तथा इस प्रकारका कथन अनेक पाश्चात्य और प्राच्य विद्वानोंद्वारा किया गया है अत एव मैंने इस पुस्तकके १३ वें अध्यायमें इस सम्बन्धके कारण ब्योरे वार दिये हैं।

1, Vide " The Eucyclopœdia Britannica" 9 th Ed. also proff. Rhys Davids-Buddhesm Ed. 1890 pp. 5, 229, 237, 238, 241, 242, 243, 244; and the Christian Literature Society's Manual of Geography, Ed. 1893 pp. 96, 99, 103, 104, 110, 113, 115; Vide also Ed.1910

2 of India

ब्रह्मा, स्याम, कोचीन-चीन, चीन, जापान, कोरिया, मंचूरिया, दक्षिण सैबेरिया और तिब्बतमें गहरी जड पकडली है और अपना मजबूत प्रभाव जमा लिया है, उसका जन्म क्या इन्ही देशोंमें हुआ है और क्या इन्ही देशोंसे उसका प्रचार भारतमें हुआ था । वास्तवमें भारत वही देशहै जहाँ गौतमबुद्धनें जन्म लिया था, जो बौद्धमतका मूल-स्थान है, जिससे यह मत केवल प्राच्यदेशोंतकही नहीं फैलाथा, किन्तु प्राचीन कालमें पाश्चात्यदेशोंमें भी " काबुल और साशकन्दसे लेकर वल्ख, बुखारा, बालकश या डेंगिस फीलतक " जैसा किरीलडे बिडसने अपने ग्रन्थ ' बुद्धिस्थ ' के २४२ वें पृष्ठमें लिखा है, जहाँसे यह श्रेष्ठ मत निकाल बाहर किया गया था, यद्यपि इसने उसीमें अपनी उत्पत्तिके स्वत्वका दावा किया है, जिसमें उस देशका यह अतिप्राचीन मत इस समय केवल नहींके बराबर अपना अस्तित्व रखता है जब कि बाहर इसके अनुयायियोंकी संख्या करीब करीब भूमण्डलकी जनसंख्याका तृतीयांश है, जिससे यह प्रकट होताहै कि, बौद्धमत जगत्में सब मतोंसे बडाहै । (Vide Rhys David's Buddhism Ed. 1890 pp. 4-6) बौद्धमतका प्रसार सूचित करनेके लिये हम दो वृत्तोंका वर्णन करेंगे—

इनमें बडा वृत्त पूर्वी एशियाके लिये है और उन जातियोंके दस समूहोंको स्थूलरूपसे सूचित करताहै जो बौद्धमतावलम्बी हैं और छोटे वृत्त आसे आर्यावर्त या भारतसे मतलब है। यहाँ उन दो समूहोंकी ओर ध्यान देते हुए जो २१वें
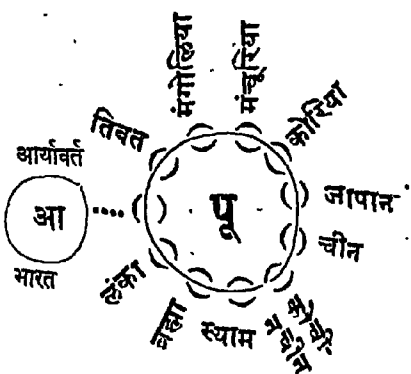
पृष्ठोंपर प्रकट किये गये हैं और मिस्टर इसाकटेलरकी तर्क प्रणाली एवं दलीलोंका अनुसरण करतेहुए यह बातभी उसी तरह कही जासकतीहै कि "पूर्वी एशियाके बौद्ध दसकडियोंकी एक सटीहुई संयुक्त गोल जंजीर बनाते हैं, परन्तु इसकी एक कडी गुम है, उसमें एक स्थान खाली है जो सुदूर आर्यावर्तमें खोजी या जिसकी पूर्तिआर्यावर्तसे की गई है, जहाँ भारतीय आर्य बौद्धमत मानतेहुए पाये गयेहैं। इसके वाद यह प्रश्न होगा कि " तब कौनसी कल्पना सम्भवहै बौद्धमतका प्रसार तथा उसका मूल-स्थान प्रमाणित करनेके लिये पूर्वी एशियासे भारतकी ओर केवल एक देशान्तरगमनकी या पृथक् दस जातियोंके स्पष्ट देशान्तरगमनोंकी कल्पना " इस बातका उत्तर देनेके लिये इतिहास बहुतही स्पष्ट है। परन्तु इस वातका और अधिक खुलासा करनेके लिये एक दूसरा उदाहरण यहाँ दिया जाताहै; तुर्कीको छोडकर सारा योरप ईसाई आवादीसे पूर्ण है।अतएव क्या मिस्टरइसाकटेलरकी तर्क प्रणालीके आधारपर यह दलील करना वुद्धिसंयुत होगा कि योरप लगभग उन्नीस जातियोंकी एक सटीहुई संयुक्त गोल जंजीर बनाताहै, इसलिये वह ईसाईमतका मूलस्थान था या योरपसे सुदूर लघु एशिया और पवित्र भूमि कहे जानेवाले पलेस्टाइनमें ईसाइयों द्वारा यह मत फैलाथा या वहाँ कुछ ईसाई गये थे ? मैं इस बातको पाठकोंपरही छोडताहूँ, चाहे वे मिस्टर इसाकटेलरकी तर्कप्रणालीको त्यागकरें या

---

१ क्योंकि यह ईसाईमतका मूलस्थान था।

२ बायबिलमें लिखित प्रसिद्ध घटनाओंकी यह रङ्ग भूमि थी। ईसाईमतके संस्थापक जीसस क्राइस्ट पलेस्टाइनमें रहे और वहीं मरे। उसकी राजधानी जेरूसलेममें सन् ३३ ई०में इनका वध कियागया। प्रसिद्ध अँग्रेज नाटककार शेक्सपियरने इस स्थान तथा इसके संस्थापकके सम्बन्धमें इस तरह लिखा है:—जिस भूमिपर वे पवित्र चरण पडते थे जो, १४०० वर्ष बीते, हम लोगोंके लाभके लिए कठोर शूलीपर लौहकीलोंसे कीलित कियेगये थे।

स्वीकार करें मिस्टर इसाकटेलरकी अत्यन्त एक पक्षीय दृष्टि और योरपमें आर्योंकी उत्पत्ति-सम्बन्धी उनके कल्पित विचारोंके सम्बन्धमें, मैं यहाँ डाक्टर मोरिज होरनेसके लेखका एक अवतरण उद्धृत करनेका साहस करूँगा। वे लिखते हैं-" वह साधारण बात उस भाषा ज्ञान तथा रहन-सहनसे प्रमाणित होजातीहै जिसे उत्तरी अमरीकाके हवशी प्रकट करतेहैं जो अँगरेजी बोलतेहैं और योरपीयढङ्गकी पोशाक पहनतेहैं योरपकी आबादी एक रँगिउत्पत्तिकी नहींहै यद्यपि आजकल योरपीय लोग अधिकतर आर्यभाषामें (इंडो जर्मन) बोलते हैं"। (Vide Dr. Moriz Hocrue's Primition man transla ted by James H. Locwe Ed. 1900 p. 7) मिस्टर इसाकटेलरके लेखमें हम उन्हें विचित्र ढङ्गसे दलील करते हुए पाते हैं। वे सम्भवतः ऋग्वेदमें पायेगये हमारे मूल-स्थान सम्बन्धी प्रमाणका या तो बिलकुल तिरस्कार करते हैं या उसे समुचित रीतिसे जाँचतेही नहीं हैं। उस बडे जलप्लावन तथा हिमयुग-सम्बन्धी प्रमाणोंकी भी उपेक्षा करते हैं जो उस शतपथब्राह्मणसे प्रस्तुत किये गये हैं जिसकी प्राचीनता २५०० वर्षोंके ऊपर पहुँचती है। वे लिखते हैं कि-

क-" मानव जातिके इतिहासका भौगोलिक केन्द्र अब पूर्वसे पश्चिमकी ओर खिसकाया गया है।" (P. 18)

ख-" मानव जातिके इतिहासका सबसे प्रथमका ग्रन्थ जो अस्तित्वमें है वह एशियामें नहीं किन्तु पश्चिमी योरपमें प्राप्त है।" (P. 18)

---

1 Vide author's The Vedic Fathers of Geology pp.132, 157

2 Vide mr. Tilak's Arctic Home in the Vedas pp. I, II, 44, 387, 420) जहाँ उन्होंने इस ब्राह्मण ग्रन्थके निर्माणकी तिथि कारणों सहित दी है। वे लिखते हैं कि " ब्राह्मण ग्रन्थोंकी रचनाके समय (ईसाके लगभग २५०० वर्ष पूर्व) वासन्ती दिन कृत्तिकाके नक्षत्र मण्डलमें पडता था

ग—" अस्थि विज्ञान नामक एक दूसरी नवीन विद्यासे हमें मालूम होता है....कि जो जातियाँ इस समय योरपमें आवाद हैं वे उस निओलिथिक कालके प्रारम्भसे लेकर अवतक इसी योरपमें आवाद रही हैं जिसमें जङ्गली घोडे और वारहसिंह यहाँ घूमा करते थे। " P.18

घ—" और पश्चिमी योरपमें तो मानव—जाति मानवथ और ऊन वाले गैडोंकी समकालीन थी।" इत्यादि (P. 19 Vide the Origin of the Aryans by Issac Taylor Ed. 1892)

क—अवतरणके सम्वन्धमें मैं पाठकोंके सामने पहले पार और दूसरे प्रसिद्ध विद्वानोंके मत उपस्थित करूँगा वे लिखते हैं—"मनुष्यके देशान्तरगमनने सदा सूर्यके मार्गका अनुसरण किया है, वह पूर्वसे पश्चिम ओरही हुआ है।" (Vide also Encyclopœdia Britannica Vol. X p. 369 9th Ed.) यहाँ पुनरुल्लेख न करना पडे इसलिए समुचित अवतरण ३१ वे पृष्ठमें मैंने पहलेही दे दिया है। इसके वाद मैं अध्यापक मैक्स मूलरके कथनको दोहराऊँगा इसे उन्होंने पूर्ण विचार करनेके उपरान्त कहा है मैं उनके अन्तिम कथनको यहाँ उद्धृत करूँगा इसे उन्होंने आर्योंके मूल—स्थानके विषयमें सन् १८२७ में कहा था। वे लिखते हैं—" हमारे आर्य—पूर्व-पुरुष अपनी जुदाईके पहले कहाँ रहे, यदि उस स्थानके सम्वन्धमें कोई उत्तर देनाही चाहिये....तो जैसा कि चालीस वर्ष पहले मैंने कहा था, मैं अब भी यही कहूँगा कि वे लोग एशियामेंही किसी स्थानमें रहते थे। इसके सिवा मैं और कुछ न कहूंगा " इसके सिवा मैं अमरीकाके प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्री डाक्टर डानका वैज्ञानिक

---

१ यहां पाठक डाक्टर पारिज हार्नीजके विचारको अपने मनमें धारण करेंगे कि योरपकी आवादी एकसी उत्पत्तिकी नहीं है।

प्रमाण उद्धृत करूँगा । वे लिखते हैं, "अतएव यह बात सारे भूत कालिक सादृश्योंके अनुसारहीहै कि मानव-जाति विशाल प्राच्यके किसी भागमेंही उत्पन्न हुई होगी।" (Vide, Dana's manual of Geology p. 585 Ed. 1863) फिर मैं एक दूसरे वैज्ञानिक अध्यापक केनीका प्रमाण उपस्थित करूँगा। उन्होंने कहा है-"इन्हीं पहचानोंकेही आधारपर सरजान (इवान्स) मेरे सिद्धान्तके स्वरमें स्वर मिलाकर कहते हैं कि मानव-जाति प्राच्य देशमें उत्पन्न हुई और वहाँसे योरपको और उसने प्रयाण किया था। Vide Inangural Address, British Association, Torants 1897; and Prof. Keane's man past and present Ed. 1899 p 9.

ख, ग तथा घ-अवतरणोंके विषयमें यहाँ यह बात सूचित करनी अनुपयुक्त न होगी कि मानव-जातिके इतिहासके प्राचीनतम भूगर्भ शास्त्र-सम्बन्धी लेख एशियामेंही नहीं, किन्तु भारतमें भी विद्यमान है। अतएव मैं पाठकोंका ध्यान उस ओर आकार्षित करूँगा जिसका वर्णन पहलेंही किया जा चुका है।

मध्य-एशियाई प्रश्न।

जिन पाश्चिमी विद्वानोंने मध्य-एशियामें आर्योंके मूल-स्थान, पश्चिमोत्तरी दर्रोंसे होकर भारतीय-आर्योंद्वारा भारतके आक्रमण और अन्तमें उनके इस देशमें-वैदिक सप्तसिन्धु-देशमें आगमनका सिद्धान्त निर्द्धारित किया है वे अपने आश्चर्यपूर्ण अध्यवसाय, पृथक् परिश्रम और खोजोंके लिये सब प्रकारसे आदरके पात्र हैं। तो भी यह कहनाही पडता है कि किसी भी ग्रन्थमें न तो अवस्थामें और न संसारके सर्व स्वीकृत प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदमेंही मध्य-एशि· यामें आर्योंका आवास होनेके सम्बन्धमें या पश्चिमसे पूर्वको अथवा उत्तरसे दक्षिणको आर्योंके देशान्तरगमन करनेके विषयमें प्रमाणका

एक अणुतक नहीं प्राप्त होता है। इसके विपरीत आर्यावर्तके चारों ओर सुदूरदेशोंकी ओर अर्थात् पश्चिम तथा पूर्व ओर और उत्तर तथा दक्षिण ओर नये देशोंकी खोज और बाहरके देश जीतनेके लिए हमारे यात्रा करनेके विषयमें स्पष्ट तथा अभ्रामक चिह्न ऋग्वेदमें विद्यमान हैं। यह बात ध्यानमें करलीजाय कि अत्यन्त, पवित्र सरस्वती नदीका देश हमारे देशान्तरगमन करनेका केन्द्र रहा है। उसी स्थानसे हमारा लाभदायक प्रभाव तथा अदम्य शक्ति चारों ओर जगमगाउठी जैसा कि वैदिक तथा अवस्तिक प्रमाणोंसे, यही नहीं किन्तु हमारे ऋग्वैदिक ऋषियोंके कथनोंस आगे प्रकट किया जायगा। क्योंकि ये दोनों ऋग्वेद और अवस्ता अत्यन्त विश्वसनीय ग्रन्थ हैं। वे दोनों अन्यत्र प्राप्त हो सकनेकी अपेक्षा अपने प्रारम्भिक इतिहासके अधिक स्पष्ट और वास्तविक चिह्न सुरक्षित रक्खे हैं, इस बातका विचार म्यूरनेदिओरिजनलसंस्कृत टेक्सट्स (पृ. २९१ द्वि. सं.) की दूसरी जिल्दमें किया है। इसके सिवा ऋग्वेद केवल अत्यन्त सच्चाही नहीं कहाजा सकता है, किन्तु वह मानवजातिके इतिहास[1]का अत्यन्त प्राचीन स्रोत भी कहाजा सकता है

---

१ मैक्समूलर लिखते हैं-" अटक और गङ्गाके किनारोंके काले निवासियोंसे हमने क्या मीरास पाई है......उनके ऐतिहासिक लेख किसी किसी बातमें इसी प्रकारके दूसरे लेखोंसे बहुत आगे बढ़ेहुए हैं। वे हम लोगोंकेलिये पूर्णतया स्पष्ट रूपमें सुरक्षित रक्खे गये हैं। हम उनसे वह शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं जो अन्यत्र दुर्लभ है और उस खोई हुई कड़ी, बन्दर और मनुष्यके सम्बन्धकी जंजीरकी कड़ी, (जिसका खोजाना हम भले प्रकार भुला सकते हैं) की अपेक्षा हमारी आध्यात्मिक परम्परायें बहुत अधिक महत्त्ववाली खोई हुई कड़ियाँ प्रस्तुत करती हैं। " (P. 21)" तब यह कौनसी बात है जिससे संस्कृत भाषा हमारे ध्यानको आकर्षित करती है और ऐतिहासिकोंकी निगाहमें उसका बहुत अधिक महत्त्व है " " पहली बात तो उसकी प्राचीनता है-क्योंकि हम जानते हैं कि

वास्तवमें जैसा कि राथने लिखा है-"वेद और अवस्ता दोनों एकही कुण्डसे दो नदियोंकी भाँति निकले हैं, जिनमें एक, वैदिक

-ग्रीक-भाषाकी अपेक्षा संस्कृत-भाषा प्राचीनतर है। परन्तु उसकी केवल ऐतिहासिक प्राचीनताकी अपेक्षा जो बात अधिक महत्त्वकी है वह उसके रक्षणकी प्राचीन अवस्था है जिसमें उक्त आर्यभाषा हम लोगोंतक पहुँची है" "संस्कृत इन भाषाओं (अर्थात् ग्रीक, लेटिन, गाथ, एङ्गलो-सैक्सन केल्ट, स्लाव इत्यादि) बीच घुस पडी, अतएव उनमें प्रकाश, सजीवता और पारस्परिक परिचय हो गया। वे अब एक दूसरेसे अपरिचित न रहगईं और उनमेंसे प्रत्येक स्वेच्छासे अपने समुचित स्थानपर स्थिर होगई। उनमें संस्कृत सबसे बडी बहन थी और अनेक बातोंके विषयमें केवल वही कहसकी उसके परिवारकी दूसरी बहिनोंने उन बातोंको बिलकुल भुलादिया" ।(pp. 22, 23) " इतनाही बस न समझिये क्योंकि वह आदि आर्य-भाषा भी स्पष्ट रीतिसे बहुत लम्बे समयके विचारोंके विकासका परिणाम है। उसकी रचना उन भग्नांशों या भाषाओंके अपभ्रंशोंसे की गई हैं जो भारत, ग्रीस, इटली और जर्मनीमें इधर उधर बिखरे हुए थे. P. 25 " हम लोगोंको सहायक क्रिया I am की अपेक्षा और कुछ अधिक स्वाभाविक नहीं मालूम पडता है। परन्तु इस छोटेसे शब्द I am की अपेक्षा भाषाका कोई ग्रन्थ नहीं है जिसके लिए अधिक प्रयत्न आवश्यक रहे हैं और ये सब प्रयत्न आदि आर्यबोलीके नीचेही स्थित हैं" "यही बात है जो मैं कहताहूं कि इतिहास अपने शब्दके सच्चे अर्थमें कुछ ऐसी वस्तु है जो वास्तवमें राजदरबारोंके दोषों या जातियोंके संहारकी अपेक्षा बहुतही अधिक जानने योग्य वस्तु है ... (pp. 25, 27) " भूमिकाके ढङ्गसे जो सब बातें मैं तुम्हारे मनमें जमाना चाहता हूँ ये वे हैं कि भाषा-विज्ञानके निष्कर्ष, जो संस्कृतकी सहायता विना कभी न प्राप्त किये गये होते, हम लोगोंद्वारा कही जानेवाली उदार शिक्षाके अर्थात् ऐतिहासिक शिक्षाके आवश्यक अङ्ग बने हैं-वह शिक्षा जो मानवजातिको वह काम करनेके लिये समर्थ करेगी जिसे फरासीस एस ओरियंटर (S' Orienter) कहते हैं, अर्थात् अपना प्राच्य खोजनेको, अपना यथार्थ प्राच्य जाननेको वह योग्य बनावेगी। इस तरह जगतमें अपना वास्तविक स्थान निश्चय करनेको वह हमें उपयुक्त करेगी "...... P. 31) "हम सब लोग प्राच्यदेशसे आये हैं-वह सब कुछ, जिसे अत्यन्त

अधिकपूर्ण आधिक स्वच्छ और अपने असली रूपमें अधिक सच्ची बहती रही है, और दूसरी कई ढङ्गोंमें अपवित्र होगई है , अपना असलीमार्ग परित्याग करदिया है और इस कारण प्रत्येक समय उसका उद्गम निश्चय पूर्वक नहीं जाना जासकता है ” (Vide journal of the German Oriental Society for 1848 p. 216) मध्य-एशियाके उत्तरी उच्च-सम-भूमिमें आर्योंकी उत्पत्तिके सिद्धान्तका समर्थन कहते हुए प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वान् इस बातका आश्रय लेते हैं वे कि, वैदिक ग्रन्थोंमें शीतकाल तथा उत्तरके ठण्डे देशोंका उल्लेख कियागया है, वे यह बात भी निर्धारित करते हैं कि ऋग्वेदमें कुभ नदी अर्थात् आर्यावर्तकी पश्चिमी सीमा अफगानिस्तानकी काबुल-नदीका वर्णन हुआ है। इस नदीके वर्णनके साथ पञ्जाब तथा मध्य-देशकी दूसरी नदियोंका, जिनमें पूर्वकी गङ्गा भी शामिल है, (उल्लेख किया गया है) अतएव इन बातोंसे इस सिद्धान्तके समर्थकोंने यह कल्पना की है कि हम-भारतीय आर्य-सप्तसिन्धु देशमें आयेथे, हमलोगोंने किसी ठण्डे देश या मध्य एशियाके उत्तरी उच्च-सम भूमिसे देशान्तर गमन किया था और ऐसी दशामें हम लोग सप्तसिन्धु देश या आर्यावर्तमें विदेशी थे परन्तु ये बात कुछ औरही प्रकारकी हैं। इनकी अपनी कथा बिलकुल भिन्न है, अतएव ये ब्योरेवार पाठकोंके सामने अन्तमें उपस्थित की जायँगी, क्योंकि मध्यएशियाई सिद्धान्तके समर्थकों द्वारा इनकी स्पष्ट उपेक्षा की गई मालूम पडती हैं। परन्तु भूमिकाके

—मूल्यवान् समझते हैं, हमलोगोंके पास प्राच्यसेही आया है ” ...... (P. 32) (Vide maxmullers' “India what can it teach us ” Ed. 1883)

१ स्पीजल, श्लीजल, मेक्समूलर, लांसेन, म्यूर इत्यादि विद्वान् इन लोगोंमें मुख्य हैं, जिनमें कुछभी सम्मतियोंको क्रमशः निश्चित करेंगे ।

रूपमें यहाँ यह कहना पर्याप्त होगा कि अशमनीय कौतुक, यशकी अतृप्त पिपासा और साहसके अदम्य उत्साहने हमारे ऋग्वैदिक तथा आदिम पूर्व पुरुषोंको आर्यावर्तको हमारी मातृभूमिको परित्याग करनेके लिये वाध्य किया था, इस कारण हमने जैसा कि आगे प्रकट किया जायगा. एशिया और योरप, अफ्रीका और अमरीकामें विस्तृत वस्तियाँ वसाई थीं और उत्तरी ध्रुव कटिबन्धके देशोंमें उपनिवेश स्थापित किये थे। हम अपने मूल-स्थान आर्यावर्तका अत्यन्त अधिक प्रेम करते थे, अतएव इन हमारे उपनिवेशों और मातृभूमिके वीच जिसका पर्यटन हम बहुधा किया करते थे अविच्छिन्न सम्बन्ध वना था। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरी ध्रुवदेशोंके हमारे उपनिवेशोंमें हमारे पूर्वपुरुष उसकी आकर्षण करनेवाली प्राकृतिक रचनाओंके कारण दीर्घकालतक ठहरे रहे थे। क्योंकि उन लोगोंने वहाँ आनन्ददायक जल- वायु तथा सुखप्रद दिनोंका उपभोग किया। परन्तु कुछ समयके वाद ये वातें न रहगईं। आनन्ददायक जलवायु और सुखप्रद दिनके पीछे शीतऋतुके कठोर तुषारका तथा उकतानेवाली लम्बी लम्बी रातोंका सामना हुआ, अतएव वैदिक ग्रन्थोंमें बहुधा, उत्तरी देशोंके शीतके सम्बन्धमें स्वभावतः उल्लेख हुआ है। इससे हमारे विजयों तथा उपनिवेशोंका मार्ग दक्षिणसे उत्तर और या आर्यावर्तसे उत्तरी ध्रुवकी ओर सूचित किया गया है। इधर दूसरी ओर उन्हीं ग्रन्थोंमें पहले पूर्वकी नदियोंका अर्थात् गङ्गा, यमुना. सरस्वती इत्यादिका क्रमपूर्वक वर्णन करनेके उपरान्त आर्यावर्तकी पाश्चिमी सीमाके रूपमें कुभनदी या अफगानिस्तानकी काबुलनदीका उल्लेख होताहुआ मालूम पडता है, इससे हमारे पुरातन पूर्व पुरुषोंकी यात्राकी दिशा सूचित की गई है। वह दिशा पूर्वसे पाश्चिम ओर या गङ्गासे कुभकीओर दूसरी नदियों तथा सहायक नदियोंके साथ साथ सूचित की गई थी; येनदियाँ एक एक करके क्रमशः

पार की गईथी, क्योंकि इन्होंने देशको उसी तरह सींच रक्खा और पोषण किया था जैसे कि वे उसे वर्तमान समयमेंभी तरकर रही है। मैं यहाँ ऋग्वेदकी ऋचाओंको अपने मतकी पुष्टिके लिये तथा उल्लेख करनेके सुभीतेकी दृष्टिसे उद्धृत करताहूँ और साथही साथ म्यूर-द्वारा किया गया उनका अँगरेजी अनुवाद (की हिन्दी भाषान्तर) भी जो (The Original Sanskrit Texts 2 nd E d.pp. 341, 343) में दिया हुआ है, उद्धृत करता हूँ-

इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रु स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्निया मरुद्वृधे वितस्तयाऽऽर्जिकीये शृणु ह्या सुषोमया ॥ ५ ॥
तृष्टा यथा प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्यात्या ।
त्वं सिंधो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ॥ ६ ॥

(ऋग्वेद, १०-७५-५-६) " हे गङ्गा, हे यमुना, हे सरस्वती, हे शुतुद्रु परुष्णीके साथ मेरी स्तुति कृपा पूर्वक स्वीकार करो। हे मरुद्वृध, असिक्नी और वितस्ताके साथ उसे सुनो; हे आर्जिकीय, सुषोमके सहित उसे सुनो।" " हे सिन्धु, अपने प्रवाहमें पहले तृष्टा मा, सुसर्तु. रसा और श्वेतीको संयुक्तकर, तू कुभा, गोमती, क्रुमु, मेहत्नुसे मिलता है, और उनके सहित आगे बहता है मानो एकही रथपर सवार है " ऐसी प्राचीन नदियोंके नाम जो प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों-द्वारा समुचित रीतिसे पहचानी गई हैं यहाँ दे सकताहूँ और उल्लेखकी सुगमताके लिये वे आगे दियेभी गये हैं। साथही साथ उनके आधुनिक नामभी उनके सामने उद्धृत हैं। शुतुद्री=सतजल, परुष्णी=रावी, असिक्नी=चिनाव, मरुद्वृधा=चिनाव अपनी सहायक वितस्ताके मिलजानेके उपरान्त इसी नामसे पुकारी जाती है, वितस्ता=झेलम, आर्जिकीया या वियात=व्यास, कुभा=काबुल या कोफेन, सिन्धुकी सहायक, गोमती=गोमल, क्रुमु=कुरम ये दोनों पिछली नदियाँ सिन्धुकी सहायक हैं। मेरे मतके समर्थनके लिए (Muirs Original Sanskrit

Texts. Vol. II pp. 342, 343, 344, 345, 348 2 Edition देखो) अतएव जो गङ्गा-नदी ऋग्वैदिक और पूर्व ऋग्वैदिक युगमेंभी कुछ समय तक हमारे आर्य-मूलस्थानकी पूर्वी सीमा थी उससे प्रारम्भ करता था उसके (अर्थात् गंगाके) पश्चिम जो कुभाया काबुल नदी अपनी सहायक नदियोंके साथ साथ उस समय हमारी पश्चिमी सीमा समझी जाती थी उसतक क्रम पूर्वक सारी नदियोंका उल्लेख हमारे पूर्वपुरुषोंकी यात्राकी दिशा पूर्वसे पश्चिमकीही ओर सूचित करता है। इस उल्लेखसे हमारी यात्राकी दिशा पश्चिमसे पूर्वकी ओर जैसा कि कुछ प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों-द्वारा भ्रमसे अनुमान किया गया है, जिसे मैं आगे प्रकट करनेका प्रयत्न करूँगा, नहीं सूचित होती है। उदाहरणके लिये वेबरकी हिस्ट्री आफ़ इन्डियन् संस्कृत लिटरेचरमें (Second Edition Trubner's Oriental Series 1882 pp. 3, 4) हमारे पुरातन पूर्व पुरुषोंकी यात्राकी और निरीक्षणोंकी गलत दिशा साफ साफ प्रकट की गई है और इस तरह गलत फहमी पैदा की गई है। वास्तवमें उनकी यात्राका मार्ग पूर्वसे पश्चिमकी ओरही मालूम पडता है। अध्यापक वेवर लिखते है " ऋग्वेद संहिताके अधिक प्राचीनभागोंमें हम भारतीय जातिको पंजाबमें भारतकी पश्चिमोत्तरीय सीमा पर और पंजाबके भी आगे कुभायाकोफेननदीपर बसेहुए पाते हैं। इन स्थानोंसे पूर्वकी ओर सरस्वती नदीके आगे हिन्दुस्थान यहाँ तककि गंगानदीके किनारे तक इस जातिका क्रमशः फैलना वैदिक ग्रन्थोंके पीछेके भागोंमें करीबकरीब दर्जे बदर्जे खोजाजासकता है।" (pp. 3, 4) यह मत निस्सन्देह भ्रामक है। क्योंकि हमारे ऋग्वैदिक और पूर्व ऋग-वैदिक-पूर्व पुरुषोंकी यात्राकी दिशा साफ साफ पूर्वसे पश्चिम ओर होतीहुई मालूम पडती है अर्थात् गङ्गासे कुभाकी ओर, जैसा कि ऋ० वे० १०-७५-५-६ में प्रकट की गई है, और न कि

कुभासे गङ्गाकी ओर । एक और दलील है, जिसका उल्लेख मध्य एशियावाले प्रश्नके पक्षपाती बहुधा किया करते हैं । वे दृढ-ताके साथ उसका समर्थन करनेका प्रयत्न भी करते हैं । स्लेजलने दूसरे प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानोंके साथ साथ उसे उपस्थित किया है अतएव मैं यहाँ उनके मतको उद्धृत करनेका साहस करता हूं. वे लिखते हैं-"यह बात जरा भी ठीक नहीं है कि जिन देशान्तरगमनोंके कारण भूमण्डलका विशाल भाग आबाद हुआ है वे उसके दाक्षिणी छोरसे प्रारम्भ हुये होंगे और उस स्थानसे निरन्तर पश्चिमोत्तरकी ओरही जारी रहे होंगे । इसके विपरीत हमें लाचार करनेको प्रत्येक ऐसीही बात आ जुटती है कि मध्य-देशसे निकलकर लोगोंने विभिन्न दिशाओंमें उपनिवेश स्थापित किये हैं इस कल्पनाके अनुसार जो दूरियाँ उपनिवेशवासियोंका अपनी निश्चित आबादियों तक पहुँच-नेमें तै करना पडती होंगी वे बहुत भारी नहीं रहजाती हैं जिन जल वायुके परिवर्तनोंकी दया पर वे लोग निर्भर थे वेभी उतना अचानक होनेवाले नहीं रहजाते और इसतरह अनेक देशान्तर गमन करनेवाली जातियाँ भूमिकी उर्वरता तथा वायुके तापक्रम सम्बन्धी लाभदायक परिवर्तनोंको कर लेंगे । ऐसी दशामें भी यदि उस विशाल महाद्वीपके भीतर कास्पियन सागरके पडोस और उसके पूर्व ओर नहीं तो फिर यह मध्यदेश और कहाँ ढूंढा जानेको है " (Essays "On the Origin of the Hindus" (Reprinte 1842 pp.514, 517) इसके आगे अध्यापक स्पीजल यह दलील उपस्थित करते हैं-"अतएव हम लोग इस कल्पनाको कि भारतीय-जर्मन-जातिका मूल-स्थान भारत था, तुरन्त हटा सकते हैं । हम लेसेनके साथ कल्पना करना पसन्द करतेहैं कि उनकी असली निवास भूमि ईरानदेशके उस भूभा-गके पूर्वी सिरेमें खोजनाहैं जहाँ सर और अमूनादियोंका उद्गम स्थान है.

यदि-"भाषा और विचारका कोई महत्त्व पूर्ण सम्बन्ध भारतीय और ईरानियोंके बीच देखनेमें आता है तो इसका कारण केवल यह है कि ईरानी लोग भारतसे सबसे पीछे आये और इस तरह भारतीय शील-स्वभावका सबसे अधिक अंशभी उनके साथ लगा आया " " क्योंकि यह कल्पना करनी अबभी सम्भव है कि केवल भारतीयही नहीं, किन्तु उनके साथ साथ ईरानी लोगभी सिन्धु-नदीके देशोंमें आकर आवास हुए थे " (Introduction to Avesta Vol. II pp. CVI etc.) अध्यापक मैक्समूलर लिखते हैं कि-" उत्तरी भारतसे एक उपनिवेश जोराष्टर लोगोंका स्थापित हुआ था। वे लोग कुछ समयतक उन लोगोंके साथ एकत्र रहे थे जिनके पवित्र भजन हमलोगोंके लिये वेदमें सुरक्षित रक्खे गये हैं परन्तु मतभेद उपस्थित हो गया और इस कारण जोरास्टरलोग पश्चिम ओर अरचोशिया और फारसको चले गये " (The Science of Language p. 279 5 to Ed.) दूसरे स्थानमें वे फिर लिखते हैं कि " जोरास्टर लोगोंने तथा उनके पूर्व-पुरुषोंने भारतसे वैदिक युगमें प्रयाण किया था जो उतना ही स्पष्टरीतिसे प्रमाणित किया जा सकता है जितना कि मसीलियाके निवासियोंका यूनानसे प्रयाण करना " ("Last Results of the Persian Researches" p.113, Vide also " Chips" 1 86. वे यह भी समर्थन करते हैं कि " परम्परागत इतिहासके प्रारम्भमें हम इन आर्य-जातियोंको हिमाच्छादित हिमालयको पार करते हुए दक्षिण सात नदियोंकी सिन्धु, पंजाबकी पांच नदियाँ और सरस्वतीओर जाते हुए पाते हैं और तबसे भारत उनका घर कहाजाता है। इस समयके पहले वे लोग दूरके उत्तरी देशोंमें उसी घेरेके भीतर, यूनानियों, इटालियों, स्लावों जर्मनों और केल्टोंके पूर्व, पुरुषोंके साथ रहते थे "..." हिन्दू-कुश या हिमालयकी तङ्ग घाटि-

-योंके पार करनेके उपरान्त, उन्होंने जैसा किं मालूम पडता है विना अधिक प्रयत्नके हिमालयके पार्वत्य देशोंके मूल-निवासियोंको विजय किया था उनको वहाँसे निकाल वाहर किया। उत्तरी भारतकी प्रधान नदियोंने उनको पथदर्शकका काम दिया और इन्हींके द्वारा वे लोग मनोहर और उर्वर घाटियोंकी अपनी नई आवास भूमिमें जा पहुँचे।" (Last Results of Sanskrit Researc hes in Bunsen's Out lines of Phi of Mri. Hist Vol. 1. pp. 129, 131 Chips 1. 63-65) परन्तु यह कल्पना करना कि आर्य-लोग उत्तरी ध्रुव-देशों या योरप या मध्य-एशियाके उच्च-सम-भूमिसे आये थे एक निस्सार कल्पना है और जो किसीभी प्रमाण-द्वारा किञ्चिन्मात्र समर्थित नहीं हुई है. इसके सिवा यह कल्पना सादृश्य और घटना दोनोंके विपरीत है. देशान्तरगमन तथा सभ्यता वृत्तके रूपमें नहीं फैले थे। किन्तु एक सीधमें पूर्वसे पश्चिमको, अतएव यह कहना कि आर्योंके उप-निवेश माध्यमिक बिन्दुसे निकले या स्थापित हुए एक विना प्रमा-णके कल्पना करना है, वास्तवमें आर्योंकी उत्पत्ति और आर्योंका मूल-स्थान केवल आर्यावर्तके भीतरही सीमाबद्ध होता हुआ मालूम पडता है। मिस्टर (वादको लॉर्ड) एलिफिंस्टनने ठीकही लिखा है-"यह वात उनकी (अर्थात हिन्दुओंकी) विदेशी उत्पत्तिके विरुद्ध है कि न तो (मनुकी) स्मृतिमें और न मैं विश्वास करता हूँ, वेदोंमें और न किसी दूसरी पुस्तकमेंही, जो उक्त स्मृतिकी अपेक्षा यथार्थमें अधिक पुरानी हो, किसी पहलेके वास-स्था नके सम्बन्धमें या भारतके वाहर किसी देशके नामकी अपेक्षा उसकी अधिक जान-कारीके सम्बन्धमें कोई सङ्केत किया गया है। हिमालय पर्वत-श्रेणीकी अपेक्षा, जिसमें देवताओंका निवास नियत है और अधिक आगे पौराणिक-कथा भी नहीं पहुँचती है।" (History of India Vol.1. p.95 Edition First) प्रसिद्ध ग्रन्थकर्ता, इतिहासज्ञ

और राजनीतिज्ञ एलिफिंस्टनने इसके आगे लिखा है–" यह कहना कि वह (देशान्तर्गमन) माध्यामिक विन्दुसे हुआ था एक निराधार कल्पना है और सादृश्यके विपरीतभी है, क्योंकि देशान्तरगमन तथा सभ्यता वृत्तके रूपमें नहीं फैले, किन्तु एक सीधमें पूर्वसे पश्चिमको फैले हैं। (History of India First Ed. p. 95. अङ्कित शब्द ग्रन्थकर्ताके हैं, इस पुस्तकका पाँचवा अध्याय देखो, जहाँ मैंने आर्यावर्तमें आर्यमूल–स्थानके विषयमें पश्चात्य विद्वानों और प्रसिद्ध खोजियोंके मत कारणोंके सहित उद्धृत किये हैं) इस तरह यही मालूम पडता है कि मध्य–एशियाई–प्रश्नभी[1]

---

१ क–मानव-जातिके मूल-स्थानके सम्बन्धमें डाक्टर मोरिज हार्नीज लिखते हैं कि " मानव जातिका आदिमवास–स्थान हमें कहाँ ढूँढना चाहिये? इस विषयपर अत्यन्त प्रसिद्ध प्रामाणिक विद्वानोंकी भी सम्मतियाँ एक दूसरेसे वहुतही अधिक भिन्न हैं। वे लोग उत्तरी अमरीका, योरप, दक्षिणी एशिया और अस्ट्रेलियाके प्रश्नोंके वीचमें पडकर हिच कचाते हैं, और इस तरह भूमण्डलक ठीक आरपर एक कोनेसे दूसरे कोनेकी लकीरोंका भिन्न भिन्न रीतिसे अनुसरण करते हैं।" (Vide Dr. Moriz Hoerne's Primitive man Translated by James H. Loewe p. 5. Ed. 1900)

ख–उसी तरह हमारे सम्राट्के सेक्रेटरी आव्स्टेट फार इंडिया इन कौंसिलके अनुशासनसे प्रकाशित भारतके इतिहासके वहुतही हालके वर्णनात्मक ग्रन्थमें, सरकारक हाथमें विपुल सामग्रीके रहनेपरभी, आर्य–मूल-स्थान सम्वन्धी विवाद ' 'सीमा रहित ' लिख दिया गया है। इस कथनके साथही साथ यह भी लिखा गया है कि " भिन्न भिन्न प्रामाणिक विद्वानोंके " अनुसार आर्य जातिका " असली वासस्थान " यातो " स्केन्डीनेविया, लिथू आनियाकी ऊजड भूमि, दक्षिण–पूर्वी रूस या मध्य एशिया था या स्वयम् भारतवर्ष। " (Vide the Imperial Gezetteer of India, The Indian Empire Vol. 1. p. 299 New Edition 1907)

कसौटी पर नहीं आता और न इस सिद्धान्तके समर्थनके लिये वैदिक-प्रमाणके समक्ष वह किसी तरहके बलिष्ठ सुकारणही प्रकट करता है। मैं विनयतापूर्वक विश्वास करताहूँ कि वैदिक प्रमाण आर्यावर्तमें आर्योंके मूल-स्थानके सम्बन्धमें, जिसका प्राप्त ब्योरा मैं अगले अध्यायोंमें देनेका प्रयत्न करूँगा, मार्गदर्शकके रूपमें प्रकाश प्रदान करताहै.

पाँचवाँ अध्याय.

आर्यावर्तमें आर्यमूल-स्थानके सम्बन्धमें स्मृतिका साक्ष्य और पाश्चात्य खोजियोंके प्रमाण।

आर्यावर्तमें आर्योंके मूल-स्थानके सम्बन्धमें कोई वैदिक या अवस्तिक प्रमाण उपस्थित करनेके पूर्व हम पहले मनुस्मृतिकी ओर एक निगाह डालेंगे हम उसके उन भागोंकी जांच करेंगे जिनका सम्बन्ध आर्योंके मूल-स्थानसे होगा और यहभी देखेंगे कि आर्योंके वास-स्थान-सम्बन्धी हमारी उन प्राचीनतम परम्परागत कथाओंके सम्बन्धमें वह ऐसे कौनसे पुरातन लेख तथा चिह्न प्रकाशमें लाती या प्रकट करती है जो युग–युगसे बराबर चली आती हैं और जिन्हें हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंने तथा उनके आदिम बाप-दादोंने कंजूसकी चिन्ता और चौकसीके साथ रक्षित रख अपनी संतानोंतक पहुँचाया है। ऋग्वेदके (योनिं देवकृतं। ३-३३-४) अत्यन्त प्राचीनताके धुँधले, किन्तु अमिट परम्पराओंका अनुसरण करते हुए मनुने ब्रह्मावर्त (ब्रह्मावर्त प्रचक्षते) नामके देशका वर्णन किया है और उसे देव-निर्मितदेश लिखा है (देवनिर्मितं देशं) यही नहीं, किन्तु उन्होंने उसकी सीमाएँ भी निर्दिष्ट की हैं और लिखा है कि वह देश सरस्वती और दृषद्वती नदियोंके बीचमें स्थित है (सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्) इनमें एक नदी उसके उत्तर और दूसरी उसके दक्षिण बहती है। इसके सिवा वे इन नदियोंको

भी दैवी वताते हैं (दृवनद्योः) क्योंकि वे देवनिर्मित-देश था इससेभी अधिक सम्भवतः सृष्टिके लीलाक्षेत्रके देशकी सीमायें थीं।

"सरस्वती दृपद्वत्यो दैवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥" मनुः २-१७

अस्तु, 'देव निर्मित देश' वाक्यांश गहरे अर्थसे गर्भित तथा वहुत अधिक गौरवशाली प्रतीत होता है। इस रूपमें यह वाक्य मजवूतीके साथ जड पकडेहुए इस परम्परागत विचा-रको हमारे सामने दृढताके साथ उपस्थित करता है कि आर्योंका मूल-स्थान ब्रह्मावर्तमें ही रहा है। या यदि यही वात हम अधिक स्पष्ट करके कहें तो वह सरस्वती-नदीके देशमें रहा है। अतएव आर्योंका मूल-स्थान और कहीं नहीं, किन्तु एक मात्र आर्यावर्तमेंही रहा है। इस वातके सिवा कि मनुने उसे 'सृष्टिके लीलाक्षेत्र' के नामसे अभिहित किया है। उन्होंने इस आशयके अर्थसे गर्भित एक दूसरी घोषणा की है कि "इस देशकी अपनी निजी परम्परागत कथायें और आचार विधान हैं" तस्मिन् देशे य आचारः पारंपर्य-क्रमागतः") ये सव परम्परासे एक युग युग चले आते हैं और इनका क्रम पुश्तदरपुश्त लगातार जारी रहा है। अतएव ये सव वर्णों तथा मिश्रित वर्णोंके लिए सदाचारके रूपमें अनुमान कियेगये हैं "स सदाचार उच्यते"

"तस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः ।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥ १२ ॥"

(मनु २-१२) इसके आगे मनुका कथन औरभी अधिक रुचिर तथा शिक्षाप्रद है। वे लिखते हैं-"कुरुक्षेत्रका, मत्स्योंका, पाञ्चालोंका और शूरसेनोंका देश (पूर्वोक्त) ब्रह्मावर्तदेशसे जुडा हुआ है और वे सव ब्रह्मर्षिदेशके नामसे प्रसिद्ध देशमें शामिल हैं (२-१९)। इस देशमें

उत्पन्न हुए ब्राह्मणसे पृथ्वीके सारे मनुष्योंको अपने अपने धर्म सीखना चाहिये " (२-२०) " एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः॥" मनु, २-२० अतएव, " ब्रह्मावर्त देव-निर्मित देश " है अथवा वह सृष्टिका लीलाक्षेत्र है। इस वाक्यके साथ संयुक्त होकर उपर्युक्त घोषणा हमें आर्योंके आवासका परम्परागत पुरातन विचार सुझाती है और आर्यावर्तमें आर्योंके सच्चे मूलस्थानका असली तथा बहुतही सुन्दर रङ्गीन चित्र प्रदान करती है। इसके सिवा-उनका वह मूलस्थान-केवल इस कारण आर्यावर्तके नामसे भी कहलाता था कि वह उन आर्योंकी उत्पत्तिका लीलाक्षेत्र था "जो वहाँ पैदा हुए थे और बारबार पैदा होते आये हैं " (आर्या अत्रावर्तन्ते पुनः पुनरुद्भवन्तीत्यार्यावर्तः ।) जैसा कि परम्परागत कथाओंके इतिहासमें मनुके निपुण टीकाकार-कुल्लूक स्पष्टरीतिसे इस बातको लिखते हैं। हमें आर्योंका मूल-स्थान वही आर्यावर्त देश मालूम पडता है जो उत्तरमें हिमालय पर्वतमालासे दक्षिणमें विन्ध्याचलकी पहाडियोंसे और पूर्व तथा पश्चिममें पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रोंसे घिरा हुआ है।

"आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः॥" मनु० २-२२

इसके सिवा आर्यावर्तका उसकी सारी प्राकृतिक सीमाओंके सहित उल्लेख करनेके उपरान्त मनु दूसरे श्लोकमें इसे यज्ञदेश तथा एक ऐसे देशके नामसे जिसमें कृष्णसारमृग आराम और स्वच्छन्द-रीतिसे इधर उधर भ्रमण करते हैं, उल्लेख करते हैं-

".कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो...म० स्मृ० २.२३)-

इसके आगे वे लिखते हैं उसके परेका देश विदेशियोंका है-"म्लेच्छ देश-

स्त्वतः परः ॥" म०स्मृ०२-२३) । अतएव यदि हम लोग आर्यावर्त देशमें निरे विदेशी या विजेता तथा आक्रमणकारी या प्रवासीके रूपमें होते तो निस्सन्देह मनुने यह बात न लिखी होती कि " आर्यावर्तकी सीमाओंके बाहरका देश विदेशियोंका था या उसके स्वामी म्लेच्छ थे" । क्योंकि यदिहम लोग उस देशके मूल- निवासी न होते तो यह बात स्पष्ट रीतिसे पर्याप्त है कि उस वाक्यके प्रयोगमें कोई उपयुक्तता न हो सकती । परन्तु जाँच-पडतालकी ये सारी बातें केवल एक पक्षकी समझी जायँगी । अतएव और प्रमाण ढूँढे जायँगे, इस विषयके सम्बन्धमें पाश्चात्य विद्वानोंके प्रमाणोंकी बात तो कुछ कहनीही नहीं है । तोभी आओ हम लोग अपना ध्यान उसी ओर फेरें और देखें कि पाश्चात्य-विद्वानों और खोजियोंका इस विषयपर क्या कहना है । ब्रह्मावर्त और सरस्वती नदीकी विख्यात पवित्रताकी ओर सङ्केत करते हुए म्यूर लिखते हैं-" और विन्ध्याचलके उत्तर ओरभी हम इस देशको कईएक भूभागोंसें बँटा हुआ पाते हैं. जो सरस्वती नदीके किनारे स्थित उत्तरके खोखले स्थानसे अपनी अपनी दूरीके अनुसार अधिक या कम पवित्र हैं । पहले हमें यही छोटा देश स्वयम् ब्रह्मावर्त मिलता है । इस नामसे या तो यह ध्वनित होता है कि यह (१) सृष्टिकर्ता ब्रह्माका देश है या (२) उपासना अथवा वेदोंका देश है । ब्रह्माका देश होनेके सम्बन्धमें यह देश उस देवताका वासस्थान तथा सृष्टिका लीलाक्षेत्र होना किसी विचित्र मतलबसे समझागया होगा और उपासना या वेदोंका देश होना यह सूचित करता कि यह देश पवित्र धार्मिक कृत्योंके सम्पादनसे तथा पवित्र साहित्यके अध्ययनसे पुनीत

ऊपरके अवतरणमें जिन वाक्यांशोके नीचे-चिह्न है वे मेरे हैं और विशेष रीतिसे ध्यान देनेके योग्य हैं । क्योंकि जो डाक्टर जे० म्यूर मध्य एशीयाई सिद्धान्तके कट्टर पक्षपाती और समर्थक हैं ।

किया गया था"। "चौथा देश आर्यावर्त या आर्योंकी निवास-भूमि पिछले देशकी अपेक्षा अधिक विस्तृत है और वह अक्षांशोंकी उन्हीं सीमाओंके भीतर (अर्थात् हिमालयसे विन्ध्याचल तक उत्तरसे दक्षिण ओर) सिन्धुनदीके मुहानेके समुद्रसे बङ्गालकी खाडीतक (पूर्वी और पश्चिमी समुद्रोंतक) फैला हुआ है"। Vide Original Sanskrit Texts. Vol. II pp. 400–401 Ed. 1871 उनकोभी (देवनिर्मित) "सृष्टिका लीला क्षेत्र"–इन शब्दोंका प्रभाव तथा–(आर्यावर्त) आर्योंकी निवासभूमि (मूलस्थान) इसका महत्त्व स्वीकार करना पडा है । अन्य परम्परागत प्रमाणोंके सम्बन्धमें मैं इस स्थानमें संक्षेपके साथ विचार करसकता हूँ कि, ये लोग केवल हिन्दू या भारतीय-आर्यही नहीं है जो पितासे पुत्रतक पहुँचनेवाली पुरातन परम्परागत कथाओंके परिणाम स्वरूप भारतमें अपने आपको मूल-निवासी होना समझते हैं, किन्तु इनमें विदेशी लोगभी हैं जो भारतको हिन्दुओंके मूल-स्थानके रूपमें समझते हैं । इनमेंसे मिस्टर एलिफिनस्टर और मिस्टर म्यूर मतका उल्लेख पिछले अध्यायमें किया गया है । प्राचीन आर्यों या मुख्य भारतके हिन्दुओंके सम्बन्धमें मैं कर्जनके लेखसे कुछ अंश यहाँ उद्धृत करता हूँ. उन्होंने आर्योंके मूल-स्थानके विषयमें बहुतही पतेकी खोज की हैं और बहुत प्राचीन-काल या पूर्व-ऐतिहासिक युगमें पश्चिम या पूर्व, पश्चिमोत्तर या पूर्वोत्तर, उत्तर और दक्षिणसे भारतके कल्पित आर्य-आक्रमण-सम्बन्धी प्रश्नका निर्णय सब दृष्टियोंसे किया है. और ऐसी घटनाके संघटित होनेकी असम्भाव्यताको तर्क-द्वारा सिद्धभी किया है । उनका तर्क इस तरह है–" जिन सम्मतियोंकी ओर मैंने ध्यान दिया है उनके अनुसार आर्योंको भारतमें आयेहुए मानकर आओ हमलोग यह तो जाँचें कि उनका भारतमें प्रवेश करना किस ओरसे सम्भव है ?

(१) क्या आर्यलोग पश्चिमसे भारतमें आये हैं प्राचीन-ईरानकी बोलियोंके प्राचीनतमरूप ईरानी और जेन्दके ढांचेकी परीक्षासे यह स्पष्ट है कि ये दोनों संस्कृतसे निकली हैं, उनका जैसा सम्बन्ध संस्कृतसे है वह वैसीही समानताका है जैसा कि पाली या प्राकृतिक संस्कृतके साथ है–इटाली या स्पेनीका लेटिनके साथ है। XXX इस तरह यह प्रमाणित हुआ कि प्राचीन ईरानियोंने अपने धर्मग्रन्थोंमें उल्लिखित प्रतिष्ठित पुरुषोंके नाम और स्वयम् अपनी भाषा ये दोनों बातें आर्योंसेही ली है और वे लोग आर्योंकी एक उपशाखाके वंशजोंकी अपेक्षा कोई दूसरे लोग नहीं थे जो अपने बन्धु-बान्धवोंसे अलग होगये थे और पश्चिम ओर चले गये थे या धार्मिक मतभेदोंके प्रभावसे गृह-युद्ध छिडजानेपर अपनी जन्मभूमिसे निकाल दियेगयेथे। pp. 194, 195.

(२) क्या आर्योंने उत्तर या पश्चिमोत्तरसे भारतमें प्रवेश किया है किसी ऐसी सभ्यजातिके अस्तित्वका उल्लेख इतिहासमें नहीं है और न पहलेके इस युगमें ऐसी किसी जातिका अस्तित्व तुलना मूलक भाषा विज्ञानीय खोज या स्मृति-मन्दिरोंके उल्लेखके द्वारा जाननेका कोई साधनही हैं जिनकी भाषा तथा धार्मिक व्यवस्था आर्योंके सदृश रही हो जिनसे वे लोग उत्पन्नहुएहों और जो भारतमें आसके हों, क्योंकि जिन विभिन्न जातियोंको यूनानी इतिहासकारोंने ' शक ' नामसे या जिन्हें फिरदौसी तथा ईरानी इतिहासकारोंने तूरानीनामसे अभिहित किया है वे जातया मध्यएशियामें कई युग पीछे प्रकट हुईथीं। कई एक प्रामाणिक विद्वानोंने यह बात प्रकट की है कि ये जातियाँ नृवंश (नृशंस) विद्याके अनुसार स्केलोलिज Scaloles सेकाइ Sacœ अलनी Alani गेटाई Gatœ मेसाजिटाई Massagetœ गोथो Gotho और चीनियोंकी युस्ती Yusti से

मिलती जुलती हैं। गेटाई और गाथलोग एक ही जाति हैं, यह बात अभी बहुत हालके प्रमाण-द्वारा मालूम हुई है फलतः ये लोग आर्यजातिकी भारतीय-गाथ शाखाके हैं, जो इन्हीं लोगोंकी भाँति स्वयम् आर्योंसे उत्पन्न हुएथे। pp.195, 196.

(३) क्या आर्यलोग पूर्वसे आये! जो लोग इस दिशासे भारतमें आसकते हैं वे एकमात्र चीनीजातिके हैं। इस बातके कहनेकी तो मुझे आवश्यकताही नहीं हैं कि चीनीजाति एक ऐसी जाति है जो आर्योंसे भाषा, धर्म, कानून और स्वभावमें बिलकुल भिन्न है और जिनका उन लोगोंके साथ वंशगत कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। परन्तु मेरीतो यह राय है कि आर्यलोगोंसे उनके पहलेके आक्रमणोंके समय पूर्वओर चीनियोंके साथ शीघ्रही मुडभेडहो गयी थी जो पहले सेही एक संयुक्त राजतन्त्रमें संघटितथे। इस कारण वे लोग अपनी शक्ति इस ओर बढानेसे विरतकरादिये गयेथे p. 196

(४) क्या आर्यलोग वास्तवमें तिब्बतके उच्चसमभूमिसे निकल-कर पूर्वोत्तरसे आये? जिन बाधक कारणोंने आर्योंके भारतागमनकी पश्चिमी तथा पश्चिमोत्तरी दिशा निर्धारित की हैं उनमें एक हिमालयकी विशाल पर्वतमालाकी प्राकृतिक दीवारभी है। इसके सिवा वही नृवंश-विद्या-सम्बन्धी उज्र इस प्रश्नके सम्बन्धमें भी उपस्थित किया जा सकता है जैसा कि उनकी चीनी उत्पत्तिके सम्बन्धमें है यदि तिब्बत कभी आर्योंके अधिकारमें रहा ह तो समझना चाहिये कि तिब्बती प्राकृ-तिक अंग्रिटनमें जो अपने चिह्न उन्होंने छोडे होंगे उन्हें चीनी जातिने मिटा दिया है।

(५) क्या आर्यलोग किसी ऐसे स्थानसे आये हैं, जहाँ पहले फिनीशिओ-अरब या सेमिटिक-जाति आबाद थी तबतो इस कल्प-नाके पुष्ट्यर्थ सेमिटिक भाषासे निकलेहुए शब्द संस्कृतमें निस्सन्देह पाये जाते। परन्तु संस्कृतका ढाँचा तथा किसीभी सेमिटिक बोलीसे

उसकी पूर्ण असमानता इस अनुमानकी घातक है। pp.196, 197

(६) तो क्या आर्योंकी उत्पत्ति मिस्रियोंसे खोज निकाली जाय? जोन्स, विलफर्ड, बोह्लेन तथा दूसरे प्राच्य-तत्त्वविदोंने मिस्री लोगोंकी संस्थाओं तथा उनके स्वभावोंकी विशेषविशेष साम्यताओंसे यह अनुमान किया है कि प्राचीन मिस्री और भारतीयोंकी उत्पत्तिका मूल हिब्रू, फिनीशियन, अरब और चीनी-तातारजातिके विपरीत लक्षणोंके सामने एकही है तथापि चैम्पोलिअन, लेप्सिअस, बन्सेन तथा दूसरे मिस्री पुरातत्त्वविदोंकी खोजोंसे, मूर्त्यात्मक वर्णोंको पढ लेने और उन चिह्नोंका जो वर्णमालाके अक्षर सिद्ध हुए हैं स्वर-सम्बन्धी महत्त्वनिश्चितकरनेपर यह मालूम होगा कि उन निष्कर्षोंसे तौलीगई उक्त प्राचीनजातिकी भाषा सेमिटिकपरिवारकीही सिद्ध होती है। अतएव इस बातसे आर्योंसे उन लोगोंका अलग होना स्पष्ट मालूम होगा। इस तरह प्राचीन मिस्रीजातिसे आर्यलोगोंकी उत्पत्ति बिलकुलही असम्भव सिद्ध होती है"। pp. 197, 198 (Vide the Journal of the Royal Asiatic Society of great Britain and Ireland Vol. XVI, 1854, Part II.

आर्यावर्तकी भूमिमें हमारी उत्पत्ति हुई तथा वह हमारा मूलस्थान है इसके सिवा हमारी उत्पत्तिकी और कोई दूसरी जगह नहीं है इस विषयके मनुस्मृतिके (२-२३) श्लोकके सम्बन्धमें कर्जनने उचित तथा पतेकी दूसरी बातेंभी कहीं है। ये बातें केवल अत्यन्त रुचिरही नहीं हैं, किन्तु सबतरहसे यथार्थभी हैं। अतएव उनके यहाँ उद्धृत करनेके लोभका संवरण मैं नहीं करसकताहूँ। वे

---

१. इसके विपरीत संस्कृत-शब्द सेमेटिक भाषामें घुस गये हैं जैसा कि लेसिन, जेसीनिअस और दूसरे लोगोंने वस्तुओंकी भिन्नताके नामोंमें दिखलाया है..... अरबी सन्दल...लैटिन 'सेन्टालम्' संस्कृत 'चन्दन,' 'अंगरेजी सेन्डेलउड..'. अरबी 'एस' आलिसके अर्थमें, संस्कृत 'अस' होना तथा दूसरे अगणित शब्द हैं जिनका उल्लेख विस्तारके साथ यहाँ नहीं किया जा सकता है.

लिखते हैं-" म्लेच्छ देशस्त्वतः परः " ' जङ्गलियोंका देश विलकुल भिन्न है ' इस वाक्यांशको, जो आगेके श्लोकके अन्तमें आता है, कोई व्यक्ति किसी ऐसे देशके सम्बन्धमें कठिनतासे प्रयोग करसकेगा जिसे उसके देशबन्धुओंने आक्रमण करके अपने अधीन किया हो। यदि ऐसी घटना वास्तवमें सङ्घटित हुई होती या उसकी कोई परम्परा अस्तित्वमें होती तबतो यह बात अधिक सम्भव है कि उक्त दशा कुछ जातीय अभिमानके साथ उल्लेख की गई होती या किसी दूसरेही ढँगसे उसकी सूचना दी गई होती। परन्तु ऐसी कोई परम्परा प्राचीन या अर्वाचीन संस्कृत साहित्यमें नहीं मिलती है। Vide The Journal, R. A. S. Vol. XVI may 1854. PartII p. 191, Note 2) भाषा विज्ञान तथा नृवंश-विद्या दोनोंके सम्बन्धकी अन्यान्य जाँच पडतालोंके अनन्तर कर्जनने अपने विचारोंको इस तरह एक साथ विचार करतेहुए एकत्र करादियाहै-" इन विचारोंसे यह परिणाम निकलता है कि प्राचीन आर्य, भारतीय या हिन्दू, किसी बाहरके देशसे मुख्य भारतमें आये हैं इस प्रकारकी कल्पनाके लिए किसी तरहका पर्याप्त आधार नहीं है इसके विपरीत उपर्युक्त बातें इस परिणामकी ओर सङ्केत करती हैं कि इस अपूर्व-जातिका उदय, सभ्यता तथा कलाओंमें उसकी समुन्नति उसीके स्वदेशकी उपज है। इन सब बातोंके समुन्नत होनेमें एक लम्बा समय बीता है और ये उन दूसरी जातियोंतक पहुँचाई गई हैं जिनमें कुछ तो उन्हींसे उत्पन्न हुई हैं और कुछ दूसरी आदिम जातियोंसे "। Vide Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain & Ireland vol. XVI may 1854 Part II p.199 इस तरह कर्जनके विचारोंके अनुसारभी यही बात सब दृष्टियोंसे ठीक मालूम पडती है कि हम भारतीय-आर्य आर्यावर्त या मुख्य भारतके मूल निवासी थे दूसरी जातियोंने अपनी शिक्षायें हमी लोगोंसे

पाई थीं और हमींने उन लोगोंमें अपनी सभ्यताका प्रचार किया था। अतएव कर्जनका यह कथन उस बातसे बिलकुल ठीक मिल-जाता है जो मनुने दूसरे अध्यायके २० वें और २२ वें श्लोकोंमें कही है। अन्तमें वही विद्वान् तथा कुशल अन्वेषक लिखता है-" जहाँ-तक वर्तमान समयमें यह बात जानी जा सकती है, वहाँतक आर्योंका ऐसा कोई स्मारक, कोई लेख, कोई परम्परा भारतमें नहीं मिलस-कती है जिससे यह सिद्ध हो कि हिमालय-पर्वत-मालाके दक्षिणपश्चि-मके मैदानोंकी अपेक्षा, जो मनु-द्वारा दो समुद्रोंसे घिरेहुए वर्णित हैं, उन्होंनें किसी दूसरे स्थानको कभी उसी तरह अधिकारमें किया हो जैसे अपने आदिम निवास-स्थानसे देशान्तर गमन करनेके सम्बन्धमें दूसरी जातियोंके इतिहासोंमें प्रसिद्ध स्मृति-चिन्ह विद्यमान हैं"। (Journal R. A. S. of Great Britain & Ireland Vol. XVI may 1854 Part II p. 300) इसके सिवा फरासीस विद्वान् क्रूजर स्पष्ट शब्दोंमें लिखता है कि "यदि पृथ्वीपर कोई देश है जो मानव जातिका मूलस्थान या कमसेकम आदिम सभ्यताका लीला क्षेत्र होनेके आदरका दावा न्यायतः करसकता है और जिसकी वे समुन्नतियाँ और उससेभी परे विद्याकी वे न्यामतें जो मनुष्य जातिका दूसरा जीवन हैं, प्राचीन जगत्के सम्पूर्ण भागोंमें पहुंचाई गई हैं तो वह देश निंस्सन्देह भारतही है" (चिन्ह किये हुए अंश मेरे हैं-ग्रन्थकर्ता) आर्यावर्तमें आर्य-वासस्थान और बाहरके देशोंमें उसके विस्तृत उपनिवेशोंके सम्बन्धमें एक दूसरे फरासीस विद्वान् एम० लुई जैकालिअट लिखते हैं-" भारत संसारका मूल-स्थान है; इस सार्वजनिक माताने अपनी सन्तानको नितान्त पश्चिम ओर भी भेजकर हमारी उत्पत्ति सम्बन्धि अमिट प्रमाणोंमें हम लोगोंको अपनी भाषा अपने कानून, अपना चरित्र, अपना साहित्य और अपना धर्म

प्रदान किया है " । p. VII " सूर्यसे प्रतप्त अपनी जन्मभूमिसे दूर फारस, अरब, मिस्रकी यात्रा करते और ठंढे तथा मेघावृत्त उत्तरकी ओरभी अपना मार्ग बनातेहुए वे लोग भलेही अपने प्रस्थानका स्थान भूलजायँ और पश्चिमके बर्फके संसर्गसे उनका चर्म भूराही रहजाय या सफेद होजाय .... । pp. VII VIII " जैसे सत्य-ताको दूसरे प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं होती उसी तरह विज्ञान अब मानता है कि प्राचीन कालके सारे मुहवरे सुदूर प्राच्यदेशसेही निकले हैं भारतीय भाषा-विदोंको उनके परिश्रमके लिये, इसलिये धन्यवाद है कि हमारी आधुनिक भाषाओंके मूल और उनकी धातुका पता वहाँ मिला है । " " मनुका प्रभाव मिस्री, हिब्रू, ग्रीक और रोमन कानूनमें विद्यमान है और उसकी भावना योरपकी हमारी सारी कानूनी व्यवस्थामें व्याप्त है । " " परन्तु इतनाही बस नहीं है । " " ये देशान्तर गमन करनेवाली जातियाँ अपने कानून अपने रवाज तथा अपनी भाषा उसी तरह अपना धर्म—अपने निवा-सस्थानके देवताओंकी पवित्र स्मृतियाँ जो उन्हें दर्शन करनेको बिल-कुलही नहीं मिलसकते थे अपने साथ लेते गयी थीं । " P. VIII " अतएव उद्गमस्थानकी ओर लौटनेपर हम प्राचीन तथा अर्वाचीन जातियोंके सारे कविता-सम्बन्धी और धार्मिक परम्परायें भारतमेंही पाते हैं जो रास्टरकी पूजा, मिस्रके उपासना-सम्बन्धी चिह्न, इल्यू-सिसके गुप्तभेद तथा वेस्टाकी पादडिनियाँ, इंजीलका पहला खण्ड तथा उसकी भविष्यद्वाणियाँ, सामियन साधुका चरित्र और वेथले-हमके दार्शनिकके श्रेष्ठ उपदेश भी हम वहाँ पाते हैं । (La Bible Dans L' Inde. Preface p. IX Ed. 1870).

मिस्टर पोकाकभी 'इंडिया इन्ग्रीस' नामक अपनी पुस्तकमें लिखते हैं " मानवजातिकी वह प्रचण्ड बाढ, जिसने पंजाबकी दुर्धर्ष पर्वतीय दीवारको पार किया, संसारके नैतिक उपजाऊपनमें, अपने लाभ-

दायक कार्यको पूराकरनेलिये योरपको, और एशियाको अपने नियतमार्गोंसे होकर बढती गई " (India in Grace p. 26) Second Edition) काउन्टजर्नस्टजर्नाभी लिखते हैं-" यह बात वहीं (आर्यावर्तमें,) है कि हमें केवल ब्राह्मण-धर्मके मूल-स्थान कीही खोज न करनी चाहिये किन्तु हिन्दुओंकी उस उच्चसभ्यताके मूलस्थानकी भी जो पश्चिममें इथिओपिया, इजिप्ट, फैनिशियाकी और पूर्वमें स्याम, चीन और जापानकी ओर, दक्षिणमें लंका, जावा और सुमात्राकी और; उत्तरमें ईरान, कैल्डिया, और कोल्चिसकी ओर जहाँसे वह यूनान और रोमको पहुँची, और अन्तमें हाइपरबोरिअन लोगोंके सुदूर वासस्थानतक, अपने आप क्रमशः फैलीथी (Theogany of the Hindoos p. 168) अन्तमें आर्यावर्तमें आर्योंके मूलस्थानके सम्बन्धमें मान्सिपरडेल्बोसके लेखोंसे केवल एक अवतरण यहाँ मैं उद्धृत करके इस अध्यायको समाप्त करूँगा. वे लिखते हैं-"उस सभ्यताका प्रभाव, जो सहस्रोंवर्ष पहले भारतमें उत्पन्न कीगईथी, हमारे जीवनके प्रत्येक समयमें चारों ओर सर्वत्र व्याप्त है। वह सभ्य जगतके प्रत्येक कोनेमें वर्तमान है। अमरीका जाओ और तुम उस सभ्यताका प्रभाव जो असलमें गंगाके किनारोंसे आई है, वहांभी उसी प्रकार पाओगे जैसे योरपमें; इसतरह इन लोगोंने दूसरे पाश्चात्य विद्वानों और खोजियोंने एवं प्रसिद्ध ग्रन्थकारोंनेभी आर्यावर्त सम्बन्धी सिद्धान्त-कोही निर्द्धारित किया है और स्पष्टशब्दोंमें उसे स्वीकार किया है. ये लोग भीतरी तथा बाहरी प्रमाणोंके कारण इस बातको मानलेनेके लिये बाध्य हुये कि हिन्दू या भारतीय-आर्यभारतके मूलनिवासी है क्योंकि आर्य लोग यातो नये देशोंकी खोजमें या कुतूहलकी अपनी

---

१. इस अवतरणके जिस अंशमें चिन्ह है मेरे हैं (ग्रन्थकर्ता)

अतृप्त पिपासा बुझानेकी लालसासे या सम्भवतः विदेशोंको जीतने तथा वहा यश प्राप्त करनेके लिये आर्यावर्तसे गयेथे, उन्होंने दूरदेशोंमें विशाल उपनिवेशीय साम्राज्यस्थापित कियाथा और सृष्टिके लीलाक्षेत्र और अपने मूलस्थान आर्यवर्त सुदूर उत्तर तथा दक्षिणओर पूर्व तथा पश्चिम ओर विस्तृत देशोंमें जाकर वे स्वयं आवाद हो गये थे।

छठाँ अध्याय.

अर्योंके मूलस्थानके सम्बन्धमें वैदिक प्रमाण ।

चौथे अध्यायमें यह बात पहलेही दिखलादीगई है कि, न तो उत्तरीध्रुव-वाले सिद्धान्तसे, न योरपीय कल्पनासे और न मध्य एशियाई प्रश्नसे यह बात सिद्ध होती है कि इन देशोंमेंसे किसी एक पर आर्योंके मूलस्थान-सम्बन्धी किसी कल्पनाको ठीक घट जानेके लिये कोई आधार या सन्तोष जनक प्रमाण प्राप्त होताहै अतएव आर्यावर्त या प्रसिद्ध सप्तसिन्धु-देशमें आर्योंके मूल-स्थानका समुचित पता पाठकोंको देनेके विचारसे पहले मैं अब वैदिक प्रमाणोंकी ओर ध्यान देना आवश्यक समझताहूँ । मैं योरपीय पाण्डित्य तथा उसके खोजके कामका समादर करताहूँ परन्तु उनकी खोजका निष्कर्ष बहुत विचित्र है (विचित्र इस लिये है कि वह हमारी भारतीय परम्परागत कथाओंसे मेल नहीं खाता, यही नहीं किन्तु वह वैदिक प्रमाणके विरुद्धभी है) कुछ श्रेष्ठविद्वानोंको छोडकर प्रायः सभी प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वान् यह बात कठिनाईके साथ निश्चित करसके हैं कि भारतीय आर्य आर्यावर्त या सप्तसिन्धुदेशमें विदेशी और विजेताके रूपमें आये थे। परन्तु अपने इस कथनका समर्थन करनेके लिये कल्पना, अटकल और अन्दाजके सिवा उन्होंने वास्तवमें किसी तरहका कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं दियाहै । म्यूरसाहबने इस वातको स्पष्ट रूपसे मानभी लियाहै, उनके मतका उल्लेख पिछले अध्यायमें

किया गया है। परन्तु यह दलीलभी कि दस्यु या असुर अनार्य उत्पत्तिके थे या भारतकी पहाडी जातियाँ इस देशके आदिम निवासी हैं निराधार है। इस सम्बन्धमें म्यूरने स्पष्ट स्वीकार किया है कि "ऋग्वेदमें उल्लिखित असुरों और दस्युओंके नामोंको मैं यह जाननेके विचारसे पढगयाहूँ कि क्या इनमेंसे कोईनाम अनार्य उत्पत्तिके समझे जा सकते हैं; परन्तु मुझे ऐसा कोई नाम नहीं मिला जो वैसा हो।" (Vide Muir's O. S. T. Vol. II p. 387 Ed. 1871) कर्जननेभी लिखा है "यह कल्पना करना कि ऐसी (पहाडी) जातियाँ भारतके मूलनिवासीहैं या ये लोग पहलेके सभ्य आर्य हिन्दुओंकी अपेक्षा अधिक प्राचीनहैं, उन बातोंके विपरीत मतको ठीक ठहराना है जो तुलनामूलक भाषा-विज्ञान-सम्बन्धी परिणामोंपर निर्भर करनेवाली बातें सूचित करतीहैं।" (Vide The Journal of the Royal Asiatic Societ ofGreat Britain and Ireland. Vol. XVI 4518 Pt. IIyP. 187) इस दशामें यह निश्चित करनेके लिये ऐसे कोई कारण नहीं दिखलाई पडते जिनसे हम भारतीय आर्य सप्त-सिन्धुदेशमें विदेशी या प्रवासी ठहरें। इसके विपरीत हमारी सारीपरम्परागत कथायें इसी बातको प्रमाणित करतीहै कि हमलोग आर्यावर्तके मूल-निवासी हैं। इसके सिवा औरभी अधिक महत्त्वपूर्ण तथा भारी परिमाणवाली दूसरी बातें अभीतक विद्यमान है, जो न तो निगाहसे बाहर की जासकती है और न जिनकी किसीभी कारणवश उपेक्षाही की जासकती है। क्योंकि वे आर्यावर्तमें आर्योंका मूलस्थान होना प्रमाणित करतीहैं। उनका सम्बन्ध स्वयम् ऋग्वेदके अत्यन्तवजनी प्रमाणोंसे है जैसा कि

१, क—जेनेंडी ए, रगोजिन अपने 'वैदिक इन्डिया' में ऋग्वेद को 'ग्रन्थोंका ग्रन्थ' कहते हैं। (Vide "Vedic India" P. 133 Ed. 1895)

ख—उसी भाँति मैक्समूलर लिखते हैं कि " मेरा यह निश्चय है कि अभी

हम सबलोग जानतेहैं, ऋग्वेद केवल एक अत्यन्त मौलिक तथा महत्त्वपूर्णग्रन्थही नहीं है किन्तु अत्यन्त विश्वसनीय और अवस्ताकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान्भी है विशेषकर इस बातसे कि उसकी धाराके स्रोत अधिक पूर्णरहे हैं, यही नहीं किन्तु अपने असलीरूपके अनुसार अधिक स्वच्छ और सच्चेभी जैसा कि अध्यापक राथने समुचित रीतिसे विचार करके कहाहै। (पीछे पृ ५५) अतएव यहाँके मतलबके लिये इस सम्बन्धमें केवल संक्षेपमेंही उल्लेख करूंगा, क्योंकि बादको विस्तारके साथ उल्लेख करनेका मेरा विचारहै। प्रारम्भमें हमारे आदिम पूर्वपुरुष–हमारे अत्यन्त प्राचीन ऋग्वैदिक बापन्दादों-केभी पुरावन बापदादे-और कहीं नहीं, इसी सप्त-सिन्धुदेशमें निरीक्षण करते हुए हमें मिलतेहैं।पृथ्वीपर गिरतीहुई मेहकी सर्वप्रथम बौछार

–सदियों तक विद्वानोंका ध्यान वेदकी ओर आकृष्ट रहेगा और मानव-जातिके पुस्तकालयमें वह पुस्तकोंमें अत्यन्त प्राचीन पुस्तकके रूपमें सदाके लिए अपना स्थान ग्रहण करेगा और उसे स्थिर रक्खेगा" (Vide The Rig-Veda Samhita Translated and Explained by F. Max-Muller M. A. L. L. D. Vol. IEdition 1869 Preface P. X)

१. ऐसा मालूम पडता है कि प्रकृतिकी अद्भुत वस्तुका ऐसा दृश्य हमारे आदिम पूर्व-पुरुषोंने पूर्व समयमें अपनी उत्पत्तिकी भूमि आर्यावर्तको छोडकर और किसी भी देशमें नहीं देखा है। यदि उनका मूल-स्थान उत्तरी ध्रुव देश योरुप व मध्य-एशियामें ही वस्तुतः होता तो मेहकी सर्व प्रथम बौछारके सम्बन्धका उनका उल्लेख उपर्युक्त देशोंमेंसे किसी एकके सम्बन्धमें स्वभावतः किया गया होता, आर्यावर्तके सम्बन्धमें कदापि न किया जाता। केवल आर्यावर्त ही उनके मूलस्थान-का देश था, अतएव मेहकी सर्व प्रथम बौछार-सम्बन्धी उनका उल्लेख स्पष्टतया उसी देशके सम्बन्धमें था। [वहां पुर्वसे पश्चिम उत्तर तथा इत्यादि ओर हमारी यात्राकी दिशा साफ साफ दिखलाई गई है।

जिसे इन्द्रने*वृत्रके संहारके उपरान्त उत्पन्न की थी और जो वास्तवमें प्रकृतिकी केवल एक सामान्य अद्भुत वस्तु थी यहाँ छोड और कहीं नहीं देखीं गई थी अतएव पहले-पहल इस बातके उनके विचारमें आनेपर हमारे आदिम पूर्व-पुरुषोंने इसे इन्द्रका सर्व प्रथम वीरतासूचक कार्य अनुमान किया इसकी परम्परागत कथायें पितासे पुत्रतक, यही नहीं किन्तु अत्यन्त पुरातन समयसेभी पहुँचाई जानेपर हमारे ऋग्वैदिक पूर्व-पुरुषोंने उनको विश्वास पूर्वक तथा सावधानीके साथ सुरक्षित रक्खी उन्होंने उन कथाओंको ऋग्वेदमें बोधगम्यरूप तथा भडकीला विवरण दे दिया।"इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री। अहन्नहिं" ..... ऋ० वे० १. ३२. १। अतएव हमलोग उन लोगोंके भारी ऋणी हैं, क्योंकि उन्होंने उन अमूल्य प्राथमिक चिन्होंको कंजूसकी सावधानीके साथ समयके फेर तथा विस्मृत हो जानेसे बचाया है। इस तरह जब हमारे आदिम पूर्वपुरुष अपने खास पैरोंके सहारे खडे होनेके समर्थ हुए थे, यही नहीं, किन्तु वे लोग देखने और सोचने, समझने और प्रशंसा करनेके योग्य हुए थे तब उन लोगोंने विचार किया कि हमने इन्द्र-द्वारा वज्रसे (इन्द्रोवज्रेण[1]) निहत प्राचीनतम मेघ-सर्प-वृत्रका निरीक्षण पहले पहल कियाथा (प्रथमजा महीनाँ .... अहन्नेनं.... वृत्रं वृत्रतरं....) और तडफ, तूफान तथा बिजलीकी कडकके बाद मेघोंसे पानी बरसते हुए देखा था। यद्यपि यह बात प्रकृतिकी[3] केवल एक सामान्य अद्भुत

* 'वृत्र' शब्द स्पष्टरूपसे बादलोंके लिये प्रयुक्त हुआ है और इन्द्र या उसका वज्र बिजलीके लिये, जिसने बादलोंको विदीर्णकर जलके द्वार उन्मुक्त करदिये थे सप्तसिन्धु-देशमें मेहको बरसाया था और सातों नदियोंको जलसे बहायाथा।

१. देखो ऋ० वे० १-३२-५। २. देखो ऋ० वे० १-३२-३

३. इसके सम्बन्धमें रागोजिनने लिखा है कि " एक प्राथमिक पौराणिक गाथा

वस्तु थी, तो भी हमारे सरलचित्त आदिम पूर्वपुरुषोंने उसे सर्वव्यापिनी तथा सर्वशक्ति शालिनी दैवीशक्तिका काम समझा था। यह दैवीशक्ति उस समय इन्द्र (मघवा) के नामसे अभिहित हुई थी। इसी इन्द्रने अपनी बिजली या अपने वज्र (आदत्त वज्रं [1]) से उस वृत्रका पूर्णतया संहार करके जो बादलोंके नामके रूपमें प्रयुक्त हुआ था और जो (बादल) सबोंमें सर्व प्रथम तथा प्रचीनतमें [2] अनुमान किया गया था (प्रथमजा महीनाम् ॥ ऋ० वे० १-३२-३, वृत्रं वृत्रतरम् ..... ऋ० वे० १-३२-५), सप्त सिन्धुओं या आर्यावर्तकी सातों नदियोंको जल-पूर्ण किया था (....इन्द्र.......... अवास्सृजः सर्तवे सप्तसिंधून् ॥ ऋ० वे० १-३२-१२.) परन्तु यद्यपि मेहकी सर्वप्रथम बौछारको हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंने देखाथा और इन्द्रने सात नदियोंको जल प्लावित किया था, तोभी हमारा आर्य-मूलस्थान सम्बन्धी अत्यन्त कठिन प्रश्न बिलकुल नहीं हल होता क्योंकि जो मुख्य तथा महत्त्वपूर्ण प्रश्न हमारी आँखोंके सामने नाच रहा है वह यह है-" वह कौनसा देश है जहाँ हमारे आदिम पूर्व-पुरुषोंने बादलों, तूफान तथा बिजलीका एकत्र होना, तत्पश्चात् पानीका बरसना या मेहकी सर्व प्रथम बौछार देखीथी "

-जो भविष्यकी कवितामय तथा गाथामय समुन्नतिके सारे जीवित अंकुर धारण किये थी वज्रप्रपातकी घटनाओं तथा दुर्भिक्षके एक नाटकीय उपाख्यानकी भाँति-एक प्राकृतिक अद्भुतवस्तुके काल्पनिक तथा कवितामय वर्णनमें (परिणतकी गयी हैं ") (Vide the " Vedic India " Ed. 1895 P. 134)

१. ऋ० वे० १-३२-२

२. इन्द्र और वृत्र (मेघरूपी विशाल सर्प) मेंसे इन्द्र बहुत अधिक प्राचीन हैं—न किरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् नकिरेवा यथात्वम् ॥ (ऋ० वे० ४-३०-१)

सौभाग्यसे हम इस प्रश्नका उत्तर स्वयम् ऋग्वेदमेंही पाते हैं। उसमें लिखा है-" इन्द्रने उस मायावी वृत्रको नीचे ढकेल दिया और मार डाला (इन्द्रो—मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः) जो आर्यावर्तके विशाल सिन्धु पर वह पडा था (महां सिन्धुमाशयानम् ऋ० ११-११-९). यहीबात दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार है कि उस विशाल सिन्धु या अटकनदीके ऊपर वादल मडरारहे थे और विजली या इन्द्रका वज्र उन्हींसे होकर चीरकर निकलगया अतएव उस देशमें मेह वरसा हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंने सर्वप्रथम सहसा इसी घटनाको देखा या इसीका विचार किया था यह वात स्वभावतः अनुमान की गई। कि यह कार्य इन्द्रका सर्वप्रथम वीरतासूचक कार्यथा और अत्यन्त स्मरणीय वीरताका काम था, जिसे इन्द्रने कर दिखाया था कारण कि पानीके जिस द्वारको वृत्रने बन्दकर रक्खाथा वह इन्द्र-द्वारा उसके संहार कियेजानेके उपरान्त तुरन्तही खुल गया और तब एक-दम सातों नदियाँ जल-पूर्ण हो गईं। इसके सिवा, इन्द्रका यह वीरोचितकार्य अटकनदीपर हुआ था। वहाँ वृत्र पडा था (... वृत्रं... महांसिंधुमाशयानम्......), अतएव सरस्वतीके देशमें ही उक्तकार्य हुआ था। इसीसे सरस्वती-नदीने इन्द्रकी भाँति 'वृत्र-विनाशिनी' की पदवीका स्वत्व ठीकही उपस्थित किया ऐसी दशामेंही वह ऋ० वे० ६-६१-७ में समुचित रीतिसे वृत्रहनी नामसे अभिहित हुई मालूम पडती है। परन्तु यदि कुछ विद्वान्[1] इस ऋचामें उल्लेखकी गई (ऋ०

१, उदाहरणतः ग्रीफिथ लिखते हैं कि-" मूलमें दिया हुआ वर्णन कठिनतासे इस छोटी नदी पर लागू होसकता है जो सामान्यतया उसी नामसे प्रसिद्ध है, और इससे तथा दूसरे वाक्योंसे जो कि जैसे जैसे आगे आवेंगे वैसे वैसे उनका विचार किया जायगा, यह सम्भव प्रतीत होता है कि सिन्धु या अटकका दूसरा नाम सरस्वती भी है।" (Griffith's Translation of the Rig Veda Vol. I. P. 631 Ed. 1896; Vol.II P. 90 R. V. VII. 95. I. Ed.1897)

वे० ६-६१-७) सरस्वती-नदीको अटक समझें और विचारकरें कि सरस्वती सिन्धु या अटकका केवल एक दूसरा नाम है, तोभी उक्त प्रमाण यदि अधिक नहीं, कुछ बलवान् तो होही जाता है। क्योंकि वह उक्त कथनका पक्ष लेताहै और इस घटनाका समर्थन करता है कि हमारे आदिम पूर्व पुरुषोंने इस विशाल सिन्धु-नदीपर मेघोंका बरसना सर्व प्रथम देखा था और वह उन्हें नहीं प्राप्त हुआ था। ऐसी दशामें जब हमारे पूर्व-पुरुषोंने और किसी दूसरी जगह नहीं किन्तु अटक या विशाल सिन्धुनदीके देशमेंही, —" महां सिन्धुमाशायानम् " सर्वप्रथम जलवृष्टि देखी थी तब इस मुख्यबातसे आर्याव-र्तमें आर्य—मूलस्थानकी सर्वप्रथम झलक और इस प्रश्नके हलकरनेकी कुंजी निस्सन्देह हमें मिल सकती है इसके आगे हमें इस बातका पता लगता है कि हमारे पूर्वपुरुषोंने जो दूसरी वस्तु देखी थी वह प्रातः-कालीन उषा तथा सूर्यका उदय था। सूर्यके प्रभापूर्ण प्रकाशमें उषा विलीन होगई थी। परन्तु हमारे ऋग्वैदिककवि इस बातको सामान्य रीतिसे स्पष्ट भाषामें कहनेके स्थानमें अपने साधारण पेंचीले] ढङ्गमें कहते हैं कि वृत्रके संहार तथा मेहके बरसनेके अनन्तर ' यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीनाम् .. ऋ० वे० १-३२-४ ' इन्द्रने उषा तथा सूर्यकी रचना कीथी (आत्सूर्यं जनयन्द्यामुपासम् ... ऋ० वे० १-३२-४) इन्द्रके दूसरे वीरोचितकार्योंमें (इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री। ऋ० वे० १-३२-१) उसके ये दोनों कार्य दूसरे तथा तीसरे वीरताके कार्योंमें गिनेगये उषा और सूर्यकी रचनाके उपरान्त इस बातके विषयमें जिससे हमारा सम्बन्ध यहाँ है, वहयह है कि पहलेपहल उषा कहाँ दिखाई पडी थी और हमारे आदिम पूर्व पुरुषोंने पहले पहल सूर्यको कहां देखाथा ? इस प्रश्नका उत्तर आर्योंके प्रश्नको हल करनेकी एक दूसरी कुञ्जी तथा अर्यावर्तमें आर्य—मूलस्थान—सम्बन्धी दूसरी झलकके सदृश काम देगा। अतएव

इस सम्बन्धमें भी हम ऋग्वेदकीही मदद लेंगे । ऋग्वेदके ४–३०–८, ४–३०–९ में तथा कई दूसरे स्थानोंमें हम उषा (उषस्) को आकाश या द्यौः की पुत्रीके रूपमें प्रकटकी गई पाते हैं:–दिवः.... दुहितरं..उषासं ऋ० वे० ४–३०–९ और इन्द्र (सूर्यके अर्थमें जैसा कि ऋग्वेदके १–६–३, ४-२६–१; १–८९–२में उल्लेख किया गया है । उसे अर्थात् उषाको ध्वंस करता हुआ वर्णित मालूम पडता है (उषासमिन्द्रसंपिणक्... ऋ० वे० ४–३०–९) इसके पश्चात् एक दूसरी ऋचामें यह उल्लेख है कि " उषा भयभीत होकर भागगई " (अपोषा....सरत्....विभ्युषी) क्योंकि " उसके रथको इन्द्रने अर्थात् सूर्यने विध्वंस कर दिया " (अनसः....संपिष्टात्... नीयत्सीं शिश्रयद्वृषा । ऋ० वे० ४–३०–१०) । तब यह निस्सन्देह एक प्रातःकालीन अद्भुत वस्तु है और इससे स्वभावतः यह धारणा होती है कि उषा या प्रातःकालीन प्रकाशकी प्रभा अपने प्रथम प्रकट होनेके थोडी देर बादही क्षितिजपर सूर्यके उदय होनेके उपरान्त उसीकी प्रभामय किरणोंमें अन्तर्धान हो गईथी । परन्तु अभी सबसे अधिक महत्त्व पूर्ण प्रश्न हल होनेको रहगयाहै । अतएव हमको वह स्थान या देश ढूँढना चाहिये जहाँ उषा सूर्यके प्रकाशमान चक्रमें या उसके कारण अन्तर्धान हुईथी । सौभाग्यवश परिमाणसे परिपूर्ण अनन्त वैदिक खानोंकी अमूल्य तहों तथा सुरंगोंने हम लोगोंको वे सुवर्णके इच्छित टुकड़े प्रदान किये हैं जिन्हें हम खोजते रहे हैं । ऋग्वेदके ऋषि वामदेव यह लिखकर सूचित करते हैं कि " उषाको इन्द्रने (अर्थात् सूर्यने) विध्वंस किया था, क्योंकि वह अभिमानके साथ प्रकट हुई थी (महीयमानामुषासमिन्द्रसंपिणक् ।। ऋ० वे० ४–३० –९) इन्द्र–द्वारा ध्वंस कियेजानेके उपरान्त उसका रथ विपाश नदीपर पडा था और वह वहाँसे भागगईथी " में पूर्णरीतिसे मूल ऋचाको उसके पौर्वात्य विद्वानोंके अंगरेजी अनुवादके (भावार्थ)

साहित यहाँपर उद्धृत करनेका साहस करताहूँ। क्योंकि यह ऋचा हमारे मतलबके लिये बहुतही महत्त्व पूर्ण है-

"एतदस्या अनःशये सुसंपिष्टं विपाश्या।
ससारसीं परावतः" ॥ (ऋ० वे० ४-३०-११)

"उसका वह रथ विपाशपर टूटा पडा रहा और वहाँसे वह भाग खडी हुई"। (एस० पी० पण्डित) "सो वहाँ विपाशमें उषाका यह रथ भग्न पडा था। और वह स्वयम् दूर भागगई" (आर० टी० ग्रीफिथ) अत्यन्त प्राचीनग्रन्थ ऋग्वेदमें प्राप्त प्रमाणसे हमें ज्ञात होताहै कि सिन्धु-नदीके देशमें हमारे आदिम पूर्वपुरुषों-द्वारा मेहका सर्व प्रथम बरसना देखेजानेके बाद जो ऋग्वेदमें इन्द्रके प्रथम वीरोचित कार्यके रूपमें वर्णन किया गया है, क्योंकि उसके द्वारा वृत्रका विनाश होजानेसे जलवृष्टि हुई थी उन लोगोंने विपाश[१]-नदीके देशमें उषाको अपनी चकाचौंध करनेवाली प्रभा-एवं अपने उत्कृष्ट प्रकाशकी किरणोंमें सूर्यको उसे विलीन करते

---

१. यह नदी आधुनिक व्यास है। भारतीय शब्द-व्युत्पत्तिके ज्ञाता यास्क उसे आर्जीकीया बतलाते हैं (महाकूलार्जीकीया वियाल्याहुः...॥ निरुक्ते ३० प० अ० ३-२६) अतएव यह नदी निस्सन्देह पंजाबकी लौकिक नदी है, काल्पनिक नहीं है। क्योंकि यह अपने दूसरे आर्जीकीया नामसे बहुधा उद्धृत कीजाने-वाली ऋचामें उल्लिखित नदियोंकी सूचीमें दिखाई पडती है (इमं मे गंगे यमुने सरस्वती...आर्जिकिये...ऋ० वे० १०-७५-५)। मैक्समूलरने लिखा है- "सम्भवतः सिकन्दरकी सेना सतलजकी पश्चिमोत्तरी सहायक नदी विपश (बाद-को विपाशा) के किनारेसेही लौटी थी। उस समय वह नदी हैपासिस कहलाती थी। प्लीनी उसे हिपासिसके नामसे पुकारता है, जो वैदिक विपशसे बहुत अच्छी तरह मिलता है। वैदिक विपशका अर्थ 'बन्धन रहित' हैं। इसका आधुनिक नाम बिआस या बजह है" ((What can India teach us ? p. 172 Edition 1883)

हुए देखा था । अतएव इनकी अर्थात् उषा और सूर्यकी रचना इन्द्रके दूसरे वीरोचित कार्योंके साथ उसका दूसरा तथा तीसरा वीरता पूर्ण कार्य अनुमान किया गया था । इसके सिवा हमारे आदिम-पूर्व-पुरुषों-द्वारा सप्तसिन्धु देशमें उनका देखाजाना आर्यावर्तमें आर्य मूलस्थान सम्बन्धी दूसरी झलक कहीजासकती है। परन्तु यह सब कुछ ऋग्वेदमें इनते अधिक शब्दोंमें नहीं लिखा है, क्योंकि वैदिक ऋषि अलंकारिक भाषाकी बात जाने दीजिये अपने खास पेंचीले ढंगमें इस विचारको व्यक्त करतेहुए मालूम पडते हैं। तो भी ये रूपकालङ्कार बहुत सुन्दर और फबतेहुए हैं, वर्णन अत्यन्त चित्रित तथा प्रकृतिकी अद्भुत वस्तुएँ दृढताके साथ सुन्दर भाषामें प्रकट की गई हैं।

अस्तु—हमारे प्राचीन ऋग्वैदिक कवियोंको आर्य-मूल-स्थान बताने और इस विचारको प्रकट करनेके लिए उक्त मूलस्थान विपश नदीके देशमें अथवा यों कहें कि सप्त सिन्धु देशमें है उन्होंने यह निर्देश किया है कि हमारे आदिम पूर्व पुरुषोंने सर्व प्रथम जलवृष्टि देख चुकनेके बाद इसी देशमें प्रकाशका प्रथम दर्शन भी किया था। क्योंकि यदि हमारे आदिम पर्व-पुरुष इस सप्तसिन्धु देशमें प्रवासीके रूपमें होते, यदि वे उत्तरी ध्रुव-देश, योरप या मध्य एशियासे आकर यहाँ आबाद हुए होते, तो प्रकृतिके बहुतही प्रवीण निरीक्षक होनेके कारण उन लोगोंने पूर्वोक्त प्राकृतिक अद्भुत वस्तुओंको पहलेही देखा होता और उनपर विचार किया होता। यदि उन्होंने उन अद्भुत वस्तुओंको सबसे पहले उत्तरी ध्रुव या योरप या मध्य-एशियाके किसी भी देशमें देखा होता तो निस्सन्देह उन बातोंका उल्लेख विशेष रीतिसे किया होता, जैसा कि सप्त सिन्धु देशके विषयमें उन्होंने किया है। परन्तु जब उत्तरी ध्रुव देश या योरप या अमरीकाके विषयमें उपर्युक्त प्रकारकी बातें ऋग्वेदमें कहीं नहीं

लिखीगई मालूम पडती हैं तब यह परिणाम स्वभावतः निक-लता है कि प्रकृतिकी पूर्वोक्त तीनों अद्भुतवस्तुओंका उल्लेख, मेरी समझमें आर्यावर्तमें आर्यमूलस्थानके सम्बन्धमें पर्याप्त प्रकाश डालताहै। इन अद्भुत वस्तुओंका संघटित होना ऋग्वेदकी साधारण पेचीली भाषायें सप्तसिन्धुदेशमें इन्द्रके कुछ आरम्भिक वीरोचित कार्योंके रूपमें स्पष्टरीतिसे वर्णन कियागया मालूम पडताहै, इनमें वृत्रके संहारसे मेघोंकी वृष्टि हुई और आर्यावर्तकी सात नदियाँ उम-डकर वहचली थीं इस तरह उस प्रथम कार्यसे हमारे आदिम आर्य-पूर्व पुरुषोंको जल-प्रदान हुआ था। इसके वाद उषा और सूर्यकी रचनासे उनको प्रकाश मिलाथा जो क्रमपूर्वक इन्द्रका दूसरा और तीसरा वीरतापूर्ण कार्य समझा गया परन्तु हम देखते हैं कि मेघ सर्पको मारडालने पानीके अवरुद्धद्वारको खोलदेने और सात नदियोंको उपप्लावित करनेके उपरान्त इन्द्रने (अहन्नहिमरिणात्सप्त-सिन्धून-पावृणोदपिहितेवखानि ॥ ऋ० वे० ४–२८–१; इन्द्रो अपो मनवे संस्रुतस्कः। ऋ० वे० ४–२८–१),यज्ञकरनेवाले आदिम आर्य-पूर्व-पुरुष मनुको सप्त-सिन्धुदेशभी दियाथा "अहं भूमिमददामार्याय"। ऋ० वे० ४-२६-२) यही नहीं, किन्तु हम सरस्वती नदीको यज्ञ-करनेवाले आर्यों या देवताओंको पानीदेते तथा उनके लिये भूमिभी प्राप्त करते हुए देखते हैं (सरस्वति देवनिदो निवर्हयः.... । उत क्षितिभ्योऽवनीरविंदो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥ ऋ० वे०६-६१-३)। परन्तु जो प्राच्य तथा पाश्चात्यविद्वान् भारतपर आर्योंके आक्रमणका समर्थन या इस वातका विश्वास करते हैं, जो सम्भवतः भ्रमपूर्वक यह अनुमान करते हैं कि आर्यआक्रमणकारियोंके पहले यहाँ द्रविडलोग आये थे और जो यहभी निर्धारित करते हैं कि सप्त-सिन्धु-देशके आदिम निवासी आर्योंसे भिन्नथे वे आर्यावर्तमें आर्योंके मूल-स्थान सम्बन्धी मेरे उपर्युक्त कथनपर स्वभावतः सन्देह करेंगे वे मेरे

वर्णनकी सत्यतापर प्रश्न करेंगे कि इन सब बातोंका प्रमाण कहाँ है; तुम कैसे जानतेहो कि इन्द्रने पूर्वोल्लिखित वीरताके तीन कार्य आदिम आर्य मनुष्यके लिये किये थे; तुम किन कारणोंसे कहते हो कि सप्त-सिन्धुदेशमें आर्यमनुष्यको सर्वप्रथम तथा सब लोगोंसे पहले जलप्रदान करनेके लिये मेह बरसाया गयाथा, इस बातका प्रमाण कहाँ है कि इन्द्रने सप्त-सिन्धु देशमें, जहाँ आर्य-मनुष्यकी उत्पत्ति हुई थी, उसे पानीके साथ प्रकाश तथा भूमिभी प्रदान की थी, और क्या यह बात स्वयम् ऋग्वेदकी किसी ऋचा और उसके सूक्तसे दिखलाई जासकती है कि इन्द्रने यह सब कुछ मनुके लिये कियाथा, क्योंकि उक्त ग्रन्थ संसारमें प्राचीन और अत्यन्त सच्चाहै. इनके उत्तरमें मैं यह नम्रतापूर्वक कहसकता हूँ कि, ये सब बातें ऋग्वेदमें हैं और एकमात्र ऋग्वेदहीमें हम उपर्युक्त प्रश्नोंके सम्बन्धमें यथोचित प्रमाण पानेके समर्थ होंगे। अतएव इस अमूल्य ग्रन्थकी ओर ध्यान देनेपर हमें मालूम होता है कि यह बात मनु-प्रथम आर्यमनुष्य (मनवे ऋ० वे० ४–२८–१) या "यज्ञकर्ता दाशुषे मर्त्याय" (ऋ० वे० ४–२६–२) या ब्राह्मण (ब्राह्मणो ऋ० वे० १–१०१–५) या यह कहो कि स्वयम् आर्यपूर्व-पुरुषके लियेही था जो सिन्धुनदीपर मेघ-सर्पका संहारकर (अहन्नहिं । महांसिंधुमाशयानं) और इस तरह पानीके अवरुद्ध द्वारको बिलकुल उन्मुक्त कर (अहन्नहिमरिणात्सप्त-सिन्धूनपावृणो-दपिहितेव खानि ॥ ऋ० वे० ४–२८–१; महां सिन्धुमाशयानं ऋ० वे० २–११–९) पहले पहल जलाशय उपप्लावित किये गये थे (इन्द्रो अपोमनवे सस्रुतस्कः । ऋ० वे० ४–२८–१;.... अददामार्याहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय । ऋ० वे० ४–२६–२; ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दन् । इन्द्रो.... ऋ० वे० १–१०१–५) । परन्तु इससे भी अधिक इन्द्रने सर्वप्रथम तथा प्राचीनतम मेघ-सर्पको निहतकरनेके अनन्तर (यदिन्द्राहन्प्रथमजामहिनाम्...... ऋ० वे० ६-३२-४),

विपाशपर पहले पहल देखी जानेवाली उषा तथा सूर्यके उदयसे (आत्सुर्यं जनयन्द्यामुषासम् ऋ० वे० १-३२-४) उस आर्यको प्रकाशभी प्रदान किया था। (अपावृणोज्योंतिरार्याय.... इन्द्र.... ऋ० वे० २-११-८) मानो इस बातका समर्थन करनेके लिये हम अश्विनोंको भी उस आर्यके लिये इस महान् प्रकाशको रचते हुए पाते हैं (अश्विना...उरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ऋ० वे० १-११७-२१) एवं अग्निकोभी उसके लिये वही काम करते हुए देखते हैं (त्वम्... अग्ने.. उरु ज्योतिरजनयन्नार्याय । ऋ० वे० ७-५-६) संसारका अत्यन्तप्राचीन ग्रन्थ और सारी बातोंका उद्गम-स्थान-ऋग्वेद समुचित रीतिसे प्रकट करता है कि यह कोई अन्य दूसरा नहीं किन्तु केवल आर्य मनुष्यही था जिसने अन्यत्र नहीं किन्तु सप्त-सिन्धु देशमेंही पहले पहल मेहका बरसना देखाथा और जिसको इन्द्रने सर्वप्रथम जलप्रदान कियाथा। उसी ऋग्वेदसे यह बातभी प्रकट होती है कि उसने और किसी दूसरी जगह नहीं किन्तु ठीक इसी देशमें प्रकाशकी पहली किरणभी देखी थी, जिसका स्वाभाविक तथा अकाट्य परिणाम यह होगा कि केवल वही सप्त-सिन्धु-देशका असली निवासी तथा मूल-अधिवासीभी था. एक और भी महत्त्वपूर्णबात है, इसपर उचित ध्यान देनेकी आवश्यकता है। यह बात बिलकुल भुलासी दीगई मालूम पडती है अथवा इसपर समुचित ध्यानही नहीं दिया गया है। हम सब लोग जानते हैं कि सोमयाग सबसे अधिक प्राचीन है। इस बातको प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वान्भी मानते हैं। मिस्टर तिलक लिखते हैं कि, " सोमयाग एक प्राचीन धार्मिक क्रिया है। यह बात पारसी धर्मग्रन्थोंके तद्रूप धार्मिक कृत्योंसे पूर्णरीतिसे प्रमाणित है। भारतीय योरपीय युगमें सोमके सम्बन्धमें हमलोग चाहे जो सन्देह करें। क्योंकि यह शब्द योरपीय भाषाओंमें नहीं मिलता है, तथापि यज्ञोंकी विधिका पता साफ साफ आदिकालतक

लगाया जा सकता है। इस याज्ञिय विधिके प्राचीनतम प्रतिनिधिके रूपमें सोमया सरलताके साथ माना जासकता है, क्योंकि ऋग्वेदके कर्मकाण्डमें इसका मुख्य स्थान है। उसका ११४ ऋचाओंका पूराकापूरा एक मण्डल सोमकीही स्तुतिमें समर्पित है"। (Vide mr. B. G. Tilak's work the Arctic Home of in the Vedas Edition 1903 pp. 205, 206) उसी भाँति डाक्टर विन्डिरामैन यह लिखते हैं-"हम समुचितरीतिसे कल्पना करसकते हैं कि आर्यजातिके भारतीय और ईरानी शाखाओंमें बँट जानेके बहुत पहले उनका (पुरानी प्रकृति-पूजाके विचारोंका) आमतौरसे प्रचार था। वे विचार जेन्दावस्था और वेदके (पहलेसेही स्थित तथा पहचानेजाने योग्य) भाग बनगये हैं, उनकी उपलब्धि अत्यन्त आदिम परम्परागत कथाओंसे प्राप्त हुईथीं। निस्सन्देह ऐसी परम्परागत कथायें तुलनामूलकरीतिसे अल्प हैं। "परन्तु अत्यन्त अधिक मार्केका सादृश्य वह है जो जेन्दावस्थाके हौम और अत्यन्तप्राचीन ब्राह्मण धर्मग्रन्थोंके सोममें विद्यमान है। यह एक ऐसा सादृश्य है जो तत्सम्बन्धी गाथाके कुछ अंशविशेषोंतकही परिमित नहीं, किन्तु पहलेकी आर्यजातिके सम्पूर्ण सोमपूजा-विधानमें व्याप्त है।" "शब्द शास्त्रानुसार हौम और सोम तद्रूपनाम हैं।" "प्राचीन भारतीय पूजनका यह निस्सन्देह सबसे श्रेष्ठ और पवित्रतम हवन था।" "हौमकी पूजाका समय यिमसे पहले है, अर्थात् इरानी सभ्यताके प्रारम्भसे पूर्वका है और वास्तवमें वह उस आनन्दमय युगका कारण ठहराईगई है। ऋग्वेदमेंभी सोमोपासनाकी इस प्राचीनताके सम्बन्धमें उल्लेख है। सोमके सम्बन्धमें (उसके १-९१-१ में)

---

१. हवाले की सुविधाके लिए मैं यहाँ मूल ऋचा उद्धृत करता हूँः-

"तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः" (ऋ० वे० १-९१-१)

सोम अपने अनूठे गुणोंके कारण पुरुष ठहरायागया था और उसे राजाकी पदवी

लिखा हैः—हे प्रकाशमान (सोम) तेरी संरक्षामें हमारे उत्साही वापदादोंने देवताओंके बीच खजाने प्राप्त किये हैं । (Vide " Dissertation on the Soma Worship of the Arians ") परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि पारसी–आर्य धार्मिक मतभेद विच्छेद और सम्भवतः सप्त-सिन्धु[1] देशसे निकाल दिय जानेके उपरान्त आर्यावर्तसे असली सोम नहीं प्राप्त करसके, क्योंकि वह वहीं उगताथा वहीं उसकी उत्पत्ति हुई थी अतएव सोमके अभावके कारण उन लोगोंको उसके स्थानमें दूसरे पौधेके उपयोग करनेकी आवश्यकता घोररूपसे प्रतीत हुईथी हमारा यह कथन स्वतन्त्र प्रमाणसे भलेप्रकार समर्थित होता है । डिजर्टेशन आनदि वर्शिय ' नामकी पुस्तकमें डाक्टर विंडिशमेन लिखते हैंः—" मगलोग एक पौधेको देवताको अर्पित करते थे । यह वात प्लुयर्कको ज्ञातथी । परन्तु वह कौनसा पौधा था यह निश्चय नहीं है" " मालूम होता है कि उक्त पौधा दूसरं

–(राजा...ऋ०वे० १-९१-८ दी गई थी । तो भी हमारे ऋग्वैदिक पूर्व पुरुष जानतें थे कि सोम एक वनस्पति है ऋकृकविने लिखा है- त्वं च सोम...प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ऋ० वे० १-९१-६)

१. पारसी-आर्य इस देशको ' सप्तसिन्धु'के नामसे अच्छी तरह जानते थे । परन्तु जव उन्होंने अपना मूल-स्थान आर्यावर्त परित्याग करदिया और अन्तमें ईरानमें आवाद हो गये तव सप्तसिन्धुका अपभ्रंश हप्त हेन्दु होगया ।

२. क–मैं यहाँ यह लिख सकता हूँ कि हमारा वैदिक सोम-पीला मायल हल्के भूरे या सुनहले रङ्गका था (इन्दुः...हरिः । ऋ० वे० ९–५–९) और ईरानियोंके सोमकी भाँति सफेद नहीं था । जव ईरानीलोग सप्त–सिन्धु–देशके असली सोमको आर्यावर्तसे न प्राप्त करसके तव मालूम होता है कि उन्होंने उसके स्थानमें एक दूसरे पौधेको नियतकर व्यवहारमें लिया, इसके सिवा भारतीय सोमका रस तीव्र होता था । (तीव्राः सोमासः ऋ०वे०१–२३–१) और ईरानी सोमका मीठा ।

ख–ऐसा मालूम पडता है कि कभी कभी असली सोम भारतमेंभी नहीं मिलता था

देशमें उगायेजानेके कारण बदल गया है और ईरानियोंका हौम जैसा भारतीयोंका सोम पौधा नहीं है। कमसे कम पारसी लोग इस बातका समर्थन करते हैं कि हमारा याज्ञीयपौधा भारतमें नहीं उगता है, अहुरमज्द हमारे श्वेत हौमको बहुसंख्यकप्रकारके वृक्षोंके बीच उगता है।" (चिह्नितवाक्य ग्रन्थकर्ताके हैं और विशेष ध्यान देने

—था। वैदिक कालमें भी इसका प्रभाव अखरताथा। अतएव यह प्रतीत होता है कि समुचित उपायोंका अवलम्ब कियागया था असली सोमके स्थानमें पूतिक तथा फाल्गुन नामसे प्रसिद्ध वनस्पतियोंको नियत करने तथा उनको उपयोगमें लानेके लिए प्रामाणिक आदेश दिये गये। आश्वलायनके श्रौत—सूत्रोंमें लिखा है कि "असली सोमके अभावमें पूतिक या फाल्गुन वनस्पति नियुक्त होनी और उसे उपयोगमें लानी चाहिये"। (अनधिगमे पूतिकान् फाल्गुनानि॥ आश्वलायन श्रौतसूत्रे ६—२—५)

ग—शतपथ—ब्राह्मणमेंभी निम्न लिखित प्रतिनिधियोंको उपयोगमें लानेके लिये आज्ञा दीगई है। यदि असली सोम न प्राप्त हो तो अभावानुसार एक प्रतिनिधिके स्थानमें दूसरी उपयोगमें लायाजाय। यत्र न विन्दन्ति (सोमं) तत्र प्रायाश्चित्तिः क्रियते॥ १॥ द्वयानिवै फाल्गुनानि। लोहितपुष्पाणि चारुणपुष्पाणि च स यान्यरुणपुष्पाणि फाल्गुनानि तान्याभिषुणुयादेषवै सोमस्यन्यंगो यदरुणपुष्पाणि फाल्गुनानि तस्मादरुणपुष्पाण्याभिषुणुयात्॥ २॥ यद्यरुणपुष्पाणि न विन्देयुः श्येनहृतमभिषुणुयाद्यत्रवै गायत्री सोममच्छापतत्तस्याअहरन्त्यै सोमस्याँशुरपतत्तच्छ्येन हृतमभवत्तस्माच्छ्येनहृतमभिषुणुयात्॥ ३॥ यदि श्येनहृतं न विन्देयुः। आदारानभिषुणुयाद्यत्रवै यज्ञस्य शिरोऽच्छिद्यतत्तस्य यो रसो व्याप्रुष्यत्तत आदाराः समभवंस्तस्मादादारानभिषुणुयात्॥ ४॥ यद्यादारान्न विन्देयुः। अरुणदूर्वा अभिषुणुयादेषवै सोमस्यन्यंगो यदरुणदूर्वास्तस्मादरुणदूर्वा अभिषुणुयात्॥ ५॥ यद्यरुणदूर्वा न विन्देयुः। अपि यानेव कांश्च हरितान् कुशानाभिषुणुयात् तत्राप्येकामेव गां दद्यात्...॥ ६॥ (श० प० ब्रा० कां० ४ अ ५ व.)

घ—जब असली सोम न प्राप्त हो तब सोमवर्गकी भूरे फूलवाली फाल्गुन वनस्पति उपयोगमें लाई जा सकती है। भूरे फूलवाली फाल्गुनके अभावमें श्येनहृत

योग्य हैं). पूर्वोक्त सम्मतियोंके समर्थन तथा अपने परिणामोंको त्रलिष्ठकरनेके लिये सौभाग्यवश हमें अधिक प्रमाण मिलगये हैं। मतभेदके बाद जब आर्यावर्तसे जोरास्टर-मतानुयायी विरोधीदल भारतसे निकाल दियागया (देखो इस पुस्तकका दशवाँ अध्याय) तब उसको असली सोमको न प्राप्त होसका, क्योंकि वह केवल आर्यावर्तमेंही उगताथा (देखो ऋ० वे० ९-१४-१, ६१-७, ८२-३ ११३-१, १०-३४-१; महा० भा० १४-८-१....) अतएव उस दलके लोग कल्पित सोम या असली सोमके स्थानमें नियुक्त किसी पौधेका उपयोग करनेके लिये स्वभावतः वाध्य हुए। ' इसेज आनदिरिलीजन आवदिपारसीज ' नामक पुस्तकमें सम्पूर्ण जेन्द-साहित्यकी संक्षिप्त आलोचना करतेहुए हाग लिखते हैं कि " जो

—ली जासकती है। जब यहभी न प्राप्त हो तब, अदरका पौधा] उपयोगमें लाया जाय। अदरके अभावमें दूर्वा और दूर्वाके अभावमें कुश व्यवहारमें लाना चाहिये [देखो पीछे पृ० ९१. नोट (ग)]

ङ—असली सोमके न प्राप्त होने तथा दूसरे स्थानमें न मिलनेके सम्बन्धमें डाक्टर हाग लिखते हैं–" वर्तमान समयमें दक्षिणके याज्ञिक जो पौधा सोम-यागमें व्यवहृतकरते हैं वह वेदोंका सोम तो नहीं है, परन्तु उसी वर्गका मालूम पड़ता है। यह पूनाके पडोसमें पहाडियोंपर उगता है। इसकी लम्बाई लगभग ४–५ फुट होती है। इसका पौधा झाडीकासा होता है। इसमें अनेक किल्ले होते हैं, जो एकही जडसे फूट निकलते हैं। इन किल्लोंके डंठल काठकी भाँति ठोस होते हैं, और इनकी छाल भूरी मायल होती है। इस पौधेमें पत्तियाँ नहीं होती। इस सोमका रस सफेद होता है और इसका स्वादु बहुतही तीखा, परन्तु कडवा या खट्टा नहीं होता। यह पानीयद्रव्य बहुत मैली होती है और इसमें कुछ मादकता भी होती है। मैंने इसे कईवार चक्खा है, परन्तु कुछ चायके चम्मचोंकी अपेक्षा उसे अधिक परिमाणमें पीना मेरे लिए असम्भव था। (Vide Hang's Translation of Aitareya Brahman Vol. II Edition 1863 P. 489 Foot Note)

पुराने दलके लोग बहुदेववाले प्राचीन मत और समयापेक्षा अपनी सारहीन विधियों तथा प्रक्रियाओंको परित्याग करनेके लिये अनिच्छुक थे उनको श्रेष्ठ पुरोहित लोग मिलाये रखनेका प्रयत्न करतेहुए मालूम पडते हैं। अतएव प्राचीन यागोंका संस्कार कियागया और वे ईरानी जीवनके अधिक सभ्य ढङ्गके अनुसार परिष्कृत कियेगये मदकारक सोमरसके स्थानमें अधिक स्वास्थ्यकर तथा बलवर्द्धक वनस्पतिके रसका व्यवहार किया गया। यह पानीयद्रव्य अनारके वृक्षकी शाखाओंके सहित एक दूसरे पौधेसे जोश देनेकी किसी प्रक्रियाके बिना (उनपर केवलपानी छिडका जाता था) प्रस्तुत किया जाता था, परन्तु ईरानी रूपमें इसका 'होम' नाम तथा कुछ पुरानी रीतियाँभी बनी रहीं"[1].... (Vide pp. 219, 220 Edition 1861 of the work) स्पींजल लिखते हैं-"अवस्ताके हौमके साथ भारतीय सोमका यथार्थ मेल एफ० विंडिशमैनके लेखमें बडी खूबीके साथ दिखलाया गया है....दोंनों जातियोंका विचार है कि यह पौधा पहाडोंपर उगता था और वास्तवमें यह पौधा कमसेकम वही था जिसे वे दोनों जातियाँ उपयोगमें लाती थीं।" (Vide Spregel's Avesta II. 68) जो असली सोम सप्तसिन्धुदेशमें उत्पन्न होता था उसको हमारे पूर्व पुरुष-भारतीय आर्य-और उनके भाई-बन्धु-पारसी-आर्य जब ये हमारे पूर्व-पुरुषोंके साथ अपने मूल-स्थान सप्त सिन्धु देशमें जुदाईके पहले रहते थे, बराबर उपयोगमें लाते थे। परन्तु मतभेद जुदाईके बाद ये पारसी आर्य असली सोम न प्राप्त करसके। अतएव उन लोगोंने ईरानके पहाडोंमें उसका प्रतिनिधि ढूँढ निकाला और उसीको उपयोगमें लाने लगे और सम्भवतः तबसे इसीका उपयोग करते आ रहे हैं। भारतमें भी वैदिक कालमेंही असली सोम

---

१ इस अवतरणमें चिह्नितवाक्य मेरे हैं जो विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य हैं। (ग्रन्थकर्ता)

नहीं प्राप्त होता था । शायद वह नष्ट हो गया था । अतएव हमारे पूर्व पुरुषभी उसके विभिन्न प्रतिनिधियोंका सहारा लेनेको बाध्य हुए थे जैसा कि समुचित विवरणके साथ ऊपर उल्लेख किया जा चुका है । जिस सोमसे पवित्र रस प्रस्तुत किया जाता था उसकी ठीक पहचानके सम्बन्धमें इस प्रतिनिधि-ग्रहणकी बातने स्वभावतः सन्देह पैदा कर दिया । अस्तु—एक सरकारी जाँच नियुक्त हुई, इस कार्यके प्रारम्भका कारण यह था कि सन् १८८१ और सन् १८८३ में अध्यापक राथने जर्मन ओरि अन्टल सोसायटीके जर्नलोंमें दो लेख प्रकाशित किये थे । जब आसामके चीफ कमि-श्नरके सेक्रेटरी मि० सी० जे० लायलने इन लेखोंको अनुवाद प्रका-शित किया, तब भारत-सरकारने इस विषयकी समुचित जाँच-पडताल करनेके लिये वनस्पतिशास्त्री डाक्टर एचिसनको अफगान-सीमा-कमीशनमें नियुक्त करादिया, इजलिंग लिखते हैं-" इस विष-यकी पहली सरकारी नीली पुस्तकके प्रकाशनपर एक साप्ताहिक पत्रके स्तम्भोंमें खासा वाद-विवाद छिड गया था । इस विवादमें अध्या-पक मैक्समूलर और आर० वी० राथ एवं कई एक दूसरे वन-स्पति शास्त्री, विशेषकर डाक्टर जे० जी० बेकर और डाक्टर डब्ल्यू० टी० थिसलटन डायरने भाग लिया था । इस विवादके सम्बन्धका एक पत्र विशेष ध्यान देने योग्य है इसे मिस्टर हौटमने तेहरानसे२० दिसम्बर सन् १९८४ में लिखा था । इसमें उस पौधेका विवरण लिखा है जिससे करमान और यज्दके वर्तमान समयके पारसी अपना हूम रस प्रस्तुत करते हैं और जिसको वे अवस्ताका असली हौम मानते हैं । इस विवरणके अनुसार यह पौधा ४ फुट ऊंचा होता है और इसकी डंठल गोल, गूदेदार और उनपर सफेद तथा

1. The Academy Oct. 25, 1884 Feb. 14, 1885.
2. Ibid Jan. 31, 1885.

हलके भूरे रङ्गकी रेखायें बनी रहती है। इसका रस दूधके सदृश हरापन लिए सफेद रङ्गका तथा स्वाद मधुर होता है। परन्तु मिस्टर शिंडलरको यह बात बताई गईथी कि कुछ दिनतक रख छोडनेके बाद यह होम-रस खट्टा होजाता है और उसका रङ्ग उसके डंठलोंकी भाँति पीला मायल भूरा होजाता है। उसकी डंठल गाँठोंसे खटसे टूट जाते हैं। तब वे टुकडे छोटे बेलनकी सदृश मालूम पडते हैं। उसकी काँडी पत्तियोंसे रहित होती है। कहा जाता है कि चमेलीकी पत्तियोंकी भाँति उसमें छोटी छोटी पत्तियाँ होती हैं। उपर्युक्त पदार्थ विज्ञानियोंके मतानुसार यह विवरण Sarcostemma (दुधारू, तृणकी साधारणजातिका) या Asclepiads के किसी दूसरे वर्ग जैसे Periplocaaphylla के साथ अच्छी तरह मेल-खाता है. मिस्टर वेकर लिखत ह कि डाक्टर हास्कनेटने फारसके पहाडोंपर ३००० फुटकी ऊंचाईपर उसे ढूँढ निकाला गया है। डाक्टर एचिसनके मतानुसार अफग़ानिस्तानमें वह सर्वत्र मिलता है। कई वर्ष बीते अध्यापक मैक्समूलरका ध्यान चिकित्साशास्त्रके एक संस्कृत ग्रन्थके एक उल्लेखकी ओर गया था। वह यहाँ उद्धृत किया जाता है—"सोम नामधारी लता काली, खट्टी, पत्रविहीन, दुधारू और गूदेदार होती हैं; वह कफनाशक और वमन कारक होतीहै और उसे बकरियाँ चरती हैं। सोम-रस तीक्ष्ण तथा खट्टी गन्धका होताहै, इस बातका सङ्केत हमारे ब्राह्मण ग्रन्थोंमें भी हुआहै। स्पीजलने लिखा है कि (Vide Eranische Alter Thums Kpundo III .572) बम्बईके पारसी अपना होम करमानसे मंगाते हैं। उसे लानेको वे अपने पुरोहितोंको वहाँ

१ भारतीय सोमके रसका स्वादु तीक्ष्ण होता है, अतएव यह भारतीय सोम नहीं हो सकता। इसके सिवा सोमका असली पौधा भूरा या हलका भूरा तथ पीले रङ्गका होताहै। किन्तु ईरानी सोम सफेदी लिये होता है।

भेजते हैं। हागका कथनहै कि जिस पौधेको दक्षिणके हिन्दू-पुरोहित वर्तमान समयमें उपयोगमें लाते हैं वह वेदका सोम नहीं है किन्तु उसी वर्गका जरूर मालूम पडताहै। " वस्तुतः Sarcostemma Asclepiadesकी जो कई एक जातियाँ फारस तथा अफगानिस्तानमें उगनेवाली इन्हीं जातिकी वनस्पतियोंसे कुछ कुछ भिन्न हैं और जो इतनी दूर दक्षिणमें नहीं पाई जाती हैं, मालूम होताहै कि वे सोम-यागमें व्यवहृत होती रही हैं और इस समय भी व्यवहृत होतीहैं"। (Vide" The Sacred Books of the East" Vol.XXVI, 1885 Shatapatha Brahman, Translated byJulius Eggeling, Part II Books III, IVInt ro pp.XXIV, XXVI) मेन रिजल्टस् आव दि लेटर वेडिक रिसर्चेज् इन जर्मनी नामक अपनी पुस्तकमें मिस्टर ह्विटने लिखतेहैं " सोम शब्दसे केवल 'खींचने' का अर्थ निकलताहै (सूधातुसे निचोडना, खींचना) और वह एक विशेष वनस्पतिके रसका नाम है जो (Asclepias acipa) नामकी किसी वनस्पतिसे प्रस्तुत कियाजाता है। उस जातिकी वनस्पतियाँ ईरान और भारतके पहाडोंपर अधिक परिमाणमें उगती हैं" ... " इसकी उपासनाकी भारी प्राचीनता इसके सम्बन्धके उन उल्लेखोंसे प्रमाणित होती है जो ईरानी अवस्तामें पाये जाते हैं और इस पौधेने वैदिक धर्मके कर्मकाण्डके साथ अपने आपको किस तरह फाँस रक्खा था, यह बात इसके सम्बन्धके उन अगणित वाक्यों तथा उल्लेखोंसे साफ प्रकट होती है जो वेदोंमें सर्वत्र पाये जाते हैं।" (The Journal of the American Oriental Society III, 299, 300) लासेन लिखते हैं " पहले इस बातका ध्यान कर लेना चाहिये कि जेन्दावस्ता हमें (ईरानियोंको) अपने असली रूपमें नहीं, किन्तु संस्कृतरूपमें शिक्षा दान करताहै। उस पुस्तकमें जोरास्टरके धर्मोपदेश दिये जानेके पहलेके पवित्र आदमियों तथा उनके

समीपतम सम्बन्धियोंके बीच एक अन्तर करदिया गया है। इससे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि जिन बातोंमें ब्राह्मण-भारतीय और जोरास्टरके अनुयायी मेल खाते हैं वे सब पुरानी पद्धतिकी हैं और जिनमें उनकी भिन्नता पाई जाती हैं वे नई पद्धतिकी हैं"। (Vide Inde Aut. Second Ed. I-617)

इसके सिवा एक दूसरे पाश्चात्य विद्वान् जेनाइड ए० रागोजिन भी लिखते हैं—और अग्नि-पूजाके सदृश सोम-पूजाभी हमें उस समयतक लेजाती है जो भारतीय ईरानी युगके नामसे प्रसिद्ध है यह युग उस समयसे पहलेका है जब ये दो सगीविशाल जातियाँ एक दूसरेसे पृथक् हुई थीं. हमने देखा है कि सोम हौमके परिवार्तित नामसे अवस्ताके ईरानी अनुयाइयोंकी पूजा तथा यागोंमें ठीक सोम जैसाही काम देता है। वस्तुतः वह बहुत पहलेके समयका अविभक्त आर्यजातिके समयका या प्रोटाआर्य-युगके नामसे प्रसिद्ध समयका एक बहुतही दुर्लभ प्राचीन चिह्न हमलोगोंके पास है (Vide the Vedic India P. 168 Ed. 1895) इसके आगे उन्होंने अपनी पुस्तकमें (पृष्ठ १६८, १७०) लिखा है कि—"अवेस्तामें यागोंमें हौमके व्यवहारके स्पष्ट चिह्न विद्यमान हैं। जराथुष्ट्राने एक तरहकी रियायतसी की थी। क्योंकि उन्होंने उस प्राचीन पद्धतिका उपयोग उसमें बिना किसी तरहका संस्कार या उसका सुधार किये एकही स्वीकार कर लिया था" रागोजिनने सोमकी उत्पत्ति तथा वृद्धिके स्थानके सम्बन्धमें लिखते हैं—"जिस सोमका उपयोग भारतमें होता है वह निस्सन्देह पहाडोंपर और सम्भवतः काश्मीरमें हिमालयकी उच्च-सम

---

१ लासेनके इस मतको ध्यानमें करलेना विशेष रूपसे आवश्यक है। इससे सोमपूजाकी केवल बहुत अधिक प्राचीनताही नहीं प्रकट होती, किन्तु इसके साथही हम भारतीय-आर्य सोम-पूजाके प्रचारक और जोरास्टर मतावलम्बी उसके अनुयायी मात्र प्रकट होते हैं।

भूमिपर उगता है। यह बात निश्चित है कि बहुत पहलेके समयमें सम्भवतः उस समयकी अपेक्षा अधिक पहले जब ऋक्की ऋचायें एक और श्रेणीबद्ध की गई थीं या जब पहलेसेही जटिल कर्मकाण्डकी पद्धतियाँ, जो अधिकतया उनमें शामिल हैं, दृढताके साथ निर्मित हुई थी-आर्यजातियाँ पहाडोंकी ऊँची चोटियों या गहरी घाटियोंमें रहती थीं। ऋचाओंमें विखरे हुए अगणित चिह्नोंसे यह सम्भव प्रतीत होता है कि सोम-पूजाका सर्वप्रथमस्थान यही था और इन्हें आर्यलोग जानते थे, वहींसे उस पूजाका प्रचार भौगोलिक क्रमसे हुआ होगा। जिस ... से जहाँ आर्य गये होंगे वहीं वह प्रचलित हुई होगी। सोमपौधा निम्नतर तथा उष्णतर देशोंमें नहीं उगताथा। कहीं तो वह लोनीतर मिट्टीके होनेके कारण वह नहीं उगता था और कहीं उष्णताकी अधिकताके कारण, इस प्रकारके जलवायुवाली भूमिमें वह नहीं उपजताथा. अतएव आर्यलोग अपने प्रवासके स्थानोंमे उसे बराबर पहाडोंसे मँगाते रहे। उसकी खपतका विशाल परिमाण धीरे धीरे बढता जा रहाथा। क्योंकि आर्यलोगोंके उपनिवेशभी उत्तरोत्तर वृद्धिपरही थे।

अस्तु-हम ऊपर लिख आये हैं कि पाश्चात्य विद्वानोंने एवं प्रसिद्ध खोजियोंनेभी इस बातको स्वीकार किया है कि सोम-पौधा हिमालय पहाडपर उगताथा और सोमयाग प्राचीनतम धार्मिक क्रिया थी डाक्टर विंडिशमैनके शब्दोंमें वह अत्यन्त आदिम परम्परागत कथाओंसे निकला है (देखो पीछे पृ० ७) अतएव अब हम स्वयम् ऋग्वेदके प्राचीनप्रमाणपर इस दृष्टिसे ध्यान देंगे कि सम्पूर्ण-ज्ञानके इस बडे स्रोतसे हम सोमकी कल्पनातीत प्राचीनताकी अटकल लगावें, जिस मानव लीलाक्षेत्रमें सर्वप्रथम सोम-याग तथा देवताओंके लिये अत्यन्त आदिम हवन प्रारम्भ हुएहों उसको अन्तरङ्ग प्रमाण जहाँतक सम्भव हो निर्धारित करें, जो सोम-

पौधा वैदिक यज्ञों और कर्मकाण्डमें बहुतही पवित्र और अत्यन्त महत्त्व पूर्ण माना जाताथा उसकी उत्पत्ति तथा उगनेका स्थान खोजें और यह जाननेके लिये समर्थ हों कि इन सारी उपलब्ध बातोंकी कडी परीक्षा तथा निष्पक्ष अनुसन्धानसे इस विशाल ऋग्‌-वैदिक मशालद्वारा आर्यावर्तमें आर्य-मूल-स्थानके सम्बन्धमें कुछ अधिक प्रकाश पडता है या नहीं ? ऋग्वेदमें हम पुरातन ऋग्वैदिक ऋषियोंको यह कहते हुए पाते हैं कि सोम प्राचीन हैं (पूर्व्यः ऋ० वे० ९-९६-१०) । यही नहीं किन्तु वह अत्यन्त प्राचीन (प्रत्न-मित् ऋ० वे० ९-४२-४) और सर्वप्रथम या सारे यागोंकी अपेक्षा प्राचीनतर है । यहभी कहा गया है कि यज्ञके ज्ञान, उसके अनुष्ठान या अस्तित्वमें आनेके पहलेही उसका अस्तित्व था (यज्ञस्य पूर्व्यः । ऋ० वे० ९-२-१०) इसका कारण यह था कि सोमयज्ञोंका आत्मा (आत्मा यज्ञस्य ऋ० वे० ९-२-१०;९-६-८) और सोमयज्ञ सारे धार्मिक कृत्यों, रीतियों और प्रक्रियाओंका सत्व कहा गया है । परन्तु इससे अधिक महत्त्वकी यह बात कही गई है कि सोम अत्यन्त प्राचीन समयका अमृत है, जो स्वर्गसे प्राप्त कियाथा (दिवः पीयूषं पूर्व्यं.... ऋ. वे. ९-११०-८), जो इन्द्रका पिता तथा जनक कहलाताहै (सोमः पवते... जनितेन्द्रस्य....ऋ० वे० ९-९६-५ ।), और जो इन्द्रका सखाभी है (इन्दु...... इन्द्रस्य हार्दि.... ऋ० वे० ९-८४-४) इसके सिवा यह प्रतीत होता है कि उसे (देवता असुरः । ऋ० वे० ९-७३-१), पवित्र देवता (पवमान...ऋ० वे० ९-११३-७), और देवताओंके पिताकी पदवी (पिता देवानां ऋ० वे० ९-८६-१०) मिली है । परन्तु हमारे वैदिक ऋषियोंने सोमको क्यों अत्यन्त समादृत किया था और वह उनके हृदयको क्यों प्रियतम था ? इस बातके औरभी कारणहैं । और वे ये हैं कि पूज्य सोमके रसने आत्माको प्रसन्न, हृदयको प्रफुल्लित और मनको समुन्नत कर दिया

था । (यो मदः । ऋ० वे० ९-६८-३; एष.... (सोमः) पवते मदिन्तमः । ऋ० वे० ९-१०८-५) इसके सिवा हमें उसने शक्ति तथा बलप्रदान किया (बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं ऋ० वे० ९-११३-१) और इस तरह उसने हमे सुख तथा सौन्दर्यकी उस दशाको प्राप्त करनेके योग्य बनादिया जो अत्यन्त आतङ्क जमानेवाली और विमोहक समझी जाती थी । परन्तु इन सबके परे सोममें एक दूसरा अनुपमगुण विद्यमान था और वह यह था कि सोम विशाल और अत्युत्तम बुद्धिकी अद्भुत शक्तिका प्रदान करताहै (सोमः पवते जनिता मतीनाम्.... ऋ०वे०९-९६-५) अतएव इन्हीं कारणोंसे सोमकी मर्यादा ईश्वरके तुल्य बढादीगईथी और सोमयागका अनुष्ठान सर्वोत्तमं और सर्वश्रेष्ठ समझा जाता था (एष देवदेवेभ्यः ··· ऋ० वे० ९-४२-२, सोमो य उत्तमं हविः । ऋ० वे-१०७-१) संसारके प्राचीनतम तथा अत्यन्तविश्वसनीय प्रामाणिक ग्रन्थ ऋग्वेदकेही प्रमाणोंसे सोमकी अत्यधिक प्राचीनता उसके श्रेष्ठ आकर्षक गुणोंके सहित निर्धारितकर हम उसी स्रोतसे सोमकी उत्पत्ति और उसके उगनेका आदिम स्थानभी ढूँढनेकी चेष्टा करेंगे । सोमकी उत्पत्ति स्वभावतः उसी देशमें ढूँढनी है जहाँ उसका उगना बतायागया है । अतएव सोमकी वृद्धि तथा उत्पत्तिका देश सप्त-सिन्धुदेशही है । क्योंकि जिन स्थानोंमें सोम वैदिक कालमें उगता था वे हिमालय पर्वत, सिन्धुनदी और शर्यणावति झीलका किनाराही हैं । इन स्थानोंके सिवा वह दूसरी जगह नहीं उगताथा ...) । ऋग्वेदमें लिखा है कि सोमका असली निवास हिमवत पर्वत था [गिरिषु क्षयं दधे । (महिषः पर्णीसोमः) ऋ० वे० ९-२२-३] जिसको एक ऋग्वैदिक कविने पृथ्वीका केन्द्र अनुमान कियाथा (न भा पृथिव्याः ऋ० वे० ९-२२ ३) । महाकवि कालिदासने भूमण्डलके मापदण्डकी उपाधिसे उसे

विभूषित किया है। उन्होंने उसे पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रोंमें प्रविष्ट हुआ बताया है–

" हिमालयो नाम नगाधिराजः । पूर्वापरौ तोयनिधी विगाह्य
स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ॥ " कुमारसम्भवे १–१) ।

ऋग्वेदके उपर्युक्त अवतरणमें ' गिरिषु ' शब्दके प्रयोगसे जिस पर्वतका संकेत किया गया है वह स्पष्टरीतिसे विस्मयकारक हिमालय पर्वतमालाही है । इसके सिवा सोमका मुञ्जावत पहाडपर उत्पन्न होना बताया गया है । यह मुञ्जावत हिमालयके ढलुये भागके एक विशेष पहाडका नाम है । सोमकी श्रेष्ठ साङ्केतिक मौञ्जावत उपाधिका प्रयोगभी जैसा कि स्वयम् ऋग्वेदमें मिलता है केवल इसी कारणसे है (सोमस्य मौञ्जवतस्य भक्षः ... १०-३४-१) परन्तु यदि मुञ्जावत पहाडकी स्थितिके सम्बन्धमें पाठकोंको अभी सन्देह हों तो मैं यह आवश्यक समझूँगा कि उनके सन्तोषके लिए जैसे महाभारत विशाल इतिहासके अध्याय और पद्य यहाँ उद्धृत करादिये जायँ । क्योंकि उसमें स्पष्ट लिखा हैं कि " मुञ्जावत नामका पहाड हिमालयके ढलुये भागमें स्थित है–

" गिरिर्हिमवतः पृष्ठे मुञ्जावान्नाम पर्वतः ।
तप्यते यत्र भगवांस्तपो नित्यमुमापतिः ॥" महाभारते १८-८-१
(The South Indian Texts Edition 1910, Pt. 45)

अस्तु–सोमकी उत्पत्ति सप्त-सिन्धु-देशमें, हुई है, इस बातमें कुछभी सन्देह नहीं माल्हम पडता । विशेष करके जब वह विशाल हिमालय पर्वतपर उपजाथा या उगाया गया था । मुञ्जावत पहाडका सोम अतीतकालसे सर्वोत्तम तथा सर्वगुणसम्पन्न माना गया है । हमें यह बात संस्कृतके बहुतभारी विद्वान् तथा हमारे वेदोंके प्रसिद्ध भाष्यकार प्रामाणिक सायणसे माल्हम हुई है । वे हिमालयके सोमकी बहुत अधिक प्रशंसा करते हैं और लिखते हैं " मुञ्जावत

पहाडपरका उगा सोम श्रेष्ठतर और सर्वोत्तम होताहै " (मुंजवति पर्वते जातो मौजवतः । तस्य तत्र ह्युत्तमः सोमो जायते । देखो उनकी ऋग्वेदकी टीका १०-३४-१) यहां यह बात कहना अनावश्यक है कि इस पहाडपर सोमको मेहने उसीप्रकार जल-दान करके पाला पोसाथा जैसे पिता पुत्रको-इस बातका समर्थन ऋग्वेदके प्रमाणसे होताहै । (पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो....ऋ० वे० ९-८२-३; पर्जन्य वृद्धं महिषं .... ऋ० वे० ९-११३-३) । अतएव इस प्रमाणसे यह सिद्ध होता है कि, सोम और दूसरी जगह कहीं नहीं, किन्तु केवल आर्यावर्तमेंही उत्पन्न होता था । इसके सिवा हिमालय पर्वतके बहुत ऊँचे स्थानोंपर उगकर सोम स्वभावतः आर्यावर्तकी प्रसिद्ध सात नादियोंके उद्गमस्थानोंके शीर्षपर विद्यमान हुआ । अतएव सब बातोंका समुचित विचार करके तथा अन्यान्य वस्तुओंकी' वास्तविक दशा अपने ध्यानमें लाकर ऋग्वैदिक कवि तत्परताके साथ कहता है (" हे सोम, ये सातों नदियां तेरी होनेके कारण तेरीही आज्ञासे बहती हैं " तवेमे सप्तसिन्धवः प्रशिषं सोमसिस्रते । ऋ० वे० ९-६६-६) इसके सिवा एक यह बातभी विचारणीय है कि, सोम सप्त-सिन्धु-देशका देशी पौधा था और वह बाहरी पौधा नहीं था । क्योंकि सोम आर्यावर्तमें उत्पन्न होता था और वहाँके हिमालयपर्वतपर उगता था । मालूम पडता है कि समयके अनुसार वह सिन्धुनदीकी धारामें जिसका उद्गमस्थान उसके उगनेके पहाडमें ही था, वह आया था और उसके किनारोंकी भूमिपर उग गया था । वह भूमि उसके उगनेके लिये लाभदायक प्रतीत हुईथी । उदाहरणके लिये, हम एक स्थानमें सोमको सिन्धु-नदीकी सन्तान पुकारा गया पाते हैं । या दूसरे शब्दोंमें वह जिसकी माता सिन्धु नदी है इस तरह अभिहित किया गया है । (सिन्धुमातरम् । ऋ० वे० ९-६१-७ अर्थात् सिन्धुर्नाम नदी माता यस्य तम् ।) । इस कथनसे यह स्पष्ट है कि सिन्धु-

नदीने सोमके पौधेको उपजाया, पाला और पोसा । एक दूसरे स्थानमें यह बात कही गई है " सोम सिन्धुकी लहरोंमें वहआया है " सिन्धोरूर्मा व्यक्षरत् । ऋ० वे० ९-३९-४) उसके सम्बन्धमें हम फिर यह कहा गया पाते हैं कि सोम सिन्धुके पानीके आश्रयमें रहा था या " उस नदीकी लहरोंमें सोमने विश्राम कियाथा " [... कविः (सोमः) सिन्धोरूर्मावधिश्रितः ऋ० ९-१४१] । यहाँ यह कहना अनावश्यक है कि उपर्युक्त. समास (सिन्धुमातरम्) का सिन्धु-शब्द जरासी सन्देहके विना, सिन्धु-नदीकाही बोधक है । उसका अर्थ समुद्र विलकुल नहीं है । क्योंकि सोम केवल मीठे पानीमेंही उगता है । वह समुद्रके पानीमें नहीं उगता, क्योंकि खारापानी उसके उगनेके लिये जराभी उपयोगी नहीं है. इसके सिवा सोमकी भारतीय उत्पत्ति तथा वृद्धिके सम्बन्धमें अभी और प्रमाण हैं। क्योंकि सोमकी खेती आर्यावर्तके बीचोंबीच अर्थात् कुरुक्षेत्रकी प्रसिद्ध शर्य-णावत् झीलमें होती मालूम पडती है, हमारा ऋग्वैदिक कवि उक्त झीलमें उत्पन्न कियेगये तथा उपजे . सोम-पौधेके रसकी वडी प्रशंसा और उसे साफ साफ स्वीकार करता हुआ मालूम पडता है । यही नहीं किन्तु उस कविने वृत्रहन्ता इन्द्रसे इस शर्यणावतीके सोम-रसको ग्रहण तथा पान करनेके लिये निवेदनभी किया है, क्योंकि वह बहु-तही स्वादिष्ट तीक्ष्ण, शक्तिवर्द्धक और जीवन तथा शक्तिसे पूर्ण अनुमान किया गया था (शर्यणावति सोममिन्द्रः पिबतु वृत्रहा । बलं दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्यं महदिन्द्रायेन्द्रोपरिस्रव ।। ऋ० वे० ९-११३-१) इसके सिवा सायणभी (ऋ० वे० ९-११३-१, और ९-६५-२२) टीका करतेहुए इसतरह लिखते हैं-"शर्यणावति शर्यणावन्नाम कुरुक्षेत्रस्य जघनार्धेसरः। तत्रस्थितं सोमं वृत्रहेन्द्रः पिबतु । (ऋ० वे० ९-११३-१) ... "ये वा शर्यणावति कुरुक्षेत्रस्य जघ-नार्धे शर्यणावत्संज्ञकं मधुररसयुक्तं सोमवत्सरोऽस्ति । अदोऽस्मिन्

सरासि सुरसा ये सोमा इन्द्रायाभिपूयन्ते ते " ... ऋ० वे० ९-६५-२२ । पहले उल्लेख किया जाचुका है कि सोम इन्द्रके सखा और उसके पिता तथा जनकके नामसे प्रसिद्ध रहा है सोमका प्राचीनतम होना तथा यज्ञके पहले उसका आस्तित्वमें रहनाभी विचार किया जा चुका है वह यज्ञकी आत्मा (पृ० ९९) और अत्यन्त प्राचीन" ताका अमृत (पृ० ९९) कहा गया है. इसके सिवा उसका सब यज्ञोंमें सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वश्रेष्ठ होना समझा गया है ।

तब यह स्वभावतः प्रश्न उठता है कि " इन सब बातोंका क्या कारण हैं ? " इस कारणको ढूँढनेके लिये सारी बातोंके मूलतक पहुँचजानेके बाद हम इस प्रश्नका उत्तर देनेका प्रयत्न करेंगे । हम सबलोग जानते हैं कि यज्ञकी उत्पत्ति ईश्वरको कुछ वस्तु अर्पित किये जानेमें है । यज्ञ शब्दका धात्वर्थभी (From L. Saer, Sacred and facio to make) किसी देवताको चढावा चढाना है। अतएव यज्ञके मामलेमें सोम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा प्राचीनतमरूपमें स्थित है और इसका स्पष्ट कारण यह है कि उसने सर्वशक्तिमान् परमेश्वर इन्द्रको आदिम भोगके रूपमें अर्पित होनेका अनुपम आदर प्राप्त किया था । अपने उत्पन्न होनेके बाद तथा अपनी माताकी गोदमें दूध पीने और पाले पोसे जानेके पहलेही इन्द्रने तुरन्त सोम-रस माँगाथा (यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पियूषमापिवो गिरिष्ठाम् ।

---

१ क्योंकि हमारे पूर्वपुरुषोंने इन्द्रको देवताओंका देवता तथा उनका एवं मनुष्योंकाभी सर्वप्रथमनेता समझतेथे (इन्द्रः क्षितीनामसि मानुषीणां विशां दैवीनामुत पूर्वयावा । ऋ० वे० ३-३४-२) वह सबसे श्रेष्ठता (न किरिन्द्रत्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । ऋ० वे० ४-३०-२, सत्यमित्तन्नत्वावां अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् । ऋ वे० ६-३१-४) जगत् तथा सारी रचीभईवस्तुओंका प्रभु (यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिः । ऋ० वे० १-१०१-५) और मरजनेवाला जिससे देवतातक डरचुके थे, माना गया था (अताश्चिदिन्द्रादभयन्त देवाः । ऋ० वे० ५-३०-५)

ऋ० वे० ३-४८-२) अतएव उसकी माताने सोम-रस इन्द्रको दूध पिलानेके पहले (तं ... माता परि ... आसिंचदग्रे । ऋ० वे० ३-४८-२) इन्द्रके पिता ठीक सोमके घरमें (पितुर्दमे[1] । ऋ० वे० ३ ४८-२, सोमः... जनितेन्द्रस्य । ऋ० वे० ९-९६-५) जो हिमालय पर्वतपर उगाथा, दियाथा ।

अस्तु-आदिम तथा अत्यन्त प्राचीनयागीय आहुति बननेका सर्वोच्च तथा अनुपम सम्मान सोमको ही प्राप्त था और उसका रस किसीकी अपेक्षा कुछ कम देवत्व गुणसूचक नहीं था, क्योंकि अपनी शक्तिके कारण वह सबका प्रभुही नहीं था. (एक ईशान ओजसा.... ऋ० वे० ८=६-४१) किन्तु इसके सिवा वह पुरातन युग काथा (ऋषिर्हि पूर्वजा असि.... । इन्द्र...ऋ० वे० ८-६-४१) और सम्पूर्ण जगत्का शासक था (यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिः ऋ० वे० १-१०१-५) इसमें एक दूसरी महत्त्वपूर्ण बात जोड देनी चाहिये कि सोम और इन्द्र दोनोंकी उत्पत्ति आर्यावर्तके हिमालय-पर्वतपर हुईथी और सोमपूजा तथा इन्द्रके वीरतापूर्ण कार्योंके समाचार हमारी विजयों तथा सभ्यताके प्रसारके साथ साथ पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण चारों दिशाओंमें दूरतक फैल गये थे। उत्तरी ध्रुव देशोंमें भी पहुँचे गयेथे, जहाँ हमने अपने विस्तृत उपनिवेश स्थापित किये थे अन्धकारकारक दैवी शक्तियोंको दूर करनेके लिए अपने सोम-यज्ञोंका अनुष्ठान जारी रक्खा था और दीर्घकाल तक निवास करते रहे। यहाँतक कि महाहिम-युगके आगमनके कारण हमारे तृतीय कालीन पूर्वपुरुष उत्तरी पर्वत या विशाल हिमालय पर्वतमालाका उल्लंघन करके अपने मूल-स्थान सप्त-सिन्धु-

---

१ इस बातसे इन्द्रकी उत्पत्ति हिमालय पहाडपर प्रमाणित होती है. अतएव सोमकी भाँति वहभी सप्त-सिन्धु देशमें उत्पन्न हुआ था ।

देशकी ओर अपने आवास-भूमिको लौटनेको बाध्य हुए थें (देखो पीछे पृ० ३६ ......) इस तरह हमने सोमकी भारी प्राचीनता ऋग्वेदके प्रमाणसे सिद्धकरदी है। हमने यह भी प्रकट किया है कि अपने विभिन्न श्रेष्ठ गुणोंके कारण वह ईश्वरके मर्तवेतक पहुँचा दिया गया था। इसके सिवा सोम-याग प्रथम और सबसे पहलेका था। यही नहीं, किन्तु वह आर्यावर्तमें कियेगये सारे यागोंमें प्रधान और सर्व श्रेष्ठ था। ऐसी दशामें हमारे आदिम पूर्वपुरुषों-द्वारा अनुष्ठित सोमयाग आदि सम्बन्धी बातें आर्यावर्तमें आर्योंके मूल-स्थानकी तीसरी झलकके रूपमें कही जासकती है। हमें आर्यमानवके आदि कालका ज्ञान होता है, यही नहीं, किन्तु भारतमें उसकी उत्पत्तिका जैसा कि अभी प्रकट किया जायगा, और पूर्व आर्य[१] युगकाभी। इस तरह यह सोम हमको सब प्रकार निस्सन्देह करके उस भूत कालकी ओर पहुँचाता है, जब हम सप्त-सिन्धु-देशमें अपने ईरानी भाइयोंके साथ एकमें और शान्तिपूर्वक रहते थे-यही नहीं, किन्तु हमारे ईरानी भाइयोंकोभी इस देशका नाम उसके अपभ्रंशके रूपमें ज्ञात था। क्योंकि यह उनकी जन्म भूमिथी। इस तरह इस सार्वजनिक मूल-स्थानका यह प्राचीनतम चिह्न एकही निगाहमें सामने अजाताहै और सो भी केवल अवस्ताके हप्तहेन्दु शब्द या हौमकी ईरानी पूजासेही नहीं, किन्तु उस कौतूहलकारक समानतासे भी जो आर्यावर्त तथा ईरानकी या भारतीय-आर्य तथा फारसियोंके पौराणिक ग्रन्थोंके बीच विद्यमान है। उसका ब्योरेवार वर्णन हम आगे नवें अध्यायमें करेंगे। अतएव ये उपर्युक्त सारी बातें ठीक इसी

---

१ इस बातको पाठकोंके ध्यानमें डालनेके लिए मैं इस अवसरका उपयोग करताहूँ कि सोम तथा इन्द्रके सदृश दूसरे प्रधान आर्य देवताओंकी उत्पत्ति इसी सप्तसिन्धुदेशमें हुई थी जिसका ब्योरेवार वर्णन इस पुस्तकके बारहवें अध्यायमें किया जायगा।

सप्तसिन्धु देशमेंही आर्योंका मूल-स्थान सिद्ध करती हैं। आगे बढ-नेके पहले हम यहाँ थोडी देरके लिए इस कारण ठहर जाँयगे कि जो कुछ इसके पहले कहाजाचुका है वह सब इकठ्ठाकर लिया जाय और इस विषयका दूसरा बाजू पाठकोंके सामने इस दृष्टिसे उपस्थित करनेका प्रयत्न किया जाय कि जिन सारे प्रमाणोंको हमने स्वयम् प्राप्त किया है उनपर समुचितध्यान देनेके उपरान्त-सप्त-सिन्धुदेशको छोडकर उत्तरी-ध्रुवदेश योरप, मध्य एशियाकी उच्च-सम-भूमि या और किसीभी देशमें आर्योंका मूल-स्थान होनेकी असम्भाव्यता उनके मनमें जमजाय। हमने पहलेही उल्लेख कर दिया है कि उत्तरी ध्रुव सम्बन्धी-सिद्धान्तके कट्टर पक्षपाती मिस्टर तिलक-जैसे विद्वाननेभी स्वीकार किया है कि यज्ञ एक प्राचीनतम धार्मिक क्रिया है। उन्होंने लिखा है-उत्तरी ध्रुव-सम्बन्धी सिद्धान्तके द्वारा हम कल्पनाकरके संतोष जनक रीतिसे इस बातकी अर्थात् द्विरात्र, त्रिरात्र, अतिरात्र, शतरात्र तथा दूसरे यज्ञोंकी व्याख्या कर-सकते हैं कि पुरातन आवासमें लम्बीरातका समय (२४ घंटेकी) एक रातसे लेकर (२४०० घंटेकी) लगातार सौ रातोंतक अक्षांशके अनुसार घटता-बढता रहा और शतरात्रीय सोम-यज्ञ पुरातन आवासके भिन्न भिन्न स्थलोंमें वहाँकी रातके विभिन्न समयोंके अनु-कल हैं"। "इस तरह शतरात्रि यज्ञ" से अन्धकारका सबसे बडा समय स्पष्ट होजाताहै। इसी कालमें इन्द्र बलिसे लडेथे और शतरात्रि यज्ञमें उसे अर्पित किये गये सोम-द्वारा उसके बलकी वृद्धि की गई थी" (Arctic Home P. 216) "पुरातन वर्षका आस्तित्व इन यज्ञोंसे सरलताके साथ सूचित किया जा सकता है और यह वर्ष अटकलसे सात महीनेके सूर्य प्रकाश, एक महीनेकी उषा, एक महीनेकी सान्ध्य छटा और तीन महीनेकी लगातार लम्बीं रातोंमें विभाजित है"। (Ibid P. 216, 217. Edition 1903) इसके-

सिवा मिस्टर तिलकने यहभी लिखा है कि आर्यजातिकी एशियाई तथा योरपीय दोनों शाखाओंमें यज्ञका प्रचार था। वास्तवमें यज्ञ इन लोगोंके धर्मका मुख्य अङ्ग था और पुरोहित लोग यज्ञ-सम्बन्धी प्रत्येक बातको व्योरेवार ध्यानसे निरीक्षण करतेथे अथवा जिनके सिपुर्द यह कार्य रहताथा वे उसका ठीक ठीक निश्चय किया करते थे। " (Ibid P, 192, 193) इस सम्बन्धमें इजलिङ्गका कथनभी इस तरह है-" यज्ञ यदि भारतीय-जर्मनोंकी नहीं तो भारतीयईरानियोंकी एक पुरानी धार्मिक क्रिया है। प्रधान भारतीय यज्ञोंमेंसे कुछ यज्ञ निस्सन्देह किसी न किसी रूपमें भारतीय-ईरानी कालकी प्रमाणित होती है। इनमें भी सोमयाग मुख्य है। यदि हम 'अफरी' भजनों और पारसी-कर्मकाण्डके आफरी गीतोंमें आयेहुए नामोंको जाँचते हैं तो पशुयागकी उसी समयका सिद्ध होता है। " (Vide "The Sacred Books of the East" Series Vol. XII Shatapatha Brahman Translated by Eggling. Part I Books I. II. Introduc tion P. XV) परन्तु यहाँ पहला प्रश्न उठता है कि ये यज्ञ पहले-पहल कहाँ प्रारम्भ हुए थे ? क्या ये पहले-पहल उत्तरी ध्रुव, योरप या मध्य-एशियाकी उच्च-समभूमिमें किये गये थे, क्योंकि जो भ्रमसे आर्योंका मूल-स्थान इन्हीं देशोंमें अनुमान किया जाता है तो क्या यज्ञोंकी भी उत्पत्ति इन्हीं स्थानोंमेंसे किसी एकमें हुई थी ? निस्सन्देह नहीं। इस लिये कि एक यह अत्यन्तमहत्त्वपूर्ण जो प्रश्न उठ खड़ा होता है कि सोम उत्तरी ध्रुव, योरप या मध्य-एशियाकी उच्च-सम भूमिमेंसे एकमें नहीं उत्पन्न होता था और वह सोम यज्ञोंके लिये परमावश्यकता हम ऋग्वेदके प्रमाणके आधारपर पहलेही लिखचुके हैं और इसे पाश्चात्य विद्वानोंनेभी मानलिया है कि सोम केवल आर्यावर्तमेंही उपजताथा। वह और किसी दूसरी जगह नहीं उगताथा। और

पाठकोंको यह बात ध्यानमें रखना चाहिये कि आर्यावर्तमें भी उत्कृष्ट तथा सर्वश्रेष्ठ जातिका सोम केवल विशाल हिमालयके ढलुए भागपर स्थित मुञ्जावत पहाडपर उत्पन्न किया जाताथा (सोमस्य मौजवतस्य भक्षः। ऋ० वे० १०-३४-१; गिरिर्हिमवतः पृष्ठे मुञ्जवान्नाम पर्वतः म० भा० १८·८-१; एतत्ते रुद्रावसन्तेन परो मूजवतोतीहि॥ वा० सं० पु० अ० ३-६१; मौजवतो मूजवति जातो मूजवान्पर्वतो मुञ्जवान्मुञ्जो....नि० उ० प० ३·८); अध्यापक मैक्डानेलनेभी इस बातको माना है कि ऋग्वेदमें मुञ्जावतका उल्लेख सोमके घरके रूपमें हुआ है। और डाक्टर म्यूरनेभी (१०-३४-१) लिखा है कि मुञ्जावत पहाडपर "सोमका" उत्पन्न किया जाना कहा गयाहै इन प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि असली वैदिक सोम किसी दूसरी जगह नहीं, किन्तु केवल आर्यावर्तमेंही उपजता था। सोमका पौधा आर्यावर्तका देशी पौधाथा, वह विदेशी नहीं था। संस्कृत या जेन्द्भाषाकी पुस्तकोंमें इस बातका उल्लेख कहीं नहीं मिलाहै (जहाँ तक मैंने वैदिक या दूसरे संस्कृतग्रन्थों और अवैस्तिक धर्मग्रन्थोंके अंग्रेजी अनुवाद पढे हैं) कि असली वैदिक सोम आर्यावर्तकी अपेक्षा किसी दूसरे देशमें उपजाथा या वहाँका देशी पौधा था और उसकी वहाँ जन्मभूमि थी। वास्तवमें हमारे ऋग्वैदिक पूर्वज वरन उनके पूर्व पुरुषही सोमपूजाके प्रचारक थे। उन्हीं लोगोंने यज्ञ, उपासना और सोमके रसका प्रचार कियाथा और इन सबकी उत्पत्ति वृद्धि तथा पूर्ण समृद्धि आर्यावर्तमें ही हुई थी। क्योंकि असली वैदिक सोम और किसी दूसरी जगह नहीं केवल यहीं सप्त-सिन्धु देशमें

---

1. Vide his History of Sanskrit Literalure P. 144 Ed. 1900

2. Vide his Original Sanskrit Texts Vol. V. P 61 Ed. 1870

उपलब्ध था ... अतएव यह बात स्पष्ट है कि सोमने तो उत्तरी ध्रुव-देशमें और न योरप या मध्यएशियाकी उच्च-सम-भूमिमेंही उपजताथा । उसे तो आर्यावर्त या सप्त-सिन्धुदेशसे उसके बडेबडे व्यवसायी, जैसा आगे चलकर दिखाया जायगा, यज्ञके मतलबसे इन देशोंमें पहुँचाते थे । क्योंकि इस बातके वैदिक प्रमाण प्राप्तहैं कि सोमका रस उत्तरीध्रुव और योरप तथा एशियाके उत्तरी देशोंमें इन्द्रका बल बढाने और उसे असुरोंके साथ युद्ध करनेको तैयार था अन्धकारकी शक्तियों दूर करने एवं उन देशोंमें जो रात्रियां लगाता कईदिनों रही नहीं, महीनोंतक बनी रहतीथी

१. उदाहरणके लिये ऋग्वेदमें (११-१९-१) हम इन्द्रको सोमग्रहण करते पाते हैं (अस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वा वृधान ओकोदधेः) क्योंकि उसका रस युद्धके लिये उसे पुष्ट करताथा और बडे आनन्दका कारण था (अस्यान्वसोमदाय... ऋ० वे० २-१९-१)

२. ये रातें विना सवेरा हुए बनी रहती थीं । अतएव ये अत्यन्तलम्बी और जी उकतानेवाली होती थीं । यही नहीं, किन्तु ये भयंकरभी समझी जाती थीं । क्योंकि ऋग्वेदमें (१-४६-६) एक उपासक अश्विनोंसे ऐसी शक्ति प्रदान करनेकी प्रार्थना करता हुआ मालूम पडता है जो उसे अन्धकारसे होकर सहकारी प्रकाशके साथ निकाल ले जाय (यानः पींपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।) और उसीमें एक स्थान पर १०-१२७-६ यह प्रार्थना की गई है कि रात्रि-लम्बीरात्रि-पार करनेके योग्य होजायँ (अथानः सुतरा भव) । परन्तु इससेभी अधिक और सबसे परे हमें एक बहुत स्पष्ट उक्ति अथर्व वेदमें मिलती है । यह उक्ति हमारे तृतीयकालीन पूर्वपुरुषोंकी है । यह उन्होंने अपने मूल-स्थान आर्यावर्तदेशसे उत्तरीध्रुवके उपनिवेशोंमें चले जानेके उपरान्त व्यक्त की थी । इसका कारण यह था कि उन्हें वहां भयपूर्ण अन्धकारवाली अत्यन्तलम्बी रातोंका दुखदायी अनुभव हुआ था । क्योंकि जब वे आर्यावर्तमें रहतेथे तब इस प्रकारके अन्धकारके अभ्यस्त नहीं थे । अतएव वे बहुत निराश होकर और भयमें आकर इस प्रकार कहते मालूम पडते हैं " उसकी (रातोंकी) आगेकी सीमा नहीं दिखाई पडती है " । (न यस्याः पारं ददृशे । अ० वे० १९-४७-२)

उनकी समाप्तिके लिये सोमका उपयोगमें किया जाता था। सोम-पूजाकी वृद्धि तथा उसके प्रचारके सम्बन्धमें एक और महत्त्व पूर्ण बात है, जो विशेषरूपसे ध्यान देनेके योग्य है। हमने पहलेही लिखा है कि सोमको पूजनीय ठहरानेके नेता हमारे आदिम पुरुषथे और इस मूल-स्थान आर्यावर्तमें उन्होंने सोमयाग तथा सोम-पूजाको केवल प्रचलितही नहीं किया था किन्तु इसका प्रचारभी खूब किया था। उन लोगोंने सोमके रसका उपयोग कियाथा, क्योंकि वह उन्हे अत्यधिक आनन्द देताथा। यही नहीं, किन्तु उन्होंने जोरास्ट्रियोंको सोमपूजाकी दीक्षा देकर अपना शिष्य बनालिया था। जब जोरास्टरलोग हमारे तृतीयकालीन पूर्व पुरुषोंके साथ अपने सार्वजनिक मूल स्थान सप्त-सिन्धुदेशमें रहतेथे तब वे सोमपूजाकी शिक्षा हमारे पूर्वपुरुषोंसे ग्रहण करचुके थे और जब परस्पर मतभेद तथा जुदाई होगई तब प्रारम्भमें उन्होंने अपने विरुद्ध धर्मावलम्बी ब्राह्मणोंके सोमपूजाकी निन्दा या उसके प्रति घृणा व्यक्त की और "उसके विरुद्ध माननेवाले लोगोंसे युद्धतक किये"। यहीं नहीं उन्होंने

१. क-Vide Dr. Hang's Parsee Religion. Essay III pp. 153, 163, 164 Edition 1862. यह उल्लेख देवों या आर्य ब्राह्मणोंके प्रति है।

ख-गाथा अहुनवेतीमें लिखाहै, हे देवो, तुम उस नीचात्मासे उत्पन्न हुएहो जो मादकताके (सोमके) द्वारा तुमपर अपना अधिकार करती है और जो तुम्हें मानवजातिको धोखा देने तथा विनष्ट करनेके लिये अनेक हुनर सिखातीहै, जिन लिये तुम सर्वत्र बदनाम हो। (Do. P. 145)

ग-इसके सिवा स्पेन्टा-मैनिअसमें (यस्न ४७-५०) हमें यह लिखा मिलताहै ४८, १०-हे बुद्धिमान् तू कब प्रकट होगा, हे बलवान् और साहसी मनुष्यो, उस मादकद्रव्य (सोम) को अपवित्र करनेको कब प्रगट होगे। यह पैशाचिक हुनर मूर्तिपूजक-पुरोहितोंको घमंडी बना (p. 159) देता है और वह नीचात्मा जो देशोंपर शासन करती है उस घमंडको अधिकका देतीहै।

केवल इस कारण उसे " उखाड फेंकनेका प्रयत्नभी किया " कि वह पूजा उन वैदिक आर्योंकी प्रचलित की हुई है जिनको वे अत्यन्त घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। परन्तु सोम पौधा या सोमपूजाके प्रति गहरे जडपकडेंहुई अपनी उस भक्तिको वे स्वयम्ही न छोडसके जिसे उन्होंने अत्यन्त पुरातन कालके हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंसे प्राप्त किया था, तृतीयकालीन पूर्वपुरुषोंकी तो कुछ वातही नहीं है। जेन्दिक गाथाओंमें स्पष्ट उल्लेख हुआ है कि एकवार होम (सोम) जोरास्टरके पास अपने प्रकाशमान अलौकिक स्वरूपमें आया। ईश्वरी दूतने उससे पूछा कि तुम कौन हो ? तव उसने कहा; कि मैं होमहूँ. उसने ईश्वरी दूतसे प्रार्थना की कि तुमभी मेरी उसी प्रकार पूंजा करो जैसे प्राचीन साधुओं तथा ईश्वरी दूतोंने की है। " तव जोरास्टर " स्वर्गीय दूतका कथन ध्यानके साथ सुननेके वाद उसके सामने नत मस्तक हुआ और अपने सामने उपस्थित होमके पौधेकी डालोंमें गुप्तशक्तियाँ सन्निविष्ट करनेके लिये उसने अभिमंत्रितकरना शुरू करादिया "। तत्पश्चात् हम इस प्रधान सोम-निन्दक जोरास्टरको इस प्रकार ऊँचे स्वरमें सोमकी प्रार्थना करते हुए पातेहैं " मैं उनका ऊँचे पर्वतोंकी स्तुति करताहूँ जहाँ, हे होम, तू उगाहै। मैं उस चौडी पृथ्वीकी स्तुति करताहूं, हे होम, जो तेरी माताहै और जो मार्गोंसे परिपूर्ण है तथा परिश्रमकर रहीहै... " (Vide Dr. Hang's Essays on the Religiono. the Parsees pp. 167, 168 Ed.1862)

---

१. ये पहाड स्पष्टतया हिमालय तथा मुञ्जावत हैं। ऊँचा शब्द उनकी ऊँचाईका संकेत करताहै; भूमिका जो उल्लेख है वह सप्त सिन्धुदेशके सम्बन्धका है, जहाँ पर सोम उगताथा.

अस्तु—हम देखते हैं कि जोरास्टरके अनुयाई हमारे ईरान भाइयोंने, जिन्होंने कुछ समयतक सोमकी निन्दा की वादको फिर सोम-पूजाका अंगीकार किया और उसकी उपासना करनेलगे। क्योंकि सोमके प्रति गहरे जडपकडेहुई भक्ति तथा तत्सम्बन्धो प्राचीन कालके ऐतिह्योंने उन लोगोंपर साफ साफ प्रभाव डाला था। इस अवस्थामें यह वात स्वाभाविकही है कि डाक्टर हाग इस मामलेमें जोरास्टरके शिष्यत्वके सम्बन्धमें निम्नलिखित विचार प्रकट करें। वे लिखते हैं, " इस होम यष्टके विवरणोंसे कोईभी आदमी भले प्रकार जान सकता है कि होम-उपासनाका प्रचलन जराथस्ट्राने नहीं किया था किन्तु वह वहुत पहले समयसे प्रचलितथी जराथस्ट्राने तो केवल उसको स्वीकारभर किया है (Vide Dr. Hang's Essays on the Religion of the Parsees P. 163, Ed. 1862)

हमारे वैदिक पूर्वपुरुप यज्ञ-प्रेमी आर्य थे, अतएव उनको अपने मूलस्थानमें सोमपूजाके प्रसार की तथा उसके परेके देशों एवं दूरतम विस्तृत उपनिवेशोंमें भी तत्सम्बन्धी प्रभाव-क्षेत्रको वढानेके लिये प्रवल लालसा थी। उनका यह दृढभाव अपने स्वाभाविक रूपमें जोरदार शब्दोंमें परिणत होकर ऋग्वेदमें व्यक्त हुआ है। एक ऋक्-कवि कहता है:—

"त्वं सोम पितृभिः संविदानो अनु द्यावापृथिवी आततंथ तस्मै।
त इन्दो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥"

ऋ० वे० ८–४८–१३ " हे सोम—हमारे प्राचीन पूर्व पुरुपोंका सहायक और सखा-तूने अपने आपको पृथ्वी तथा स्वर्गके वीच वाहर फैला दिया है—अतएव हे इन्दु! हमें आहुतियोंसे अपनी सेवा करने दे और सम्पत्तिओंके स्वामी वनने दे।" (ऋ० वे० ८ ४८–१३ इससे यह मालूम पडेगा कि हमारी विस्तृत नौ वस्तियों तथा उपनिवेशीय साम्राज्यके विस्तारके लिये हमारे वैदिक पूर्वपुरु-

योंने सोमको कार्यतः अपना साधन माना था । इसके सिवा ऋग्वेदमें दूसरी ऋचायेंभी हैं जो सप्तसिन्धुदेशके बाहर दूरदेशोंमें हमारी विजयोंकी बातका समर्थन करती है। क्योंकि सरस्वतीनदीनेभी आर्यावर्तकी दूसरी नदियोंके देशके आने तथा सारे शत्रुओंके परे यज्ञ-प्रेमी वैदिक आर्योंको अपनी शक्ति तथा प्रभावके फैलानेको समर्थ कर दिया था। (सानो विश्वा अतिद्विषः स्वसृन्या ऋतावरी अतन् ... ऋ० वे० ६-६१-९) यही नहीं, किन्तु चारों ओर विजय प्राप्त करनके लिये हम इन्द्रसेभी इस तरह प्रार्थना की जाती हुई पाते हैं-हे शक्तिमान् दिग्विजयी इन्द्र, हमारे सारे पश्चिमी तथा पूर्वी शत्रुओंको भगा दो " हे वीर ! हमारे उत्तरी तथा दक्षिणी शत्रुओंको खदेड दो, जिससे हम तेरी कृपारूपी विस्तृत छायामें आनन्दपूर्ण होसकें। (अपप्रा च इन्द्रा विश्वा अमित्रा। नपापाचो अभिभूते नुदस्व ॥ अपोदीचो अप शुराधरा च। उरौ यथा तव शर्मन्मदेम ॥ ऋ० वे० १०-१३१-१)। अतएव इन सब बातोंसे यह सूचित होता है कि सरस्वती तथा इन्द्र इन दोनों एवं सोमने हमारे आदिम तथा हमारे ऋग्वैदिक पूर्व पुरुषोंको प्रसिद्ध सप्तसिन्धुदेशकी सीमाओंके परे विजय करने तथा आर्यावर्तके बाहर चारों ओर अपने उपनिवेशस्थापनके लिये सारे सम्भाव्य अवसर तथा प्रत्येकप्रकारका उत्साह प्रदान किया था।

अस्तु-ऋग्वैदिक कालके इन हमारे प्राचीन उपनिवेशोंभी उत्तरी ध्रुवदेश, योरप या मध्य एशियाई उच्चसम-भूमिकी भांति सोमयागोंक अनुष्ठान हुए थे और इनके सम्बन्धमें हमने पहलेही सूचितभी करदिया है अतएव उपनिवेशोंके यज्ञोंके लिये सोमके प्रस्तुत किये जानेका प्रश्न फिर उठ खडा होता है परंतु सोम प्रस्तुत करनेके लिये हमारे वैदिक पूर्वपुरुप सदा तैयार रहते थे और वे उस समयभी इसके लिये अत्यन्त व्यग्र रहते थे। सोमकी उपजके

स्रोतोंसे उपनिवेश-वासी हमारे पूर्वज सर्वथा अवगत थे। उन्हें यह बात मालूम थी कि उक्त पौधा केवल उनके मूल-स्थान सप्त-सिन्धुदेशमेंही अधिक परिमाणमें उत्पन्न किया जाताहै। इसके सिवा उन्हें यहभी ज्ञात था कि सोमकी माँग तथा उसको प्रस्तुत करनेसे होनेवाला लाभ इस प्रश्नको अपने आप हल करदेना दूरकी आवश्य-कताओंको दुरुस्तकर देगा और संतोष जनकरीतिसे उसके व्यापारको नियमबद्ध रक्खेगा। वैदिक कालमें सोमकी निरन्तर अधिक माँग बनी रहती थी। अतएव उसकी विस्तृत क्षेत्रमें खेती होती थी और व्यापारियोंको उसकी पैदावारसे भारी लाभ होता था। उन दिनों सोमके अगणित व्यापारी थे। उसका व्यापारभी खूब उन्नतदशामें था। वह भूमण्डलके एक बडे भारी भागके हमारे सारे अगणित उपनिवेशों और आर्य-बस्तियोंमें फैला हुआ था। ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें सोमके सम्बन्धमें अनेक महत्वपूर्ण बातोंका उल्लेख हुआ है। इनके कुछ अवतरण हम आगे उद्धृत करते हैं—

क—"देवताओं (अर्थात् असुरों या पारसी आर्योंसे भिन्न देव या भारतीय-आर्योंने महाराज सोमको पूर्व[१]दिशामें मोल लिया। वह आमतौरसे पूर्वमें खरीदा जाता है। उन्होंने उसे तेरहवें मही-नेमें खरीदा तबसे तेरहवाँ महीना (उसमें किसी भी धार्मिक कार्य-का किया जाना) अनुपयुक्त पाया गया (उसी तरह) सोमका विक्रेताभी व्यापारके लिये अनुपयुक्त पाया गया है। क्योंकि ऐसा आदमी नियम भङ्ग करनेवाला होता है"। (Haug's Transl: ation Ait. Br. 1.,12; P, 26 Vol.2Ed. 1863)

---

१ पूर्व इस लिये क्योंकि सोमकी मण्डी सरस्वती नदीके पूर्व थी, जहाँ यागीय अनुष्ठान होते थे और सोमका पौधा हिमालय, सिन्धुके किनारे तथा शर्यणावट झीलमें उत्पन्न किया जाता था.

ख-" तब अध्वर्यु (होतासे) कहता है जो सोम खरीदागया है और (यज्ञ-मण्डपमें) लाया जानेको है उसके लिये मंत्रका जप करा।" (Do.-P. 27 Ait. Br. 1, 13)

ग-इन ऋचाओंमें वह पहली तथा अन्तिम ऋचा तीनवार पढता है; (कुल मिलाकर) वारह वार हुआ। एक वर्षमें वारह महीने होते हैं, और वर्ष प्रजापति है" (Do. P. 32)

घ-बैलोंमेंसे एक बैल (जो उस गाडीको खींचते हैं जिसपर महाराज सोम बैठे हैं) जुता रहने दिया जाय और दूसरा खोल दिया जाय। तब उन महाराज (सोम) को गाडीसे नीचे उतारना चाहिये" (Do. Ait. Br. 1, 14 pp. 32, 33)

ङ-" महाराज सोमके आजानेके बाद स्वागत की आहुति तैयार की जाती है। क्योंकि सोमहाराज (अतिथिके रूपमें) याज्ञिकके मण्डपमें आते है।" (Do. Ait. Br. 1, 15 P. 34)

च-" वे लोग महाराज सोमको मोललेते हैं (सोमक्रयके विधानसे मतलब है॥ महाराज सोम एक वनस्पति है। वे (रोगी-आदमीको) वनस्पति वगैसे प्राप्त कीगई ओषधियोंसे नीरोग करते हैं। सारी वनस्पति-ओषधियाँ महाराज सोमके खरीदे जानेके बाद लाई जाती हैं और इस तरह वे सब मिलकर अग्निष्टोममें शामिल हो जाती हैं"। (Do. Ait. Br. 3. 40 P. 223.)

छ-" (अतिरात्रिवाले सोम-भोजमें) रातमें सोमके पान-पात्रोंकी वारह फेरियाँ कुल मिलाकर पन्द्रह ऋचाओंके साथ संयुक्त होती हैं जिनसे कि स्तोत्रोंका पाठ होता है" ...... वर्षभरके प्रत्येक महीनेमें तीस रातें होती हैं। (Do. Ait. Br. 3. 41; P. 235)

अवतरणोंके मूल-अंश इस प्रकार हैं-

क-प्राच्यां वै दिशि देवाः सोमं राजानमक्रीणंस्तस्मात्प्राच्यां दिशि

क्रीयते । तं त्रये दशान्मासादक्रीणंस्तस्मात् त्रयोदशो मासो नानु विद्यते । न वै सोम-विक्रय्यनुविद्यते । पापो हि सोमविक्रयी (ऐ. ब्रा० १-१२

ख—सोमाय क्रीताय प्रोह्यमाणा सानुब्रूहीत्याहाध्वर्युः। (ऐ०ब्रा०१-१३)

ग—तासां त्रिः प्रथमासन्वाह । त्रिरुत्तमाम् । ता द्वादश संपद्यन्ते । द्वादश वै मासाः सम्वत्सरः। संवत्सरः प्रजापतिः। (ऐ० ब्रा० १—१३)

घ—अन्यतरोऽनड्वान्युँक्तः स्यादन्यतरो विमुक्तोऽथ राजानमुपाव-हरेयुः ... । (ऐ० ब्रा० १—१४)

ङ—हविरातिथ्यं निरूप्यते सोमे राजन्यागेत । सोमो वै राजा यजमानस्य गृहमागच्छति । .... (ऐ० ब्रा० १—१५)

च—सोमं राजानं क्रीणंत्यौषधो वै सोमो राजौषधिभिस्तं भिष-ज्यान्ति । यं भिषज्यन्ति सोममेव राजानं क्रीयमाणमनु यानि कानि च भेषजानि तानि सर्वाणि अग्निष्टोममपियन्ति.... (ऐ० ब्रा० ३—४०)

छ—द्वादशरात्रेः पर्यायाः सत्रै पञ्चदशारते द्वौ द्वौ संपद्यत् त्रिंशत् । .... त्रिंशन्मासस्य रात्रयो मासधा संवत्सरो विहितः। (ऐ०ब्रा०३-४१)

उपर्युक्त अवतरणोंसे यह बात स्पष्ट होजाती है कि सोमका क्रय-विक्रय यज्ञकर्मके लिये वास्तवमें होता था आर्यावर्त तथा उसके दूरस्थ विस्तृत उपनिवेश दोनोंमें इस पवित्र पौधेकी बडी माँग थी । अतएव सोमके बडे बडे व्यापारी थे इन लोगोंने सोमके व्यापारकी बडी बडी मंडियाँ स्थापित की थीं और सोमके आवश्यक परिमाणको विदेश भेजने तथा देशमें यत्र—तत्र पहुँचानेके लिये नियम बद्ध व्यापार जारी कर रक्खा था । उस समय सोमका क्रय—विक्रय जोरों पर था। यह बात भी स्पष्ट मालूम होती है कि सोमके पौधे, या तो बैलगाडियों या किसी दूसरे उपयुक्त वाहनपर या सिरके बोझोंके द्वारा आवश्यकता तथा स्थानकी सुविधाके अनुसार व्यापारी केन्द्रोंसे लाये जाते थे । अतएव पाठकोंको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि आर्यावर्तको छोडकर सोम और कहीं नहीं उत्पन्न

होताथा। अतएव सप्तसिन्धुदेशसे सोमका लायाजाना और उन लम्बी रातोंके देशसे अनन्त अन्धकारको दूर करनेके लिये सोम यागका कियाजाना स्वाभाविकही था। यह बात भी प्रमाणसे सिद्ध है कि सोमकी बहुत भारी माँगको पूरा करनेके लिए वहाँ वैदिक कालमें उसका व्यापार विस्तृत क्षेत्रमें जारी था उत्तरी-ध्रुव योरप या मध्य-एशियाके सिद्धान्तके पोषकोंमेंसे कोई भी व्यक्ति यह बात प्रमाणित करनेके लिये किसी तरहकी दलील नहीं उपस्थित करता है कि, भारतीय आर्योंने अपने देशान्तरगमन तथा वहांसे लौट आनेके आर्यावर्तमें. सोम-पूजा प्रचलित की थी। क्योंकि उन्होंने सोम पौधेकी जानकारी पहले-पहल आर्यावर्तमेंही प्राप्त कीथी और उससे उनका परिचय यहीं हुआ था। वह उपर्युक्त उत्तरी देशों, या और कहीं या योरपतकमें नहीं उत्पन्न होता था। मिस्टर तिलकनेभी स्पष्टरीतिसे इस बातको स्वीकार किया है। वे लिखते हैं-" सोम शब्द योरपीय भाषाओंमें नहीं पाया जाता " और " भारतीय-योरुपीय कालमें सोमकी जानकारीके सम्बन्धमें " सन्देह होता है (Vide Arctic Home in the Vedas P. 205 Ed. 1903) उपर्युक्त सिद्धान्तवादियों इस दलीलको नहीं

---

१. कुल दलीलोंकी स्पष्ट स्वीकृति मिलजानेकी बुनियादपर जो उनको स्वीकृत तर्क-प्रणालीके अनुकूल है. मिस्टर तिलक एक दूसरे विषयके सम्बन्धमें यहाँ तक सम्मति देनेको बढ गये हैं कि वैदिक वाक्यांश सप्त सिन्धुका (सप्त सिन्धवः) जो प्रभाव हमारे मन पर पडताहै और उससे जो विचार उठते हैं वे सर्वथा त्याग दिये जायँ क्योंकि वह उत्तरीध्रुव सम्बन्धी आवासके प्रस्तावित सिद्धान्तके विरुद्ध आडे आता है। वे लिखते हैं-" जैसा ऊपर लिखा गयाहै, पंजाब पाँच नदियोंका देशहै सातका नहीं. और यद्यपि इस समूहमें कोई भी दो गुणनामकी सहायक नदियोंको अपने विचारके अनुसार जोड लेनेसे हम उनकी संख्या सात तक बढाले जासकेंगे, तो भी इस युक्तिके इस कृत्रिम स्वरूपसे हमारा यह मानना अत्यन्त स्पष्ट

मान सकते हैं। क्योंकि इस दलीलसे आर्यावर्तमें या तो मूलस्थान या उसके परिज्ञान तथा उसमें सोमके उत्पन्न होनेकी

—रीतिसे न्यायसङ्गत है कि सप्त सिन्धवः शब्दकी अवतारणा मूलमें पंजावकी नदियोंसे ही हुई थी। (The A. H. in the Vedas P, 230) हम नहीं समझते हैं कि सप्तसिन्धवः शब्दसे मिस्टर तिलक पंजावको ही क्यों लेते हैं। जब कि सप्तसिन्धवःके अन्तर्गत वास्तवमें वह सारा विस्तृत देशहै जिसमें गंगा, यमुना और पञ्जावकी मुख्य पाँचो नदियाँ वहती हैं। पञ्जावकी इन मुख्य पाँचो नदियोंमें सरस्वती, सतलज (शुतुद्रि) रावी (इरावती या पुरुष्णी), चनाव (चन्द्रभागा या असिक्नी) और सिन्धुकी गणना है। इस तरह ये सब सात नदियां होती हैं। इनमें सहायक नदियाँ नहीं शामिल की गई हैं। इसके सिवा इस मतका समर्थन सायण जैसे प्रसिद्ध टीका कारनेभी किया है। क्योंकि ऋग्वेदकी मूल ऋचामें(१-३२-१२) आये हुए 'सप्तसिन्धून्' शब्द पर टीका करते हुए सायण लिखते हैं—सप्तसिन्धून्। "इमंमे गङ्गे इत्यास्यामृच्याम्नाता गंगाद्याः सप्त संख्याका नदीः" इसी तरह ऋ० वे० १-३४-८; १-३५-८;१-१०२-२; २-१२-३; २-१२-१२; ८-२४-२७ इत्यादिमें भी उनकी टिप्पणियाँ इस शब्दके सम्बन्धमें इसी आशयकी हैं। परन्तु दीर्घकालसे आदृत सप्तसिन्धवः शब्दके प्रसिद्ध तथा साधारणतया स्वीकृत अर्थके तिरिस्कार करनेके लिये जो दलील तथा कारण मि० तिलकने उपस्थित किया है उसकी ओर अब हमें अपना ध्यान देना चाहिये। वे लिखते हैं, " हम यह स्थिर नहीं कर सकते कि जलके सप्त विभाग, जो सामान्य सिद्धान्तकी केवल एक विशेष बात है, पंजावकी नदियों द्वारा सूचित किया गया था, क्योंकि उस दशामें हमें आर्योंके देशान्तर गमन करनेके पहले उनका आवास-स्थान पंजाबको ही ठहराना पडेगा।" (A.H. Vedas P. 291) वे फिर लिखते हैं, " यही नहीं, किन्तु, यह वहुत सम्भव है कि सप्त-सिन्धुशब्दसे स्वर्गीय नदियोंका ही सर्वत्र उल्लेख हुआ है"। (Ibid P. 290) अत एव मिस्टर तिलक 'सप्त सिन्धवः' को आर्यावर्तकी सात सांसारिक नदियोंके अर्थमें लेनेके स्पष्ट विरुद्ध मालूम पडते हैं: क्योंकि ऐसा न करनेसे पंजाव आर्योंका उत्पत्तिस्थान प्रमाणित होजायगा और उत्तरीध्रुव-सम्बन्धी उनका सिद्धान्त सम्भवतः रद्द होजायगा अतएव वे सप्त सिन्धवः से स्वर्गीय नादियोंका अर्थ निकालना सुगम समझते हैं, यद्यपि इस प्रकारके अर्थके लिये वे कोई

पूर्वकल्पना की जायगी या जैसा कि अभी प्रकट कियाजायगा यह उनकी तर्क-प्रणालीसे विपरीत उतरेंगी । क्योंकि वे समझते हैं कि, सोमयाग उत्तरी ध्रुव और योरप तथा एशियाके उत्तरी देशोंमें उसके आर्यावर्तमें प्रसिद्ध होनेके बहुत पहलेसे जोरोंके साथ प्रचलित था। यद्यपि यहाँ आर्यावर्तमें उसका परिज्ञान प्रारम्भिक था. क्योंकि

–स्वतंत्र प्रमाण नहीं देते हैं। परन्तु इसके सिवा मिस्टर तिलकको फिर एक दूसरी कठिनाईसे सामना होजाता है । यह कठिनाई उससे भी अधिक वजनदार मालूम पडती है । यह अवेस्तिक धर्म ग्रन्थोंका एक बिलकुल स्वतंत्र प्रमाण है जो सप्त सिन्धवः जिसका जेन्द भाषामें अपभ्रंशरूप हप्त हिन्दु है । इस आशयका समर्थन करताहै कि उसका मतलब अर्यावर्तकी सात सांसारिक नदियोंसे है (देखो वेन्दी दाद पहला फरगर्द) परन्तु इस बलिष्ठ तथा अकाट्य प्रमाणको भी, जो जेन्दिक धर्म ग्रन्थोंसे निकाला गया है, मिस्टर तिलक अपनी दलीलोंसे हवामें उड़ादेनेका प्रयत्न इस तरह करते हैं–हप्तहिन्दुशब्दकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें, जो अवस्तामें भारतके संकेतके लिये प्रयुक्त हुआ माना जाताहै । हम, मैं समझताहूँ, कल्पना करके उसकी यह व्याख्या कर सकते है कि सप्तसिन्धु एक प्राचीनशब्द है, जिसे आर्यलोग अपने नये वासस्थानमें अपने साथ लेगये थे और उन्होंने उसे वहाँ नये स्थानों या देशोंके लिये उसी तरह प्रयुक्त किया था जैसे कि अंगरेज प्रवासी अपनी मातृभूमिके प्राचीन नामोंको अपनी नयी वस्तियोंके नये स्थानोंके लिये इस समय प्रयुक्त करते हैं । (Ibid p. 292) वे और भी लिखते हैं, " अतएव यह मानना अधिकतर स्वाभाविक है कि ये सब प्राचीन पौराणिक नाम थे, जिनको आर्यप्रवासी अपने नये आवासमें अपने साथ ले गये थे और वहाँ उन्हें नये स्थानों या नई वस्तुओंके लिये प्रयुक्त किया था । "(Ibid p. 293) परन्तु मिस्टर तिलकने अपनी इस दलीलके सिवा कोई प्रमाण नहीं दियाहै । वे केवल यही कहते हैं कि सप्तसिन्धु, सरस्वती, रसा इत्यादिके नाम उत्तरीध्रुव या योरप तथा एशियाके उत्तरी प्रदेशोंसे लाये गये थे या वे वहीं किसी स्थान या नदकि नाम थे । अतएव ऐसी दशामें मिस्टर तिलकका यह तर्क निराधार कहा जा सकता है ।

सोमकी उत्पत्तिभूमि केवल यही एक देश थी परन्तु उन लोगोंने इस बातकी बिलकुल उपेक्षा कर दी है। तोभी उपर्युक्त समर्थक समझते हैं कि जब महाहिम युगके आगमनपर आर्योंने दक्षिण ओर देशान्तरगमन किया था और उत्तरीध्रुवमें हिम तथा तुषारके मोटी मोटी तहोंके एकाएक जमजानेसे उनका कल्पित उत्तरी आवास विनष्ट होगया था उस समयके पहले सोमयाग उत्तरीध्रुव और योरप तथा एशियाके उत्तरी प्रदेशोंमें होतथा. क्योंकि मिस्टर तिलक लिखते हैं कि, " आर्यजातियोंका मूल आवास मध्य एशियामें नहीं, किन्तु उत्तरीध्रुवके समीप स्थित था और हिमयुगके आगमनपर वह विनष्ट होगया था। अतएव भारतीय-ईरानी उस देशका परित्याग करनेको वाध्य हुए और दक्षिण ओर चले गये थे. (A. Home P. 390) वे फिर लिखते हैं, " सोमयाग प्राचीन है और यह बात पारसी धर्मग्रन्थोंकी तद्वत् क्रियाओं द्वारा पर्याप्त रीतिसे सिद्ध है। सोमके परिज्ञानके सम्बन्धमें भारतीय-योरपीय कालमें हमें चाहे जैसा सन्देह हो. क्योंकि उक्त शब्द योरपीय भाषाओंमें नहीं मिलता है। तो भी यज्ञोंकी पद्धतिके प्रवर्तनका पता आदिम कालतक साफ साफ लग सकता है, और इस यागीय पद्धतिमें सोमयाग सब तरहसे प्राचीनतम सरलताके साथ माना जा सकता है; क्योंकि ऋग्वेदके कर्मकाण्डका वह प्रधान अङ्ग है। ऋग्वेदका ११४ ऋचाओंका पूरा मण्डल सोमकी स्तुतिही है।" (pp. 205, 208 Ed. 1903) अस्तु सारे प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानोंने किसी न किसी तरह सोमयागकी पुरातनता, स्पष्टरीतिसे स्वीकार की है निस्सन्देह यह एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण बात है॥

सातवाँ अध्याय.

आर्योंका मूल-स्थान सरस्वतीनदीका देश.

वैदिक गाथामें सरस्वती-नदी एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण नदी है। इसका पहला कारण उसकी पवित्रता है। उसकी यह पवित्रता इस बातसे है कि उसका देश सृष्टिका लीलाक्षेत्र है और जीवनका प्रादुर्भाव पहले पहल वहींपर हुआ उसके महत्त्व पूर्ण होनेका वह दूसरा कारण है। (देखो पीछे पृ० १८) इसके सिवा सरस्वती-नदीका देश आर्योंका मूल-स्थान था। क्योंकि तृतीय कालीन युगके हमारे पूर्व पुरुष तथा पुरातनकालके उनके बाप-दादे, यही नहीं, किन्तु सारी आर्यजातिके सर्व प्रथम माता-पिता और आदिम पूर्व पुरुष यहीं सरस्वतीनदीके देशमें उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अपनी भावी सन्तानको सप्त-सिन्धुदेशकी यही नहीं किन्तु वृत्रघ्नी (... सरस्वती घोरा ... वृत्रघ्नी ६-६१-७) नामसे पुकारीजानेवाली अत्यन्त पवित्र सरस्वती नदीकी भी अपने समय तथा उससेभी अधिक पुरातन भूतकालकी सब प्रकारकी परम्परागत कथायें हस्तान्तरित की थीं। मालूम पडता है कि प्राचीन कालके हमारे पूर्वपुरुष हमारे लिये एक अमूल्य निधि छोड गये हैं, यह निधि अटूट धनकी एक खान है, जो अगणित विषयोंकी अत्यन्त मूल्यवान् सूचनायें धारण किये हैं. यहां मुझे यह कहनेकी कठिनताके साथ आवश्यकता है कि, वह निधि हमारा ऋग्वेद है और इसीमें हमारी खोजोंके लिये सफलताकी सम्भावना है। कि वास्तवमें जब प्रकृतिनेही सरस्वती नदीके किनारोंपर या उसके देशमें जीवनकी रचनाका अपना काम प्रारम्भ किया तब मेरे विचारसे उसका अनुधावन करना ठीकही होगा। क्योंकि वह एक विश्वासी पथ दर्शक है. हमने पहलेही लिखदिया है कि सरस्वतीका देश सृष्टि तथा जीवनका लीला क्षेत्र था और हमारे वैदिक भुगर्भशास्त्रियोंके मतसे सबसे पहले इसी देशमें जीवनका प्रारम्भ

हुआ था. यहींपर जीवनकी सूरतोंमें धीरे धीरे अगणित विकास हुए। यहाँतक कि सृष्टिका मुकुट मनुष्य लीलाक्षेत्रमें अवतीर्ण हुआ, अतएव उसके आगमनके उपरान्त उसके आवाद होने, संरक्षा तथा उसकी भलाईके लिये सरस्वतीको उसे भूमि-प्रदान करनी पडी थी। अतएव यह बात स्वाभाविक रीतिसे ठीक है कि मानव जातिका या यह कहिये कि आर्यमानवजातिका सर्व प्रथम मनुष्य सरस्वती-नदीके देशमेंही जहाँ जीवनका पहले पहल प्रादुर्भाव हुआ था। (त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूँषि देव्याम्। ऋ० वे० २-४१-१७), सबसे पहले उत्पन्न हुआ। मानव-जातिकी इस प्रथम जननीने (सरस्वतीने) आर्यावर्त देशमें सबसे पहले मनुष्यका जन्म देकर उसकी इसी जन्म-भूमिमें उसे अपने बच्चेको भूमिप्रदान किया, क्योंकि उसको ऐसाही करना पडा था। ऋग्वेदमें लिखा है, " और तूने (सरस्वती) मनुष्योंके लिए भूमि प्राप्त की है " (उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दः। ऋ० वे० ६-६१-३) फलतः ऋग्वेदमें यह बात लिखी मालूम पडती है कि उसने मानवजातिके लिए (क्षितिभ्यो) भूमि (अवनीरविन्दः) खोजी तथा प्राप्त की. ऋग्वेदमें हमको यहाँतक लिखा मिलता है कि सरस्तीनदीने हमको अपने देशमें केवल जीवन (अयूँषि ऋ० वे०२ ४१-१७) ही नहीं दिया है, किन्तु हमारे आवास तथा संरक्षाके लिये भूमि (अवनीः ऋ० वे० ६-६१-३) तथा जलभी (विषम् ऋ० वे० ६-६१-२) या यह कहिये कि जीवनके पालनके लिए आहार (दूधके सदृश जल) भी (पयसा ऋ० वे० ६-६१-१४) प्रदान किया है। इसीसे वह ऋग्वेदमें (२-४१-१६) उत्कृष्ट माता (अम्बितमे) उत्तमनदी (नदीतमे) और श्रेष्ठतम देवी (देवितमे) कहकर सम्बोधित की गई है। इसके सिवा सरस्वतीनदीसे इस बातकी प्रार्थना की गई मालूम पडती है कि तू हमलोगोंको अपने बच्चोंको-अपना दूध देनेसे कभी इनकार न करे (सरस्वति...

पयसा मा न आधक् ऋ० वे० ६-६१-१४)। यहीं नहीं किन्तु उत्सुकताके साथ उससे यह निवेदन किया गया मालूम पडता है कि तू हमें बडे विशाल कोश प्रदान करे हमारा अनुराग तथा आज्ञाकारिता स्वीकार करनेको अपना भाव व्यक्त करे। इसी तरह उससे इस बातकीभी प्रार्थना की गई थी कि तू हम लोगोंके साथ घृणाका नहीं किन्तु दयाका व्यवहार करनेकी कृपा करे और हमें न तो कभी जुदाई भोगने दे और न अपने पाससे सुदूरदेशोंको चलेजानेदे।

"सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मा पस्फरीः पयसा मा न आधक्।
जुषस्व नः सख्यावेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म॥"
(ऋ० वे० ६-६१-१४)

ग्रीफिथ इस ऋचाका अनुवाद इस तरह करते हैं:—"हे सरस्वति! हमें बडे बडे खजानोंकी ओर ले चल, हमें न तो अपना दूध देनेसे इनकार कर और न हमें अपने पाससे अलगही कर, प्रसन्नताके साथ हमारी मित्रता तथा आज्ञाकारिता स्वीकार कर, हमें अपने पाससे दूरदेशोंको न जाने दे[1]।" यह स्पष्ट मालूम पडता है कि ये सारी प्रार्थनायें सरस्वतीनदीको प्रसन्न करनेकी अपेक्षा किसी दूसरे मतलबसे नहीं की गई थीं और इस तरह उसका प्रेम प्राप्त किया गया था। क्योंकि हमारे वैदिकपूर्वपुरुषों उसके प्रति बहुत अधिक

---

१. यह ऋचा सरस्वतीका हमारा जन्मगत प्रेम तथा स्वाभाविक स्नेह इस तरह सूचित करती है कि उससे जुदाईका भाव मात्र और उसके पाससे दूर देशोंको चले जानेका विचार तक, जिससे जुदाई होजानेकी स्पष्ट सम्भावना है, हमारे आदिम पूर्व पुरुषों तथा वैदिक बाप दादोंको असह्य था। उसके देशके बाहरके देशमें सप्तसिन्धु देशभी शामिल है, क्योंकि इन सात नदियोंके अन्तर्गत सरस्वतीभी थी, (उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सरस्वती। ऋ० वे० ६-६१-१०; स्वसृरन्या ऋतावरी। ऋ० वे० ६-६१-९; सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता। ऋ० वे० ७-३६-६) साफ साफ दूरस्थ तथा विदेश माने जाते थे। (मनु-२-२३; ......)

ध्यान तथा आदरका भाव रखते थे। अतएव इस सम्बन्धमें वह प्रधान पदपर आसीन है और अत्यन्त प्रिय तथा अति प्रसिद्ध सात नदियोंमेंभी वह सर्व प्रथम है। ऋग्वैदिक ऋषियोंके शब्दही इस बातको सिद्ध करते हैं। वे कहते हैं, "उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा सरस्वती स्तोम्याभूत्" ॥ "हां, सात प्यारी बहिन नदियोंसे वह अत्यन्त प्यारी है। कृपाके साथ अनुरक्त सरस्वतीने हमारी प्रार्थनायें ग्रहण करलीं" (Griffith R. V. VI 61, 10) वास्तवमें सरस्वतीके प्रति हमारे पूर्वपुरुषोंकी गहरी भक्ति, ऊँचा आदर तथा बडे गर्वकी भावनाथी। मालूम होता है कि यह भावना इस बातसे हुई थी कि वे लोग उसके नामके साथ लगेहुए सारे प्राचीनतम ऐतिह्य, उसकी अत्यन्त प्राचीनता, उसकी देवोपम पवित्रता और निर्मलतासे पूर्णतया परिचित थे। इसीकारण वह, श्रेष्ठतम माता, उत्कृष्टनदी और महादेवी आदिनामोंसे अभिहित की गई है (ऋ० २-४१-१६) सरस्वतीके इस सहज प्रेम तथा उच्चतम आदरकी विनम्र भावनाओंके प्रवाहका लक्ष्य कोईभी सरलताके साथ देख सकता है। जब कभी उसे सम्बोधित करनेका अवसर प्राप्त होता है या जब उसका नामही उल्लेख किया जाता है तभी हमारे तृतीय कालीन पूर्व पुरुष प्रत्येक समय उपर्युक्त भावनाओंको व्यक्त करतेहुए पायेजाते हैं। अतएव पाठकगण इस बातकी ओर समुचित ध्यानदें और देखें कि आर्यावर्त या सप्तसिन्धु देशमें क्या हमलोग वास्ततमें विदेशी थे जैसा कि भ्रमात्मक विचारके वशीभूत होकर कुछ लोगोंने अनुमान किया है। इतनी अधिक विनम्रता एवं उद्वेगके साथ, इस छोटीसी सरस्वती नदीका स्मरण करना क्या सम्भव है? वह तो उस विशाल एशियाई उच्च-समभूमिसे केवल बहुत दूरही नहीं है (जहाँसे हम लोगोंके भारतमें देशान्तर्गमन करनेकी भ्रमपूर्वक कल्पना की गई है) किन्तु भारतकी पश्चिमोत्तरी सीमा या हिन्दूकुशकी घाटि-

थोंसेभी बहुत दूर है और मध्यएशिया या योरपके महाद्वीप या उत्तरी ध्रुवदेशसे तो बेहद दूर है, जो भ्रमपूर्वक आर्योंके उत्पत्ति स्थान कल्पित किये गये हैं। वास्तवमें सरस्वतीनदी केवल इस बातके कारण पवित्र मानीजाती थी कि वह देश सरस्वतीहीका देश था जहाँ सबसे पहले जीवनका प्रारम्भ हुआ था, वहदेश जो सृष्टिका लीलाक्षेत्र अनुमान किया गया था वह देश जिसने हमें अपने निजके उत्कृष्ट, सुन्दरतम और प्रियमत दृश्योंसे विभूषित स्वदेशी कविता, स्वदेशी धर्म, स्वदेशी साहित्य और स्वदेशी सभ्यता प्रदान किया है, यही नहीं, किन्तु जो प्रकृतिद्वारा बाहरी आक्रमणोंसे मजबूतीके साथ सुरक्षित है और चारों ओरसे सुस्थिर सीमाओंद्वारा परिवेष्टित है अर्थात् उत्तरमें हिमाच्छादित हिमालयके उच्चतम शृंगोंसे दक्षिणमें विन्ध्यगिरिकी श्रेणीसे और पूर्व तथा पश्चिममें पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्रोंसे अच्छी तरह घिरा है। सर्व प्रथम तथा सबसे पहले बडे आदर तथा प्रेमके साथ सरस्वती नदीके उल्लेखका स्पष्टकारण यही था। ऋग्वेदके बिलकुल प्रारम्भमें तथा उसके पहलेके अंशोंमें भी सरस्वती नदीके सम्मानके साथ उल्लेखका कारण यही मालूम पडता है। (ऋ० वे० १-३-१०,११,१२,१-१६४-४९,२-३० ८,२-४१-१६,१७ इत्यादि) यद्यपि यह बात ठीक है कि वह भारतकी पश्चिमी सीमासे बहुत दूर केवल एक छोटीसी नदी ही नहीं है, किन्तु उसके मध्यभागमें बहती है या उत्तरी भारतके उस मध्यदेशकी कुछ कुछ पश्चिमी सीमा बनाती है जो मध्य देशहीके नामसे अभिहितभी था और जिसका वर्णन हमारे श्रेष्ठ स्मृतिकार मनुने नीचे लिखे अनुसार सुन्दरताके साथ किया है:-

" हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग् विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः " (२-२१)

यही नहीं, किन्तु सरस्वती नदीकी पवित्रताके सम्बन्धमेंभी ऋग्-वेदमें सर्व प्रथम और सबसे आगे बुद्धिमानीके साथ उल्लेख हुआ है (पावका नः सरस्वती....ऋ०वे०१--३--१०) । वहीं दूसरे स्थलमें वह मेघ-सर्परूपी वृत्रकी भयंकर विनाशिनी उल्लेख की गई है । (सरस्वती घोरा.... । वृत्रघ्नी.... ऋ० वे० ६–६७–७) और अपने इस रूपमें उसने मनुष्य-जातिके लिये लाभदायक वृष्टिकी झडी लगा देनेवाली बताई गई है । (विश्वमेभ्यो अस्रवः ऋ० वे० ६–६१–३) परन्तु इसकी अपेक्षा अधिक महत्त्वका उल्लेख यह हुआ है कि सर-स्वतीने उसके लिये भूमि प्रदान की है (उत क्षितिभ्योऽवनीर-विन्दः ऋ० वे० ६–६१–३) । दूध पिलानेवाले स्तनवाली या विशेष करके जलकी धारा–प्रसन्नताके अटूट स्रोतवाली चुनी हुई वस्तु-ओंकी खिलानेवाली, सम्पत्ति प्रदायिनी इत्यादि उसके दूसरे गुणोंका उल्लेख आगेकी ऋचामें स्पष्ट रूपसे किया गया है–यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वापुष्यासि वार्याणि । यो रत्नधावसु विद्यः सुदत्रः सरस्वति धातवेकः ऋ० वे० १–१६४–४९) । परन्तु केवल अकेला एक यही उदाहरण नहीं है जिसमें सरस्वती नदी और उसके देशको हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंने अपने निजके अनुभवसे या अपने आदिम पूर्वपुरुषोंसे प्राप्त परम्परागत प्रभावोंके मतानुसार प्रत्येक वस्तुको आदिमें तथा सर्व प्रथम विनम्रताके साथ वर्णन किया है । क्योंकि यह मालूम पडता है कि सरस्वती नदीका देश सम्भ-वतः सारी प्रक्रियाओंका क्षेत्र तथा केन्द्र था । यहींसे हमारे उपनिवेश चारों ओर स्थापित हुए थे । विशेष करके देशान्तरगमनका केन्द्र यही स्थान था । यहाँसेही प्राचीन कालके हमारे पूर्व-पुरुष पहले पूर्वकी ओर फैले थे और तब पश्चिमकी ओर गये थे । उसी तरह वे लोग उत्तर तथा दक्षिणकी ओर भी गये थे । इस रह वे लोग अपने सारे शत्रुओंके परे और सरस्वती नदीकी दूसरी बहन–नदियोंके

अर्थात् उसके सहित आर्यावर्तकी संसार प्रसिद्ध सात नदियोंके देशोंके आगे फैल गये थे। ये सारी बातें ऋग्वेदमें पूर्णरीतिसे उल्लेख की गई मालूम पडती हैं। अतएव हम तत्सम्बन्धी प्रमाणको आगे उपस्थित करनेका विचार करते हैं और इन बातोंकी पुष्टिके लिये उसे पाठकोंको दिखलाते हैं।

सरस्वती नदीके पूर्व ओर हमारा पहला देशान्तरगमन।

सरस्वती नदीके देशमें जन्मलेनेके बाद हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंका देशान्तरगमन पहले पहल इस नदीके पूर्व ओर हुआ था। हमारे प्राचीन पूर्वपुरुष यागप्रेमी आर्य थे, अतएव वे स्वभावतः यज्ञकी सारी सामग्री अपने साथ लेते गये थे। उसी तरह वे सरस्वती नदीके पश्चिम ओरके देशोंको भी गये थे। वे पश्चिम ओर अपने पूर्वके उपनिवेशोंसे लौटकर गये थे। उस समय सदानीरा नदीके किनारेतक उनके उपनिवेश स्थापित हो गये थे। परन्तु उन्होंने सदानीराको पार नहीं किया था, क्योंकि उसके आगेका भूभाग अत्यन्त अधिक नरम दलदला, अस्वास्थ्यकर एवं बसनेके अयोग्य था इसके सिवा वहाँका जलवायु भी उनको असहनीय था। (देखो आगे १२ वां अध्याय अग्नि)। वास्तवमें एक अत्यन्त प्राचीन तथा अत्यधिक विश्वसनीय प्रमाण ऋग्वेदमें मिला है। इससे हमें यह मालूम होता है। कि वह इसी नदीका देश था जहाँसे हमारे आदिम पूर्वपुरुष सात नदियोंके आगे दूर देशोंमें बसनेको गये थे और सरस्वती नदीकी कृपासे सारे शत्रुओंके बीचसे होकर चले गये थे (सा नो विश्वा अतिद्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी अतन्....... ऋ० वे० ६–६१–९); वह यही केन्द्र था जहाँसे हम लोग स्वयम् चारों ओर फैल गये थे और पूर्व तथा पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिणमें अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। ऐसा करते समय इन्द्रसे प्रार्थना की गई थी कि भूमण्डलके सारे देशोंमें–पूर्व तथा पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिणमें

अपने विजयी अस्त्र ले जाने तथा अपने सारे शत्रुओंका नाश करनेके बाद वहां अपना झंडा गाडनेको वह हमें समर्थ करे (अप. प्राच इन्द्र विश्वा अमित्रानपापाचो अभिभूतेनुदस्व अपोदीचो अप शूरा धरा च .... । ऋ० वे० १०-१३१-१) वह सरस्वतीका यही देश था जहाँसे हमारे आदिम पूर्वपुरुष अपनी यागीय अग्निके सहित सरस्वती नदीके पूर्व ओर (अग्नेत्वा पूर्वमनयन्.....ऋ० वे०१-३१-४) सदानीरा नदीतक और उसके आगे भी गये थे। उन्होंने पहले पहल इसी ओर देशान्तरगमन किया था और यहीं अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। परन्तु यह भूमाग बहुतनम, अस्वास्थ्यकर तथा बसनेके अयोग्य प्रमाणित हुआ । क्योंकि यह भूभाग आगसे जलाया नहीं गया था, देखो शत०ब्रा०१-४-१-१०) अतएव उन्हें इन उपनिवेशोंके पश्चिम ओर अर्थात् सरस्वती नदीके किनारेकी ओर फिर लौटना पडा था (आऽपरंपुनः । ऋ०वे० १-३१-४) इस सम्बन्धमें जो थोडा वर्णन ऋग्वेदमें किया गया है वह आगे उद्धृत किया जायगा इसके सिवा एक दूसरे स्थलमें (ऋ० वे० ४-१५-४) यह बतलायागया है कि देववात और देवश्रवस नामक भरतके दो बेटोंने पूर्वदिशामें (अमंथिष्टां भारतारेवदग्निं देववातः सुदक्षं । ऋ०वे०३-२३-२) दशक्षिपः पूर्व्यंसीमजीजनत् ....३-२३-३) सृञ्जयके घरमें अग्निको प्रज्वलित किया (अयं यः सृञ्जये..समिध्यते । ऋ०वे०४-१५-४) और वह पूर्वी स्थान जहाँ अग्नि इस तरह उत्पन्न की गई थी या पहले पहल जलाईगई थी सरस्वती, दृषद्वती और आपया नामकी नदियोंका देशही मालूम पडता है। क्योंकि जिस स्थानमें वह जलाई गई थी उसके सम्बन्धमें ऋग्वेदमें (३-२३-४) इन्हीं नदियोंका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। (नित्वा दधेवर आपृथिव्या इलायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् । दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्नेदिदीहि ॥ ऋ०वे०३-२३-४)

" उसने (देववातने) किसी शुभ दिन तुझे पृथ्वीके अत्यन्त प्यारे स्थानमें इलाकी जगहमें नदियोंके-दृषद्वती, आपया, और सरस्वतीके देशमें स्थापित किया । अतएव हे अग्नि तू प्रभाके साथ प्रकाशमान हो" । इस तरह जब एक और संसारका अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद आर्योंके मूलस्थान अर्थात् सरस्वती नदीके देशसे पूर्व ओर हमारे प्रथमके देशान्तरगमनके सम्बन्धमें सूचना देता है तब दूसरी ओर शतपथ ब्राह्मणभी इस मतको पुष्टकरता है, और इस सम्बन्धकी बातोंका समर्थन करता है और सदानीरा नदीके आगेके भूभागमें पूर्व ओर देशान्तरगमन करने तथा वहाँकी हमारी प्रथमकी बस्तियोंके सम्बन्धमें हमें समुचित विवरण प्रदान करता है । परम्परा, इतिहास तथा खोजसम्बन्धी दृष्टिके विचारसे उसका इस प्रकारका उल्लेख बडे महत्त्वका है । अतएव उसका कुछ अवतरण उसके अँगरेजी अनुवादके भाषान्तरके सहित यहाँ उपस्थित किया जाता है--

विदेघो ह माथवोऽग्निं वैश्वानरं मुखेबभार । अथाऽस्य घृतकीर्तावेव....सो (ऽग्निः) ऽस्य (विदेघमाथवस्य) मुखाग्निष्पेदे स इमां पृथिवीं प्रापाथः । तर्हि-विदेघो माथव आस सरस्वत्याम् । स तत एव प्राङ्दहन्नभीयायेमां पृथिवीम् । तं गोतमश्च राहूगणोविदेघश्च माथवः पश्चाद्दहन्त मन्वीयतुः । स इमाः सर्वा नदीरतिददाह । सदानीरेत्युत्तराद्गिरेर्निर्धावति । तां ह एव नातिददाह तां हस्मतां पुराब्राह्मणा न तरन्ति । अनतिदग्धाऽग्निना वैश्वानरेणेति । तत एतर्हि प्राचीनं बहवो ब्राह्मणाः । तद्धाक्षेत्रतरमिव आसस्रावितरमिवास्वादित मग्निना वैश्वानरेणेति । तदुह एतर्हि क्षेत्रतरमिव ब्राह्मणा उ हि नूनमेनद् यज्ञैरासिष्विदन् । साऽपिजघन्ये नैदाघे समिवैव कोपयति तावच्छीता ऽनतिदग्धा ह्यग्निना वैश्वानरेण । स होवाच विदेघो माथवः काहं भवानीति । अतएव ते प्राचीनं भुवनमिति होवाच । सैषाऽप्येतर्हि कोसलविदेहानां मर्यादा । (शतपथ ब्राह्मणम् । १-३-१०-१०)

" माथव विदेघने वैश्वानर अग्निको अपने मुँहमें रक्खा था । घृतका उच्चारण करतेही जब वैश्वानर अग्नि उसके मुँहमें प्रज्वलित हो उठी तब वह उसे न रोक सका । अतएव वह उसके मुँहसे बाहर निकल-पड़ी और इस पृथ्वीपर गिरपड़ी । वह उस समय सरस्वती नदीपर (यामें) था । इसके बाद (अग्निने) पूर्व ओर देशको जलाते हुए इस पृथ्वीका भ्रमण किया । तब रहूगण गोतम और माथव विदेघ उसके पीछे पीछे चलनेलगे और वह जलाती हुई आगे आगे उसने मार्गकी सारी नदियोंको पारकिया और सारे भूभागोंको जलाया । परन्तु उसने उत्तरी पर्वतसे (हिमालयसे) निकलनेवाली सदानीराके पार नहीं जलाया । उस नदीके पार पहले ब्राह्मण नहीं जाया करते थे, क्योंकि उसके पारका भूभाग वैश्वानर अग्नि नहीं जलाया था । परन्तु अब बहुतेरे ब्राह्मण उसके पूर्वमें रहते हैं । किन्तु वैश्वानर अग्निने उसे नहीं जलाया था, अतएव वह बसनेके अयोग्य तथा दलदल पूर्ण था [1] । परन्तु अब वह बसनेके योग्य हो गया है, क्योंकि ब्राह्मणोंने वहाँ यज्ञ किये हैं ग्रीष्मके अन्तमें उसके पार उतर-कर आगेका भूभाग वैश्वानर अग्निद्वारा नहीं जलाया गया था, अत-एव शीतल रहनेके कारण यह नदी मानो सुगन्धिसे बसाई गई है । माथव विदेघने कहा—मैं कहाँ रहूँगा । (अग्निने) उत्तर दिया—तेरा घर इस (नदीके) पूर्व ओर (होगा) । यह नदी इस समय कोशल और विदेह लोगोंकी सीमा है, क्योंकि विदेह लोग माथव

---

१. क्योंकि रहूगण गोतम माथव विदेघका पुरोहित था जैसा के शतपथ ब्राह्मणमें लिखाहे (तस्य गोतमो रहूगण ऋषिः पुरोहित आस । श० प०·ब्रा०१-२-१, १०) । हम ऋग्वेदमेंभी रहूगण गोतमको अग्निकी स्तुति करतेहुए तथा उसकी स्तुतिके सम्बन्धकी ऋचाएँ गाते हुए बहुधा पाते हैं (अग्ने वाम-रहूगण, अग्न ये मधु मद्वचः । द्युम्नैरभि प्रणोनुमः। ऋ० वे० १-७८-५) रहूगणने जो ऋचाएँ कही हैं ऋग्वेदमें मिलेगी (५-२६-२,३,८-४४-१६)

है।" (Muirs Original Sanskrit Texts Vol. 2 p. 402 403 Ed. 1871) इन उद्धृतांशोंसे यह सरलताके साथ मालूम होजायगा कि अग्निको सरस्वतीके पूर्व सदानीरा तथा उसके पारतक लेजानेके पहले वह (अग्नि) सरस्वतीनदीके देशमें थी क्योंकि असलमें वही उसका जन्मस्थान था। सरस्वती-नदीके ही किनारे या उसके देशमें जीवनका प्रारम्भ हुआ था अतएव सारे जीवधारी वहीं उत्पन्न हुये और पहले पहल आग भी वहीं जलाई गई स्पष्टरीतिसे हमारा देशान्तरगमन पहले-पहल इस देशसे पूर्व ओर वीहार और बंगालमें हुआ था। अतएव हमारे उपनिवेश स्थापित हुये थे तथा वाहरके देशोंमें हमारी वस्तियाँ आवाद हुई थी, यह बात ऊपरके प्रमाणसे पूर्णरीतिसे प्रकट है। इसी कारण शतपथ ब्राह्मणमें लिखा गया है कि "माथव विदेघ उस समय सरस्वती नदीपर था। अर्थात् इस नदीके पूर्व अग्निके पहुँचाये जानेके पहले (तर्हि विदेघो माघव आस सरस्वत्याम्। श० प० ब्रा० १-४-१-१०), और सरस्वती नदीका देश छोडदेनेके वाद अग्निने पूर्व ओर जलातेहुये पृथ्वीके इस भागका भ्रमण किया (सतत एव प्राङ् दहन्नभियायेयां पृथिवीम्। शत० प० ब्रा०) जल वायु तथा देशके वसनेके योग्य न होनेके कारण जव यह पायागया कि जो हमारे उपनिवेश सरस्वती नदीके देशसे पूर्व ओर यागीय अग्निके सहित स्थापित हुये थे (अग्ने त्वा पूर्वमनयन्। ऋ० वे० १-३१-४) वे वहाँ समुन्नत न होसके। अतएव यह निश्चय हुआ कि हमारे प्रवासियोंमेंसे कुछ लोग वहीं परीक्षाके लिये और कुछ समय तक रह जायँ (सदानीरा नदीके आगे हमारे पूर्वी उपनिवेशमें) और अवशिष्ट लोग पश्चिम ओर लौट जायँ (अपरं पुनः। ऋ० वे० १-३१-४)। इन सारी महत्त्वपूर्ण वातोंका मूल ऋग्वेदमेंभी प्राप्त होता है। शतपथ ब्राह्मणमें तो अपने परम्परागत अभिप्रायके सहित ये अपने असली रूपमें प्रकट

हुई हैं। ऋग्वेदकी मूल ऋचा अर्थ समझना कुछ सरल काम नहीं था। परन्तु शतपथ ब्राह्मणकी सहायतासे उसकी व्याख्या स्पष्ट होगई है। फिर हमने पूर्वसे पश्चिम ओर यात्रा की थी, यह बात हमें ऋग्वेद (३-३३, १०-७५-५, ६) से स्पष्ट प्रतीत होती है। हमें ज्ञात होता है कि महाराज सुदासके पुरोहित विश्वामित्र (कुशिकस्य सूनुः ऋ० वे० ३-३३-५) सरस्वती-नदीसे सिन्धुके आगेके देशको गये थे। अतएव विश्वामित्र विपाश (व्यासा[1]) और शतद्रु (सतलज) नदियोंके संगमपर आये (विपाट्छुतुद्री ... ऋ० वे० ३-३३-१, अत्या वामन्यामप्येति शुभ्रे (ऋ० वे० ३ ३३-२) और उन नदियोंको तथा सिन्धुको इन्होंने पार करना चाहा (अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीसुभगामगन्म ऋ० वे० ३-३३-३)

---

१. (ऋ० वे० ३-३३ की) ऋचामें शतद्रु (सतलज), विपाश (व्यासा) और सिन्धु नामकी नदियाँ प्रत्यक्ष रीतिस उल्लेख की गई स्पष्ट प्रतीत होती है (ऋ० वे० ३-३३-१;३-३३-३), यद्यपि संगम पार करनेके उपरान्त सिन्धुतक आनेके पहले पंजाबकी दूसरी नदियाँभी मार्गमें पडी थीं। ऋग्वेद ३३-३ में सायण सिन्धुसे अटक नदीका संकेत नहीं मानते, वे स्रवती या बहतीहुईके अर्थसे उसे शतद्रु अनुमान करतेहैं। परन्तु मूलकी पश्चात्की ऋचाओंमें बहुवचनके व्यवहारसे (अर्थात् वयम्, पिन्वमानाः, चरन्तीः, नद्यः, चोथी ऋचामें, रमध्वं, ऋतावरीः पांचवी ऋचामें; अस्यां, नदीनाम्, वयं और यामः छठी ऋचामें; स्वसारः, शृणोत, नमध्वं नवीं ऋचामें; शृणुयाम, दसवीं ऋचामें और नदीनाम्, आपिन्वध्वम्, इषयन्तीः, सुराधा, पृणध्वं और यातः भी बारहवीं ऋचामें) नई कठिनाई उत्पन्न हो गई है। अतएव सायणने यह कहकर उसकी व्याख्यां करनेकी चेष्टाकी है कि बहुवचन द्विवचनके लिये आदरार्थ व्यवहृत हुआ है (द्वयोर्बहुवचनं पूजार्थम्) परन्तु इस बातके लिये वहां किसी तरहकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है। क्योंकि वहां तीन नदियोंका अर्थात् शतुद्री, विपाश और सिन्धुका स्पष्ट उल्लेख है और इन तीन नदियोंको सूचित करनेके लिये बहु वचनका प्रयोग जान बूझकर हुआ है।

जब विश्वामित्रकी प्रार्थनायें इन्होंने सुनली (आते कारो शृणु-वाम वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन । ऋ० वे० ३-३३१०) तब वे पार उत्तर गये, क्योंकि वे नदियाँ उतरने योग्य हो गई थीं। विश्वामित्र योद्धाओंके दल-भरतवंशियोंके साथ गाडी और रथोंमें आये थे। अतएव उन्होंने नदियोंसे उन सबको मार्ग देनेके लिये प्रार्थनाकी थी (रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहुर्तमेवैः । ऋ० वे० ३-३३-५, ओ षु स्वसारः कारनेशृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन । निपुनमध्वं भवता सुपारा अधोअक्ष्त्र सिंधवः स्रोत्याभिः ॥ ऋ० वे० ३-३३-९) इस तरह हमारे भारतीय आर्य पूर्वपुरुष भरतवंशियोंने इन उपर्युक्त नदियोंको पार किया था (अतारिषुर्भरता ऋ० वे० ३-३३-१२) और उनकी यात्राकी दिशा स्पष्टरीतिसे पूर्वसे पश्चिम थी अर्थात् सरस्वतीनदीके किनारेसे (जहाँ महाराजा सुदासके कुल पुरोहित विश्वामित्रको यज्ञकी दक्षिणा खूब मिली थी) सिन्धुपार किसी दूसरे स्थानको गये थे। उपर्युक्त प्रमाणके मतका समर्थन ऋग्वेदमेंभी होता मालूम पडता है ऋग्वेदमें (३-५३-११) में लिखा है कि सरस्वती-नदीके देशसे लेकर उसके पूर्व (प्राक्) तब पश्चिम (अप्राक्) और फिर उत्तरमें (उदक्) हमने दिग्विजय किये और अपने उपनिवेश बसाये यह उल्लेख हुआ है कि विश्वामित्रने अपने पुत्रों और सन्तानोंको आज्ञा दी थी कि तुम-लोग ध्यान देकर (कुशिकाश्चेत्तयध्वम्) महाराज सुदासके घोडेको धन, शक्ति और विजय प्राप्तिके लिये ले जाओ और इस तरह उसे (महाराजको) पूर्व, पश्चिम और उत्तरमें अपने शत्रुओंका विनाश-करनेमें समर्थ करो (अश्वं प्रमुञ्चता सुदासः । राजावृत्रं जंघनत प्रागपागुदगथाः ऋ० वे० ३-५३-११) । इसके सिवा उस उल्लेखसे (१०-१३१-१) हमारे दिग्विजयोंकी दिशा पहले सरस्वती-नदीके पूर्व और तब पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण सूचित

होती है और ऋग्वेदमें (१०–७५–६) आर्यावर्तकीनदियोंके क्रमका उल्लेख पूर्वमें गंगासे प्रारम्भ होकर पश्चिममें कुभ, गोमती, क्रुमुसे समाप्त होता है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि हमारी यात्राकी दिशा पूर्वसे पश्चिम थी। इसतरह सरस्वती नदीकाही देश हमारा मूल–स्थान तथा आर्योंका आवास सिद्ध होता है। अतएव ऐतिहासिक दृष्टिसे यह बात बडे मार्केकी तथा महत्त्वपूर्ण है और इसी कारण पाश्चात्य विद्वानोंकाभी ध्यान स्वाभाविक रीतिसे उस ओर आकृष्ट हुआ है। क्योंकि म्यूर मनुस्मृति (२–१७, २२) पर विचार करते हुए लिखते हैं, " जिस क्रमसे इन कुछ देशोंका अर्थात् (१) ब्रह्मावर्त (क) कुरुक्षेत्र, (ख) मत्स्य, (ग) पाञ्चाल और (घ) सौराष्ट्रके सहित (२) ब्रह्मर्षिदेश, (३) मध्यदेश और (४) आर्यावर्तका एकके बाद दूसरेका उल्लेख कियागया है, उससे यह सङ्केत सूचित होता है कि आर्यलोग सरस्वतीके किनारोंसे क्रमशः..... पूर्व तथा दक्षिण ओर बढ थे। " (Muirs Original Sanskrit Texts Vol. 2 p. 401. Second Edifion 1871) एक दूसरे प्रसिद्ध विद्वान् मिस्टर वेबर सरस्वतीके किनारेसे पूर्वदिशामें ब्राह्मणोंकेप्र याण तथा उनकी धार्मिक रीतियोंके प्रचारके सम्बन्धमें शतपथ ब्राह्मण (१-४-१-१०) की बातको ध्यानमें रखकर वैश्वानर अग्निके सम्बन्धकी प्रसिद्ध गाथाकी ओर सारे विद्वानोंके समुचित ध्यानको आकृष्ट करते हैं। (Vide In Sfup p. 170) परन्तु दूसरे विद्वानोंकी भाँति ये भी भ्रमपूर्वक यह निश्चय करते हैं कि आर्यजातिका मूल–आवास मध्य–एशियाकी उच्च-सम-भूमिमें था। इस सम्बन्धमें ये यह तर्क उपस्थित करते हैं कि इस स्थानसे पारसी आर्योंके पूर्वपुरुषोंने दक्षिण-पश्चिम ओर भारतीय आर्योंके दक्षिण-पूर्व ओर और योरपीय जातियोंके पश्चिम और उत्तर ओर देशान्तरगमन किया होगा। हिन्दुओं या भारतीय–आर्योंने विदेशि–

योंके रूपमें पश्चिमोत्तरसे भारतमें प्रवेश किया था। हिन्दूकुशको पार करनेके उपरान्त वे लोग क्रमशः पंजाबकी नदियोंके किनारे किनारे आगे बढ़े थे और पाँच नदियोंके इस देशकी यात्रा करनेके बाद वे लोग सरस्वती नदीके देशमें अपने आप आबाद हो गये थे। उसी तरह अध्यापक मैक्डानलभी भारतीय आर्योंको भारतके आक्रमणकारी मानते हैं और इस रूपमें ये उन्हें सप्तसिन्धु देशमें विदेशी समझते हैं। वे लिखते हैं, "वैदिक जातियोंका आवास उन भौगोलिक कल्पनाओंके द्वारा जिन्हें ऋचायें प्रकट करती है हमें विदित होता है। हम इनसे निश्चयसे यह परिणाम निकाल सकते हैं कि आर्य आक्रमणकारी बहुत करके हिन्दूकुशकी पश्चिमी घाटियोंसे होकर मैदानोंमें उतरे थे। इसके बाद उन्होंने भारतके पश्चिमोत्तरी कोनेको, जो अब फारसी नामसे पंजाब कहलाता है, पहलेही अधिकृत कर लिया था' संस्कृत पञ्च=पांच, आप=पानी) (Vide Macdonell's History of Sanskrit Literature p. 139, Ed 1900) वास्तवमें मध्य-एशियाई सिद्धान्त एवं योरपीय कल्पना तथा उत्तरी ध्रुव सम्बन्धी प्रश्न बिलकुल निराधार हैं। उन्हें न तो किसी प्राचीन प्रमाणसे सहारा मिलता है और न वैदिक या जेन्दके किसी असली ग्रन्थसेही, यहाँतक कि मध्य एशियाई सिद्धान्तके कट्टर समर्थक मिस्टर म्यूरभी स्वीकार करते हैं कि, "जहांतक मैं जानताहूँ भारतीयोंकी विदेशी उत्पत्तिके सम्बन्धमें किसी संस्कृत पुस्तकमें यहांतक कि अत्यन्त प्राचीन पुस्तकतकमेंभी कोई स्पष्ट उल्लेख या संकेत नहीं है" (Vide muir's Original Sanskrit Te-

---

१. परन्तु यह बात ध्यानमें रखलेनी चाहिये कि ये सब "अनन्त बहसें हैं जो आर्योंके मूलस्थान-सम्बन्धी विवादके नामसे प्रसिद्ध है" (Vide the Imperial Gezetteer of India Vol I. p. 299 Ed. 1907 p. 76 Note, b.)

xts Vol. 2 p. 322 Second Edition 1871) अतएव मालूम पडता है कि भारतमें आर्योंके देशान्तरगमनकी जैसी भ्रमात्मक कल्पनाका आधार सम्भवतः यह तर्क है कि ऋग्वेदकी प्रसिद्ध ऋचाओंमें (१०-७५-५. ६) कावुल नदी या वैदिक कुभ तथा पञ्जावकी दूसरी नदियोंकाभी उल्लेख किया गया है। परन्तु मैं यहाँ पाठकोंका ध्यान इस महत्त्व पूर्ण वातकी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि उन ऋचओंमें, (ऋ० वे० १०-७५-५, ६) जिनपर इन विद्वानोंका तर्क निर्भर है, पूर्वमें गङ्गासे प्रारम्भ करके पश्चिममें कुभातक एकके वाद दूसरी आर्यावर्तकी सारी नदियोंका उल्लेख है और इससे मार्गका क्रम पूर्वसे पश्चिम ओरही सूचित होता है । मैक्स मूलर इस विषयमें इस तरह लिखते पाते हैं, " आर्य जातियोंका देशान्तरगमन सदा पश्चिमोत्तरकी ओर हुआ है । हमें कोई भी इतिहासकार यह नहीं वतला सकता कि किस भावनासे प्रेरित होकर ये साहसी खानेवदोश योरपके टापुओं तथा उसके समुद्री किनारोंकी ओर खदेडे गये थे..... हमें पता लगता है कि परम्परागत इतिहासके सूत्रपात होनेके समयसे ये आर्य जातियोंने तुषारावृत हिमालयको पार करके सात नदियोंकी ओर (सिन्धु पंजावकी पांच नदियाँ और सरस्वती) दक्षिण तरफ देशान्तरगमन किया था और तवसे भारत उनका आवास स्थान कहा गया है " (History of Ancient Sanskrit Literature pp. 12 13 Ed. 1859) म्यूर यह निश्चय करते हैं कि " ब्राह्मण-भारतीयोंके जन्म दाता आर्योंका भारतमें पश्चिमोत्तरसे देशान्तरगमन इस बातसे और अधिक सम्भव होगया है कि वैदिक ऋचाओंके लेखक उस दिशामें स्थित देशोंसे अर्थात् स्वयम् भारतके पश्चिमोत्तरी भागसे एवं सिन्धुके किनारे या उसके आगेके देशोंसे अत्यन्त परिचित मालूम पडते हैं " ..... (Muir's O. S. T. 2. 341) इसके आगे म्यूर ऋग्वेदका संकेत

करते हैं इस सम्बन्धमें रायका मत उद्धृत करके यह लिखते हैं, इस सम्बन्धमें अध्यापक रथाके वेदका इतिहास और साहित्यपर लिखे गये ग्रन्थके पृष्ठ १३६ से मैंने निम्नलिखित विचार लिये हैं—ऋग्वेदकी ऋचाओंमें सिन्धु बहुत प्रसिद्ध है और उसकी बहुधा प्रशंसा कीगई है । इस समयतक मुझे केवल एक ऋचा मिली है जिसमें गंगाका नाम आया है और वह भी केवल निम्न श्रेणीकी स्थितिमें जिस ऋचामें (१०–७५–५) यह उल्लेख हुआ है वह प्रियमेधके पुत्र सिन्धुक्षितकी बनाईहुई है, और 'नदियोंमें सबसे बडी" । सिन्धुके प्रति कही गई है, दूसरी नदियोंसे यह प्रार्थना की गई है कि वे उन स्तुतियोंके प्रति सद्भाव रक्खें जो सिन्धुके लिये रची गई हैं। (Muir's O. S. T Vo l. 2 p. 341 2 nd. E d. 1871) इसके सिवा मैक्समूलरने हिन्दुओंको वरन भारतीय आर्योंको, सप्तसिन्धुदेशमें विदेशी बताया है। वे लिखते हैं, "आर्यलोगोंने.... अपरिचितके रूपमें सिन्धु या गङ्गाके किनारेके सुन्दर मैदानों तथा तराइयोंमें प्रवेश किया".... (India, what it can teach us? p. 101 Ed. 1883) परन्तु सप्तसिन्धु देशमें उनके प्रवासी होनेके सम्बन्धमें वस्तुतः किसी तरहका कोई प्रमाण नहीं प्रतीत होता । इसके विपरीत आर्यावर्त या सप्तसिन्धु देशमें हमारे मूल-निवासी होनेके सम्बन्धमें वैदिक तथा अवस्तिक प्रमाण दृढताके साथ अत्यन्त पुरातन परम्पराका सही प्राचीन परम्पराका तो समर्थन करते हैं। ऋग्वेद (१०–७५–५) में आर्यावर्त्त या सप्तसिन्धुदेश पूर्वकी विशाल नदी गंगाकी गणना और तत्पश्चात् उसके (अर्थात् गंगाके) पश्चिमकी क्रमपूर्वक सारी नदियोंका धीरे धीरे उल्लेख जो कि पश्चिमी सरहद्दी नदीके बाद–ऋ० वे० १०–७५–५, ६ में अफगानिस्तानकी काबुल या कुभनदी-समाप्त हो जाता है, यह संकेत करता है कि निस्सन्देह हमारी यात्राकी असली दिशा तथा निरीक्षणका

क्रम सब तरहसे पूर्वसे पश्चिम ओर ही रहा है। परन्तु मालूम होता है कि अनेक पूर्वी तथा पश्चिमी विद्वानोंने इस मतका बिलकुल तिरस्कार किया है या हिकमतकसे उसे किसी न किसी तरह दूर कर दिया है। सम्भवतः जैसा पहलेही संकेत कियागया है कुभ, गोमती, क्रुम और दूसरी नदियांक (ऋ० वे० १०-७५-६ में) उल्लेखसे भारतीय-आर्योंके आर्यावर्तमें विदेशी होने तथा हिन्दू कुशकी घाटियोंसे होकर आनेके उनके मतको पूरी सहायता मिलती है, यह इन विद्वानोंकी कल्पना है, परन्तु हमारी विदेशी उत्पत्ति अथवा सप्तसिन्धु-देशमें हमारा प्रवास इस कल्पनासे नहीं सिद्ध होगा। इस कार्यके लिये यह कल्पना विश्वासी तथा संशय रहित पथदर्शकका काम नहीं दे सकती है। क्योंकि इसके विपक्षमें वजनदार प्रमाण तथा पुष्ट परम्परायें पहलेहीसे विद्यमान हैं। इन्हें हमारे पुरातन कालके आदिम पूर्व पुरुषोंने हमें हस्तान्तरित किया है और ये हमारा भारतके मूल निवासी होना प्रमाणित करती हैं। इसके सिवा कुछ ऐसी भी बातें हैं जो अत्यन्त महत्त्व पूर्ण हैं और इस रूपमें उन्हें भुला न देना चाहिये। उन्हें न तो निगाहसे दूर करना चाहिये और न उनकी उपेक्षा ही करना चाहिये, अतएव मैं उनको पाठकोंके सामने समुचित विचारके लिये उपस्थित करनेका साहस करूंगा। पहली बात तो यह है कि, यदि हमारे आदिम पूर्व पुरुप सप्त सिन्धु देशमें वास्तवमें विदेशी या प्रवासी थे जैसा कि कुछ लोगोंने भ्रमसे अनुमान करलिया है, तो प्रारम्भमें ही यही नहीं किन्तु भारतके ठीक द्वारपर तथा उसकी सीमा पार करनेके पहलेही, उन लोगोंको विशाल हिमालय पर्वतमाला तथा वैदिककी कुभा नदी या आधुनिक कालकी काबुल नदी अवश्य मिलनी चाहिये। आर्यावर्तमें प्रवेश करने तथा अत्यन्त पवित्र सरस्वती नदी तक पहुँचनेके पहले ठीक प्रारम्भमें उन्हें दूसरे बडे बडे अवरोध एवं

विशाल सिन्धुकोभी पार करना पडा होगा । इन्सैक्लो पीडिया ब्रिटैनिकामें (Vol. I. p. 519, Ed. 9 th) सरस्वती नदीका उल्लेख इस तरह है, " वह हिमालयको यमुनाके पश्चिम छोड देती है, पंजाबके थानेश्वरके पाससे वहती है और प्रयागसे पश्चिमोत्तर ४०० मील दूर सर हिन्दके वालुकामय प्रदेशमें स्वयम् लुप्त हो जाती है । " यह एक स्वाभाविकवात है कि हमारे ऋग्वैदिक ऋषियोंको इन्हें (अर्थात् हिमालय, कुभा और सिन्धुको) निरीक्षणके क्रमके अनुसार वर्णन करना चाहिये और इस तरह रवाना होते समय इनका ध्यान उन्होंने किया होता या किसी न किसी तरह थोडा बहुत इनका उल्लेखही उन्होंने कर दिया होता, यदि उन्होंने सप्तसिन्धुदेशकी यात्रा करते हुए इनको पार किया था । परन्तु आश्चर्यकी बात तो यह है कि मामला बिलकुल उलटा दिखलाई देता है । क्योंकि इन सरहद्दी सारी सीमाओंको अलग करके, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मालूम पडती हैं और इस रूपमें विदेशी तथा प्रवासी कहलानेवाली इन तीक्ष्णबुद्धि ब्राह्मणोंद्वारा (यदि ये हमारे आदिम पूर्व पुरुष विदेशी तथा प्रवासी होते जैसा कि भ्रम पूर्वक कुछ लोग अनुमान करते हैं, और ये प्रकृति तथा अपने आसपासकी वस्तुओंके वहुत सूक्ष्म निरीक्षक थे) जो विस्तृत की जाने योग्य नहीं थी, हम ऋग्वैदिक कवियोंको सर्व प्रथम सरस्वती नदीसे

---

१. शायद यहां यह दलील उपस्थित की जाय कि ऋग्वैदिक ऋचाओं तथा छन्दोंकी योजनाका क्रम ऐतिहासिक नहीं है । यद्यपि यह ठीक है, तो भी ऋग्वेदके किसी स्थानसे यह बात नहीं मालूम होती कि सप्तसिन्धु देशकी मुख्य, पश्चिमीसीमायें हमारे पूर्व पुरुषोंकी यात्राकी दिशा पश्चिमसे पूर्वको सूचित करनेके उद्देशसे उल्लेख की गई हैं । इसके विपरीत हमारे देशान्तरगमन करनेकी दिशा (जैसा कि पहले लिखाजा चुका है) पूर्वसे पश्चिम मालूम पडती है और इसके सिवा साबित करती है कि हम लोगोंने अर्यावर्तसे देशान्तरगमन किया था, जो वैदिक कालमें सप्तसिन्धुके नामसे प्रसिद्ध था ।

ही प्रार्थना करतेहुए पाते हैं और वहभी लगभग ऋग्वेदके प्रारम्भमें (ऋ० वे० १–३–१०, १३) । यहाँ उसका उल्लेख पञ्चनद्या पञ्चावकी पूर्वी सीमा तथा मध्य देशकी पश्चिमी हद्दके रूपमें हुआ है और वह भी उस भारी सन्मान और प्रेमके साथ जो किसी परम्परासे आहृत तथा अत्यन्त प्राचीन नदीके लिये समुचित है । इसके साथ ही प्रशंसा पूर्वक उसकी पवित्रता (पावका ऋ० वे० १-३-१० तथा दूसरे स्तुत्य गुणोंकी (वाजिनीवती ।....धिया वसुः ऋ० वे० १–३–१०) घोषणा हुई है । आनन्द–दायिनी ऋचाओं तथा पवित्र एवं रुचिर भावनाओंकी प्रेरिका मानकर उसका स्मरण कियागया है (चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनां । ऋ० वे० १–३–११) और अन्तमें वह ' हमारी ' शब्दसे सम्बोधितकी गई हैं (नः. सरस्वती ऋ० वे० १–३–१०) इस तरह गहरे जड पकडेहुए भावको दिलमें और अधिक जमा दियागया है कि सरस्वती नदी किसी दूसरेकी नहीं, किन्तु वह केवल हमारी है । उसपर अपना एकान्त स्वत्व स्थापित करदिया गया है. यही नहीं, किन्तु उस अधिकारका उपभोग कर लिया गया है जो स्वयम् प्रकृत-द्वारा दूसरोंको नहीं प्राप्त है । उसकी कृपाओंका व्यवहार करनेके लिये प्रकृतिने दूसरोंको बाधा देदी । परन्तु इतनाही बस नहीं है, क्योंकि इसके आगेकी दूसरी ऋचासे (ऋ० वे० १–३–१२) और भी अधिक महत्त्व, गहरा अभिप्राय और विचार व्यक्त होता है । उससे यह प्रकट होता है कि सरस्वतीनदीको पवित्र करनेवाले अपने कामके साथ (पावका नः सरस्वती.... ऋ० वे० १–३–१०) अत्यन्त महत्त्व पूर्ण दूसरे कार्य भी करना पडते हैं । अतएव इनको पूर्ण करनेमें वह अपने देशको जलसे पूर्ण करती है; यही नहीं किन्तु उसमें प्रकाशसे उजेला करती है और वहांके निवासियोंको बुद्धि तथा ज्ञानसे विभूषित' करती है"

(अहो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना । धियो विश्वा विराजति ॥ ऋ० वे० १-३-१२) ।

सरस्वती नदीके सम्बन्धमें अपने वैदिक बापदादों तथा आदिम पूर्व पुरुषोंका परम्परागत हेलमेल, उसके विशाल देश तथा पड़ोसके देशोंके साथ गहरा परिचय, उसके प्रति भक्तिका विपुल उद्रेक उसके सम्बन्धकी हृद्गत भावनाकी स्वाभाविक कोमलता और उसके प्रति—अपनी माताके प्रति-स्वाभाविक प्रेम तथा अनुराग हम वास्तवमें देखते हैं। ये सब ऐसी बातें हैं कि सप्तसिन्धुदेशका कोई विदेशी या देशान्तरगामी किसी तरह तथा कैसी ही अवस्थाओंमें एवं कितनेही लम्बे समयतक वह इस देशमें क्यों न रहा हो तो भी उसके लिये उपर्युक्त भावनायें व्यक्त करना न तो सम्भव था और न वैसा करनेको वह उत्साहित ही हो सकता था।

इसके सिवा हमें यह पहलेही मालूम हो चुका है कि हमारे प्रसिद्ध स्मृतिकार मनुने भी दो दैवी नदियों-सरस्वती तथा दृषद्वती-के बीच स्थित देशकी प्राचीनतम परम्पराका उल्लेख किया ह। उन्होंने इस देशको ईश्वर-निर्मित देश तथा सृष्टिका लीलाक्षेत्र बताया है। इस देशके सम्बन्धकी भारी प्राचीनताकी गहरे जड पकडे हुई ये सारी परम्परायें उसीके चारों ओर स्पष्ट रीतिसे एकत्र हैं और महाभारतमें भी उनका उल्लेख कियाजाना प्रतीत होता है। परन्तु महाभारतके समयमें तथा उसके पहले भी इस विचारने भारतवासियोंके मस्तिष्कमें गहरे जड पकडकर अपना घर कर लिया था कि दो दैवी-नदियों अर्थात् सरस्वती तथा दृषद्वतीके बीचका जो देश है वह केवल सृष्टिका लीला क्षेत्र नहीं है, किन्तु इस भूभागकी रचना ईश्वरने की थी। महाभारतमें यह देश वास्तवमें ब्रह्मावर्तके नामसे पुकारा गया है। "देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते" (म० भा० १४-११०-४४) देव निर्मित देश या ईश्वर रचित भूभाग जैसे

वाक्यांशका गहरा अभिप्राय गहरे जडपकडेहुई इस परम्पराको जोर देकर हमारे सामने उपस्थित करता है कि हम आर्योंका मूलस्थान ब्रह्मावर्तही था। ऐसी दशामें हमारा मूलस्थान केवल आर्यावर्तको छोडकर और कोई दूसरा देश नहीं था। इसके सिवा महाभारतमें एक दूसरा श्लोक है यहभी बडा मनोरञ्जक है। इससे प्रकट होता है कि "उस देशकी अपनी निजी पुरातन परम्पराएँ और रीति-रस्में है" (यस्मिन् देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः) और ये एक कालसे दूसरे कालमें तथा एक पीढीसे दूसरी पीढीमें बरावर प्रचलित रही हैं। अत एव केवल वही सदाचार अनुमान कियेगये हैं (स सदाचार उच्यते। म० भा० १४–११०–४५) परन्तु इनसे वढकर एक तीसरा श्लोक है और वास्तवमें वह इस अर्थसे गार्भित है कि ब्रह्मर्षिदेश, या आर्यावर्त कहिये; व्यवस्था तथा मर्यादाका एक आदर्श देश है और "उस देशमें जन्मे हुए ब्राह्मणसे इस पृथ्वीके सारे मनुष्योंका 'पृथिव्यां सर्वमानवाः' अपने निजके कर्तव्यों तथा जिम्मेदारियोंकी शिक्षा लेनी चाहिये" (सकाशादग्रजन्मनः। स्वं चरित्रं च गृह्णीयुः) मालूम पडता है कि आर्यावर्तमें हमारे मूलस्थानके सम्वन्धकी प्राचीन परम्पराका समर्थन करनेके लिये मनुने इन श्लोकोंको तथा दूसरे श्लोकोंको भी कुछ परिवर्तनके साथ अपने धर्मशास्त्रमें (२–१७,१८,२०) दुहराया है। महाभारतके वे श्लोक ये हैं—

"सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तद्देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥ ४४॥
यस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते॥ ४५॥

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं च गृह्णीयुः पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ ४७ ॥ ”

(श्रीमन्महाभारते अ० ११०)

(The South Indian Texts Edition.

इसके सिवा हमें इस बातको अपनी निगाहसे कभी नहीं दूर करना चाहिये कि मनुस्मृतिमें (२–२३) जो यह लिखा है कि बर्बर या म्लेच्छोंका देश इससे बिलकुल भिन्न है, (म्लेच्छदेशस्त्वतःपरः) निस्सन्देह अपना खास महत्त्व रखता है। यही नहीं, किन्तु उसमें ऋग्वेदकी भारी प्राचीनताकी मुहरभी लगी है । क्योंकि जिस आर्यावर्तका उल्लेख (आर्यावर्तं प्रचक्षते । मनुस्मृतिमें २-२२) हुआ है उसे टीकाकार कुल्लूक आर्योंका देश बताते हैं । वे लिखते हैं कि, आर्य लोग यहीं जन्मे थे यहीं सदा जन्म लेते हैं और यहीं बारबार जन्म लेंगे (आर्या अत्रावर्तन्ते पुनः पुनरुद्भवन्तीत्यार्यावर्तः । म० स्मृ० कुल्लूककी टीका, २–२२) । इसके सिवा ऋग्वेदकी भाँति मनुस्मृतिमेंभी सरस्वतीनदीका देश ईश्वरका देश (तं देवनिर्मितं देशं...मनु०२–१७) या सृष्टिका लीलाक्षेत्र उल्लेख किया गया है । अत एव यदि हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंने सप्तसिन्धु देशपर विदेशियोंके रूपमें आक्रमण किया था, उन्होंने अलबलसे उसे प्राप्त किया था, और जेताओंके रूपमें उन्होंने उसके आदिम निवासियोंको अपने वशीभूत किया था, तो यह घटना बडे दर्प तथा महत्त्वके साथ, यही नहीं, किन्तु बडी तडक भडक और प्रसन्नताके साथ जरूर लिखी गई होती । इसके सिवा यदि यह चढाई वास्तवमें हुई होती, तो देशके प्राचीन साहित्यमें बहुतही अधिक जातीय गौरवके साथ इसका उल्लेख किया जाना सब प्रकारसे सम्भव था और किसी न किसी उत्साह पूर्ण ढंगसे उसका हवालाभी दियागया होता । परन्तु ऐसी घटना कभी संघटित नहीं हुई । क्योंकि हमारे वैदिक धर्मग्रन्थोंमें

या हमारे विराट संस्कृत साहित्यमें तथा अवस्तिक ग्रन्थोंमें या औरहीं कहीं न तो किसी तरहकी उसकी परम्परा, न किञ्चिन्मात्र उसकी स्मृति और न जराभी उसका कोई चिह्न खोजनेसे मिला है। थोडीदेरके लिये वैदिकप्रमाणकी ओर ध्यान देनेपर यह प्रतीत होता है कि सोम और सोमयाग, इन्द्र, और वृत्र, उषा और सूर्य, आर्य और आर्यावर्त या सप्तसिन्धु देशके बीच घनिष्ठ सम्बन्धही नहीं है, किन्तु अभिन्न सम्बन्ध है। आर्यावर्त प्रधानतया इन सबका मूल-स्थान तथा किसी न किसी तरह सृष्टिका आदिम लीलाक्षेत्र मालूम पडता है. यही हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंने तथा उनकेभी आदिम बाप-दादोंने सोमको हिमालय पर्वतपर उगा हुआ और (मानो पिताके रूपमें–पर्जन्यः पिता सोमस्य। ऋ० वे० ९-८२-३) मेघद्वारा अच्छी तरह सींचा तथा पालापोसा गया देखा था। किसी दूसेर देशमें नहीं, किन्तु यहीं उनके लिये उषाकी प्रभा तथा चमक विपाश या आधुनिक व्यासानदीकी क्षितिजपर पहले पहल प्रकट हुई थी और अन्तमें यहीं उसकी प्रभा तिरोहित होते तथा सूर्यके चकाचौंध करने वाले प्रकाशद्वारा आत्मसात्‌करते हुए देखीगई थी। यहीं पहले पहल मेहकी झडियाँ इन्द्रके वज्ररूपी बिजली द्वारा तितिर-वितिर कियेजानेके उपरान्त सिन्धुपरस्थित वृत्ररूपी बादलोंसे बरसती हुई पहले पहल दिखलाई पडी थीं। यहीं हमारे पूर्व पुरुषोंने याग किये थे और अपने यागीय महोत्सवोंको जारी रक्खा था, पर बीच बीचमें बाहरी लोगोंने एवं जोरास्ट्रियों जैसे सगे बन्धुओंने उनमें विघ्न किया था, अतएव सप्तसिन्धुदेशकी आर्य सन्तानकी सहायता करनेके लिये इन्द्रसे प्रार्थना की गई थी। विशेष करके इस कारण उससे प्रार्थना की गई थी, क्योंकि उसने अपने आर्य-भक्तोंको युद्धोंमें सदा बचाया था। यही नहीं, किन्तु उन लोगोंको जो अयाज्ञिक थे और

आर्योंके मतके विरोधी थे (इन्द्र समत्सु यजमानमार्य प्रवत.... ऋ० वे० १-१०३-८) दण्डभी दिया था.

अस्तु—ये सारीवातें ऋग्वेदकी स्पष्ट अलंकारिक भाषामें महत्त्व तथा सुन्दरताके साथ उल्लेख की गई है। तदनुसार यह प्रतीत होता है कि हमारे ऋग्वैदिक ऋषियोंने सप्तसिन्धुदेशमें अपने मूलस्थानके सम्बन्धमें अपने पूर्व पुरुषोंके सर्वप्रथम चिह्न केवल परम्परागत पूर्वकही प्राप्त किया था और अपनी बार वे लोग केवल उन चिह्नोंको प्रकट करके एवं उन्हें भाषाबद्ध करके अपने बोझेसे हलके होगयेथ. इस तरह वे लोग हमारे लिये एक भारी सम्पदा जिसे मानवजाति प्राप्त करसकी है छोड गये हैं इसे इस रूपमें हम इसलिये लेते हैं क्योंकि वह हमारे सर्वप्रथम शब्दोंका एक सच्चा तथा श्रेष्ठ लेखा है, हमारे सर्वप्रथम चिह्नोंका एक असली उद्गम स्थान है और हमारे उस सच्चे इतिहासका मूलस्थान है जो हमारे मूलस्थान और अर्थात् सरस्वती नदीके देशसे प्रारम्भ होता है ॥

आठवाँ अध्याय.

मूल-स्थान सम्बन्धी अवस्तिक-प्रमाण ।

पारसी-आर्य हमारे आदिम पूर्वपुरुषों-भारतीय आर्योंके जाति भाईही नहीं थे, किन्तु उन्हींके वंशधर होनेके कारण उन्हींकी भाँति आर्यावर्तमें उत्पन्न हुये थे. या जैसा कि कोई कोई यह कहेंगे वे सप्तसिन्धु देशमें उन्हींके साथ दीर्घकाल तक रहे थे । अतएव उन

---

१. मालूम होता है कि, जो पाश्चात्य विद्वान् मध्य एशियाई सिद्धान्तके पक्षमें हैं वे भी इस बातको स्वीकार करते हैं। क्योंकि उनकी यह दलील है कि सम्पूर्ण आर्यजातिका सार्वजनिक उत्पत्तिस्थान अर्थात् मध्य एशियाकी उच्च समभूमिको छोड देनेके बाद भारतीयों और ईरानियोंने भारतमें प्रवेश किया और वे लोग वहाँ तबतक मेलसे रहते रहे जबतक धार्मिक मतभेदके उठ खडे होनेसे वे लोग फिर न

लोगोंको सप्तसिन्धुदेश ज्ञात था और उन्होंने उसे अपने स्मृति-पटलसे मिटाया नहीं था. आर्यावर्त छोडनेके उपरान्त वही सप्तसिन्धु शब्द विगडकर हप्तहेन्दु होगया. इसके सिवा जेन्दावस्तामें अत्यन्त पवित्र नदी सरस्वतीकाभी उल्लेख है. वहां उसका अपभ्रंशरूप हरह्वैती है और भाग्यशालिनी शब्दसे अभिहित की गईहै (Vide Darmesteter and Spiegel's Version) पारसी आर्योंके पुराण ग्रन्थ और उनके धर्मका भारतीय आर्योंके पुराण ग्रन्थ और धर्मके साथ घनिष्ठ सादृश्य रखता है. जिस बातसे उन दोनों जातियोंके बीचका

—अलग होगये । क्योंकि अध्यापक मैक्समूलर लिखते हैं, " इनसे (जेन्द और संस्कृतसे) सिद्ध होताहै कि ये दोनों भाषायें सार्वजनिक भारतीय योरपीय केन्द्रसे अलग होनेके उपरान्त वहुत दिनोंतक एक साथ प्रचलित रहीं । " (Last Results of the Persian Researches p. 111. 112) । इसके वाद वे लिखते हैं कि " जोरास्ट्रियोंने उत्तर-भारतसे निकलकर अपना एक उपनिवेश अलग स्थापित किया था । वे लोग किसी समय उन लोगोंके साथ रहे थे जिनके पवित्रगीत हम लोगोंके लिये वेदोंमें सुरक्षित हैं । किन्तु परस्पर मतभेद उपस्थित होजानेके कारण जोरास्टरलोग पश्चिम ओर आरचोसिया और फारसका चले गये " (Science of Language Vol. I. p. 235, 1 st, Ed. Vol. I. p. 279, 5 th. Ed.)

१. इस बातको प्रसिद्ध योरपीय विद्वानोंने भी मान लियाहै । क्योंकि अध्यापक मैक्समूलर लिखते हैं, " फारस और भारतके वीच धर्म और पुराणोंमें औरभी अधिक आश्चर्य-जनक सादृश्य है । जिन देवताओंके नाम योरपीय जातियोंको नहीं मालूम हैं उनकी पूजा संस्कृत तथा जेन्दके एकही नामसे होती है । संस्कृतके कुछ अत्यन्त पवित्र नाम जेन्दमें नीचदेवताओंके लिये व्यवहृत हुए हैं; अतएव मत-भेदके साधारण चिह्नोंका होना केवल इसी बातसे सिद्धहै और जो ईरानी लोग किसी समय आर्योंके साथ रहतेथे वे उसी मत-भेदके कारण इनसे अलग होगये थे । " (Vide, Chips from a German workshop Vol. I. p. 83; and Last Results of Persian Researches p. 112)

घनिष्ठ सम्बन्ध ध्वनित होता है, उसका उल्लेख हम अभी आगे करेंगे. भारतीय-आर्योंसे पारसी आर्योंकी जुदाईका कारण स्पष्टरीतिसे धार्मिक मत-भेद था और इन दोनोंमें भारतीय आर्य सप्तसिन्धु देशमें अधिक प्रबल थे. उनकी स्थिति इस प्रकार की थी कि वे पारसी आर्योंको अपने आज्ञानुसार चलाते थे अतएव इन्होंने अपनी निजी त्रुटियाँ, निर्बलता, भीरुता और सामर्थ्यका अभाव देखकर आर्यावर्त-अपने मूल आवास तथा उत्पत्तिस्थानको परित्याग करदिया और इसके साथही जो देश किसी समय इनकी मातृभूमि थी सम्भवतः इन्होंने वहाँ फिर लौट आनेकी आशावक्र छोडदी क्योंकि याज्ञिक और अयाज्ञिक आर्योंके बीच धार्मिक कारणोंसे उत्पन्न मत-भेदने ऐसी गहरी खाई करदी थी कि उसके पार निकल जाना असम्भव पायागया जो विमुख या विरोधी जोरास्टरलोग[3] ईरानी या

---

१. इस कारण प्राचीन पारसियों या पारसी-आर्योंने मत-भेदके अनन्तर घृणासे इनका नाम देव रक्खा था ।

२. जोरास्टरके अनुयायी अहुर मज्द लोग थे । अतएव वैदिक आर्योंने इनका नाम असुर रक्खा था । अस्तु देवशब्द स्पष्ट रीतिसे वैदिक आर्योंके लिये तद्रूप है और असुर शब्द पारसी-आर्यों या ईरानियोंके लिये । अतएव मैं यहां डाक्टर हागका कथन उद्धृत करनेका साहस करताहूं । क्योंकि उन्होंने इस विषयमें बहुतही यथार्थ कहा है । वे लिखतेहैं "...... ब्राह्मणों और पारसियों (प्राचीन ईरानियों) के पूर्व-पुरुष शान्ति-पूर्वक भाई-बन्धुके रूपमें एक साथ रहते थे । यह समय देवों और असुरोंके उन युद्धोंके पहले था जिनका उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थोंमें बहुधा हुआ है । इनमें देवशब्द ब्राह्मणों तथा असुर शब्द ईरानियोंके लिये प्रयुक्त हुआ है" । (Vide, Dr. Haug's Introduction to the Aitereya Brahman p. 2-3 Vol. I. Ed. 1863)

३. क—जोरास्टर लोगोंसे मतलब जोरास्टरके अनुयाइयोंसे है । अतएव डाक्टर मार्टीने हागके प्रमाणके अनुसार इस शब्दकी व्याख्या करनेकी आवश्यकता है कि

पारसी आर्य कहलाते थे उन्होंने तुरन्त अपने ईश्वरको अहुरमज्द (असुरमेधावी) कहना प्रारम्भ कर दिया और अपने धर्मको अहुरों या असुरोंका धर्म इसके सिवा उन्होंने हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंको घृणा-व्यञ्जनार्थ देवकी पदवी दी थी इसके बदलेमें हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंने उन्हें असुरके नामसे अभिहित किया था बादको यही लोग आर्यावर्तके भारतीय आर्योंके रूपमें माने गये, क्योंकि पारसी-आर्य या ईरानके ईरानी आर्यावर्तसे निकाल दिये जानेके बाद ईरा-

---

–इसका अर्थ क्या है। क्योंकि वे लिखते हैं, "जराथस्त्राशब्दका सम्भाव्य अर्थ 'श्रेष्ठतम कवि' नहीं है जैसा कि मैंने पहले लिखा है, किन्तु आध्यात्मिक अर्थमें उसका अर्थ पुराना सरदार है। यह अर्थ संस्कृतसे भी निकाला जा सकता है। संस्कृतमें 'जरत्' का अर्थ 'वृद्ध' है और 'उस्ट्र' का रूप 'उत्तर' है, अतएव इसका अर्थ 'उत्तम' 'श्रेष्ठ' है। इस तरह जराथस्त्राको एक शब्दमान-लेनेपर उसका अर्थ केवल 'वृद्धसरदार' या 'श्रेष्ठनेता' होताहै। (Vide Dr. Hang's Religion of the Parsees p. 252 Note Ed. 1862)

ख–सारे सन्देहोंको दूर करनेके लिये इस सम्बन्धमें यह भी आवश्यक है कि डाक्टर हागका मतप्रमाणके रूपमें उद्धृत किया जाय"। क्योंकि वे लिखते हैं:–जो "शोश्यान्त या अग्निपूजक अथर्वणोंके तद्रूप मालूम पडते हैं वे जराथस्त्रास्पिटमके असली उत्तराधिकारियोंके रूपमें हैं। जराथस्त्रास्पिटमने ही उस विशाल धार्मिक सुधारका मार्ग परिष्कृत कियाथा जिसे शोश्यान्त लोगोंने कार्यमें परिणत किया। यह स्पष्ट रीतिसे कहा गयाहै (यास. ५३-६) कि इन्हींको श्रेष्ठ अहुर धर्मकी दीक्षादी गई थी और इन्होंने देव-धर्मके विरुद्ध स्वयम् जराथस्त्रा तथा उसके शिष्योंके सदृश उस धर्मको स्वीकार किया (यास १२–७)। अतएव इन प्राचीन साधुओंको हमें अहुर धर्मके संस्थापकोंमें गिनना चाहिये। उन्होंनेही पहले पहल कृषिका प्रचार किया और उसे एक धार्मिक कर्तव्य माना। इसके सिवा उन्होंने देव-धर्मके विरुद्ध युद्ध छेड दिया।" (Dr. Hang's Parsee Religi-on p. 251 Ed 1862)

नमें जो अब फारस कहलाता है, बसगये थे. उपर्युक्त मतभेद स्पष्ट-रीतिसे एक प्रकट बात थी. ऋग्वैदिक ऋषि थोडी देरके लियेभी उसपर परदा न डालसके. क्योंकि हमें स्वयम् ऋग्वेदमेंही उसके सम्बन्धमें दुःखके गहरे भाव निदर्शित होते मालूम पडते हैं. उसके एक स्थलमें लिखा है " भरतकी सन्तान जुदाई जानती (चिकितुः) है, अतएव उसका दुखदाई अनुभव उन्हें बोध-होता है (अपपित्वम्) परन्तु उन लोगोंको एकता (प्रपित्वम्) के जाननेकी इच्छा नहीं है । ऋग्वेदकी यह ऋचा अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है अतएव मैं उसे उसके अनुवाद सहित आगे उद्धृत करता हूँ । "इम इन्द्र भरतस्य पुत्र अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् (ऋ० वे० ३-५३-२४) "हे इन्द्र, ये भरतके पुत्र (अर्थात् भरत और विश्वामित्रके वंशज और अनुयाई) जुदाई जानते हैं, एकता नहीं । " अर्थात् जो लोग किसी समय उनसे अलग हो गयेथे उनसे वे जुदाईका क्रूर अनुभव रखते थे, परन्तु फिर मेल करलेनेका नाम नहीं लेतेथे । यहाँ भरतके पुत्रों या वंशजोंका उल्लेख विशेष करके किया गया मालूम पडता है । वे लोग अत्यन्त शक्तिशाली थे. अतएव वे आर्य-परिवारों या जाति-योंके नेताथे और यह बात स्वाभाविक रीतिसे यथेष्ट है कि वे इस

---

१ क-इसके सम्बन्धमें (ऋ० वे० ३-३३-१, ३, ५, ९, ११) भी देखो. वहाँ लिखा है कि, भरतवंशियोंके नेता विश्वामित्रने, व्यासा (विपाश) और सतलज (विपाट्छुतुद्री ऋ० वे० ३-३३-१) के सङ्गमसे सिन्धुतक (अच्छा सिंधुमातृतमामयासं ऋ० वे० ३-३३-३) और इसके आगे पश्चिम तथा उत्तर ओर (अपागुदगथा ऋ० वे० ३-५३-११) अपने दल बल तथा अनुयायियोंके सहित यात्रा करते हुए इन नदियोंसे प्रार्थना की थी कि वे थोडी देरके लिये अपना बहना बन्द करके उन्हें मार्ग देनेको उतार पर होजाय ।

ख-इसके सिवा दूसरे स्थानमें (ऋ० वे० ३-५३-११) आर्य-परिवारों और अपनी जातियोंके नेता स्वरूप कुशिकोंके पुत्रों तथा विश्वामित्रके वंशजोंसे यह

दशामें देशके आर्योंके प्रतिनिधि बन गये थे। इसके सिवा वे लोग श्रेष्ठतम याग-भक्त आर्य थे और इस अवस्थामें वे सोम-निन्दकों तथा अयाज्ञिक आर्यों या विरोधियोंके व्यवहारको जराभी पसन्द नहीं करते थे। अतएव उन्होंने इन लोगोंको देशसे निकाल बाहर किया। क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि ये अयाज्ञिक इस देशमें उनके साथ रहें। यही नहीं, किन्तु उन्होंने यह दृढ संकल्पभी कर लिया था कि अब ये लोग यज्ञोंके इस पवित्र देश या सप्तसिन्धुदेश (सप्त सिन्धवः) में एकदम घुसने न पावें। (भूम्यां देवेभ्यो ददति यज्ञं हव्यभरं कृतम्। अथर्व० १२-१-२२) अतएव उन्होंने इन लोगोंके साथ तुमुल संग्राम किया। युद्धके लिये सज्जित इन लोगोंके दल-बलका उन्होंने संहार किया और वास्तवमें उन्हें बहुतही अधिक संकट पूर्ण अवस्थामें परिणत करदिया। हम इस अवस्थाका वर्णन स्वयम् जोरास्टरकेही शब्दोंमें आगे करेंगे। पूर्वोक्त ऋचाके द्वितीयार्द्धसे (ऋ० वे० ३-५३-२४) जिसे मैं आगे उद्धृत करता हूँ, उन उपायोंका ठीक ठीक संकेत होता है जो बदला लेनेके लिये ग्रहण करनेको आवश्यक थे। क्योंकि इस ऋचासे यह अभिप्राय प्रकट होता है कि "उन्होंने (भरतवंशियोंकी संतानने) अपना घोडा मानो अपने किसी स्वाभाविक शत्रुके विरुद्ध छोडा और युद्धमें समुचित प्रयोगके लिये अपने साथ धनुष (ले गये)"। हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परिणयन्त्याजौ ।। (ऋ० वे० ३-५३-२४) इस सम्बन्धमें सायण लिखते हैं कि जिस जुदाईका संकेत उक्त ऋचामें किया गया है वह वशिष्ठके वंशजोंसे विश्वामित्रके वंशजोंकी थी।

-निवेदन किया गया था कि वे, धनकी प्राप्ति सप्तसिन्धु देश अर्थात् आर्यावर्तके पूर्व, पश्चिम और उत्तरमें अपने शत्रुका संहार, बाहरके देशोंको जीतने और पृथ्वीके शिखरपर यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये महाराज सुदासके घोडेको छोडनेके लिये तैयार होजायँ।

अतएव इसमें उन लोगोंके बीच उस लडाई तथा एकताके अभावकी सूचना मिलती है जो उन लोगोंमें विद्यमान थी. सायणने जो लिखा है वह नीचे उद्धृत किया जाता है-" भरतवंश्या इमे विश्वामित्रा अपपित्वमपगमनं वशिष्ठेभ्यश्चिकितुः। जानान्ति प्रपित्वं प्रगमनं न जानान्ति। शिष्टैः सह तेषां संमतिर्नास्ति। ब्राह्मणा एव ते इत्यर्थः। " सायणका अनुधावन करतेहुए अध्यापक विल्सन इस पदकी जो व्याख्या करते हैं वह नीचे उद्धृत की गई है।: परन्तु दूसरे विद्वान् वशिष्ठ और उनके कुटुम्बके साथ शत्रुता-सम्बन्धी इस उल्लेखकी सत्यतापर ठीकही सन्देह करते हैं। " हे इन्द्र, भरतके इन पुत्रोंने (वशिष्ठके दलसे) जुदाई की है; (उनके साथ) इनका मेल नहीं है। ये अपने घोडोंको (उनके विरुद्ध !) मानो सर्वदाके किसी शत्रुके विरुद्ध बढाते हैं, (उनके संहारके लिये) ये मजबूत धनुष युद्धमें धारण करते हैं "। (H. H. Wilson) परन्तु प्रसिद्ध भाष्यकार तथा नामी वैदिक विद्वान् सायणके प्रति हमारे हृदयमें पूरा आदर है तोभी हमें यह मालूम पडताहै कि उनकी यह सूचना ठीक नहीं ठहरती। अपपित्वम्-शब्दसे वशिष्ठके साथ लडाई और जुदाईका संकेत होता है, उनका यह लिखना मुख्य अर्थसे बहुत दूर बढ गया है। क्योंकि वशिष्ठका नाम पद्य तथा ऋचामें कहीं पर नहीं है। अतएव यह मालूम पडताहै कि जुदाईके सम्बन्धमें जो संकेत उक्त ऋचामें है, वह स्पष्टरीतिसे उस धार्मिक मत-भेद तथा गहरे जड पकडेहुई उस शत्रुताके सम्बन्धमें प्रतीत होता है जो अयाज्ञिक जोरास्टर लोगोंके साथ यज्ञ-प्रेमी आर्योंकी थी और जिसने सदाके लिये उस सम्बन्धका भङ्ग करदिया था जो आर्यावर्तके दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वंशोंके बीच विद्यमान था। इस सम्बन्धका वर्णन सच्चा है और इसके साथही वह निस्सन्देह बहुत प्राचीन कालका भी है। क्योंकि (उसतनवैती) गाथामें विपक्षके नेता (जरथुस्त्रा)

लिखते हैं:-" दो सेनायें युद्धके लिये चुपचाप एकत्र (की गई हैं)" [२ (४४)-१५] परन्तु युद्धमें उक्त नेता तथा उसका दल पराजित कियेजानेपर वह अपने दल-बल तथा अनुयायियोंके साथ आर्यावर्तका परित्याग करनेको बाध्य हुआ था। ऐसी दशामें यह बात स्वाभाविक रीतिसे यथेष्ट है कि उसने अपनी मानसिक भावनाओंका निदर्शन किया और जोरसे चिल्ला उठा, "किस देशको मैं जाऊँगा, मैं कहाँ आश्रय लूँगा? नेता (जराथस्ट्रा) तथा उसके अनुयायियोंको कौन देश शरणमें ले रहाहै, न तो कोई सेवकई मेरी भक्ति करता है और न देशके दुष्टशासकही" अर्थात् आर्यावर्तके भारतीय-आर्य जिन्होंने पराजित दलके नेताको एक समयकी सार्वजनिक मातृभूमि आर्यावर्तसे मत-भेदके उपरान्त निकाल बाहर किया था। [४ (४६)-१] " मैं जानता हूं कि मैं निस्सहाय हूं। कुछही आदमियोंके बीच स्थित मेरी ओर देखो, क्योंकि मेरे साथ थोडेही लोग हैं (क्योंकि मैंने अपने आदमियोंको खोदिया) या उन्होंनेही मेरा साथ छोड दिया है। हे जीवितदेवता, मैं रोतेहुए तुझसे (बुद्धिमान् अहुर मज्द) विनय करता हूं। + [४ (४६) २] " मूर्तियोंके पुरोहितों तथा ईश्वर दूतोंके हाथोंमें अधिकार दिया गया है। ये लोग अपने निर्दय कार्योंसे मानवजविन विनाश करनेका प्रयत्न करते हैं" +++ [४ (४६)-११] (Vide Dr. Maraui Hang's 'Religion of the Parsee' Ed. 1862, pp. 152, 155 156, 157) ये सब बातें धार्मिक मतभेद, पश्चात्कालिक युद्ध, उत्पीडन और अन्तमें उक्त नेता तथा उसके अनुयायियोंका आर्यावर्तसे निकाल दियेजानेका संकेत स्पष्टरीतिसे करती हैं इसके बाद उन लोगोंने ईरानमें आश्रय लिया था और वे उत्तरी ध्रुव-देशोंतक चले गये थे। यहाँ उन्होंने तृतीय कालीन युगके अन्तिम भागमें और महा हिमयुगके आगमनके पहले, जब वहाँका

जलवायु सहनशील तथा सुखदथा, हम लोगों (भारती-आर्यों) के साथ उपनिवेश स्थापित किये थे। वेन्दीदादमें स्पष्टलिखा है (४०) वर्षमें वहाँ (अर्थात् उत्तरी ध्रुव देशमें) एकबार नक्षत्रों, चन्द्रमा और सूर्यका उदय तथा अस्त देख पडता है " (४१) ,, उनका दिन हमारा पूरा एक वर्ष है " (Vide, Vendidad Second Chapter and Dr. Haug's Parsee Religion Ed. 1865 p. 205) यद्यपि इन दोनों दलोंमें प्रकट शत्रुता थी, तो भी मालूम पडता है कि वैदिक आर्य और ईरानी यथेष्ट-रीतिसे इतना समीप रहते थे जिसमें एक दूसरेके साथ निरन्तर व्यवहार तथा परिचय बना रहे। अतएव अध्यापक स्पीजल अवस्ताके अनुवादकी भूमिकामें ठीकही लिखते हैं " जुदाईके उपरान्त भी भारतीय और पारसियोंको एक दूसरेकी समुन्नतिका हाल मालूम होता ही रहा। इसी उद्देशसे वे एक दूसरेसे बहुत दूर नहीं रहे थे। भारतका परिचय हप्तहेन्दुके नामसे वेन्डीदादमें (१-७४) आजभी

१. इस सम्बन्धमें एम० ई० बरनफ बाप और मैक्समूलरके कथनभी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं और इस रूपमें वे ध्यान देनेयोग्य हैं। परन्तु विस्तारके भयसे मैं यहाँ केवल मैक्समूलरकाही कथन उद्धृत करूँगा। उनका कथन यह है, " उनके (बर्नफके ग्रन्थों) तथा बापके तुलनामूलक व्याकरणके सिद्धान्तोंसे यह स्पष्ट है कि जेन्दके व्याकरण तथा कोषका सान्निध्य किसी दूसरी भारतीय-योरपीय भाषाकी अपेक्षा संस्कृतसे अधिक है। जेन्दभाषाके अनेक शब्दोंका अनुवाद संस्कृतमें केवल उनके तत्समरूपोंमें ही बदल देनेसे होजाताहै...इन दोनों भाषाओंकी १०० तक संख्याओंके नाम एकसा हैं। परन्तु संस्कृतमें हजारका नाम (सहस्र) विचित्र है। जेन्दको छोडकर किसी दूसरी भारतीय योरपीय भाषामें वह नाम नहीं होता। जेन्दमें उसका रूप हजनरा होजाताहै...ये सब बातें ऐतिहासिक अर्थसे गर्भित हैं और जेन्द तथा संस्कृतके सम्बन्धमें यह सिद्ध करती हैं कि ये दोनों भाषाएँ सार्वजनिक भारतीय-योरपीय समूहसे विलग होनेके पहले बहुत दिनोंतक एक साथ प्रचलित रही थी। (Last Results of the Persian Researches pp.III, 112)

मिलता है। जिसे ईरानी लोग हप्तहेन्दुके नामसे : पुकारते थे वही वैदिक भारतमें सप्तसिन्धु देश कहलाता था ” (Vide Avesta Introduction 1-8) यही नहीं, किन्तु हप्तहेन्दुके सदृश (Vide Vendidad 1st. Fergard) पञ्जाबके पूर्वकी सरस्वती नदीका जेन्द-भाषाका नाम हरह्वैतीभी अवस्तिक धर्म ग्रन्थोंमें लिखा मिलता है। इसी तरह पश्चिमी सीमाकी दूसरी नदियोंका अर्थात् रसा और सरयू का उल्लेख भी इनके जेन्द भाषाके रघा और हरेयू नामोंसे होता मालूम पडता है: (Vide Veadidad First Fergard) और इस पुस्तकका दसवां अध्याय देखो। वहां प्रारम्भमेंही मैंने इन्हीं नदियोंका विस्तृत विवरण दिया है। इस तरह धार्मिक मत-भेदके सम्बन्धमें ऋग्वैदिक तथा अवस्तिक प्रमाण दे चुकनेके बाद मैं अब दूसरे वैदिक प्रमाण उपस्थित करनेको आगे बढता हूँ, जो इसी बातका समर्थन करते हैं। ऐतरेय ब्राह्मणमें अत्यन्त प्राचीन कालके इन दो आर्य परिवारोंके बीच लगातार मार-काट मची रहनेके सम्बन्धमें भडकीला चित्र अंकित किया गया है। उसमें लिखा है कि, “ देवगण असुरोंको पराजित करनेके उद्देशसे उनसे लडने लगेXXXतब देवताओंने असुरोंको पराभूत किया ” । (Vide Dr Hang's Translation of theAitereyaBrahman 339 Vol. 2 p. 230 Ed. 1863) संस्कृतका मूल पाठ नीचे उद्धृत किया जाता है:—देवा वै असुरैर्युद्धमुप प्रायन् विजयाय । ;... ततो

---

१. जिस सरयू नदीका उल्लेख रासा, सिन्धु, सरस्वती या पञ्जाब तथा पश्चिमी सीमांकी दूसरी नदियोंके साथ किया गया है वह यह सरयू नहीं है जो अवधकी सीमाके पूर्वोत्तरमें बहती है। (इस पुस्तकका दसवाँ अध्याय देखो जहाँ प्रारम्भकी पाद-टिप्पणीमें मैंने इसका ब्योरा दियाहै)।

२. देव तथा असुरशब्दके सम्बन्धमें डाक्टर हागका कथन देखिये। वे लिखते हैं, “ उस धर्मकी दीक्षा लेते समय, जैसा कि आजभी पढा जाता है, जोरास्टरका

-वै देवा अभवन्पुरासुराः...... । ऐत० ब्रा० ३-३९) इसके सिवा दूसरे स्थलमें भी मतभेदका कारण व्यक्त होता है । क्योंकि यदि एक ओर हमारे आदिम तथा वैदिक पूर्वपुरुष यज्ञोंका प्रेम और इस दशामें वे इनका अनुष्ठान भी करते थे दूसरी ओर जोरास्टरके अनुयायी या अयाज्ञिक लोग अपनी शक्तिभर उनके कार्योंमें विघ्न डालनेका प्रयत्न करते और इस बातकी निगरानीमें सावधान रहते थे कि यज्ञका करना बिलकुल बन्द होजाय । जैसा कि निम्न लिखित अवतरणसे प्रकट होजायगाः-

देवा वै यज्ञमतन्वत । तांस्तन्वानानसुरा अभ्यायन्यज्ञवेरासमेषां करिष्याम इति।...देवाः प्रतिबुद्धयाग्निमयीः पुरस्त्रिपुरंपर्यास्यन्त यज्ञस्य चात्मनश्च गुप्त्यै । ता एषामिमा अग्निमय्यः पुरो दीप्यमाना भ्राजमाना अतिरंष्ठंस्ता असुरा अनपधृष्यै बापाद्रवंस्तेऽग्निनैव पुरस्तादसुरा रक्षांस्यपाघ्नताग्निना पश्चात्तथैव.... । (ऐ० ब्रा० २-२१)

डाक्टर हाग इसका अनुवाद इस तरह करते हैंः-" देवताओंने यज्ञका प्रारम्भ किया जब वे ऐसा कर रहे थे तब असुरोंने उनके कार्यमें विघ्न डालनेके विचारसे (यज्ञकी सफलता पूर्वक समाप्तिको

-धर्म उन लोगोंके विरुद्ध स्पष्ट रीतिसे वी-दैवो अर्थात् देव-विरोधी कहाजाता है(देखो यस्न १२ पृ. १६४) और उनके एक अत्यन्त पवित्र ग्रन्थका नाम तक वी-दैवोदातहै (जिसका अपभ्रंश वन्डीदाद होगया है) अर्थात् जिसका अर्थ देवोंके विरुद्ध या उनके हटानका है । " देवता सब प्रकारकी बुराइयों प्रत्येक प्रकारकी अपवित्रताओं तथा मृत्युके उत्पादक हैं " । ...पृ. २२६ । डाक्टर हाग दूसरे स्थानमें लिखते हैं कि, " वेन्डीदाद शब्दके पहले भागका अर्थ जेन्दमें वी दैवो दातेम है " अर्थात् बुराइयोंक दूर करने, उसके प्रभावोंसे बचानेका है । " (Vide, Essays on the Religion of the Parsees) असुर शब्दके व्यवहारके सम्बन्धमें कृपाकर इस पुस्तकका नवां अध्याय देखिये । मैंने वहां इसका समुचित ब्योरा दियाहै ।

रोकनेके लिये) उनपर आक्रमण किया ... देवता सावधान होगये और उन्होंने अपनी एवं यज्ञकी रक्षाके लिये (उस स्थानको) एक तिहरी दीवारसे घेरदिया, जो अग्निके सदृशथी । असुरोंने उन चमकती-दमकती दीवारोंको देखकर आक्रमण करनेका साहस न किया, किन्तु वे भाग खडे हुए । इस तरह देवताओंने असुरोंको पूर्व एवं पश्चिम दिशामें पराजित किया "। (Vol. 2 P. 92) इस प्रकारकी लडाईकी पुष्टि तथा उसका समर्थन एक दूसरे अवस्तिक प्रमाणसे होता है । मतभेदके कारणको यह प्रमाण हमारे सामने वडीही सुन्दरताके साथ उपस्थित करता है । वह हमें यहभी वतलाता है कि आर्यावर्तसे निकालेगये उस दलने अन्तमें अहुर मज्द-मतके नवीन संस्थापक जोरास्टर-द्वारा प्रचारित विचित्र सिद्धान्तोंको दृढताके साथ स्वीकार कर लिया था । इन सिद्धान्तोंका उपदेश सोऽयन्त-मतके बाद किया गया था (देखो पीछे पृ, १४९ पाद टिप्पणी (ख) जोरास्टर लिखते हैं, (यस्न, १२, (१) मैं देव-पूजा परित्याग करता हूँ । मैं जोरास्टर यज्दयस्न (अहुरमज्दका पूजक), देवोंका शत्रु और अहुर (असुर) का भक्त होना स्वीकार करता हूँ " (४) " मैं उन दुष्ट, बुरे, झूँठे, असत्य और बुराईके उत्पादक देवोंको परित्याग करता हूँ जो अत्यन्त विषैले, संघातक और सारे जीवधारियोंमें अत्यन्त नीच होते हैं "..... (८) मैं यज्दयस्न, जोरास्टर यज्दयस्न हूँ । मैं इस धर्मकी प्रशंसा और दूसरे की (देव-धर्म) अपेक्षा इसे पसन्द करतेहुए इसको स्वीकार करता हूँ । " इसके सिवा जिस सोमका रूपान्तर अवस्तिक धर्मग्रन्थोंमें होम हो गया है,

---

१. डाक्टर हाग लिखते हैं कि, " जिस शब्दका व्यवहार होता है वह वरण है ' वरेण ' शब्दका अर्थ पसन्द है (जे०वर=पसन्द करना) । यह शब्द धर्मके लिये प्रयुक्त होता है । (Vide Dr. Hang's Essays on the Religion of the Parsees Ed. 1862. 165)

जो ईरानियों या पारसी-आर्योंको पहले जब कि वे उसी आर्यावर्तमें हमारे साथ रहते थे अत्यन्त प्रिय था और जिसका वे आदर करते थे, उसी सोमको सप्तसिन्धु देशसे निकाल दिये जानेके बाद ईरानियोंने दूषित ठहराया और उसके साथ घृणाका व्यवहार किया। अहुनवेती गाथामें (यस्न ३२) लिखा है, (३) "हे देवो, तुम उस बुरी शक्तिसे उत्पन्न हो जो मादकता (सोम) द्वारा तुम पर अधिकार करलेती है। मानव जातिको धोखादेने तथा उसका संहार करनेको वह तुम्हें ऐसे अनेक उपायोंकी शिक्षा देती है जिनके लिये तुम सर्वत्र प्रसिद्ध हो।" उसी तरह स्पेन्टा-मैन्यूस गाथामें लिखा है-४८,१० "हे बुद्धिमान्, उस उन्मत्तकारक मद्य (सोम) को भ्रष्टकरनेके लिये दृढ और साहसी मनुष्य कब प्रकट होंगे ? यह पैशाचिक कार्य मूर्तिपूजक पुरोहितोंको बहुत अहंकारी बनाता है और देशोंपर शासन करतीहुई वह नीचात्मा इस अभिमानको बढाती है"। (Vide Dr. Hang's Religion of the Parsees p.159)। उस गाथाके उपर्युक्त पद्यके सम्बन्धमें, जिसमें सोमपूजाका उल्लेख है, डाक्टर हाग इस तरह लिखते हैं, "इस पद्यमें ब्राह्मणोंकी उस सोमपूजाके विषयका उल्लेख है जिसको जोरास्टरने इतनी अधिक बुराईका कारण माना था कि उसको शाप तक दे दिया था।" (Dr. Hhag's Essays on the Sacred Language, writings & religion of the Parsees p. 159 Ed. 1862) अब मैं वेन्दीदादके समयके सम्बन्धमें डाक्टर हागका मत उद्धृत करूँगा। वे लिखते हैं, "वास्तवमें मूलग्रन्थ (जो किसी किसी प्रक्षिप्त अंशसे, जिनका उसमें मिला दिया जाना मालूम पडता है, अलग प्रकट है) बहुतही अधिक प्राचीन है। निस्सन्देह वह प्राचीनतम वस्तुओंमेंसे एक है। इसीसे वर्तमान वेन्दीदाद अपने इस रूपको प्राप्त हुआ है" (Vide muir's Original Sanskrit Texts Vol. 2 p. 332 Ed. 1871.)

यहांसे यह उद्धृतांश लिया गया है)। इसके सिवा उसतनवैती गाथामें एक और वाक्य है, जिसका हवाला जरूरही देना चाहिये। क्योंकि उससे यह बात प्रकट होगी कि मतभेदके उपरान्त पराजित दल मतभेदके लीलाक्षेत्र आर्यावर्तको परित्याग करके (दसवां अध्याय देखो) स्वयम् ईरानमें बस गया था। अतएव इस देशके सर्व प्रथम रचित उत्कृष्ट देश होनेकी कल्पनाका वेन्डीदादमें स्थान मिलना स्वाभाविकही था और तदनुसार उसका 'ऐरियन वैजो' के नामसे पुकारा जाना निश्चय कर लिया गया था (Vide, Vendidad First Fergard) क्योंकि ऐरियन वैजोका स्पष्ट अर्थ आर्यबीज है, अर्थात् आर्य बीजका स्थान या आवादीके प्रथम बीजका देश। अतएव आर्यावर्तसे निकालेगये दलने अपने नवीन धर्मको यहाँ स्थापित किया था और इस नई आवादीको चारों ओरसे घेरकर शत्रुओंके आक्रमणोंसे उसे सुरक्षित तथा स्वतन्त्र रक्खा था। क्योंकि उस गाथामें लिखा है, (१२) "फ्रियान नामके शत्रुके पराजयके उपरान्त (अग्नि-पूजा, कृषि आदि) सच्ची रस्में (ईरानियों) तथा उनके सहायकोंमें प्रचलित हो गई। तू खूँटोंसे पृथ्वीके राज्योंको घेर रहा है। इस तरह उस जीवित बुद्धिमानने इन सबको घेरेमें करके सम्पत्तिके सदृश उन लोगोंके (अपने भक्तोंके) सिपुर्द करदिया। (Vide Dr. Haug's Parsee's Religion p. 157) इसके सिवा वीरखण्ड या वैक्ट्रियाकी उच्च समभूमिके सम्बन्धमें भी हवाला दिया गया मालूम पडता है। क्योंकि उसका उल्लेख जेन्दावस्तामें वेरेखध अरमैतीके नामसे हुआ है। यहाँ एवं दूसरे देशोंमेंभी पारसी आर्योंनें इस नये धर्मकी उन्नतिके लिये एक उपनिवेश स्थापित किया था। क्योंकि (वोहुख शथ्रेम) गाथामें लिखा है-"श्रेष्ठ फशोष्ट्राने मेरी उच्चसमभूमि वेरेखध अर्मैती अर्थात् वैक्ट्रियाको इस लिये देखना चाहा कि वह वहां इस श्रेष्ठधर्मकी उन्नति करे। इस कार्यके सफल होनेके लिये अहुरमज्द

आशीर्वाद देवें" (Vide Dr. Haug's Parsee Religion Ed 1862. 161) हमें पहलेही ज्ञात हो चुका है कि अयाज्ञिकोंने वैदिक यज्ञ धर्मसे अपना मत-भेद विघोषित कर दिया था। यही नहीं, किन्तु उन्होंने वैदिक आर्योंके यज्ञों एवं सोमपूजाके भी प्रति अपनी घोर घृणा व्यक्त की थी। अतएव इस प्रकारके व्यवहारको वैदिक आर्य क्षणभरभी न सहन करसके और न उन्होंने उसे यों ही हवामेंही उडजाने दिया। फलतः दोनों दलोंमें बिगाड हो गया। वैदिक आर्योंने अयाज्ञिकोंको सप्तसिन्धु देशसे निकालकर अपने धर्मके साथ कियेगये अन्यायका बदला लेलिया। पारसी-आर्य वैदिक आर्योंद्वारा उत्पीडित कियेजाने पर ईरानको चले गये और वहीं आबाद हो गये। वे लोग अफगानिस्तान तथा दूसरे देशोंसे होकर निकले थे और मीडिया तथा अन्य स्थानोंमें अपने उपनिवेश कायम करनेके बाद ईरानको गये थे। पारसी-आर्योंने ईरानमें नवीन जोरास्टर धर्मकी प्रतिष्ठा की और उसे अपने सारे कार्योंका केन्द्र नियत किया। अतएव यह देश स्वाभाविक रीतिसे वही था जिसे जोरास्टरके ईश्वर अहुर मज्दने सर्व प्रथम तथा उत्कृष्ट देश कहकर विघोषित किया था और इस दशामें यह देश एरियाना-वैजो कहलाता था, जिसका स्पष्ट अर्थ आर्यबीज है। क्योंकि आर्याना या ईरान आर्य शब्दका अपभ्रंश मालूम पडता है और वैजो संस्कृतके बीज शब्दका। अतएव निओफीट लोगोंके मनपर यह अभिलषित प्रभाव डालनेके लिये कि यह आर्यबीजका देश था, वे लोग इस नई आबादीको आर्यन्

---

१. उस देशका यह जेन्द नाम है। उसका प्राचीन पारसी रूप इरन विजो होताहै। उसके स्थानके सम्बन्धमें स्पीजल लिखते हैं, " एरियाना वैजो ईरानी उच्च-सम-भूमिके पूर्व अत्यन्त दूर उस देशमें है जहाँसे सर और अमूनदियाँ निकलती हैं "। वैरनवान बनसेन इसे " पामीर और खोकन्दको उच्च धरातल " नियत करते हैं (Vide Muir's O. S. Texts Vol 2 p. 332, 481, Ed. 1871)

वैजो कहते थे। उसके बादके दूसरे देशका नाम सोगदियाना था; तीसरेका मर्व या मार्गियाना, चौथेका वल्ख या वैक्ट्रिया, पाँचवेका निसा या निसाइया, छठेका हिरात या अरिया, सातवेंका किसीके मतसे सीजिस्तान और दूसरोंके मतानुसार काबुल[1], आठवेंका हाग और लासेनके मतसे काबुल, नवेंका स्पीजलके[2] मतसे गुरगन और हागके मतसे कन्धार, दसवेंका अर्चोसिया, ग्यारहवेंका हेलमन्दनदीकी तराई, बारहवेंका राई, तेरहवें और चौदहवेंके सम्बन्धमें विभिन्न मत हैं, उनका पता नहीं लगता है, पन्द्रहवेंका सप्तसिन्धु देश है और सोलहवेंका राघा या वैदिक रसानदी था। परन्तु डाक्टर हागका मत है कि यह सोलहवाँ देश कास्पियन सागरके किनारेपर ढूंढा जा सकता है। परन्तु डाक्टर कीपर्ट वेन्डीदादके पहले फरगर्दमें उल्लिखित देशोंमेंसे कुछेक स्थान निर्देशके सम्बन्धमें डाक्टर हाग तथा दूसरे विद्वानोंके परिणामोंका खण्डन करते हैं। उन्होंने सन् १८५६ के Transaction of theBerlin Acudemy में प्रकाशित on the Geographi calArrangement of the Arian Countries stated in the Vendidad " नामक लेखमें अपना मत व्यक्त किया है। इसके सिवा जेन्द भाषाके प्रसिद्ध विद्वानोंमेंभी इस पुस्तकके ऐतिहासिक तथ्य या उसके ऐतिहासिक स्वरूपके सम्बन्धमेंभी बहुत भारी मतभेद है। अध्यापक डारमिस्टॅटर उक्त फरगर्दकी अपनी भूमिकाके अन्तमें लिखते हैं, " इससे यह व्यक्त होता है कि इस वर्णनसे कोई ऐतिहासिक परिणाम नहीं निकाला जा सकता है × × × देशान्तरगमनके भौगोलिक वृत्तान्तके लिये उसकी ओर दृष्टि डालना मानो सृष्टिविज्ञानको इतिहासमें परिवर्तित करना है "। दूसरी ओर वैरेनबान

---

१. बर्नफ लासेन और हाग। २. स्पीजल।

वानसेन, हीरेत, रोडी, लासेन और दूसरे विद्वान् वेन्डीदादमें दिये हुये इस विवरणमें आधा ऐतिहासिक और आधा पौराणिक अंश मानते हैं। वानसेन और स्पीजलने तो यहाँतक कह डाला है कि वेन्डीदादका प्रथमोल्लिखित देश ईरानियोंका आदिम आवास है और उसके बाद जिन देशोंका नाम आया है उनसे पारसी आर्योंका देशान्तरगमन तथा उनके उपनिवेश सूचित होते हैं। इन उपनिवेशोंको उन्होंने कुछ समयके उपरान्त स्थापित किया था। परन्तु डाक्टर हागभी स्वीकार करते हैं, " यद्यपि स्वयम् मूल-पुस्तक वास्तवमें बहुत प्राचीन समयकी है और निस्सन्देह वह प्राचीन वस्तुओंमेंसे एक है। उसीसे वर्तमान वेन्डीदाद तैयार हुआ है। तो भी " हम इस पुस्तकसे कोई ऐतिहासिक कल्पना कठिनताके साथ कर सकते हैं " और इसके आगे वे यह लिखते हैं कि इसके प्रणेताका भौगोलिक ज्ञान बहुतही परिमित था (Vide Muir's O, S, T, second Edition p. 333.) से यह अवतरण उद्धृत किया गया है। इसके सिवा अध्यापक स्पीजल अवस्ताकी दूसरी जिल्दकी अपनी भूमिकाके पृष्ठ CIX में उसीकी पहली जिल्दके ५९ वें पृष्ठपर लिखे गये अपने पूर्वके कथनको कार्यतः बदलतेहुये मालूम पडते हैं। वे लिखते हैं कि वेन्डीदादके पहले अध्यायमें ईरानियोंके क्रमशः देशान्तरगमनका विवरण खोजनेके प्रयत्नमें मैं नहीं शामिल होसकता। यह कहा गया है कि, देशोंकी उक्त सूची उनके उत्तरी आवास-स्थानसे प्रारम्भ होकर हप्तहेन्दु या भारतसे समाप्त होती है और उपनिवेश स्थापित करनेके उनके प्रयत्नोंका वह एक प्रकारका इतिहास है। परन्तु उक्त सूचीसे ऐसे देशान्तरगमनके सम्बन्धमें कुछभी नहीं प्रकट होता ...। अतएव किसी विशेष समयमें ईरानियोंको जो देश ज्ञात थे उनके विशेष वर्णनको छोडकर मुझे इस अध्यायमें और कुछ नहीं मिलता परन्तु उक्त समय हालका नहीं हो सकता क्योंकि हप्तहेन्दु शब्दका

सम्बन्ध वैदिक कालसे है। इसके सिवा अध्यापक मैक्समूलरभी लिखते हैं, " इस भौगोलिक अध्यायके स्पष्ट पौराणिक रूपको एम० मिशल वीलने सन् १८६२ के जर्नल एशियाटीकमें सिद्ध किया है " (Vide Last results of the Persian Researches p.113 reprinted in " chip " 1. 86) और डाक्टर हागका यह कथन है कि हम उससे (वेन्डीदादके भौगोलिक अध्यायसे) कोई निश्चित ऐतिहासिक कल्पना नहीं कर सकते. जैसा कि पहलेही उद्धृत किया जा चुका है यहाँ पाठक स्वाभाविक रीतिसे प्रश्न करनेको लालायित होंगे। वे पूछेंगे कि यदि वेन्डीदादके उक्त फरगर्दमें कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं है और यदि उसमें उल्लिखित ईरानसे लेकर सप्तसिन्धु देशतक तथा इनके बीचमें अवस्थित एकके बाद दूसरे भिन्न भिन्न देशों या जैसा कि आगे उल्लिखित उलटे क्रमसे उनका वर्णन पारसी आर्योंके देशान्तरगमनका किसी तरह सूचक नहीं है तो उसमें इतने अधिक ब्योरेवार वर्णनके अंकित कियेजानेका क्या अर्थ निकल सका या निकलता है ? वास्तवमें यह प्रश्न बहुतही उचित है और ऐसी दशामें ध्यान देने योग्य है, अतएव हमें इसका विचार करना चाहिये। हमें पहले लिख आये हैं कि पारसीआर्योंने भारतीय आर्योंको मतभेदके उपरांत या आर्यावर्तसे अपने निकालेजानेके पीछे देवकी पदवी दी थी और मानो उस असद् व्यवहारका बदला लेनेके लिये उन्होंने भारतीय आर्योंके पवित्र नामोंमेंसे कुछेक अपवित्र वस्तुओंके जेन्दी-नामोंमें बदल दिया था। यही नहीं, किन्तु उन्होंने आर्यदेवताओंके नामोंकोभी अपनी भाषाके नीचात्माओंके नामोंमें परिवर्तित कर दिया था। उन्होंने सबसे पहलेके हिन्दूधर्मके सर्वोच्च देवता इन्द्रको नरकका स्थान दे डाला था। उसी तरह यहभी प्रतीत होता है कि उन्होंने भारतीय-आर्योंको ईरानी देवता अहुरमज्दकी सामर्थ्य दिखलानेके लिये एक चाल निकाली थी। अपने ईश्वरके

भिन्न भिन्न स्वरूप मानकर उन्होंने एक एकका अलग नाम रक्खा था। यदि हम यह बात ध्यानमें करलें कि संस्कृतका 'स' जेन्दमें 'ह' होजाता है और यदि हम अपना ध्यान स्वरसम्बन्धी दूसरे परिवर्तनोंकी ओरभी दें तो हमें ज्ञात होगा कि अहुरमज्द संस्कृतमें असुर मेधावी है और इसका अर्थ "असुरोंका अत्यन्त बुद्धिमान् तथा सर्व प्रधान ईश्वर" है। जिन भिन्न भिन्न देशोंकी अहुरमज्दने रचना की है जैसा कि वेन्डीदादमें वर्णित है उनके सम्बन्धमें यह बात ध्यानमें करलेनी चाहिये कि उनका उल्लेख ठीक उलटे क्रममें कियागया मालूम होता है। आर्यावर्तमें निकालदिये जानेके बाद जिन देशोंको उन्होंने देखा था वे उलटे क्रममें अंकित कियेगये प्रतीत होते हैं। क्योंकि एरियन वैजो स्पष्टरीतिसे वह देश है जहाँ ईरानी लोग अपनी पराजय तथा भारतीय आर्यों द्वारा आर्यावर्तसे निकालदियेजानेके बाद पश्चिम ओरकी अपनी यात्रामें अन्तमें जाकर ठहरे थे। इसका सर्व प्रथम उल्लेख विशेष अभिप्रायसे हुआ है, क्योंकि उनके आश्रयका यह अन्तिम स्थान था। इसी स्थानसे उनके सारे कष्टोंकी केवल इतिही नहीं होगई किन्तु लगातार यात्राकी थकावटसेभी उनको त्राण मिला और भारतीय आर्योंके उत्पीडनका भयभी जाता रहा था। इसके सिवा हप्तहेन्दु (अर्थात् सप्तसिन्धु) और रंघा (या वैदिक रसा) का उल्लेख उक्त क्रमके अन्तमें कियागया था। क्योंकि जोरास्टरके अनुयायियोंके उत्पीडनके समय तथा आर्यावर्तसे उनके निकाले जानेके बाद ये स्थान सबसे पहले परित्याग किये गये थे।

अस्तु—वेन्डीदादका उक्त फरगर्द ईरानसे देशान्तरगमन करनेके सम्बन्धमें कुछभी नहीं उल्लेख करता है जैसा कि कुछ पूर्वी तथा पश्चिमी विद्वानोंने अनुमान किया है। इसके सिवा देशान्तरगमन उत्तरसे दक्षिणको बिलकुलही नहीं हुए थे और ईरानके उत्तरीदेश या एरियन वैजोसे ईरानी देशान्तरगमन हप्तहेन्दु या आर्यावर्तके सप्तसिन्धु-

देश तथा ईरान् और इसके मध्यमें स्थित देशोंकी ओर तो और भी नहीं हुयेथे। इसके विपरीत जैसा कि पहले कहा जा चुका है सोम-पूजा तथा तत्सम्बन्धी दूसरी बातोंके कारण भारतीय- आर्यों तथा पारसी आर्योंके बीच जब धार्मिक मत-भेद उठ खडा हुआ तब जो पारसी-आर्य अयाज्ञिक थे और जिन्होंने अयाज्ञिक होनेकी स्वयं घोषणाभी कर दी थी उनको भारतीय-आर्योंने यज्ञ-प्रेमी आर्योंने यज्ञोंके देशसे (भूम्यां देवेभ्यो ददाति यज्ञं हव्यभरं कृतम्। अथर्व० वेद० १२-१-२२) निकाल बाहर किया था क्योंकि उन्होंने (पारसी आर्योंने) यहां अर्थात् अपनी जन्मभूमि आर्यावर्तमें विलकुल एक नवीन धर्मही[1] स्थापित करनेका प्रयत्न किया था। यह धर्म यथार्थमें वैदिक शिक्षा तथा हमारे उन आदिम पूर्वपुरुषोंके प्राचीनतर परम्पराओंसे भिन्न था जो उसी यज्ञके देश तथा प्रसिद्ध सप्तसिन्धु देशमें जन्मे और रहे थे ऐसी दशामें यह जानने और कहनेके लिये पुष्ट कारण प्रतीत होते हैं कि अपने आवास तथा उत्पत्ति स्थान आर्यावर्तसे, यही नहीं किन्तु भारतीय-आर्यों तथा इरानियोंकी ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण आर्यजातिकी और सम्भवतः सारी मानव जातिकी सार्वजनिक मातृभूमिसे मतभेदके अनन्तर निकालेजानेपर पारसी-आर्य ईरानमें वस गये और उसे एवं उसके

---

१. ईरानियों और भारतीयोंके सादृश्यका उल्लेख करते हुए लासेन लिखते हैंः– " यह पहले याद करलेना चाहिये कि जेन्दावस्ता हम लोगोंके सामने (ईसनी) धर्मशिक्षा अपने असली रूपमें नहीं, किन्तु सुधरे हुए रूपमें उपस्थित करती है... और हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि उसके जिन स्थलोंमें ब्राह्मण-भारतीयों और जोरास्टरके अनुयायियोंके बीच मेल मिलता है वे पुराने समयके हैं और जिन स्थलोंसे भिन्नता प्रकट होती है वे नवीन हैं " चिह्नित शब्द मेरे हैं और विशेष ध्यान देने योग्य हैं। ग्रन्थकर्ता (Ind. Aut. First Edition I, 516 Ed. I, 617)

साथही उत्तरके भूभागों तथा देशोंको उन्होंने अपने उपनिवेश बनाया। सारी आर्यजातियोंमेंसे हम भारतीय-आर्य और इरानी लोग आर्यावर्त-अपने जन्मकी भूमि, यथार्थमें अपने मूल आवास तथा उत्पत्ति स्थानमें एक साथ दीर्घ कालतक रहते रहे और इस बात स्पष्ट रीतिसे यह प्रमाण है कि ईरानी लोगोंको सप्तसिन्धुका उसके जेन्दके बिगडे हुये रूप हप्तहेन्दुसे पता था, उन्हें उसका स्मरण था। भारतीय-आर्योंके धार्मिक विश्वासों तथा अत्यन्त अतीत कालकी इनकी प्राचीन परम्परासे उन लोगोंका घनिष्ठ सम्बन्ध था। उन्होंने सोमपूजाको भी स्वीकार किया था और हमारे पौराणिक देवी-देवताओंके नामोंसे भी अवगत थे इनको उन्होंने धीरे धीरे अपने पुराणोंमें प्रचलित किया था और ऐसी दशामें नाम जेन्द भाषाके धर्मग्रन्थोंमें कम या अधिक अपभ्रष्ट या बिगडे हुए रूपमें देख पडते हैं। फलतः एक बहुत ही घनिष्ठता सूचक सादृश्य इन दोनों जातियोंके धर्म और पुराणोंमें विद्यमान हैं। उसका कुछ महत्त्व पूर्ण वर्णन मैं आगे करूंगा। साथही यह कहना भी आवश्यक समझ पडता है कि यह सादृश्य, हाँ कुछ कम दर्जेमें, यूनानी, रोमन जैसी आर्य जातिकी दूसरी शाखाओंमें भी पाया जाता है। अतएव भारतीय आर्यों तथा पारसी या ईरानियोंके साथ साथ उनकाभी कुछ विवरण आवश्यक है। आगे अध्यायमें उसकाभी उल्लेख किया जायगा।

नवाँ अध्याय.

आर्यावर्त और ईरान एवं दूसरे देशोंकी पौराणिक कथाओंमें सादृश्य.

भारतीय-आर्यों और पारसीकोंकी पौराणिक कथाओंमें निस्सन्देह बहुतभारी सादृश्य है। ऐसी दशामें वह विशेष करके अलग वर्णन करनेके योग्य है। क्योंकि उक्त सादृश्यसे बहुत अधिक पतेकी बातें मालूम होती हैं। उससे यह संकेत होता है कि ये दोनों जातियाँ

किसी समय सप्तसिन्धुदेशमें दीर्घकालतक एक साथ रही थीं और इनकी जुदाईका कारण धार्मिक मत-भेद था। यह मत-भेद तृतीय कालीन युगके अन्तिम भागमें सप्तसिन्धुदेशमेंही उपस्थित हुआ था। इसके फलस्वरूप जुदाई होजानेके पीछे अपना मूलस्थान आर्यावर्त परित्याग करनेके लिये वाध्य कियेजानेपर विरोधी लोग ईरानमें जा बसे थे। इस नये अङ्गीकृत देशको उन लोगोंने अपना निजका देश बनालिया और इसके बाद उन्होंने उसका नाम एर्यनवेजो रखदिया। उन्होंने यह काम इस विचारसे किया था कि एक नवीन तथा अनुकूल प्रभाव यह पड जाय कि उनकी उत्पत्ति और आर्योंके प्रथम बीजका स्थान यही देश था। इन दोनों जातियोंने उत्तरी ध्रुव-प्रदेशोंमेंभी अपने उपनिवेश बसाये थे और अपने परिवारोंके साथ वहाँ दीर्घकालतक रहे थे। महाहिमयुगके आगमनके समय जब हिमकी विनाशकारी प्रवाह वहां सहसा फैलगया और जब उत्तरीध्रुव वृत्तके आनन्दकारक जल-वायुके स्थानमें अत्यन्त अधिक तथा असहनीय शीत प्रधान जलवायु प्रवर्तित होगया तब आर्यावर्तके हमारे भारतीय-आर्य प्रवासी, अपनी मातृभूमि-आर्यावर्तकी ओर हिमालयपर्वतसे होकर लौट पडनेको वाध्य हुए थे और पारसी आर्य ईरानको लौट गये थे. आर्यजातिके दूसरे भूले-भटके दलोंने भागकर उन स्थानोंमें आश्रय लिया था जहां उनकी रक्षा हो सकी या जिनको उन्होंने अपने निवासके लिये पसन्द किया, अन्तमें ये दल उन्हीं भूभागोंमें बस गये, जो पीछेसे नार्वे, स्वीडन, जर्मनी, ग्रीस, इटली, गाल, ग्रेट-ब्रीटेन और आयर्लैन्ड-हमारे आर्य-पूर्व-पुरुषोंकी सुदूर पश्चिमी बस्तीयाँ उपनिवेशके नामसे प्रसिद्ध हुए। अतएव भारतीय-आर्यों और ईरानियोंके आर्यावर्त या सप्तसिन्धु-देशमें दीर्घकालतक एक साथ रहने तथा जुदाईके पीछे भी पार-स्परिक मेल-जोल बनाये रखनेके कारण हमारी पौराणिककथायें

ईरानियोंकी पौराणिक कथाओंके साथ तत्सम-शब्दों, देवताओंकी उपाधियों, वीरोंके नामों, धार्मिक रीतियों, यागीय विधियों, घरेलू विचारों और सृष्टि-विज्ञान-सम्बन्धी सम्मतियोंके रूपमें बहुत अधिक सादृश्य प्रकट करती हैं । महाहिमयुगके आगमनके समय आर्य-जातिकी जो दूसरी शाखायें योरप चली गई थीं उनकी पौराणिक कथाओंकी अपेक्षा ईरानियोंकी पौराणिक कथाओंसे भारतीय-आर्योंकी कथाओंका अधिक सादृश्य है । अतएव भिन्न भिन्न आर्य-जातियोंके आर्यशब्दों तथा पौराणिक कथाओंके अगणित सादृश्योंमेंसे कुछको यहाँ उद्धृत करनेका साहस करता हूँ । मैं पहले तत्सम-शब्दोंसेही प्रारम्भ करूँगा और भिन्न भिन्न स्तम्भोंमें उनके कुछ नमूने दिखलाऊंगा जो संस्कृत और ईरानी या जेन्द एवं ग्रीक, लेटिन, अंगरेजी इत्यादि जैसी योरपीय भाषाओंमें परस्पर एक दूसरेके साथ सादृश्य रखते हैं ।

संस्कृत.	जेन्द.	ग्रीक.	लेटिन.	अंग्रेजी.
पितर्	....	पेटर	पेटर	फादर
मातर्	मातर	मेटर	मेटर	मदर
भ्रातर्	ब्राटर	फ्राट्रिया (एकजाति)	फ्रेटर	ब्रदर
गो[1]	......	बुस	बोस	काऊ
पाद	पाधा	पुसयोडोस	पिसपीडिस	फूट
जानु	ज्नु	ग्मेनु	जेनु	नी
प्लीहन	....	स्प्लेन	स्प्लियन	स्प्लीन
वृक	वेहर्क	लुकस	लुपुस	वोल्फ
अहि	अजही	इखिस	अंगुइस	......
स्वप्न	गफ्न	हुपनस	सोपर	स्लीप
अन्तर	अन्तरा	इन्टोस	इन्टर	इन
स्था	स्ता	हिस्तेमी	स्टो	स्टैन्ड
चक्र	चख्र	कुक्लोस	सेरिअस	सरकिल

१ संस्कृतका 'ग' कभी कभी यूनानी तथा लेटिनमें 'व' से प्रकट किया जाता है.

ये नमूने आगेके स्तम्भोंमें उद्धृत हैं:-अब हम अपना ध्यान. थोडी देरके लिये देवताओंकी उपाधियोंकी ओर देंगे, क्योंकि ईरानियोंने भारतीय-आर्योंके लिये देव शब्द और भारतीय आर्योंने ईरानियोंके लिये असुर शब्दका प्रयोग घृणाव्यञ्जनार्थ किया है। असुरका अपभ्रंश अहुर और अहुर मज्द (होर मज्द या उसका एक दूसरा रूप होरमसजी है। यह अब पारसियोंमें किसी व्यक्तिके नामके रूपमें ज्यादा प्रयुक्त होता मालूम पडता है) ईरानियोंके ईश्वरका नाम है। यथार्थमें जोरास्टरका धर्म देवधर्मके ठीक विपरीत स्पष्टरीतिसे अहुर धर्म कहलाता है। इस स्थानमें हमको यह बात ध्यानमें रख लेनी चाहिये कि ऋग्वेदके पहलेके अंशोंमें असुरशब्द एक आदर सूचक शब्द था और उसका प्रयोग पूर्णरीतिसे अच्छे अर्थमें होता मालूम पडता है। उदाहरणके लिये हम भारतीय-आर्योंके सर्वप्रधान देवता इन्द्रको ऋग्वेदके १-५४-३ में (असुरो बृहच्छ्रवा) असुरकी पदवीसे अभिहित होते और कीर्तिमान् तथा यशस्वी कहलाते पाते हैं। भारतीय-आर्यों द्वारा पूजित वरुण देवतासेभी असुर नामसे प्रार्थना की गई. ऋग्वेदमें लिखा है (....वरुण....असुर प्रचेता राजन् .... १-२४-१४)। इसके सिवा ऋग्वेदके १-३५-७ तथा १-३५-१० में सूर्य असुरोंक नेताकी पदवीसे विभूषित किये गये हैं (असुरः सनीथः) और ४-२=५ में अग्निदेव असुरके नामसे संबोधित हुए हैं (अग्ने ... असुरः ४-२-५) प्रसम्राजो असुरस्य प्रशस्ति ... विवक्ति। ऋ० वे० ७-६-१) ये श्रेष्ठ पुरोहित, यागके ऋत्विज और होताभी कल्पित कियेगये हैं (पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं होतारम् .... ऋ० वे० १-१-१) परन्तु सम्भवतः ये सब बातें मतभेदके पहलेकी थीं क्योंकि जुदाईके उपरान्त विरोधियों या जोरास्टर लोगोंने अपने धर्मको अहुर या असुर धर्मके नामसे कहना प्रारम्भ कर दिया और हमारे वैदिक पूर्व पुरुषोंक

नाम देव रख दिया । पारसी-साहित्यमें देव (आधुनिक पारसी दिव) नीचात्मा, पिशाच या भूतका एक साधारण नाम है और यह शब्द, जो सब कुछ अच्छा है उसके विपरीत अर्थका द्योतक माना जाता है । इसके सिवा जोरास्टरका धर्म स्पष्टरीतिसे "वी-दैवो" जिसका अर्थ देवोंके विरुद्ध होता है, कहा गया है पारसियोंकी पवित्र पुस्तकोंमें एकका नाम वी-दैवो-दातभी है, जिसका वर्तमान विगडा हुआ रूप वेन्डीदाद है । इस पुस्तकके नामका अर्थ देवोंके विरुद्ध या उनको दूर करनेका है । फलतः ब्राह्मण ग्रन्थोंमें हम देवोंको असुरोंसे निरन्तर युद्ध करते पाते हैं । क्योंकि असुर लोग उनके भक्तोंके यज्ञोंपर आक्रमण करते थे । जिन वैदिक देवताओंके नामोंमें अधिक सादृश्य है उनमें इन्द्र एक मुख्य वैदिक देवता हैं । उन्हींने वृत्रासुर तथा मेघ-सर्पका विनाश किया था । इसी कारण वे वृत्रहा या वृत्रके मारनेवाले कहलाते हैं । इन्द्रकी इस महती उपाधिका स्मारक ईरानकी पौराणिक कथा और जेन्दकी धार्मिक पुस्तकोंमें सुरक्षित रक्खा गया मालूम पडता है । उनमें इन्द्रका यह नाम वेरीथ्राजओ या वेरीथ्रघ्न (देखो २१ वहराम यश्त) के बिगड हुए रूपमें स्पष्ट विद्यमान है । यद्यपि जेन्द-भाषाके ग्रन्थोंमें वृत्रहन्ताका उल्लेख बडे सम्मानके साथ हुआ है, तोभी जब उनमें उन्हींका उल्लेख इन्द्रके नामसे होता है तब वे अनादरके साथ नरकको भेज दिये जाते हैं । डाक्टर हाग लिखते हैं कि "यह बात बहुत कुछ विचित्र

---

१. " वेहराम यश्तमें स्वर्गीय दूत वेहरामका हाल लिखाहै । इस नामका मूलरूप वेरेथ्रघ्न है, जिसका अर्थ ' शत्रुओंका हन्ता ' अर्थात् विजेता है और वेदोंमें उल्लिखित वृत्रहा नामसे मिलजाता है " ...."वह वायुके रूपमें, गायके रूपमें,...घोडा,...ऊँट,...सूअर (वराहज=सं० वराह) ... १५ वर्षकी उम्रके लडके, योद्धा इत्यादिके रूपमें दिखलाई पडताहै । " (Dr. Hang's essay on the Religion of the Parsees p. 193, Ed.1862)

मालूम पडती है कि हम उन्हीं वैदिक देवता-इन्द्रको उनके मुख्य नाम 'इन्द्र' से शैतानोंकी सूचीमें लिखा हुआ पाते हैं, परन्तु उनकी उपाधि 'वृत्रहा' से हम उन्हें एक श्रेष्ठ स्वर्गीय दूतके रूपमें पूजते देखते हैं" (Vide, Dr. Hang's Rolegion of the Parsees p. 32Ed. 1862) वैदिक तथा अवस्तिक धर्म ग्रन्थोंमें दूसरे मुख्य देवता:सोम हैं। मालूम पडता है कि जेन्द-साहित्यमें इस शब्दका रूपान्तर होम हो गया है। वहाँ पिछले यश्नके ९–११ अध्यायोंमें सोम (जेन्दका हौम) का रस प्रस्तुत तथा उसका पान करनेका उल्लेख है। यही नहीं, किन्तु सोमपानसे उत्पन्न अद्भुत प्रभावोंके सम्बन्धमें सब प्रकारकी गाथायें लिखी गई हैं (देखो यश्न ९)। वहीं उस परम्परागत कथाका भी उल्लेख है कि एक समय सोम (हौम) देवता अपनी पूरी चमक दमकके सहित जराथस्त्राके सामने आ खडे हुए। जराथस्त्राने उनसे पूछा कि तुम कौन हो। इस पर उन्होंने (हौमने) उससे (ईश्वरी दूतसे) कहा कि मैं सोम हूँ और अब मेरी पूजा कीजानी चाहिये (Vide, Dr. Hang's Essays on the Religion of the Parsees p. 163) तदनुसार ईरानियोंने अपने पूर्व पुरुषोंके सदृश सोम-पूजाका प्रचार किया। हौम-रस तैयार करने तथा उसके पीनेके सम्बन्धमें जो उपर्युक्त अध्याय पिछले यश्नमें संकलित किये गये हैं उनसे ईरानी ईश्वरी दूतका सोम-पूजाके अनुयायी बननेकाभी परिणाम निकलता मालूम पडता है। अतएव यहां मैं पाठकोंको इस बातकी याद दिलाऊँगा कि मतभेदके उपरान्त जब ईरानीलोग आर्यावर्तसे निकाल दिये गये थे और वे उसे परित्याग करनेको बाध्य हुए थे तब उन्होंने सोमके प्रति कितने घृणाव्यञ्जक उद्गार निकाले थे परन्तु यद्यपि सोमके प्रति उपहास, ठट्ठा और स्पष्ट घृणा उन्होंने व्यक्त की तोभी उस देवता (सोम) के प्रति वे वह अनुराग तथा

भक्ति परित्याग न कर सके जो उन लोगोंमें स्वाभाविक रीतिसे उस समय जागृत हो चुकी थी जब वे सार्वजनिक उत्पत्तिस्थान अर्थात् प्रसिद्ध सप्तसिन्धु देशमें हमारे साथ रहते थे, जो जेन्द साहित्यमें हप्तहन्दुके नामसे प्रसिद्ध है। अतएव जैसे वैदिक सोमका अपभ्रंश अवस्तिक हौम प्रतीत होता है, ठीक वैसेही अवस्तिक शौर्व देवको वैदिक शर्व (शिवके अनेक नामोंमें एक यहभी है। शुक्ल यजु० १६-२८), नौन हैथ्य देवको नासत्य, मिथ्रको मित्र, एर्यामनको आर्यमन, बगको भग, अरमैतीको अरमति, नैरयोशंहको नाराशंस वायु या वायूके स्थानमें हम प्रयुक्त पाते हैं। इसके सिवा वैदिक और अवस्तिक पौराणिक कथाओंमें देवताओंकी संख्याके सम्बन्धमें एक बहुतही अधिक अपूर्व सादृश्य प्राप्त हुआ है। इन दोनों प्रकारके ग्रन्थोंमें देवताओंकी संख्या[1] तेंतीस लिखी है। उदाहरणके लिये ऋग्वेदमें (त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिः। ऋ० वे० १-३४-११; १-४५-२; १-१३९-११; ३-६-९) देवताओंकी संख्या ३३ है। तैत्तरीय संहितामें (कृष्ण यजु०: १-४-१०-१) एवं शतपथ ब्राह्मणमेंभी उनकी संख्या ३३ ही अंकित है। यह उल्लेख करना अनावश्यकही है कि ऐतरेय ब्राह्मण (त्रयस्त्रिंशद्वै देवाः .... ३.२२) और अथर्व वेदमेंभी (यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः। १० ७-१३, यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा १०–७–२७) देवताओंकी यही संख्या मानी गई है। इन तेंतीस देवताओंमें ग्यारह स्वर्गमें (ये देवासो दिव्येकादशस्थ .... ऋ० वे० १–१३९–११), ग्यारह पृथ्वीपर (पृथिव्या मध्येकादशस्थ।) और शेष ग्यारह आकाशमें रहते हैं (अप्सुक्षितो महिनैकादशस्थ ... ॥ ऋ० वे० १ १३९–११)। उधर जेन्दावस्थामेंभी उत्कृष्ट सत्यका प्रचार स्थायी

---

१. ऋ० वे० ३-९-९ को छोडकर, क्योंकि इस ऋचामें देवताओंकी संख्या ३३३९ लिखी है त्रीणि शतात्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवानव चासपर्यन् ऋ० वे० ३-३-९-

रखनेके लिये खुया प्रधान तेंतीसही नियत हैं। मज्दने सत्यका निरूपण किया और उसका प्रचार जराथस्ट्राने किया (देखो यश्न १–१०) शूरवीरोंके नामोंके सादृश्यके सम्बन्धमें जेन्दावस्तासे कुछ नाम यहाँ उद्धृत किये जाते हैं। वे नाम इस तरह हैं:–यिम, थ्रैटोना, अथ्वीओ, कवउस और काव्य उषन। जिनवैदिक नामोंसे इनका सादृश्य है वे क्रमानुसार ये हैं:– यम, त्रैतन, अप्त्य, और काव्य उशना। वेद और अवस्ताकी धार्मिक तथा यागीय विधियोंमें जो सदृश्य है वह इस प्रकार है, अध्ययन शील पाठक इनका महत्व पढतेही समझ जायँगे. पहले पुरोहितको लीजिये। मालूम पडता है कि जेन्दावस्तामें इसका नाम आथ्रव है और वस्तुतः यह वैदिक संस्कृत अथर्वण शब्दसे मिलता-जुलता है। उसी तरह संस्कृतके इष्टि, आहुत, होता, अध्वर्यु इत्यादिके स्थानमें जेन्द-भाषामें इष्टी, अजूहति जौत, रथवि (वर्तमानरूप रस्पि) क्रमानुसार प्रयुक्त हुये हैं। आहुति तथा सोमरस निकालनेके सम्बन्धमें वैदिक तथा अवस्तिक रीतियाँ सामान्य रीतिसे एकसा हैं। घरेलू रीतिरवाजोंके सम्बन्धमें मैं यहाँ संक्षेपमेंही उल्लेख करूँगा। हमारे यहाँ ब्राह्मणोंका यज्ञोपवीत किया जाता है, ठीक वैसेही पारसियोंके यहाँ कास्ती क्रियाका विधान है। इन दोनों जातियोंके अंत्येष्टि कर्मकी विधिमेंभी कुछ महत्त्वपूर्ण सादृश्य विद्यमान है जो पञ्चगव्य गोमातासे प्राप्त पाँच वस्तुओं–अर्थात् मूत्र, गोबर, दूध दही और घी–से बनता है उसका व्यवहार शरीरकी शुद्धिके लिये पारसियोंमेंभी होता है और यह क्रिया बहुतही प्राचीन समयसे प्रचलित है। विशेषकर इस कारणसे कि पञ्चगव्य शारीरिक शुद्धिमें बहुतही कारगर मानागया है। इस उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदीका प्रसिद्ध सभ्य योरपभी इस बातको स्वीकार करता है। डाक्टर हाग जैसे प्रख्यात विद्वान्ने लिखा है, " गोबर और गोमूत्र जैसी वस्तुओंको योरपके महाद्वीपमेंभी कृषकचिकित्सक अभी-

-वक प्रयोग करते रहे हैं" (Vide his Essays on the Religion of the Parsees p. 242) इनमें सृष्टि विज्ञानके विषयक सादृश्य इस प्रकार है कि ब्राह्मणोंके सिद्धान्तसे सम्पूर्ण जगत् सात द्वीपोंमें विभक्त है, वैसेही अवस्तिक धर्मग्रन्थमें वह सात किश्वरोंका बना लिखा है। जेन्दमें कश्वरे शब्दका अर्थ कटिबन्ध है। इसके सिवा ब्राह्मण एवं पारसी सृष्टिका केन्द्र एक पर्वतको मानते हैं। ब्राह्मण उसे मेरु और पारसी एलबुर्ज कहते हैं। इसी प्रकारका सादृश्य योरपीय जातियोंकी पौराणिक कथाओंमेंभी दिखलाई पड़ता है। पर इतना और ऐसा सादृश्य नहीं मिलता है। स्थानाभावके कारण मैं संक्षेपमें इसका उल्लेख करूँगा। मैं इसे पाठकोंके सामने इस मतलबसे उपस्थित करनेकी चेष्टा करूँगा कि वे इसका उल्लेख जान लें और उन्हें इसकी साधारण ज्ञान होजाय। वैदिक पौराणिक कथा तथा संस्कृत भाषाके अग्निशब्दसेही हम पहले प्रारम्भ करते हैं। स्लाव-भाषाके ओग्नी और लेटिनके इगनिस शब्दसे इसका सादृश्य है। संस्कृतका द्यौस् (द्यौः) ग्रीकके जिअस, लेटिनके डिअस जुपीटर; टयूटनके टायर तथा टयू, जर्मनके जिओ और लिथुआई भाषाके देवस शब्दसे साम्यता प्रकट करता है। इसके सिवा संस्कृतका उषस् शब्द ग्रीकके इओस, संस्कृतका सूर्यशब्द ग्रीकके हेलिओस, लेटिनका सोल, पुरानी जर्मनके सुन्न ऐंगलों सैक्सनके सुन्न और अंगरेजी भाषाके सन, संस्कृतका भग शब्द प्राचीन स्लावके बोगु, संस्कृतका वरुण लेटिनके उरनुस और संस्कृतके वात, वाक् मरुत, सारमेय, प्रमन्थ, ऋभु, शरण्यू, पवन, पर्जन्य, इत्यादि शब्दोंका सादृश्यभी वोटन, ओक्स, मार्स, हरमिस, प्रोमिथिअस, आरफियस, इरिन्निस, पान पारकुनस इत्यादि शब्दोंके साथ क्रम पूर्वक सुगमतासे प्रकट होता है। ये सब भाषायें विशाल आर्य भाषाके एकही स्रोतसे निकली हैं। अतएव इनमें इस प्रकारका सादृश्य स्थित हैही इस तरह

भिन्न भिन्न शब्दों, देवताओंके नामों और वीरोंकी उपाधियों, धार्मिक आचारों या यागीय रीतियोंमें, यही नहीं किन्तु घरेलू रीति-रवाजोंमें जो सादृश्य विद्यमान है उससे केवल एक यही बात प्रकट होती है कि पूर्व-ऐतिहासिक कालमें तथा अतीत कालके किसी समयमें भिन्न भिन्न आर्यवंश और उनकी शाखाएँ जो इस समय भूमण्डल पर बिखरीहुई हैं, उसी विशाल आर्यपरिवारकी थीं और हमारे उन्हीं आदिम पूर्व पुरुषोंसे उत्पन्नहुई थीं जिनका उत्पत्ति स्थान अत्यन्त पवित्र सरस्वती नदीका वह देश था—जो अपने भारी विस्तारके सहित सिन्धुसे लेकर गंगातक सप्तसिन्धवः—सात नदियोंके अत्यन्त प्रसिद्ध देशके वैदिक नामसे विदित था।

दसवां अध्याय।

मतभेद-और जुदाईका लीलाक्षेत्र-सात नदियोंका देश।

भारतीय-आर्यों और ईरानियों या प्राचीन पारसियोंके शब्दों और पौराणिक कथाओंमें जो निकटतम सादृश्य और विलक्षण ऐक्यता विद्यमान है उससे इन दोनों जातियों और उनकी दूसरी शाखाओंके बीच सार्वजनिक समुन्नतिके स्पष्ट चिन्ह मालूम पडते हैं (नवाँ अध्याय)। यद्यपि इन लोगोंकी जुदाईका कारण धार्मिक मतभेद था, तथापि यह विश्वास करनेके कारण हैं कि, जुदाईके पीछे भी वैदिक आर्यों और ईरानियोंने आपसमें अविच्छिन्न सम्बन्ध कायम रक्खा था। फलतः वे दूसरेको अच्छी तरह जानते और आर्यावर्तसे सम्पूर्णरूपसे परिचित थे. यह बात अवस्तिक धर्म-ग्रन्थोंसे प्रमाणित होती है कि आर्यावर्त या सात नदियोंकी वैदिक भूमि ईरानियोंको ज्ञातथी, जो जेन्द भाषाके हप्तहेन्दुशब्दसे स्पष्ट प्रकट है। अवस्तिक धर्म ग्रन्थोंमें पंजाबके पूर्वकी सरस्वती नदीका

उल्लेख हरहैतीके नामसे हुआ है । उसके पश्चिमकी सरयू नदीका उल्लेख वेन्दीदादमें किया गया मालूम पडता है । वहां इस नदीका जेन्द नाम हरोयू दियागया है । इसके साथही पश्चिमी सीमाकी रसा नामकी एक दूसरी नदी जेन्द भाषाके रंघा नामसे अपना स्पष्ट स्वरूप प्रकट करती है । अतएव यह बात निश्चित करनेके लिये बलवान् कारण मौजूद हैं कि मतभेदके पहले वैदिक आर्य और ईरानी आर्यावर्तके अपने मूलस्थानमें दीर्घकालतक, मेलसे एक साथ रहतेथे परन्तु सहसा यह प्रश्न उठ खडा होता है कि, जुदाई और मतभेद हुआ कहाँ था ? इसका स्पष्ट उत्तर यही होगा कि, "आर्यावर्त या सात नदियोंके प्रसिद्ध देशमें "क्योंकि जो वैदिक प्रमाण प्राप्त हुये हैं वे इसी बातको सिद्धकरते हैं और वे प्रमाण हम पीछे दे आये हैं यह बात हमें ध्यानमें रखनी चाहिये कि हमारे वैदिक पूर्व पुरुषभी सबके मुख्यतः यज्ञ-

---

१. मालूम पडता है कि यह सरयू नदी पश्चिमी सहायक नदी है और इसी नामकी जो सरयू अवधकी पूर्वोत्तरी सीमासे बहती है वह इससे भिन्न है; क्योंकि ऋग्वेदमें इसका उल्लेख पंजाबकी दूसरी नदियों तथा पश्चिमी सीमाकी नदियोंके साथ किया गया है । यह बात निम्नलिखित ऋचासे प्रकट होगीः-

"मावो रसा अनितभा कुभा क्रुमुर्मावः सिन्धुर्नीरी रमत् ।

मावः परिष्ठात्सरयुः पुरुष्णी अस्मे इत् सुम्नमस्तुवः ॥" ऋ० वे० ५-५३-९

"हे मरुतो, रसा, अनितभा, कुभा, क्रुमु, या सिन्धु तुमको न पकडपावें, जलमयी सरयू तुमको न रोकने पावे; जो आनन्द तुम देते हो उसे हम तक आने दो"
(Muir's O. S. T. p. 344 Ed. 1871)

सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महोमहीरवसा । यंतुवक्षणीः । देवीरापो मातरः सूदयित्नवो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत । ऋ० वे० १०-४४-७ ।

"सरस्वती, सरयू, सिन्धु अपनी लहरोंके सहित तथा बडी (नदियाँ) त्वरापूर्वक आवें, अपनी सहायतासे हमें बलवान् करें । हे देवी नदिओ, हे माताओ, घृत और सहदके सहित बहतीहुई तुम अपना जल हमको प्रदान करो ।"
(Muir's Vol. 2. p, 343 Ditto)

प्रेमी आर्य ही थे (आर्याय दाशुषे.... (हविर्दत्तवते-सायण) ऋग्-वे० ४-२६-२ । इसी कारण इन्द्रने इन आर्य याज्ञिकोंको (इन्द्र... .यजमानमार्यं प्रावत) सारे युद्धोंमें सदैव रक्षा की थी (सयत्सु.... विश्वेषु शतयूति राजिषु... ऋ० वे० १-१३०-८) और इनका पक्ष लिया था यही नहीं किन्तु हम इन्द्रको यागकर्मका परित्याग करनेवालोंको दण्ड देतेहुए पाते हैं (शासदव्रतान्.,..ऋ० वे० १-१३०-८) । हम उन्हें अयाज्ञिकोंका विनाश करते और उनके सारे दलबलको चारों ओर खदेडकर तितिर वितिर करतेहुए देखते हैं । (असुन्वामिन्द्र संसदं विपूचीं व्यनाशयः । ऋ० वे० ८-१४-१५) और ये अयाज्ञिक या विरोधी लोगभी आर्यहीथे । परन्तु वैदिक यज्ञोंसे इनकी श्रद्धा दूर हो गई थी । फलतः इन्होंने हमारी वैदिक रीतियोंका परित्याग करदिया था । अतएव यह अवस्था बहुत समय तक न जारी रहसकी और कुछ समयके बाद इन विरोधियोंने अपनी विपरीत धार्म्मिक सम्मतियाँ तथा अध्यात्मविद्यासम्बन्धी उपदेश खुल्लमखुल्ला देना प्रारम्भ करदिया । हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंके जो धार्मिक सिद्धान्तथे उनसे इनका उपदेश भिन्नही नहीं था, किन्तु बिलकुल विपरीतभी था । अतएव इस अवस्थाके उपस्थित हो जानेसे उसके अनुरूपही मतभेदभी उपस्थित हो गया और मैं भिन्न मतानुयायी तथा विरोधीलोग प्रचलितधर्म या वैदिकधर्मसे जुदा हो जानेके कारण तुरन्तही दास, असुर, कृष्णत्वच, कृष्णयोनि, कृष्ण-गर्भ इत्यादि उपाधियोंसे विभूषित किये गये थे । आगे ग्यारहवें अध्यायमें इन उपाधियोंकी व्याख्या की गई है। ये शब्द बहुतही सार्थक हैं। अब हम पूर्वोक्त प्रश्नके अपने उत्तरके सम्बन्धमें हम यह समुचित प्रमाण देते हैं । हम पहलेही लिख चुके हैं कि विरोधीलोगोंने यज्ञोंकी उपेक्षा करदी थी । अतएव हमारे वैदिक पूर्वपुरुष उन लोगोंको दस्यु, दास, असुर इत्यादि नामोंमें पुकारते थे । यही नहीं आर्यावर्तमें

उनकी उपस्थिति तक इन्हें सह्य न थी। फलतः उनके निकाल बाहर करनेके प्रयत्न किये गये, यह झगडा सप्त-सिन्धु देशमेंही दो दलोंके बीच प्रारम्भ हुआ था। अर्थात् वैदिक आर्य एक ओर थे और विरोधीलोग या ईरानी दूसरी ओर थे। इस युद्धमें इन्द्रने आर्योंकी सहायता की और उनका पक्ष लिया था। यही नहीं किन्तु उन्होंने उन स्वधर्म त्यागियों-अयाज्ञिकोंको आर्योंके हाथोंसे ही पराभूत. करवाया था। इस तरह इन्द्रने उन स्वधर्मत्यागी आर्योंका पराभव करनेमें आर्योंकी सहायता की थी। अतएव वे लोग घृणा व्यञ्जनार्थ दास कहलाये। इस सम्बन्धमें एक ऋक्कविका कथन आगे उद्धृत किया जाता है:—" जिन्होंने (इन्द्रने) सात नदियोंकी भूमिमें (याग प्रेमी आर्यको) आर्य शत्रुसे अर्थात् विरोधी ईरानीसे (और उसके द्वारा लाई गई) विनाशकारी आपद्वासे उद्धार किया था। हे अपरिमित धनके दाता, तू दासके अस्त्रको झुका दे।

ऋग्वेदका जो उपर्युक्त अवतरण यहाँ दिया गयाहै वह बहुतही महत्त्व पूर्ण है। अतएव मैं यहाँ मूलऋचाको भी उद्धृत किये देताहूँ—

"य ऋक्षदंहसो मुचद्यो वार्यात्सप्तसिंधुषु।
वधर्दासस्य तु विनृम्ण नीनमः"॥ (ऋ० वे० ८-२४-२७)

यहाँ दासशब्दका अर्थ शत्रु है और वह उन विरोधी ईरानियोंका संकेत करता है जिन्होंने यज्ञोंका विनाश किया अथवा

---

१. आर्यात्=आर्यशत्रुसे विरोधी ईरानी वैदिक याज्ञिकोंके आर्य-शत्रु समझे जाते थे; क्योंकि वे इन यज्ञोंसे घृणा करते थे, यहां तक कि इनका विनाश कर डालते थे।

२. सप्तसिंधुषु=गङ्गाद्यासु नदीषु।

३. मुचति=मुचति (उद्धार) करताहै। इसके तथा ऊपर नीचेके शब्दोंके सम्बन्धमें सायणकी भाष्य देखो। मैंने ये परम्परागत प्रमाण वहींसे लिये हैं।

४. वधः=हननसाधकमायुधम्, संहारका अस्त्र।

धार्मिक रीति-रस्मोंको नहीं माना था। यास्ककी व्याख्यासेभी इस मतका समर्थन होता है। वे लिखते हैं कि दस्युशब्द दस धातुसे बना है। इसका अर्थ विनाश करना है। उसमें (दस्युमें) नमी जलाई जाती है, और वह धार्मिक कृत्योंका विनाश करता ह"। यास्कका मूल पाठ इस प्रकार है–"दस्युर्दस्यतेः क्षयार्थादुपदस्यन्त्यस्मि-न्रसा उपदासयति कर्माणि.....(निरुक्ते उ० ष० १–२३)। इसके सिवा प्रसिद्ध भाष्यकार सायणभी अपने ऋक्भाष्यमें दस्यु या दास शब्दकी व्याख्या वैदिककर्म करनेवालोंके विनाशक शत्रुके रूपमें (अनुष्ठातॄणामपक्षपयितारः शत्रवः ...ऋ० वे० १–५१–८) अथवा ऐसे लोग जो धार्मिककृत्योंका विनाशक (कर्मणामुपक्षपयित्रीर्विश्वाः सर्वा विशः प्रजाः...ऋ० वे० ६–२५–२) अथवा ऐसे शत्रु जो धार्मिक कृत्योंसे हीन (दासाः कर्महीनाः शत्रवः...ऋ० वे० ६–६०–६;) करते हैं। स्वयं ऋग्वेदमेंभी अयाज्ञिक (अव्रतान्) दस्यु कहे गये हैं। और उनको जीतलेनेका आदेशभी दिया गया है. (सहवासो दस्युमव्रतम्....ऋ० वे० ९–४१–२)। और ऋग्वेद १०–२२–८ में अयाज्ञिक अथवा दूसरी धार्मिक क्रियाओंके मानने-वाले दस्यु या दास कहेगये हैं। अतएव इन्द्रसे उनके अस्त्रको अव-नत तथा उनका विनाश करनेकी प्रार्थना की गई है (अकर्मा दस्यु. अन्यव्रतो...वधर्दासस्यदंमयं ॥ ऋ० वे० १०=२२–८) । ऐतरेय ब्राह्मणसे भी यह बात ज्ञात होती है कि, जिन शुद्ध आर्य-रक्तके लोगोंने यज्ञ इत्यादि जैसे कर्मोंका करना छोड दिया था वे पतित हो गये और दास कहलाने लगे। जैसे महर्षि विश्वामित्रके पुत्र और वंशधर शुद्ध आर्य होने परभी दस्यु कहलाते थे। प्रसिद्ध स्मृतिकार मनु भी आदेश करते हैं कि आर्योंके वैदिक कर्मोंका परित्याग करने और उनका अनुष्ठान न करनेसे एवं ब्राह्मणोंके शील-व्यवहारका संसर्ग न होनेके कारण वे लोग पतित हो गये। अतएव जो जातियां ब्राह्मणोंके

प्रभाव क्षेत्रसे बाहर रही उनकी गणना दस्युओंकेही अन्तर्गत है। चाहे उनकी भाषा कोईभी हो और चाहे वे आर्य हों या अनार्य। मनु लिखते हैं:-

" शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥ ४३ ॥
मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ ४५ ॥"

(मनुः अ० १०)

इस तरह वैदिक कालमें दस्यु या दास शब्दका अर्थ केवल स्वधर्म त्यागी आर्य था अथवा ऐसा आर्य जो वैदिक कर्मकाण्ड नहीं करता था। परन्तु उस शब्दका अर्थ न तो अनार्य था और न बर्बर। अपने कोषमें प्रोफेसर राथनेभी लिखा है कि " दस्यु मनुष्योंकी एक वह जाति है जो विशेष करके पवित्र कट्टर आर्योंके बिलकुल विपरीत है " उनका यह मतभी है कि " कभी कभी ऐसा अवसर आ जाता है जब दस्युशब्दकी व्याख्या अनार्य बर्बरके अर्थमें करना श्रेयं होता है "... (Muir's O. S. T. Vol. 2 p. 368 Ed. 1871) इस दशामें हमारे बन्धु-बान्धव ईरानीलोग वास्तवमें स्वधर्म परित्याग करके हमारे शत्रु होगये थे और इस बातके स्वयं सिद्ध होनेपर यह बात पाश्चात्य विद्वानोंके भी मनमें जँचगईहै। म्यूर स्वीकार करते हैं कि कुछ आर्यजातियाँ केवल " धार्मिक कर्मोंका परित्याग करदेनेसे " ब्राह्मण-समाजसे पद-भ्रष्ट हो गई थीं, (Vide muir's O. S. T. 2nd. Ed. Vol. 2 p. 355) और अध्यापक राथने तो यहांतक लिखडाला है कि " इस तरह इस

---

१. दस्यु, दास और राक्षस शब्दोंकी उत्पत्ति तथा उनके प्रयोगका विचार मैंने अगले अध्यायमें पूर्ण रीतिसे किया है। अतएव मैं पाठकोंका ध्यान उसकी ओर आकृष्ट करताहूँ।

बातका अखण्डनीय प्रमाण है कि कम्बोज लोग यथार्थमें केवल भारतीय ही नहीं थे, किन्तु वे भारतीय सभ्यताके धारण करनेवाले भी थे। फलतः यास्कके समयमें भारतीय सभ्यता हिन्दूकुशतक फैलचुकी थी। पिछले समयमें जैसा कि मनुस्मृतिके प्रसिद्ध श्लोकसे (१०–४३) प्रकट होता है कि कम्बोजलोगोंकी गणना वर्बरोंमें थी। " क्योंकि उनकी रातियाँ भारतीयोंकी रीतियोंसे भिन्नथी "। अध्यापक राथने इसके आगे यह लिखा है–" अस्तु, कम्बोजों और भारतीयोंके बीच पारस्परिक सम्बन्धोंमें उसी तरह परिवतर्न संघटित हुआ है, जिस तरह प्राचीन कालमें आर्यों और प्राचीन पारसीकोंके बीच हो गया था " (Vide, Rot h's Literature and History of the Vedas p. 67) (इस अवतरणमें चिह्नितवाक्यों मेरे हैं-ग्रन्थ कर्ता) अतएव यह स्पष्ट माल्रूम होता है कि जिन आर्योंने अपना पुराना धर्म छोड दिया था अथवा 'न यज्ञ करनेका' नवीन धर्म ग्रहण किया था और जो ब्राह्मणोंके सम्पर्कसे दूर रहते थे वे सब पतित तथा अपने पद्से च्युत समझेजाते थे और उनकी भाषा चाहे आर्य हो चाहे अनार्य हो दस्यु कहलाते थे। यही नहीं, किन्तु पिताके आदेशकी अवज्ञा करनेसे भी हमारे शुद्ध आर्य दस्यु कहलाने लगते थे। यह बात ऐतरेय ब्राह्मणसे साफ प्रकट होती है। इसी कारण " अधिकांश दस्यु विश्वामित्रकी सन्तान हैं, " यह पाठ वेदोंमें मिलता है। क्योंकि शाप देते समय विश्वामित्रने अपने पचास अवज्ञाकारीपुत्रोंसे कहाथा, " जाओ तुम्हारी सन्तान (पृथ्वीके) छोरोंमें आबाद हो" " आन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मूतिबा और अन्य अगणित सरहद्दी जातियाँ हैं वही हैं। अधिकांश दस्युजातियाँ विश्वामित्रके वंशधर हैं। " यह अवतरण निस्सन्देह महत्त्वपूर्ण तथा गहरे अर्थसे

गर्भित है। अतएव मैं इसे यहाँ उद्धृत करता हूँ:-

तान नुव्याजहारान्तान्वः प्रजा भक्षीष्टेति । "त एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शबराः पुलिन्दा मूतिबा इत्युदन्त्या वहवो भवन्ति । वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः ॥" (ऐ० ब्रा० ७=१८)

फलतः प्राचीन पारसीकोंको हमारे वैदिक पूर्वपुरुष अपने प्रभाव क्षेत्रसे बाहर समझते थे । क्योंकि उन्होंने परम्परागत यज्ञों एवं तत्कालीन आदरणीय धार्मिक रीतियोंका परित्याग कर एक नये धर्मका ग्रहण कर लिया था । इस धर्मके सिद्धान्त प्राचीन तथा प्रचलित धर्मसे एकदम विपरीत समझे जाते थे । अतएव वे लोग दस्यु, दास या असुर कहलाते थे। ऐसी अवस्थामें जो जातियाँ दस्यु या दास और असुर कहलाईं वे अनार्य उत्पात्तिकी थीं, यह माननेके लिये कोई स्वतंत्र प्रमाण नहीं है । कुछ लोगोंने भूलसेही उन्हें वैसा मान लिया है । प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वानोंनेभी इस भूलको ईमानदारीके साथ स्वीकार किया है। म्यूर लिखते हैं, " ऋग्वेदमें उल्लिखित दस्यु या असुरोंके नामोंकी खोज मैंने इस दृष्टिसे की कि हो न हो उनमेंसे कोई अनार्य या देशी उत्पत्तिका समझाजासके पर मुझे ऐसा कोई नाम नहीं देख पडता है जो इस ढंगका हो " (Vide, Muir's Original Sanskrit Texts Vol. 2 p 387 Ed. 1871) । यही नहीं, उन्होंने एक दूसरी बात भी इसी प्रकार स्वीकार की है, जो इस सम्बन्धमें औरभी अधिक महत्त्वपूर्ण है वे लिखते हैं, " जहाँतक मैं जानता हूं, किसीभी संस्कृतपुस्तकमें, अत्यन्त प्राचीन पुस्तकतकमेंभी भारतीयोंकी विदेशी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कोई स्पष्ट उल्लेख या संकेत नहीं प्राप्त है " (Vide Muir's O. S. T. Vol. 2 p. 322 Ed. 2nd. 1871) अतएव पूर्वोक्त ऋचाका दास (दासस्य) शब्द (ऋ० वे० ८-२४-२७) सप्तसिन्धु देशके उन स्वधर्मत्यागियोंका अर्थात् पारसीक आर्योंका संकेत करता है

जिनके साथ वैदिक आर्योंको अपने परम्परागत यज्ञों और रीति-रस्मोंको कायम रखनेकेलिये युद्ध करना पडा था । तदनुसार इन्द्रने वैदिक आर्योंकी ओरसे हस्तक्षेप करके उन भयंकर हानियोंसे (ऋक्ष-दंहसो) उन्हें उबारा था (मुचत्) जो पारसीक आर्यों (आर्यात्) के हाथोंसे उन्हें झेलनी पडी थीं । क्योंकि ये लोग यज्ञों और धार्मिक कृत्योंका विनाश करनेसे वैदिक आर्योंके लिये उन्हींके मूल-स्थान सप्तसिन्धुदेशमें (सप्तसिंधुषु) विपत्तिका स्रोत बनगये थ । अतएव इन स्वधर्मत्यागियोंके (दासस्य) अस्त्र (वधः) अवनत करनेके लिये (नीनमः) इन्द्रसे विनय की गई थी । इन्द्रदेवताकी इस प्रकारकी मुख्य सहायतासे वदिक आर्योंने पूर्णरीतिसे विरोधियोंका स्पष्ट पराभव किया था और जिस देशमें मत-भेद उत्पन्न हुआ था और अन्तिम युद्धकी घटना घटी थी उससे वे निकाल बाहर किये गये थे । इसके सिवा स्वधर्मत्यागी आर्यशत्रुओंकी इस प्रकारकी अभिलषित पराजय तथा पराभव, सर्वनाश और विपत्तिका औरभी वर्णन ऋग्वेदमें हुआ है (६-२५-२, ३, ६-६०-६) इन स्थलोंमें इन्द्र और इन्द्राग्निसे इस बातकी प्रार्थना की गई है कि अयाज्ञिक स्वधर्मत्यागी वैदिक आर्योंके प्रभावमें लायेजायँ और वे देशसे निकाल बाहर कियेजायँ । हमारे ऋग्-वैदिक पूर्वपुरुष इन्हीं लोगोंको दस्यु या दास कहते थे । ये स्थल महत्त्वपूर्ण हैं, अतएव मैं उन ऋचाओंको उनके अनुवादके सहित यहाँ उद्धृत करता हूं-

१-"आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथयामन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽवतारीर्दासीः
ऋ० वे० ६-२५-२)

२-इन्द्रजामय उतयेऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुजे ।
त्वमेषा विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुहि पराचः ॥
(ऋ० वे० ६-२५-३)

३-हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती। हतो विश्वा अपद्विषः"
(ऋ० वे० ६-६०-६)

१-" इनसे (हमारे देशोंसे) उन सेनाओंको पराजित करो जो हमारे विरुद्ध लडती हैं और स्वयम् बिना चोटखाये उन शत्रुओंके क्रोधका दमन करो। " इन्हींसे चारो दिशाओंतक हमारे सारे शत्रुओंको खेद आओ और आर्योंके लिये दासोंकी जातियोंका पराभव करो (हे इन्द्र)"

२-" वे लोग जो (यद्यपि हालके) हमें मारनेको शत्रुकी भांति सज्जित होते हैं, चाहे स्वजातिके हों, चाहे विजातिके तू उनके पुरुषार्थका ऐसा विनाश कर जिससे वे निर्बल हो जायँ और उन्हें इस तरह खदेड, कि वे गर्दन झुकायेहुए पीछे भाग जायँ।"

३-" वे (इन्द्र और अग्नि) हमारे आर्य-शत्रुओंका हनन करते हैं। ये वीरोंके स्वामी हमारे दास[1] शत्रुओंका वध करते हैं।"-" और हमारे शत्रुओंको दूर खदेड दो। " (Ralf T. H. Griffith's Translation of the Rig Veda Vol. 1 pp. 58-6, 630)।

अतएव अपने अस्तित्वके लिये यह सारा झगडा स्पष्टरूपसे सप्त-सिन्धु देशमेंही हुआ था।

ग्यारहवां अध्याय.

दस्यु, दास, असुर और राक्षस किस जातिके हैं ?

अनेक पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विद्वानोंका विश्वास है कि हम भार-

---

१. दास-शत्रु इस शब्दसे उन आर्योंका संकेत है जिन्होंने यज्ञ करना छोड दियाथा (अव्रतान्। ऋ० वे० १-५१-२)। उन्होंने एक नये धर्मका ग्रहण किया था, अतएव वे स्वधर्मत्यागी समझे जाते थ।

तीय–आर्य सप्तसिन्धु देशके विजेता और उसमें देशान्तरगमन करनेवाले थे और जिन दस्यु या दासों तथा असुरों या राक्षसोंका ऋग्वेदमें संकेत है वही लोग इस देशके मूलनिवासी या असली अधिवासी थे। प्राचीन ऋग्वैदिक कालके तथा उससे भी अधिक अतीत कालके हमारे आदिम आर्य–पूर्वपुरुषोंने इन्हींका पराभव किया था। परन्तु इस प्रकारकी दलीलके लिये एक भी प्रमाण नहीं दिखलाई पडता है। क्योंकि हमारी विदेशी उत्पत्तिके सम्बन्धमें हमारे सम्पूर्ण विशाल संस्कृतसाहित्यमें किसी तरहका कोई भी प्रमाण नहीं प्राप्त है। इसके सिवा आर्यावर्तमें हमारे आने या आवाद होनेके सम्बन्धमें संसार भरके साहित्यमें कहीं कोई भी प्रमाण नहीं दिया गया है और यह कुछ कम संतोषकी बात नहीं है कि प्रसिद्ध इतिहासज्ञों पण्डितों और खोजके नामी विद्वानोंने इस बातको सचाईके साथ मानभी लिया है। (जैसे हमारी विदेशी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कोई प्रमाण नहीं है) वैसेही यह अनुमान करनाभी निराधार है कि दस्यु, दास, या असुरोंकी उत्पत्ति अनार्योंसे है। और यह संतोषकी बात है। यह बात पाश्चात्य विद्वानोंकोभी स्पष्टरीतिसे स्वीकार है। म्यूरनें लिखा है कि, मैंने ऋग्वेदमें उल्लिखित दस्यु या असुरोंके नामोंको खोजीकी दृष्टिसे पढा है। हमारा ध्यान इस बातपर बराबर रहा है कि वे नाम अनार्य या देशी उत्पत्तिके तो नहीं है। परन्तु मुझे एक भी ऐसा नाम पढनेको नहीं मिला जिसमें अनार्यत्व या देशीपनकी गन्धतक आती हो। इसका कारण यह नहीं है कि दस्युलोग जानबूझकर आर्यनामोंसे पुकारेजाते थे या उनके नामों कोही आर्यरूप दे दिया गया था। ऐसा अनुमान कुछ-लोगोंनें भूलसे किया है। किन्तु बात वास्तवमें यह है कि जिन आर्यों तथा हमारे बन्धु–बान्धवोंने अतीतकालसे प्रचलित वैदिक कर्मों तथा परम्परागत यज्ञोंका करना छोड दिया था वे दस्यु और दास, असुर और राक्षस

तथा यातुधान और मध्यवर्चस कहलाते थे। हम अपने ऋग्वैदिक ऋषियोंका स्वधर्मत्यागी और पतित लोगोंको काले शत्रु कहते पाते हैं (कृष्णगर्भा। ऋ०वे० १-१०१-१, कृष्णाः। ऋ० वे० ४-१६-१३) इसके सिवा हमारे ईरानी भाईभी हमारे ऋग्वैदिक पूर्व-पुरुषोंको काला कहनेके अवसरको हाथसे नहीं जानेदेते थे। उस्नवैती गाथामें जोरास्टरने इस कहा है। " (१२) जो मैं तुझसे पूछूँगा, हे विद्यमान ईश्वर, तू उसे मुझको ठीक ठीक बता। कौन आदमी धर्मात्मा है और कौन पतित है। जिसको मैं पूछना चाहता हूँ, इन दोनोंमें किसकी आत्मा काली है और किसकी सुन्दर है। जो मुझपर या तुझपर आक्रमण करता है क्या उसे काली आत्मावाला समझना उचित नहीं है।' (Vide Dr. Hang's Essays on the Sacred Language writings and Religion of the Parsees Ed, 1862 p.151)

यद्यपि उस युगके हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुष और हमारे ईरानी भाई एकही भारतीय आर्यपरिवारके थे और बर्फ जैसे गोरे तथा सुन्दर थे, तो भी ईरानी लोग स्पष्टरीतिसे हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंके प्रति काले शब्दका प्रयोग करतेथे। वे इस शब्दका प्रयोग केवल उनके प्रति अपनी घृणा व्यक्त करनेके लिये करते थे। इस समयभी हमें इस शब्दका प्रयोग इतिहासमें मिलता है। कुछ पाश्चात्यलोग श्रेष्ठताके अभिमानमें फूलकर और गर्वसे दम्भ तथा दर्पसे प्रसन्न होकर भारतीयोंको निगर कहते हैं। उदाहरणके लिये मैक्समूलरने " भारतके प्रसिद्ध नीगर लिखा है।" (Vide "India what can teach us?" p. 28. 1883). अतएव दस्यु शब्दमें ऐसी कोई बात नहीं पाईजाती जिससे उसका आदिम होना सूचित हो। इस शब्दका प्रयोग केवल उस जातिके लोगोंके लिये किया गया था जिन्होंने यज्ञोंका करना छोड दिया था।

और जिनके प्रति घृणव्यक्तकी गई थी । क्योंकि वे अयाज्ञिक थे अव्रतान् । ऋ० वे० १–५१–९, दस्युमव्रतम् । ऋ० वे० ९–४१–२) इसके सिवा प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान्भी कहते हैं कि दस्यु-शब्द केवल जातिवाचक है उदाहरणके लिये, जिनैडी ए० रागोजिन लिखते हैं, " दस्युशब्द केवल जातिवाची है । इस शब्दका यही अर्थ उसके ईरानी दाह्यू रूपमें विद्यमान है. जो अवस्ता और अखैमीनियोंके सारे शिलालेखोंमें प्रयुक्त हुआ है । परन्तु यहाँ भारतमें इस शब्दके अर्थमें विचित्र परिवर्तन हुए । " .... (Vide note Vedic India p. 113 Ed. 1895) इन प्रारम्भिक विचारोंके साथ यह बात आवश्यक प्रतीत होती है कि आर्यशब्द एवं दस्यु तथा दासशब्दके अर्थके सम्बन्धमें इन शब्दोंकी प्रामाणिक परिभाषाएँ देकर पाठकोंके मनमें नया भाव उत्पन्न कियाजाय और ऋग्वेदमें प्राप्त होनेवाले असुर, राक्षस, कृष्णत्वच, यातुधान और मृध्यवाच जैसे शब्दोंकी समुचित व्याख्या उपस्थित की जाय । 'आर्य' शब्दका अर्थ ' प्रभु ' या ' श्रेष्ठ ' है । यास्कने इस शब्दकी अपनी व्याख्यामें ' आर्य ईश्वरका पुत्र है ' (आर्य ईश्वरपुत्रः । नि० पू० खं० ६–२६) लिखा है । प्रसिद्ध विद्वान् सायण आर्यशब्दकी यह व्याख्या करते हैं कि जिसकी शरण सब कोई जाय वही आर्य है (आर्यम्–अरणीयम्–सर्वैर्गन्तव्यम्–सायण भाष्य ऋ० वे० १–१३०–८) वे इस शब्दका अर्थ कुशल कर्मकाण्डी ' (आर्यान्विदुषोऽनुष्ठातॄन् । ऋ० वे० १–५१–८), ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन सर्वोच्च जातियोंमेंसे एक–(उत्तमं वर्ण त्रैवार्णिकम् । ऋ० वे० ३--३४-९), यज्ञादिक जैसे धार्मिक कर्मोंका करनेवाला–(आर्याय यज्ञादिककर्मकृते यजमानाय । ऋ० वे० ६--२५–२), यज्ञकरनेके कारण श्रेष्ठ मनुष्य ' आदि देते हैं । अब दस्यु या दासशब्दकी बात लीजिये । यास्करने इस शब्दकी व्याख्या अपने निरुक्तमें व्युत्प-

त्तिके अनुसार इस प्रकार दी हैं 'दस्यु' शब्द दस्-नाशके अर्थमें धातुसे बना है। उसमें रस (रसाः) नष्ट कियेजाते हैं और वह धार्मिक कृत्योंका विनाशक हैं" (दस्युर्दस्यतेः क्षयार्था दुपदस्यन्त्यस्मिन्रसा उपदासयति कर्माणि (नि० ३० प० १-२३)। दस्युशब्दका अर्थ सायण 'शत्रु' 'चोर' या 'डाकू' लेते हैं। दस्युसे उनका अभिप्राय उसे आदमीसे है जो कोई वस्तु चोरीसे या बलपूर्वक उठाले जाय" (दस्युं चोरं वृत्रम्। ऋ० वे० १-३३-४) या उस शत्रुसे है जो धार्मिक कृत्य करनेवालोंका विनाश करता है (दस्यवः-अनुष्ठातॄणामुपक्षपयितारः शत्रवः। ऋ० वे० १-५१-८)। सायणभी दास शब्दकी व्याख्या यह करते हैं कि वे लोग जो धार्मिक कृत्योंका विनाश करते हैं" (दासीः— कर्मणामुपक्षपयित्रीर्विश्वाः सर्वा विशः प्रजाः....ऋ०वे० ६-२५-२) वे उन्हें धार्मिक कर्मोंसे हीन शत्रु या शूद्र बताते हैं (दासाः—कर्महीनाः शत्रवः। ऋ० वे० ६-६०-६ दस्यवः= अव्रताः। ऋ० वे० १-५१-८; दासं वर्णं शूद्रादिकं ऋ० वे० २-१९-६) सायणः-दस्युम्....अव्रतं ऋ० वे० ६-१४-३; दस्युमव्रतं। ऋ० वे० ९-४१-२; अकर्मादस्युः...अन्यव्रते। अमानुषः। ऋ० वे० १०-२२-८ दासः कर्मकरः शूद्रः; आर्यस्त्रैवर्णिकः। ऋ० वे० १०-३८-३ (देखो सायण भाष्य)। स्वयम् ऋग्वेदमेंभी स्पष्ट रीतिसे लिखा है कि "आर्य और दस्यु कौन हैं? उनके नामोंका क्या अर्थ है?" आगे उसीमें उत्तरभी दिया गया है कि यज्ञ करने वाले लोग आर्य हैं (बर्हिष्मते....(यज्ञेन युक्ताय) सायण लिखते है (...यजमानस्य) और जो कर्म हीन हैं वे दस्यु कहलाते हैं (अव्रतान्...(इसका अर्थ सायण 'कर्मविरोधिनः' देते हैं)...ऋ० वे० १-५१-८) ऋग्वेदमेंभी दासशब्दकी व्याख्या है। उसमें लिखा है कि "दास वे लोग हैं जो अयाज्ञिक मतके कारण स्पष्ट रीतिसे

'शत्रु' या 'अमित्र' हो जाते हैं) अमित्रान्यासाः । ऋ० वे० ६-३३-३) । यह ऋचा (१-५१-८) बड़े महत्त्वकी है अतएव मैं उसे यहाँ उद्धृत करता हूं—"विजानी ह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रंधया शासदव्रतान् । शाकी भव यजमानस्य......ऋ० वे० १-५१-८ "आर्योंको और जो दस्यु हैं उनको अलग अलग पहँचानो और जो धार्मिक कर्म नहीं करते उनको दण्ड देतेहुए याज्ञिकोंके अधीन करो । जो यज्ञ करते हैं उनके दृढ सहायक बनो ।" (Muir's 2 p. 359. 1871) यथार्थमें यह प्रतीत होता है कि, हमारे जिन ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंने धार्मिकदृष्टिसे सारी लौकिक व्यवस्थाकाही नहीं, किन्तु मनुष्यके अस्तित्व तथा हमारी मानवीय संस्थाओंकाभी विचार किया था उन्होंने सारी आर्य जनताको याज्ञिक और अयाज्ञिक, कर्मकाण्डियों और अकर्मकाण्डियों, धार्मिकों और अधार्मिकों, आस्तिकों और नास्तिकोंमें विभक्त कर दिया था । अतएव ये विरोधी लोग अपने अयाज्ञिक विचारोंके कारण उन्हें स्वाभाविक रीतिसे नहीं सुहाते थे और हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुष इन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखते थे । वे इन्हें इनके इस रूपमें अपने आर्यप्रभाव-क्षेत्रसे बहिष्कृत समझते थे । महाभारत, मनुस्मृति और वैदिकप्रमाणोंसे यह सिद्धान्त स्पष्टरीतिसे सिद्ध होता है । हम इन प्रमाणोंका उल्लेख आगे करेंगे । इस सिद्धान्तके ठीक होनेमें पाश्चात्यविद्वान् भी थोडा बहुत सहमत हैं । जेड० ए० रागोजिन लिखते हैं कि—"यदि किसी आदमीके घरमें सोम होता है और वह उसका रस नहीं निकालता तो आर्य हिन्दू उसे निकृष्ट दुष्ट समझते हैं । वास्तवमें उन्होंने मानवजातिका विभाग निचोडनेवालों और न निचोडनेवालोंमें कर दिया था । यह 'न निचोडनेवाला' शब्द 'शत्रु' और नास्तिक बर्बरोंका समानवाची है (Vide, Vedic India p. 171 Ed, 1895) हम ब्राह्मणों या द्विजोंकोभी महाभारतमें वैश्य या शूद्र कहेजाते देखते हैं, क्योंकि उन्होंने धार्मिक कर्मोंका करना छोड दिया था.

"स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ।
कृष्णाःशौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरङ्गताः ॥ "
(महा० भा० शा० प०)

अतएव आर्य शब्द उन लोगोंकेलिये प्रयुक्त होताथा जो धार्मिककर्म या यज्ञ करते थे और दास या दस्युशब्दका प्रयोग उन लोगोंके लिये होता था जो उपर्युक्त कर्मोंका त्यागही नहीं करते थे किन्तु उनके सम्पादनमें बाधा डालते थे और उन्हें विनष्ट तक कर डालते थे । फलतः–आर्यशब्दमें विदेशीपन था दस्यु तथा दास शब्दमें अनार्यत्वकी कुछभी झलक नहीं देख पडती है।N.P.आर्य-लोग यज्ञ करते थे, किन्तु असुर कहलानेवाले ईरानियोंके सदृश दस्यु या दास स्वधर्मत्यागी थे । फलतः वे पतित आर्य समझेजाते थे। क्योंकि धार्मिककर्मोंके त्यागसे उन्होंने ब्राह्मण-समाजमें अपनी मर्यादा विनष्ट करदी थी । यह बात मनुस्मृतिसे स्पष्ट होती है । उसमें लिखा है कि कम्बोज तथा दूसरे लोग आर्य होनेपरभी पतित होजानेके कारण (वृषलत्वं गता लोके) दस्यु कहलाते थे (सर्वे ते दस्यवः स्मृताः । म० स्मृ० १—४५), क्योंकि ब्राह्मण-धर्मसे उनका सम्बन्ध भङ्ग हो गया था (ब्राह्मणादर्शनेन च । मनु० स्मृ० १०–४३) । अतएव वे ब्राह्मण-धर्मसे बहिष्कृत समझेजाते थे। (मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः । म० स्मृ०) उसी तरह ऐतरेय[1] ब्राह्मणमेंभी पतित आर्योंके सम्बन्धमें लिखा गया है उसमें लिखा है कि, विश्वा-

---

१ इस ब्राह्मण ग्रन्थकी प्राचीनताके सम्बन्धमें डाक्टर हाग लिखते हैं:–इस ब्राह्मणकी रचनाका काल, जैसा हम पहलेही लिखचुके है, ईसाके पूर्व लग भग १२०० वर्षोंके इधरका नहीं सिद्ध होसकता । मुख्य तीन वेद अर्थात् वेदोंकी संहिताएँ सृष्टिके स्वामी प्रजापतिके मुखसे निकली मानी जाती थी । ... यदि वे बहुत प्राचीन न होतीं तो यह पहली न गढी जाती (Vide ऐतरेय ब्राह्मण by martin Haug Vol. 1 Ed. 1863: Introduction p.48)

मित्रने अपने पचास अवज्ञाकारी पुत्रोंको शाप दिया और वे लोग दस्यु हो गये। इसके सिवा महाभारतमेंभी धर्मसे विमुखलोगोंको दस्युकी उपाधि दी गई है (दस्यूनां निष्क्रियाणाम्) यही नहीं किन्तु यहभी प्रतीत होता है कि, वे लोग इतना नीच और पतित समझे जाते थे कि क्षत्रियों या राजाओंको दस्युओंकी कोई वस्तु इत्यादि लेना तक वर्जित था। महात्मा भीष्म साम्राट् युधिष्ठिरसे कहते हैं:- न धनं ... । दस्यूनां निष्क्रियाणाञ्च क्षत्रियो हर्तुमर्हति । महा० भा० १२-१३६-२ (South Indian Texts, 1908) इन बातोंसे यह स्पष्ट मालूम पडता है कि जो आर्य वैदिककर्म तथा यज्ञ भूल-गये थे और जिन्होंने उनका करना छोड दिया था वे स्वधर्मत्यागी ठहरायेजानेपर दस्यु कहलाते थे और अत्यन्त पतित समझेजाते थे। अतएव उन्हें ब्राह्मणसमाजसे अलग रहना पडता था। इस अवस्थाके कारण वे ब्राह्मणोंमें मिल जाने या वैदिक कृत्यों और परम्परागत धार्मिक कर्मोंके सम्पर्कसे वञ्चित रहे, इसी बातसे वे लोग गवांर, किसानों, लकडिहारों, कहारों, यही नहीं जंगल, पहाड

---

१ क-इनकी पतित अवस्था और अर्द्ध जंगलीपनके कारण इनको कुछ पौर्वात्य और पाश्चात्य विद्वान् अनार्य आदिम निवासी मानते हैं।

ख-तुलनाके लिये मैं यहाँ एक उदाहरण देताहूँ। बम्बई हाता थाना जिलेके बसीन ताल्लुकामें सामवेदी ब्राह्मण रहते हैं। ये बहुत भ्रष्ट मरहठी बोलतेहैं और अपनेको " सामवेदी " बताते हैं। जिन शूद्रों, धीमरों, कोली, ईसाइयों और निम्नश्रेणीके लोगोंके साथ ये रहते रहे यही नहीं, किन्तु उन लोगोंके निरन्तरके सम्पर्कसे ये लोग उनके बीच कठिनतासे पहचानेजासकते हैं।

ग-जीवनके परिवर्तित ढंग तथा पडोसियों और देशकालका जो प्रभाव लोगोंपर सामान्य रीतिसे पडता है उसका एक दूसरा उदाहरण लीजिये। मैं कहसकताहूँ कि भारतके मुसल्मान-आक्रमणों और तलवार-युग या कुरान-युगके समयमें जो

और घाटीके निवासियोंकी अवस्थाको पहुँच गये और अन्तमें तो वे निरे जंगलीही हो गये। इस दशामें म्यूरका निश्चय ठीक मालूम पडता है कि ऋग्वेदमें उनको किसी दैत्य या असुरका एकभी ऐसा नाम खोजे नहीं मिला, जो "अनार्य उत्पत्तिका समझाजाय"। 'भारतीय प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि दस्युगण पतित आर्य समझे जाते थे., (p376) और ऐसी दूसरी जातियांभी हैं जो, यद्यपि संस्कृतके, पीछेके साहित्यमें ब्राह्मणसमाजसे भिन्न विदेशीलिखी गयी हैं अभीतक कहीजाती हैं कि वे किसी समय क्षत्रिय थी और धार्मिक कर्मोंके भुलादेनेसे उन्होंने अब अपनी मर्यादा खोदी है। "परन्तु इस परम्पराके सिवा कुछ जातियोंकी, कमसे कम इन (कम्बोज आदि) जातियोंकी आर्य उत्पत्तिके सम्बन्धमें औरभी प्रमाण मिले हैं।" (Muir's O. S. T. Vol. 2 p.355, Ed.1871) तदनुसार दस्यु या दास यज्ञ और वैदिक कर्मकाण्ड भूलजानेसे किसी समय अयाज्ञिक हो गये थे। ऐसी दशामें वे पतित आर्य हो गये और उनकी एक अलग जाति बन गई थी। अतएव आर्यों और आदिम निवासियों या आर्य विजेताओं और मूल अधिवासियोंके बीच भारतकी जनताका बांटना न तो स्वाभाविक प्रतीत होता है और न मौलिक, वरन कृत्रिम और नूतनही मालूम पडता है। वास्तवमें यह विभाजनशैली न तो हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंको ज्ञात थी और न उनके वंशधर हमी लोग इसे जानते हैं। यह तो हमें अभी हालमें ज्ञात हुई है। इसे पाश्चात्योंने नये सिरेसे उपस्थित किया है। इस अवस्थामें मिस्टर नेस्फील्डकी उस दलीलके सम्बन्धमें यहां कुछ उल्लेख कर देना अनुपयुक्त न. होगा जो उन्होंने (Brief View on the causte system of the North Western

---

–हमारे आर्य ब्राह्मण इस्लामधर्मको स्वीकार करनेको बाध्य किये गये थे वे लोग अबतक मुसल्मानोंसे छाँटकर अलग नहीं किये जासकते हैं।

Provinces and oudh) नामकी अपनी पुस्तकमें मानो मेरे निष्कर्षोंके समर्थनके मतलबसेही दी है। क्योंकि वे आर्यविजेता और देशके मूलनिवासी जैसे भारतकी जनताके विभाजनकी सत्यतापर दृढताके साथ अविश्वास करते हैं। उनका कथन है कि आर्यों और मूलनिवासियोंमें भारतकी जनताका विभाजन आजकलका नूतन मत है। अपने सिद्धान्तके पक्षमें वे कहते हैं कि "भारतीय जातिकी एकता है।" उनका यह निश्चय है कि, ब्राह्मणोंका अधिक दल किसी दूसरी जातिकी अपेक्षा न तो अधिक गोरा है और न उनका डील डौल इनसे अधिक सुन्दर और हृष्ट पुष्टही मालूम पडता है। इन बातोंमें इन लोगोंकी अपेक्षा जो सडके पर झाडू लगाते हैं और इनसे जातिमें और रक्तमें भिन्न हैं वे श्रेष्ठतरभी नहीं हैं। अतएव इस विषयकी सारी बातोंका समुचित विचार करनेसे यह प्रतीत होता हैं कि हम आर्य लोग सप्तसिन्धु देशमें विदेशी नहीं थे और भारतपर आर्योंका आक्रमण नहीं हुआ था। स्पष्ट रीतिसे ऋग्वेदिक कवियोंने दस्यु या दासशब्दका व्यवहार केवल अयाज्ञिक आर्योंके प्रति अत्यन्त घृणा और द्वेष व्यक्त करनेके लिये बहुत कुछ उसी ढंगपर किया था जैसे ईरानियोंने देवशब्दका व्यवहार वैदिक आर्योंके प्रति घृणा व्यञ्जनार्थ किया था या जैसे असुरशब्दकी उपाधि वैदिक आर्योंने ईरानियोंको दी थी या विश्वामित्रने यातुधान शब्दका

१. इस विषयके इस सिद्धान्तकी जांच स्वाभाविक रीतिसे होनी आवश्यक है। परन्तु मैं यहां यह लिख सकताहूं कि भारतमें नृशंस विद्याके अध्ययनकी नयी जांच पडतालसे, जैसे मस्तक और नाककी नाप जोखसे, थोडाभी संतोष जनक परिणाम नहीं निकलाहै। क्योंकि इस विषयके विद्वानोंने कहाहै, "इसमें यह जोड देना चाहिये कि इस जांचसे जो परिणाम निकले हैं वे बिलकुल क्षणिक हैं। आगे खोज करनेमें उनसे मुख्यकरके पथ दर्शकका काम निकलेगा" ... (The Imperial Gazetteer of India, the Indian Empire Vol. 1 p. 286, 287 Ed. 1907)

प्रयोग वशिष्टके लिये किया था। ये दोनों विश्वामित्र और वसिष्ट वैदिक कालके शुद्ध रक्तके सच्चे आर्य थे, यह बात हम आगे प्रकट करेंगे। इनमेंसे एक क्षत्रिय थे और अन्तमें देवर्षिके ऊँचे पद तक पहुँच गये थे और दूसरे एक उच्च श्रेणीके ब्राह्मण थे।

यदि हमारे वैदिक पूर्वपुरुष विदेशी होते और भारतके मूलनिवासी न होते तो इस बातका संकेत यास्क और सायणहीने नहीं, किन्तु दूसरे टीकाकारोंनेभी किया होता तथा ऋग्वेद, दूसरे वैदिकग्रन्थों और स्मृतियोंमेंभी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षरीतिसे उसका उल्लेख हुआ होता। यदि हम भारतीय-आर्य वास्तवमें आर्यावर्तके विजेता होते तो हमारे आदि पूर्वपुरुषों और वैदिक बापदादाओंने, दस्यु या दास और असुरोंको विजित जाति और अपने आपको विजेता विदेशी, समुचित अभिमान और दर्पके साथ कहा होता। परन्तु इस तरहकी कोई बात कहीं नहीं लिखी मालूम पडती है। इसके विपरीत हम प्रसिद्ध स्मृतिकार मनुको इस आशयकी बहुत स्पष्ट बातें कहतेहुए पाते हैं कि, " स ज्ञेयो यज्ञियो देशः " वह आर्यावर्त यज्ञदेश है। उसकी सीमाके आगे सारे देश विदेशियोंके हैं. " म्लेच्छदेशस्त्वतः परः " (म० स्मृ० २-२३) अपने इस कथनसे वे यह भाव स्पष्टरीतिसे व्यक्त करते हैं कि, आर्यावर्तका सीमाके भीतर रहनेवाले आर्य इस देशमें विदेशी नहीं थे, किन्तु वे सप्तसिन्धु देशके मूलनिवासी और आदिम अधिवासी थे। इसी देशके उत्तरमें हिमालयपर्वतमाला स्थित है जो इस बातके कारण उत्तरी पर्वतके नामसे प्रसिद्ध थी। अतएव वैदिक ग्रन्थों तथा प्रामाणिक मनुस्मृतिमें जो प्रमाण मिलते हैं और भारतीय परम्पराके ज्ञाता भारतीय विद्वान् पण्डितों तथा प्राचीन समयके टीकाकारोंने जो प्रामाणिक घोषणाएँ की हैं, उनसे दस्यु या दास, जिनका उल्लेख ऋग्वेदमें प्रायः हुआ है, पतितआर्यमात्र सिद्ध होते हैं। वे अनार्य

उत्पत्तिके नहीं होसकते परन्तु इसके सिवा औरभी अधिक गौरव पूर्ण तथा महत्त्वशाली एक दूसरा प्रमाण है। हमारा ध्यान उसकी ओर सबसे पहले जाना चाहिये। अतएव यहां उसे उसके समुचित विवरणके साथ उल्लेख करनेका लोभ मैं नहीं संवरण करसकता. कुछ पौर्वात्य एवं पाश्चात्य विद्वानोंके मनमें यह अनोखी भावना स्थान किये हुए है कि दस्यु या दासशब्दमें, असुर शब्दकी तो कुछ बात ही नहीं, कुछ ऐसी बातें मिलती हैं जिनसे वह शब्द अनार्य सिद्ध होता है और बर्बरता झलकती है। परन्तु यह बात बिलकुल सत्यसे परे है। क्योंकि विशुद्ध आर्योंके नामभी जैसा कि हम आगे प्रकट करेंगे, संज्ञा या विशेषणवाची उपसर्ग या प्रत्यय जोडकर दास या दस्यु रक्खे गये थे और सबसे अधिक ऊँचे दर्जेके एवं सन्देह रहित आर्य रक्तके लोगोंतककी उपाधि दास थी। यही नहीं किन्तु उन्होंने केवल इस स्पष्ट कारणसे अपने आपको दास कहा जाना जराभी अपमान जनक नहीं माना कि, उस शब्दमें ऐसी कुछभी बात नहीं थी जिससे अनार्यत्व या बर्बरता समझ पडे। जैसे भारतके प्रतापी राजा और महाराष्ट्र-साम्राज्यके संस्थापक छत्रपति महाराज शिवाजीके गुरु (सद्गुरु) का असली नाम नारायण था। यद्यपि ब्राह्मण होनेके कारण वे यथार्थमें उच्चकुलके एक विशुद्ध आर्य थे तोभी उन्होंने अपना नाम रामदास रक्खा और लोग उनका यही नाम लेते थे। इसके सिवा संस्कृतके हमारे सबसे श्रेष्ठ कवि और प्रसिद्ध नाटककारभी कालिदासके नामसे प्रसिद्ध थे। हम देखते हैं कि अतीत कालके कीर्तिमान् तथा विशुद्ध आर्य एवं क्षत्रिय राजवंशी महाराज पुरूरवाने अपनी प्रियतमा महारानी उर्वशीके वियोगमें विलाप करते हुए अपने आपको दासजन कहा है—

" कमपराधलवं मम पश्यसि त्यजसि मानिनि दासजनं यतः " ।

(विक्रमोर्वशी ना० ४-२९)

अस्तु—हम सब कोई जानते हैं कि उपर्युक्त (दासजन) शब्द राजाके मुखसे कविने कहलवाया था। परन्तु तोभी हमें यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि कालिदास सर्वश्रेष्ठ कवि, नाटकाचार्य और प्रवीण चरित्र-चित्रक थे। यही नहीं किन्तु वे भूतकाल और प्राचीन वैदिक कालकी सारी ऐतिहासिक परम्पराओंके ज्ञाताभी थे। अतएव उनके लिये यह बात बिलकुल अस्वाभाविक थी कि, वे कोई अनुचित शब्द या अयोग्य कथन राजकीय पात्रके मुखसे महाराज जैसे सर्वोच्चपदके आर्य चरित्रके सम्बन्धमें कहलवाते। परन्तु सारे सन्देहों और शंकाओंको दूर करनेके लिये मैं और आगे बढकर वास्तविक बातकी जडतक पहुँच जानेका साहस करता हूं और वेदोंमें स्वयम् ऋग्वेदमेंभी, इस सम्बन्धमें जो समुचित प्रमाण मिले हैं उनको पाठकोंके सामने उपस्थित करता हूं। हम देखते हैं कि वैदिक कालके एक ऋषिकी इतरा नामक पत्नीके पुत्रका नाम महीदास रक्खा गया था (Vide, Sayana Introduction to the Aitareya Brahaman) और ऐतरेय अरण्यकमें महीदास ऐतरेयके नामसे उसका उल्लेख किया गया मालूम पडता है। एक दूसरा उदाहरण यह है कि प्रसिद्ध वैदिक और कीर्तिमान् महाराज पैजवनका उल्लेख ऋग्वेदमें प्रायः अधिक आदरके साथ हुआ है। वे एक सच्चे आर्य क्षत्रिय थे, तोभी उनका नाम सुदास रक्खा गया था। यही नहीं, उनके पिताभी दिवोदासके नामसे प्रसिद्ध थे। वेभी राजा थे। उनके एक पुत्र था, जो इन्द्रका मित्र था। उसकी सहायता इन्द्र करते थे (ऋ० वे० ८ १८—५, १७)। परन्तु दिवोदासका एक नाम पिजवनभी था। इन्हीके पुत्रकानाम सुदास था इससे अपने पिताके नामसे वह पैजवन कहलाता था। इस सम्बन्धमें यास्कने लिखा है—"सुदाः कल्याणदानः पैजवनः पिजवनस्य पुत्रः" (निरुक्ते, पू० खं० २—२४) ऋग्वेदमें

दिवोदास और सुदासके सम्बन्धमें यह उल्लेख हुआ है–

"इमं नरो मरुत सश्चतानु दिवोदासं न पितर सुदासः। अविष्टाना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुषोयु ॥" ऋ० वे० ७–१८–२५)

" हे वीर मरुतो, तुम उसका ध्यान उसी तरह रक्खो जिस तरह उसके पिता दिवोदासका रखते थे। कृपा करके पैजवनकी इच्छाए पूरी करो। उसके टिकाऊ मजबूत राज्यकी रक्षा सचाईके साथ करो।" (Griffith)

परन्तु सबसे बढकर हम यह देखते हैं कि अग्नि देवताभी दासकी उपाधिसे अभिहित हुये हैं। यद्यपि वेदमें वे सब यज्ञोंके उत्कृष्ट आर्य पुरोहित और मंत्री माने गये हैं, यही नहीं किन्तु उन्नति तथा सभ्यता और सदाचार तथा सुजनताके अगुआ और नेता समझे गये हैं। उदाहरणके लिये वे ऋग्वेदमें केवल 'भारत' ही नहीं कहेगये हैं किन्तु उनका नाम–दैवोदासभी लिखा गया है, अर्थात् दिवोदासकी अग्नि। दिवोदासने विशेष करके उनकी उपासना की और उन्हें अपने रक्षक देवताके रूपमें ग्रहण किया। "दैवोदासो अग्निः" ....(ऋ० वे० ८–१०३–२)। इसके सिवा एक दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है। इसकी ओर हमें अपना उत्साहपूर्ण ध्यान देना चाहिये। क्योंकि जिन उपर्युक्त आर्य-नामोंके अन्तमें दास शब्द

---

१. इस सम्बन्धमें मैक्समूलर लिखते हैं कि, " अग्नि...वेदोंमें यज्ञका एक चिन्ह है और इसके साथही सभ्यता तथा सामाजिक शालीनताका भी... (Last Res ults Turarian Researches p. 344).

२. मालूम पडताहै कि सम्भवतः दास शब्दके उपसर्ग, जैसे दिवोदास, सुदास इत्यादि शब्दोंमें, यज्ञप्रेमी आर्योंको उन पतित दास-आर्योंसे, जिन्होंने ऐसी क्रियाओंका करना छोड दियाथा या जो अयाज्ञिक थे, पहचाननेके लिये नामोंके साथ जोडा जाता था। उदाहरणके लिये ये ईरानी या प्राचीन पारसी आर्य थे। यही बात उन आर्यनामोंके सम्बन्धमें ठीक जचती है जिनके नामोंमें दस्युशब्द जुडा होताहै। इस सम्बन्धमें मैं आगे धीरे धीरे विस्तारके साथ उल्लेख करूँगा।

लगारहता है उनके सदृश हमें वे असली आर्य उपाधियाँभी मिलती हैं जिनके अन्तमें दस्यु शब्द जुडा रहता है। उदाहरणके लिये पौरुकुत्स्य महाराज पुरुकुत्स्य और उसकी महारानी पुरुकुत्सीका पुत्र था और वह विशुद्ध आर्यरक्तका क्षत्रिय राजा था। इसके सिवा प्रसिद्ध वैदिक भाष्यकार सायण उसे (पौरुकुत्स्यको) ऋग्वेदके४-४२-९ में राजार्षि लिखते हैं " पुरुकुत्सस्य पुत्रस्त्रसदस्यू राजर्षिः" इसके सिवा अनुक्रमणिकासे हमें पता लगता है कि वह ऋग्वेदकी ऋचाका, अर्थात् ४-४२ का, रचयिता था। यद्यपि यह सब कुछ था, अर्थात् वह एक सच्चा आर्य और ऋग्वेदका कवि था, तोभी उसका नाम त्रसदस्यु था और उसका यह नाम खूब विदित था। यहीं नहीं किन्तु वह अर्द्ध देवतातक नामाङ्कित किया गया था जैसा कि स्वयम्-ऋग्वेदके नीचे लिखे संक्षिप्त विवरणसे प्रकट होगा-

" अस्माकमत्र पितरस्त आसन्सप्त ऋषयो दौर्गहेबध्यमाने।
त आयजतं त्रसदस्यु यस्या इन्द्रं नवृत्रतुरमर्द्ध-देवम्॥"

(ऋ० वे० ४-४२-८)

" जिस समय दुर्गहका पुत्र (अर्थात् पुरुकुत्स त्रसदस्युका पिता) बन्दी था, उस समय यही सप्तर्षि हमारे पिता थे। इसके लिये (अर्थात् महाराज पुरुकुत्सकी राजमहिषी महाराणी पुरुकुत्सीके लिये) उन्होंने इन्द्रके सदृश शत्रुओंका विजेता तथा अर्द्ध देवता त्रसदस्युको यज्ञसे प्राप्त किया " (Griffith)

"पुरुकुत्सानी हि वाम दाशद्धव्येभिरिन्द्रा वरुणानमोभिः।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्द्धदेवम्॥"

(ऋ० वे० ४-४२-९,)

" हे इन्द्र वरुण, पुरुकुत्सकी राजमहिषीने तुमको विनम्रतापूर्वक आहुतियाँ प्रदान कीं। तब उसके द्वारा शत्रु-संहारक अर्द्धदेव महाराजत्रसदस्युको जन्म दिया " (Griffith)

इस तरह यह मालूम हो जायगा कि दास या दस्यु-शब्दमें बिलकुल कोई ऐसी बात नहीं है जो अनार्यत्व या बर्बरताका द्योतक हो। क्योंकि विशुद्ध आर्यरक्त तथा आर्यशीलाचरके राजन्यवर्ग, यही नहीं किन्तु अर्द्ध देवता तथा ईश्वरतकभी दासकी उपाधियाँ या वे उपाधियां, जिनके अन्तमें दास या दस्युशब्द जुडा रहता था, धारण करते थे। इसके सिवा एक और बातपर हमें उचित रीतिसे ध्यान देना चाहिये। यदि हमारे वैदिक पूर्वपुरुष भारतके विजेता थे तो विजेताओं और विजितोंके बीच भाषाका, शब्दोंका, विचारोंका और भाव प्रकटीकरणका समुचित आदान-प्रदान संघटित होजाना चाहिये था। परन्तु विजितोंकी भाषा और शब्दोंका अस्तित्व है कहाँपर? फिरभी विदेशियों और आदिम निवासियोंके बीच बोली या भावप्रकाशका पारस्परिक लेन-देन जरूर हुआ होगा। परन्तु विजितोंकी वह बोली या उसका थोडासाभी आभास वैदिक-संस्कृतमें कहाँ मिलता है? सारे व्यवहारिक कार्योंके लिये यह आवश्यक था कि ऋग्वैदिक ऋषियों तथा आदिम कहलानेवाले दस्युओंके विचार-भाव, बुद्धि और इच्छाका पारस्परिक परिवर्तन जरूर हो। क्योंकि ऋग्वैदिक ऋषि सप्तसिन्धु देशमें नवागन्तुक समझे गये। अतएव कई एक नदियाँ, उच्चतम तथा विशाल पर्वतों, देशके बडे बडे गाँवों या नगरोंके नामकरणकी बडी आवश्यकता थी। इसके सिवा जिन लोगोंसे उनकी भेंट हुइ उनके तथा अपने चारों ओर देख पडनेवाली या दैनिक आवश्यकताओंके लिये प्रत्येक क्षण आवश्यक सहस्रों वस्तुओं एवं पारिभाषिक शब्दोंके, नामकरणकी स्पष्टरीतिसे आवश्यकताथी। क्योंकि विदेशी लोग उस देशसे स्वभावतः अनभिज्ञ रहेंगे जिसे उन्होंने या तो विजय किया था या जिसमें आकर वे लोग आबाद हुये थे। इस कथनके सम्बन्धमें यहां एक ऐतिहासिक प्रमाण है। हम देखते हैं कि ३२६ वर्ष ईसाके पूर्व सिकन्द-

रकी भारतपर चढाईके समय यूनानी लोगोंने हमारे पूर्वजोंसे नदियों, शहरों और जिन बडे आदामियोंसे उनका परिचय हुआ था उनके संस्कृतनाम लिये थे। ये शब्द पारस्परिक आदानप्रदानमें अधिक अंगभंगहो गये थे। अतएव विदेशी भाषामें उनके अपभ्रंश रूपही दिखाई पडते हैं। उदाहरणके लिये, वैदिक नदी वियात या वियशको (वादको विपाशा और आजकलकी व्यासा) उस समय यूनानी हिफासिस कहते थे। प्लीनी उसे हिपासिसके नामसे जानता था। यह नाम वैदिक विपाश नामके बहुत निकट आजाताहै। उस नदीके दूसरे साहित्यिक नाम हिपानिस, विपासिस और विवासिस है। इसके सिवा पुरुष्णीको (इरावतीके नामसे अधिक विदित) स्ट्रैबो हिअरोटिस कहते हैं। दूसरी ओर एरियन उसी नदीका हाइड्राटीज नाम रखकर उसको यूनानीरूप प्रदान करते हैं। वही नदी आधुनिक समयकी रावी है। जो पाटलिपुत्र या आजकलका पटना कुसुमपुर या पुष्पपुर कहलाता था। उसे यूनानी लोग पालीबोथ्रा कहतेथे और मगधके शक्तिशाली मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्तका नाम सैन्ड्राकोटस रखादिया गया था। जब देशके मूलनिवासी विदेशियोंके सम्पर्कमें आजाते हैं या उनका इनके साथ सम्बन्धहो जाता है तब इस प्रकारके या ऐसेही दूसरे अगणित उदाहरण मिलने लगते हैं जिनसे शब्दोंका स्वाभाविक आदान-प्रदान अधिकताके साथ सिद्ध होता है। परन्तु ऋग्वेदमें न तो एक भी ऐसा शब्द है न कोई बात और न किसी तरहका मुहाविराही जो आदिम निवासियोंका कहा जासके। और जो भाषा सप्तसिन्धु देशमें प्रचलितथी मालूम होता है कि वही आदिम मनुष्योंकी आदिम भाषा थी और वह भाषा वैदिक संस्कृतको छोडकर कदापि कोई दूसरी नहीं थी। यथार्थमें पूर्वमें गंगासे लेकर पश्चिममें कुभ या कावुल नदीतक नदियोंके और पहाडोंके जो नाम हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंने उल्लेख किये हैं और जिनका

तबसे व्यवहारभी होता आया है वे नाम वैदिक संस्कृतमें है और उनके इस रूपमें होनेपर जैसा कि हमारे आदिम पूर्व पुरुषोंने उन्हें कर दियाहै, वे यथार्थमें सारे संसारके अमूल्य तथा प्राचीन-तम ग्रन्थ-ऋग्वेदमें मिले हैं। सप्तसिन्धु देशकी नदियों, पर्वतों और वनस्पतियोंके नाम स्पष्ट रीतिसे आर्य देशी अथवा असली मालूम पडते हैं। अनार्य, विदेशी या दूसरोंसे लियेगये वे जरा भी नहीं मालूम पडते. यह बात आगे दियेगये नामोंसे प्रकट होगी (गंगा, यमुना, सरस्वती, विपाट्, सिंधुः, रसा, कुभा, हिमवन्तः, भूजवत्, सोम, दर्भ इत्यादि। देखो ऋग्वेद १०-७५-५,६,१०-१२१-४;१०-३४-१;१-२-१, १-१९१-३)। ये नाम हमारे तृतीय कालीन युगके पूर्व पुरुषोंने उन नदियों, पहाडों और वनस्पतियोंके रक्खे थे जो कि उनके मूलस्थान आर्यावर्तमें थीं और ये उस समय रक्खे गये थे जब वे स्वयम् अपने पैरों खडे होने, विचार करने, ध्यान देने और गुण-दोष पहचाननेके समर्थ होचुके थे।

अस्तु-हमारे ऋग्वैदिक पूर्व पुरुषोंमें केवल श्रेष्ठ योग्यता तथा उच्च मानसिक शक्तिहीन थी, किन्तु उनकी प्रकृति विचक्षण और उनमें निरीक्षण शक्ति थी। इसके सिवा वे सिद्धान्तोंकी अवतारणा करनेमें भी पटु थे। अतएव ऐसी दशामें यदि वे भारतके विदेशी विजेता, आक्रमणकारी या नवागन्तुक हुए होते और यदि उन्होंने आर्या-वर्तको स्वयम् अपनी अपेक्षा किसी दूसरी देशी आवादी द्वारा आवाद पाया होता तो उन्होंने वडे अभिमान और दर्पके साथ ऋग्-वेदमें इस वातको लिख दिया होता, जैसे कि अपनी बुद्धिकी प्रचुरता तथा कवित्वके उद्गार स्वरूप हजारों बातें उन्होंने लिखदी हैं अतएव इन वातोंके सामने तथा पूर्व वर्णित सारी वातोंका समुचित ध्यान रखनेपर यही प्रतीत होता है कि हमारे वैदिक पूर्वपुरुष तथा तृतीय कालीन युगके उनके आदिम बापदादे आर्यावर्तके मूल

निवासी थे और मालूम होताहै कि दस्यु तथा दास, असुर तथा राक्षस शब्दका व्यवहार उन्होंने हमारे उन ईरानी भाइयों तथा दूसरे स्वधर्म त्यागी आर्योंकी पहचानके लिये किया था जिन्होंने सोमयाग तथा आर्योंके दूसरे यागोंके प्रति स्पष्ट घृणा व्यक्त की थी और इनके उपासकोंको उत्पीडित किया था । तदनुसार ये लोग स्वाभाविक रीतिसे एक भिन्नजाति जैसे समझे गये थे और आर्योंकी जातिके बाहर माने जाते थे । सौभाग्यवश इस बातका चिह्न दाहु शब्दके रूपमें अवस्तिक धर्म पुस्तकों और अखैमीनियावाले शिला लेखोंमें सुरक्षित मालूम पडताहै । यह बात स्पष्ट रीतिसे मालूम पडती है कि यह दाहुशब्द संस्कृतके दस्युका अपभ्रंश है । इसका प्रामाणिक विवरण मैंने पहलेही देदिया है. राक्षसोंकी पृथक जातिके सम्बन्धमें मैंने आगे भी विचार कियाहै (राक्षस जाति भिन्ना) ॥ इसका संकेत रामायणमें किया गया है (तिलका टीका ७-५-३१;) । इसके सिवा हम अपने वैदिक कवियोंको दस्युओंके धन तथा पशु, सम्पत्ति तथा शक्ति नगरों तथा दुर्गोंके सम्बन्धमें भी कुछ कहते पाते हैं । अतएव वे लोग अपनेको पहाडियों और घाटियोंमें छिपानेवाले अभागी बर्बर नहीं होसकते. जैसा कि कुछ लोग अनुमान करते हैं । उदाहरणके लिये ऋग्वेदमें एक धनी दस्यु (दस्युं धनिनां ऋ० वे० १-३३-४), उसके विध्वस्त दुर्गों (पुरो पदस्य संपिणक् । ऋ० वे० ४-३०-१३) और उसके विनष्ट किये गये लौह दुर्गों एवं इन्द्र द्वारा स्वयम् उसके संहारका वर्णन है (हत्व दस्यून् । ऋ० वे० ३-३४-९) । इन अवस्थाओंमें दस्यु या दास शब्दको अनार्य समझनेका कोई कारण नहीं दिखलाई पडताहै । प्रोफेसर राथने अपने कोषमें बहुतही ठीक लिखा है कि दस्युशब्दके रूपमें व्याख्या अनार्य और बर्बर करना मौके मौके परही उचित है । और यही बात असुर कहलाने-

वालोंके सम्बन्धमें भी ठीक जँचती है। ईरानी भाषामें इस शब्दका अपभ्रंश अहुर है। ये असुर कोई दूसरी जातिके नहीं थे ईरानी लोगही असुर थे। इस सम्बन्धमें पहिले बहुत कुछ सप्रमाण लिखा जा चुका है। मैं एक आवश्यक अंश उद्धृत करताहूँ:—

"तस्मादप्यद्येहाऽददानमश्रद्दधानम् यजमानमाहुरासुरोवत इति।" छां० उ० अ० ८ खं० ८-५। इसका भावार्थ इस तरह है—"अतएव आज दिन भी जो व्यक्ति (दान) नहीं देता है या जो विश्वास हीन है या यज्ञ नहीं करताहै वह असुर है।" ऋग्वेदमें: जो दास अयाज्ञिक मानाजाता है उसका अर्थ साधारण तौरसे शत्रु किया जाताहै। क्योंकि एक ऋचामें कहा गयाहै "आर्य तथा दास दोनों प्रकारके हमारे शत्रुओंको मारडालो" "दासा च वृत्रा हतं आर्याणि च"... (ऋ० वे० ७-८३-१) ऋग्वेदके एक दूसरे स्थलमें (८-९६-१८) दास शब्दका अर्थ मेघ है।

अब हम अपना ध्यान राक्षस, यातुधान, कृष्णत्वच, कृष्णगर्भ और मृध्रवाचः शब्दोंकी ओर भी देते हैं। मालूम पड़ता है कि, ये तथा इसी तरहके दूसरे निन्दासूचक नाम उन्हीं लोगोंके प्रति प्रयुक्त होते थे जो शत्रु समझे जाते थे। वे शत्रु या तो इस कारण समझे जाते थे कि उन लोगोंने वैदिक यज्ञ तथा दूसरे धार्मिक कृत्योंका परित्याग कर दियाथा। या केवल इस कारण कि उपर्युक्त प्रकारके नाम रखनेवाला दल उन लोगोंको लड़ाकू और इस रूपमें उन्हें अप्रिय समझता था। इसके सिवा यह बात भी थी कि किसी किसी अवसर पर जिस व्यक्तिके प्रति अत्यन्त विद्रोहात्मक तथा भयंकर कुवाच्योंका प्रयोग किया गया है वह वशिष्ठके सदृश शुद्ध आर्य रक्तका रहा है और अत्यन्त उच्च सन्मान भी प्राप्त किये रहा है। ऋग्वेदमें (३-३०-१५, १६, १७ इन्द्र...,रिपवो हन्त्वासः ॥ १५ ॥ रक्षोमभवन् रंवयस्व ॥ १६ ॥ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेति-

-मस्य ॥ १७ ॥) एक ऋग्कवि इस तरह प्रार्थना करते हैं, " हे इन्द्र, तू हमारे इन दुष्ट प्राणघातक शत्रुओंका वध अवश्य कर " १५। हे मघवन्, दुष्टोंका वध करो और उन्हें युद्धकी लूटका हमारा माल बताओ ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मण-द्वेषी है उसपर अपना प्रज्वलित भाला चलाओ (ब्रह्मद्विषे) जो यज्ञ करता है उससे वह द्वेष करता है और ब्रह्म-वैदिक मंत्र-को जानता है एवं उसे जपता है-ब्रह्म जानाति स ब्राह्मणः ॥ १७ ॥) ऋग्वेदके ७-१०४-६ में इन्द्रसे वशिष्ठ उस आदमीको मार डालनेकी प्रार्थना करते हैं जो उन्हें (वशिष्ठको) यांतुधान या नरमांस लोलुप दानव कहता है। अतएव स्पष्ट रीतिसे राक्षस तथा यातुधान शब्दका प्रयोग किसी तरह भी अनार्य उत्पत्तिका द्योतक नहीं था। मैक्स-मूलरने ठीकही निश्चय किया है कि " वे शब्द (उपाधियां) बिलकुल सामान्य शब्द हैं। उनसे किसी तरहके नृवंशविद्या सम्बन्धी परिणामोंका संकेत नहीं होता है (Vide, Sayana Introduction to the Aitareya Brahman) हमने देखा है कि प्रसिद्ध महर्षि, सर्वमान्य आदर्श ब्राह्मण और शुद्धतम आर्य वशिष्ठको विश्वामित्र या उनके दलके लोग यातुधान, क्रव्य और राक्षस कहते हैं, मानों वे कुरूप और निर्दय अब्राह्मण, अनार्य और स्वाभाविक नरमांस भोजीके अवतार हों (यो मा यातुं-यातुधानेत्याह.... ऋ० वे० ७-१०४-१६) मानो वे मनुष्यों और घोडोंके रक्त पूरित मांसको टकटकी बाँधकर देखा करते हों (यः पौरुषेण क्रविषा समुंक्ते यो अश्वेन पशुना यातुधानः। ऋ० वे० १०-८७-१६) इसके सिवा जा रावण ब्राह्मण था, जिसका वंशगत नाम पौलस्त्य

---

१. यह बात स्पष्टरीतिसे स्वीकृत है कि रावण ब्राह्मण था। डाक्टर मूरके सदृश पाश्चात्य विद्वान् तकने रामायणके प्रमाणसे इस आशयकी बात कही है-

और वैश्रवण था, जो ब्रह्मर्षि पुलस्त्यका पौत्र और विश्रवसका पुत्र[1] था, वह राक्षसही कहलाता था। वह उनका राजाभी था। यही नहीं, किन्तु वह अनार्य भी कहाजाता था (देखो रा० उ०, ५-२८-) और नीचेकी टिप्पणी १। दूसरे स्थलोंकी भाँति यहांभी यह उपाधि इस प्रकारके आर्योंके लिये प्रयुक्त होती प्रतीत होती है जिनका आचरण वैदिक आर्योंसे भिन्न था। रावणके सदृश दशरथ की राजमहिषी कैकेयीका एक दूसरा उदाहरण है। ये स्पष्टरीतिसे अनार्या कहीगई हैं (अनार्या....कैकेयी.. । रा० २-१८-३१)। उनका सारा व्यवहार ऐसाही था, जो राजकीय घरानेके आर्य रक्तकी स्त्रीके लिये शोभा नहीं देता। अतएव यहां पाठक सहजहीमें जानगये होंगे कि एक मामलेमें वशिष्ठ और विश्वामित्रकी प्रतिवादिता इसे कलहके बीज बोयेगये। उससे केवल विग्रहके अंगारेही नहीं सुलगाये गये थे, किन्तु वह कुटिल भावों और अत्यन्त अनुचित दुर्वाक्योंके प्रकाशनका साधन स्पष्टरीतिसे बनी थी। दूसरे मामलेमें रावण एवं उसके सम्बन्धियों और अधीनस्थोंका घमंडी स्वभाव, उनकी निर्दयता और उनके पापकर्म इन सारी अस्वाभाविक उपाधियोंके उत्तरदायी थे। लिखा है कि रावणके भाई कुम्भकर्ण और उसकी बहन शूर्पनखा उसीकी समान दुष्ट स्वभाव और दुर्गुणोंसे युक्त थे। ये भी भयंकर

—" रावण नामका दैत्य रामायणमें ब्राह्मण और दस मुँहका लिखा गया है.—
Vide Muirs O. S. T. Vol. 1. p. 21 Ed. 1872)

१. पुलस्त्यो नाम ब्रह्मर्षिः......रामायणे उ० का ७-२-४)
पुलस्त्यो यत्र स द्विजः। (रामा० उ० ७-२-११)
तस्मात्स विश्रवानाम... । (रामा० ७-२-३१)
यस्माद्विश्रवसोऽपत्यं...तस्माद्वैश्रवणो नाम । (७-३-८)
जनयामास...रक्षोरूपं...दशग्रीवं । (७-९-२८,२९)

२. स राक्षस स्तत्र...तपश्चचार (७-९-४-)।

जीव थे। परन्तु विभीषणके सम्बन्धमें ऐसी कोई बात नहीं कही गई है। यद्यपि रावण कुंभकर्ण और विभीषण ये तीनों सगे भाई एकही माता-पिताकी सन्तान हैं। परन्तु विभीषणकी प्रकृति बिलकुल भिन्न बताई गई है। इसमें इसके मातापिताके सारे उत्कृष्ट गुण और आचरणके सुन्दरतम लक्षण विद्यमान मालूम पड़ते हैं. यह बात नीचे उद्धृत किये गये अवतरणसे प्रकट हो जाती है:-

अथाब्रवीत्सुतां रक्षः कैकसीं नाम नामतः ॥ ७ ॥ ...
त्वं हि सर्व गुणोपेता श्रीः साक्षादिव पुत्रिके ॥ ९ ॥ ...
भज विश्रवसं पुत्रि पौलस्त्यं वरय स्वयम् ॥ १२ ॥ ...
सा तु गत्वा मुनिर्ध्यातं वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २१ ॥
सुताभिलाषो मत्तस्ते मत्तमातङ्गगामिनि ।
दारुणायां तु वेलायां यस्मात्त्वं मामुपस्थिता ॥ २२ ॥
शृणु तस्मात्सुतान्भद्रे यादृशाञ्जनयिष्यासि ।
दारुणान्दारुणाकारान्दारुणाभिजनप्रियान् ॥ २३ ॥
प्रसविष्यासि सुश्रोणि राक्षसान् क्रूरकर्मणः ॥ २४ ॥
भगवन्नीदृशान्पुत्रांस्त्वत्तोऽहं ब्रह्मवादिनः ।
नेच्छामि सुदुराचारान्प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ २५ ॥
पश्चिमो यस्तव सुतो भविष्यति शुभानने ।
ममवंशानुरूपःसधर्मात्मा च न संशयः ॥ २७ ॥
एवमुक्ता तु सा कन्या राम कालेन केनचित् ।
जनयामास बीभत्सं रक्षोरूपं सुदारुणम् ॥ २८ ॥
दशग्रीवं महादंष्ट्रं.... ॥ २९ ॥
तस्य त्वनंतरं जातः कुंभकर्णो महाबलः ॥ ३४ ॥
ततः शूर्पणखा नाम संजज्ञे विकृतानना ।
विभीषणश्च धर्मात्मा कैकस्याः पश्चिमः सुतः ॥ ३५ ॥

(श्री वा० रा० उ० कां० ७-९)

अस्तु-दास और दस्युशब्दके सदृश राक्षस और यातुधान–शब्दसे अनार्यत्वका किसी तरहका भी भाव नहीं निकलता, जिससे वे अनार्य उत्पत्तिके माने जायँ, जैसा कि कुछ लोगोंने भूलसे अनुमान किया है। क्योंकि ये शब्द उन लोगोंके सम्बन्धमें भी प्रयुक्त किये गये हैं जो निस्सन्देह शुद्ध आर्य रक्तके थे। समय समयपर इन शब्दोंका प्रयोग विदेशियोंके लिये भी होता रहा है। जब दस्युओंके सदृश वे दुःखदाई प्रतीत हुए तब वे भी इन शब्दोंसे अभिहित किये गये। इसके सिवा राक्षस शब्दपर विचार करने और उसकी व्युत्पत्ति समझनेपर यह मालूम पडता है कि वह रक्ष धातुसे बना है, जिसका अर्थ रक्षा करना है। अतएव राक्षस वे लोग थे जो बलवान् और शक्तिशाली थे। इस अवस्थामें उन्होंने अपनी रक्षा पौरुष और दृढताके साथ की। रामायणमें लिखा है कि जिनका संकल्प अपनी रक्षा करलेनेका है वे लोग राक्षस कहलाने लगे (रक्षाय इति यैरुक्तं राक्षसास्ते भवन्तु वः। रामा० उ०७.४.१३)। यह स्मरण रखना चाहिये कि, इन लोगोंकी गणना उसी जातिके अन्तर्गत थी जिसे प्रजापतिने रामायणमें मानव जातिसे अभिहित किया है, यद्यपि दस्यु और राक्षसभी घमण्डसे उन्मत्त होकर अपनेको अमर समझते थे (अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानं... ऋ० वे० २–११–२३;–आयुर्निरामयं प्राप्तं सुधर्मः स्थापितः पथि॥ रा० ७–६–४०)। शब्द-विज्ञानके प्राचीन पण्डित यास्कभी राक्षस शब्दको रक्षधातुसे (रक्षा करनेके अर्थमें) निकला कहते हैं. वे लिखते हैं कि "जिससे रक्षा कियाजाना आवश्यक है वह राक्षस है" (रक्षो रक्षितव्यं यस्मादिति। नि० पू० खं० ४–१८)। सम्भवतः राक्षस भयंकररूप, शक्ति और अयाज्ञिक प्रवृत्तिके कारणही हमारे वैदिक पूर्वपुरुष उसके संपर्कसे दूर रहे। अतएव इस बातसे द्विषो और अमीवाः (द्वेषी...बलिष्ठ) शब्द मुझे याद आजाते हैं। ये शब्द ऋग्वेदमें (३–१५–१) राक्षसोंके लिये प्रयुक्त हुए हैं। इस

स्थलमें वे लोग द्विष, रक्षस, अमीवाः कहे गये हैं। इसके सिवा प्रसिद्ध भाष्यकार सायणनेभी अमीवाःशब्दकी व्याख्या नीरोग है, अतएव स्वस्थ, चंगा और पुष्टके अर्थमें की है–

" तथामी वा रोगराहित्येन सामर्थ्योपेताानिरक्षसः ।

असुरोंके सदृश राक्षसभी समयकी गतिसे अयाज्ञिक होगये थे। उन्होंने स्पष्टरीतिसे अनीश्वरवादी धर्मको ग्रहण कर लियाथा। उनका यह धर्म वैदिक कर्मकाण्डसे रहित और उसके विरुद्ध था। अतएव हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंने उसे त्याज्यही नहीं समझा, किन्तु उसका ग्रहण करना उन्होंने पाप माना। अतएव उन्होंने राक्षसोंको पापी (पापस्य रक्षसः । ऋ० वे० १–१२९–११), अदानी या अयाज्ञिक स्वधर्मत्यागी (राक्षसो आराव्णः । ऋ० वे० ८–६०–१० स्तुति न करनेवाले (अशसो रक्षसः द्विषो रक्षसो । ऋ० वे० ३–१५–१) और जघन्य दुराचारी (द्विषो रक्षसो । ऋ० वे० ३–१५ १) जैसे दुर्नामोंसे सम्बोधितकिया राक्षसोंनेभी वैदिक ऋषियोंसे अलग रहनेका प्रयत्न किया। वर्षों तकही नहीं, वरन् युगोंतक वे लोग पहाडियों और घाटियोंमें घने जंगलों और मार्गसे अलग एकान्तस्थानोंमें रहते रहे। इन स्थानोंमें रहनेके कारण वे लोग वैसेही होभी गये। दीर्घकालतक एकान्तस्थानोंमें रहने और जंगलीपनसे जीवन बितानेपर राक्षस जाति स्वाभाविक रीतिसे निर्दय और क्रूर स्वभावकी हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि, उनका रूपभी भयंकर और घृणित होगया (घोर चक्षसे-अपकारी नेत्र । ऋ० वे० ७–१०४–२, घोररूपाः... रामा० ७–६–२५) और सम्भवतः दस्युओंके सदृश समयकी गतिसे उन्होंनेभी अपनी एक अलग जाति बनाली, क्योंकि उन लोगोका सम्बन्ध वैदिक कर्मकाण्ड और ब्राह्मणोंके सदाचार या उनकी परम्परासे नहीं था। उनका सम्पर्क इन

लोगोंके साथ होही न सका (रामा० ७-५-३१ तिलक टीका)[१]।

इसके सिवा जो यह दिखलाया जाता है कि राक्षस कच्चा मांस खाते थे या यह कहा जाता है कि वे नरमांस खानेसे जघन्य थे और दूसरे मनुष्योंको मारकर खुद आनन्द करते थे तो यह कोई बात नहीं है कि वे दैत्य या अनार्य मानेजायँ । क्योंकि जो अग्निदेवता वेदोंमें एकमात्र यज्ञके होता, मध्यस्थ आचार्य, उत्कृष्ट पुरोहित और ब्राह्मण सभ्यता एवं सारे सदाचारोंके प्रतिनिधि मानेगये हैं वे उतनेही भयंकर और जघन्यरूपमें प्रकट कियेगये हैं जितनेमें वे राक्षस जिनको मार डालनेकी प्रार्थना उन्हीं अग्नि देवतासे की गई है । ऋग्वेदमें लिखा है, " हे जातवेदस (अग्नि) अपने उन लौहहस्तिदन्तोंसे (अयोदंष्ट्रा), जो तेरी ज्वालासे प्रज्वलित (पैने किये गये) हैं, (आर्चिपा...समिद्धः) राक्षसोंका भक्षण करो (यातुधानानुपस्पृश), अपनी जीभसे पगले देवताओंके उपा-

---

१. यहां टीकामें 'अराक्षसी' शब्दकी व्याख्या 'राक्षसजातिभिन्ना' की गई है। इस व्याख्यासे यह वात स्पष्ट रीतिसे प्रकट होती है कि दस्युओंके सदश राक्षसोंकी भी एक अलग जाति थी । इसका कारण केवल यह था कि वे लोग धर्म तथा दूसरी कई एक वातोंमें विरुद्धमत रखते थे । तो भी यह वात उनके परस्परके वैवाहिक सम्बन्धमें वाधक नहीं प्रतीत हुई । क्योंकि हम देखते हैं कि सुमालिन नामके राक्षसकी पुत्री कैकसीका विवाह विश्रवसके साथ हुआ था यह विश्रवस ब्राह्मण था और पुलस्त्यका पुत्र था (रामा० ७-९-१२, २०) गन्धर्व कन्या वसुदाका विवाह मालिनामक राक्षसके साथ हुआ था (रामा० ७-५-३०, ४१)। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि राक्षस लोगोंको संस्कृतमें वातचीत करनेका अभ्यास था । संस्कृत उनकी मातृभाषा समझ पडती है (संस्कृतं वदन् । रामा० ३-११-५६)। सम्भवतः इसी उपर्युक्त प्रमाणके आधारपर (राक्षस जाति भिन्ना) रेवरेंड डाक्टर विलसनने लिखा है कि राक्षस, पिशाच और असुर वास्तवमें जातियोंके नाम थे (India Three Thousand years ago p. 20)

सकोंका पकडो और उन्हे मार डालो (जिह्वयामूरदेवान्रभस्व) और कच्चे मांसके खानेवालोंको तितिर वितिर करनेके अनन्तर उन्हें गलेके नीचे गटक जाओ (क्रव्यादो वृधत्वपिधत्स्वासन् । ऋ० वे० १०–८७–२) परन्तु हम देखते हैं कि भिन्न भिन्न अवस्थाओं तथा देशकालमें अनेक ऐसे लोग हो गये हैं जो राक्षसोंकी साधारण बुरी प्रकृतिके अपवाद स्वरूप हैं। हमारे ये अपवाद महाभागवत विभीषण तथा दूसरे लोग हैं, जिन्होंने ब्राह्मणोंका धर्म ग्रहण करलिया था, इधर बुरी संगति, दूषित देश काल, बिगडी आदतें और जघन्य विचारोंसे प्रभावान्वित होनेसे ब्राह्मणोंका स्वभाव भी बदल गया था और उन्हें पूरा पिशाच बनाकर बिलकुलही परिवर्तित कर दिया था। यह बात गोतम नामक ब्राह्मणके चरितसे बहुत अच्छी तरह सिद्ध होती है। संक्षेपमें उसका चरित इस प्रकार है। गोतम नामका एक ब्राह्मण मध्य देशका निवासी था। ब्राह्मणोंके सदाचारका परित्याग करके वह दस्युओंके बीचमें रहताथा मछलीमार और शिकार खेल एवं सब प्रकारके अमानुषिक कार्य कर वह अपना जीवन बिताताथा। अपने इस प्रकारके व्यापारके लिये वह गरीबीका बहाना किया करता था इन सारे दुष्कर्मोंके कारण वह कुछ ही समयमें बिलकुलही बदल गया, कुछका कुछ होगया। उसके शरीरका रंग काला पडगया और वह सारे वैदिक कर्म भी भूलगया (कृष्णाङ्गो ब्रह्मवर्जितः । महा० भा० १२–१६७–३) यही नहीं, वह उस आदमीके साथ भी दुष्टताका व्यवहार करता था जो उसपर अधिक दया करता था और जिससे उसके बडे बडे काम निकलते थे। उसने अपनी क्षुधा शान्त करनेके लिये अपने उपकारीको सोते समय बडी निष्ठुरताके साथ मारडाला (कृतघ्नस्तु स दुष्टात्मा... ॥२॥) (गौतमो विश्वस्तं) स सुप्तं जघान तम ।..म० भा० १२-१७१-२,३ (South Indian Text 1908) ।। अतएव उसको दण्ड देना

उचितही था और उसकी मृत्यु अनिवार्य थी। अतएव राक्षस भी मनुष्यथे। मनुष्यरूपमें उत्पन्न होनेके कारण वे लोग प्रेत और पिशाच नहीं थे। दस्युओंके सदृश वे लोग भी पतित थे, क्योंकि उन्होंने ब्राह्मणोंकी संस्थाओंको ग्रहण नहीं किया था और जो अमानुषिक उपाधियाँ दस्युओं या राक्षसोंके प्रति प्रयुक्त होती मालूम पडती हैं वे केवल उनके प्रति घृणाका भाव और उनके भयंकर दुष्कर्मोंका प्रकाशन करनेके लिये हैं। क्योंकि जो रावण प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि विश्रवसका पुत्र था वह अपने अनेक पाप-कर्मोंके कारण राक्षस कहलाता था। उसे केवल दुष्टता और निर्दयताका ही कलंक नहीं लगा था, किन्तु-ब्रह्महत्याकाभी(...दुष्टं ब्रह्मघ्नं क्रूरकारिणं ॥२०॥ रावणं... ॥२१॥ राम० ३-३२-२०, २१ निर्णयसागरप्रेसका संस्कृ० १८८८)। जो आदमी दुष्ट, निर्दय और क्रूर होता है उसे हम आजभी साधारण बात चीतमें राक्षस कहते रहते हैं। भले ही वह आदमी हमारा भाई-बन्धु हो। परन्तु यह भी सम्भव है कि समयानुसार राक्षसशब्द उन क्रूर या जंगली जातियोंके लिये व्यवहृत हुआ हो जो आर्यावर्तमें घूमा करती थीं और साधु तथा यज्ञ प्रेमी आर्योंपर आक्रमण करती रहती थी। अब मैं यहां काले चमडेवाले काले लोग, अशुद्ध बोलनेवाले इत्यादि अर्थ सूचक उपाधियोंका अर्थ स्पष्ट करनेका प्रयत्न करूंगा। इस प्रकारकी जो उपाधियाँ ऋग्वेदमें प्रयुक्त हुई हैं वे इस तरह हैं 'काले चमडेके' (कृष्णां..त्वचं ९-४१-१, त्वच मसिक्नीं..९-७३-५,) 'काली उत्पत्तिके' (कृष्णगर्भाः...१-१०१-१; कृष्णयोनीः। २-२०-७) 'काले' (कृष्णाः १४-९६-१३), 'कालेलोग' (विशः असिक्नीः। ७-५-३; कृष्णया..विश्व ८-६२-१८), 'अशुद्ध बोलनेवाले' (मृध्रवाचः। १-१७४-२) इत्यादि ऋग्वेदमें जो ये उपाधियाँ मिलती हैं वे उन लोगोंके सम्बन्धमें व्यवहृत होती मालूम पडती हैं जो वैदिक

कर्मोंसे रहित या विरुद्ध थे अथवा जो अग्नि नहीं स्थापित करते थे (अनग्नित्राः ऋ० वे० १-१८९-३) । जिन स्थलोंमें (त्वचमसिक्नीं) 'काले चमडे' जैसे उल्लेख हुए हैं, वह असावधानीसे हुआ है यह बात उस हर्षप्रकाशन द्वारा सूचित होती है जो वैदिक स्तुति (ऋचाशोचन्तः । ऋ० वे० ९-७३-५) से लाभ होनेपर हुआ था'। क्योंकि इस स्तुतिसे कर्मरहित काले लोगोंका संहार होगया था । (संदहंतो अव्रतान् ।..अपधणंति..त्वचमसिक्नीं..ऋ० वे०: ९-७३-५]) । ऋग्वेदसे जो ऋचा यहां उद्धृत की गई है उसमें अव्रती लोग जानबूझकर धुलहे रंगके या काले चमडेवाले कहे गये हैं । अयाज्ञिक जातिके प्रति घृणा प्रदर्शनके लिये ही ऐसा कहागया है और कुछ अपवादोंको छोडकर यही बात सर्वत्र देख पडती है उपर्युक्त कथन यातो अधार्मिक दस्युओंका संकेत करते हैं या दासोंका और कुछ दृष्टान्तोंम उन बादलोंका भी जो जलधारण किये रहते और उसे नहीं बरसाते हैं । यह बात है कि ये उपाधियाँ उन लोगोंके सम्बन्धमें व्यवहृत हुई हों, जिन्होंने आर्यावर्तमें घुसकर वैदिक आर्योंपर आक्रमण किया था । माळूम पडता है कि जब हमारे वैदिक पूर्व पुरुषोंने देशान्तरगमन करके दूसरे देशोंमें उपनिवेश स्थापित किया था तब उनका संसर्ग दूसरी जातियोंसे हुआ था । इन जातियोंके लोगोंका रंग काला या सांवला था । ऋग्वेदमें स्थल-स्थलपर पांच लोगों(पञ्चजनाः...।ऋ०वे० १-८९-१०), पांचजातियों (पञ्चमानुषान् । ऋ० वे० ८-९-२), पांच फिर्कों (पंचचर्षणीः—ऋ० वे० ७-१५-२) इत्यादिके सम्बन्धमें उल्लेख हुआ है । इसके सिवा अथर्ववेदमें भी कई एक जातियोंके द्वारा पृथ्वीके बसजानेका उल्लेख स्पष्ट रीतिसे दिखलाई पडता है । ये जातियाँ अपने खास देश या मूलआवासमें बसी थीं । उनकी

बोलियाँ भिन्न भिन्न प्रकारकी थीं। और उनके शील, स्वभाव और रीति-रवाजभी एक दूसरेसे भिन्न थे–

"जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्" (अथ० वे० १२-१-४५)। मानव जातिकी इन पाँच जातियोंका (पञ्चमानवाः) उल्लेख और भी है। अथर्ववेदमें लिखा है कि इन मर्त्योंके लिये सूर्य अपनी किरणोंसे नित्य प्रकाश करते हैं–

" तवेमे पृथिवि पंचमानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्यः
उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ (अथ० वे० १२-१-१५)

परन्तु प्रोफेसर राथ अपने कोषमें 'कृष्णयोनीः' और 'कृष्णगर्भाः' का अर्थ काले वादल करते हैं और प्रोफेसर वेनफे यद्यपि सामवेदके अपने अनुवादमें कृष्णत्वचका अर्थ वादल करते हैं तोभी. सामवेदके अपने शब्दकोषमें वे 'त्वचमासिक्नीम्' को रात्रिका द्योतक मानते हैं। अतएव उसका अर्थ भी रात्रिही करते हैं। परन्तु ऋग्वेदमें (७–५–३, ८-६२-१८) जहां काले लोगोंका उल्लेख हुआ है वहांके वैसे शब्दोंकी व्याख्या प्रोफेसर राथ अपने कोषमें (S. V. Asikni) अन्धकारकी आत्मायें करते हैं। तोभी इस विषयकी सारी वातोंके सम्बन्धमें समुचित ध्यान देनेसे यही मालूम होता है कि उपर्युक्त उपाधियोंको या तो हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंने उन लोगोंके प्रति घृणाप्रदर्शनमें, जिन्होंने वैदिक कर्म (अव्रतम्, अपव्रतम्,) छोड दिया था और जो उसके विरुद्ध थे या सम्भवतः वैदिकमूलनिवासियोंने आर्यावर्तमें आयेहुये विदेशियों तथा उसमें रहनेवाले उत्पीडकोंके प्रति व्यवहृत किया होगा। ये विदेशीलोग अमानुष और अनीश्वरवादी, भिन्न धर्माव-लम्बी और पगले देवताओंके उपासक थे। इस देशके शान्त आदिम आर्योंको वैदिक यज्ञों तथा भक्तिमें निरत देखकर इन लोगोंने विना-किसी प्रकारकी छेड छाडके आर्यावर्तपर आक्रमण किया था। देशमें लूट मार मचाकर धावे करते थे और देशी आर्योंको अपने धार्मिक

कर्मोंका सम्पादन करनेमें बाधा देते थे। N.P. अब केवल 'मृध्रवाचः' की व्याख्या देनी रहगई है। यास्क अपने निरुक्तमें लिखते हैं कि 'मृध्रवाचः' का अर्थ मृदुवाचः है अर्थात् "वे लोग जो मधुरबोली-या शब्द बोलते हैं"। हमारे वैदिक पूर्वपुरुषों द्वारा असुर कहलानेवाले हमारे ईरानी या पारसीक ईरानी भाइयोंके अशुद्ध उच्चारण और शब्दोंके जो अपभ्रंश प्रयोग हैं उनसे इसका संकेत होता है। क्योंकि वे लोग केवल वर्गके कटुवर्णके स्थानमें एवं उसके मृदु उदात्तके लिये भी सदैव मृदुलवर्णकाही प्रयोग नहीं करते थे किन्तु स्वरितके लिये उदात्तकाभी व्यवहार करते थे और इसके सिवाभी उन्होंने दूसरे अपभ्रंश रूपोंका प्रचार किया था। अत एव अपने परिणामोंको दृढ करनेकी दृष्टिसे मैं यहां कुछ उदाहरण उपस्थित करूँगा और शब्दोंकी जो तुलनामूलक सूची यहां दी जाती है—

संस्कृत शब्द	उसका ईरानी अपभ्रंश
१. पञ्च	पज (पांच)
२. मातर	मादर (माता)
३. घर्म	गर्मा (गर्मी)
४. भीम.	वीम (भयंकर)
५. भ्रातर	ब्रातर (भाई)
६. अस्मि	अह्मि (मैं हूं)
७. दश	दह (दस)
८. सन्ति	हान्ति (वे हैं)
९. सप्त	हप्त (सात)
१०. सप्तसिन्धु	हप्त हेन्दु (सप्तसिंधु)
११. सम्	हम (एक साथ)
१२. सम	हम (सब)
१३. सर्व	हौर्व (सब)

—१४. सहस्र	हजार (हजार)
१५. सिन्धु	हेन्दु (सिन्धुनदी)
१६. सोम	हौम (सोम)

—उससे केवल ईरानी शब्दोंके अपभ्रंशरूपही न प्रकट होंगे किन्तु उससे वे विशेष परिवर्तन भी सूचित होंगे जो भिन्न भिन्न प्रकारसे होगये हैं। असुरों या ईरानियों द्वारा वैदिक (संस्कृत) भाषाके अशुद्ध उच्चारण और अपभ्रंशके प्रयोगका विवरण शतपथ ब्राह्मणमें और भी अधिक दिया गया है। उसमें (३--२--१, २--३--२४) हे अरयः हे अरयः के स्थानमें, हे अलवः हे अलवः लिखा है। इस स्थलमें 'र' के स्थानमें मृदुतर 'ल' स्पष्टरीतिसे व्यवहृत हुआ है। कहा जाता है कि इसी अशुद्ध उच्चारणके कारण वे लोग पराजित हुये थे (इति वदन्तः परावभूवुः) इस तरह यह मालूम पडता है कि उस समयकी प्रचलित शुद्ध (संस्कृत) भाषाके मुहाविरों और शब्दोंके उच्चारण करनेमें असमर्थताके कारण ईरानी या असुरलोग हकलाकर बोलनेवाले 'आत्तवचसः' अर्थात् वाक्हीन या 'मृध्रवाचः' कहलाते थे। यह शब्द ऋग्वेदमें आया है और सायणने इसकी व्याख्या "हिंसितवागिन्द्रियान्" की है अर्थात् जिसकी वाक् इन्द्रियमें दोष हो। अतएव जिस बोलीमें शब्दोंके इस प्रकारके अपभ्रंश तथा उनका अशुद्ध उच्चारणका प्रयोग होता रहा वह स्वाभाविक रीतिसे असुरोंकी बोली कहलायी "असुर्या हएषावाक्" यह बात बिलकुल उसी प्रकार हुई जैसे कि देवों या वैदिक ऋषियों और ब्राह्मणोंने अपनी बोलीको बिलकुल स्वच्छ रक्खा था यही नहीं किन्तु शुद्धभी। वास्तवमें ये लोग संस्कृत या देवताओंकी भाषाको " संस्कृतं नाम दैवी वाकान्वाख्याता महर्षिभिः " सब प्रकारकी गन्दगी तथा अपूर्णतासे, दोषों तथा त्रुटियोंसे बिलकुल बरी रखनेमें बहुत सावधान रहते थे, हमारे वैदिक पूर्वपुरुष हमारी इस दैवी तथा पवित्र भाषाकी शुद्धताके लिये बहुत सचेत रहते थे । इसका

ध्यान उन्होंने सदा रक्खा था अर्थात् सब समयमें यही नहीं सब अव-स्थाओंमें भी उसकी पवित्रता कायम रक्खी गयी थी और सब प्रकारके दूषित, मिश्रण, अशुद्ध उच्चारण और शब्दोंके अपभ्रंश-प्रयोगसे उन्होंने उसे बरी रक्खा था। वास्तवमें भाषापर सारे विदेशी प्रभावों और अनुचित आक्रमणोंके बचाव स्वरूप शतपथ ब्राह्मणमें प्रामाणिक धार्मिक आदेशका उल्लेख किया गया मालूम पडता है। उसमें लिखा है कि कोई ब्राह्मण न तो अशुद्ध शब्द उच्चारण करे और न अशुद्ध भाषा ही बोले। वह इस प्रकार है—ते असुरा आत्त-वचसो हे अलवो हे अलव इति वदन्तः पराबभूवुः। .... तस्मान्न ब्राह्मणो म्लेच्छेत्। असुर्या ह एषा वाक्। (श० ब्रा० ३-२-१-२३,२४)। " असुर लोग हे अलवः (हे शत्रुओ, हे अरयः का अशुद्धरूप) चिल्लाते हुए युद्धमें पराजित हुए थे। ये लोग शुद्ध बोलना नहीं जानते थे। .... अस्तु—कोई ब्राह्मण अशुद्ध न बोले। अशुद्ध बोलना असुरोंकी भाषा है।" जिस मृध्रवाचः शब्द तथा उसपर की गई सायणकी जिस टीकाका उल्लेख हमने पहले किया है उसपर ध्यान देनेसे हमें ज्ञात होता है कि उस श्रेष्ठ वैदिक भाष्यकारने भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके उसकी व्याख्या की है। अतएव हम उस शब्दकी भिन्न भिन्न व्याख्यायें पाठकोंके सामने उपस्थित करेंगे। तभी मृध्र-वाचः शब्दके सम्बन्धमें वे अपनी खास सम्मति निरूपण करनेमें समर्थ होंगे। ऋग्वेदके १-१७४-२ की टीका करतेहुए सायण मृध्रवाचःका अर्थ 'मर्षणवचनाः' देते हैं अर्थात् वे लोग जो धैर्य और संयमके साथ बोलते हैं। ऋग्वेदके ५-२९-१० या ७-६-३ और ५-३२-८ में वे मृध्रवाचः और मृध्रवाचका अर्थ "हिंसितवागिन्द्रियान् या हिंसित वचस्कान् और हिंसितवागिन्द्रियम्" क्रम पूर्वक करते हैं अर्थात् वे लोग जिनकी वागिन्द्रिय दूषित या विनष्ट है। ५-२९-१० में आये हुए मृध्रवाचः शब्दका सम्बन्ध स्पष्ट रीतिसे उसी ऋचाकी उसी पंक्तिके

अनासो दस्यूनसे मालूम पडता है। पाश्चात्यलोग उसका अर्थ (अ+नासः-नाक रहित करते हैं। पर यह अर्थ ठीक नहीं है, किन्तु उसका अर्थ (अनः+आसः-विनामुखका) हैं इस अर्थसे वोली या शब्दका लाक्षणिक अर्थ लगायाजाता है, क्योंकि बोली या शब्द मुँहहीसे निकलते हैं। इस अवस्थामें यह बहुत कुछ ठीक जँचता है कि मृध्रवाचः या मृध्रवाचम् बिगडी हुई बोली, शब्दोंका अशुद्ध उच्चारण या मुहावरेके दूषित प्रयोग सूचित करनेके लिये व्यवहृत हुआ होगा। विशेषकरके जब उस शब्दसे अव्रती दस्युओं या ईरानी असुरोंका संकेत होता है जिनको हम शतपथब्राह्मणमें उस प्रकारकी अपभ्रंश भाषाका व्यवहार करते पाते हैं ऋग्वेदके ७-६-३ में मृध्रवाचः शब्द औरभी अधिक महत्त्व पूर्ण मालूम पडता है। इसका सम्बन्ध केवल उन दस्युओंसेही नहीं हैं, किन्तु ऐसे वन्धु वान्धवों पाणनी लोग (पणीन्) के साथ भी है जो उन्हींके सदृश अव्रती या अयाज्ञिक (अक्रतून्। दम्भी=ग्रथितः) वैदिक धर्मके प्रति अश्रद्धालु (अश्रद्धान्) और अग्नि देवताकी पूजा प्रचलित करनेमें अनुत्साही (अवृधान्) थे। उन्हीं अग्नि देवताने इन मृध्रवाचः या अशुद्ध बोलनेवालोंको सप्तसिन्धुदेशसे पश्चिम ओर (ऋकारापरान्) खदेड और निकाल दिया था (प्रपनि विवाय), क्योंकि वे लोग अयाज्ञिक थे (अपूज्यन्)। (देखो ऋ० वे० ७-६-३) अब ऋग्वेदके ७-१८-१३ में सायण मृध्रवाचम् का अर्थ बाधवाचम् देते हैं अर्थात् ऐसा बोलना मानो तंग करना। स्पष्टरीतिसे मृध्रवाचम् बोलनेमें पीडा देनेवाला कहाजाता था। क्योंकि शब्दोंका अशुद्ध उच्चारण, मुहावरोंका दूषित प्रयोग या भ्रष्ट बोली इनमेंसे कोईभी हमारे वैदिक पूर्व पुरुषोंको अत्यन्तही अखरनेवाली बात थी। वे

---

१. इन पाणिन लोगोंका वर्णन सायण इस तरह करते हैं:-पाणीन् पणिनामकान् वार्धुषिकान्...। ऋ० वे० ७-६-३की टीका।

अपनी मातृभाषाका अतुलित प्रेम करते थे। उन्होंने सब प्रकारके गडबडसे उसकी रक्षा की थी। अतएव वे सदैव और सर्वत्र उसके शुद्ध तथा समुचित प्रयोगके सम्बन्धमें उत्साहपूर्वक सावधान रहते थे। इसपर शायद संशयालु लोग यह सन्देह करेंगे और पूछेंगे कि, हमारे आर्य-पूर्वपुरुषों और आदिमें, बापदादाओंकी कौन भाषा थी? क्या प्रारम्भकी भाषा देश भाषाही थी और वह किस रूपमें कहां प्रचलित थी? दस्युओं या दासों और असुरोंकी कौन भाषा थी? राक्षसोंकी बोलचालकी भाषा या देशभाषा कौन थी? ये प्रश्न इस अध्यायके सम्बन्धमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और आवश्यक होनेके कारण मैं उनका क्रमपूर्वक उत्तर देनेका प्रयत्न करूँगा। वास्तवमें हमारे आर्य पूर्व पुरुषों और आदिम बापदादोंकी प्रारम्भिक भाषा संस्कृत थी। यह बात साहित्यिक तथा दूसरे प्रमाण-द्वारा स्पष्ट रीतिसे मालूम पडती है। तोभी वह संस्कृत प्राचीन वैदिक संस्कृत थी। इसका सबसे पहलेका स्वरूप तथा प्राचीनतम चिह्न संसारके प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ ऋग्वेदमें, विद्यमान है। इसका अत्यन्त पुरानारूप ऋग्वेदमें मौजूद है और अपने इस रूपमें वह हमारे सामने उपस्थित है। दस्युओं, दासों और असुरोंकी भाषा संस्कृत थी, क्योंकि दस्यु, दास और असुर लोग अयाज्ञिक थे। वे ब्राह्मणोंसे अलग रहते थे। अतएव ब्राह्मणोंके महावरों तथा चलनसे वे लोग परिचित नहीं थे। स्पष्ट रीतिसे दस्युओं या दासों और असुरोंकी कोई दूसरी अलग भाषा नहीं थी। अतएव ऐसी दशामें किसी विदेशी भाषाका साधारण और स्वाभाविक प्रभाव वैदिक महावरोंपर पडा है, यह बात अभी तक प्रमाणित नहीं की जासकी है। राक्षसोंमेंभी अपनी मातृभाषाके रूपमें संस्कृतका प्रचार तथा उसका बोलाजाना किसीसे कम नहीं था। उदाहरणके लिये इल्वल नामक राक्षसने ब्राह्मणोंसे संस्कृतमें बात चीत की और उन्हें निमंत्रण दिया " इल्वलः

संस्कृतं वदन् । आमंत्रयति विप्रान्सः" (रामा० ३–११–५६ (Bombay Edition 1888) परन्तु इसकी अपेक्षा अधिक पता हमें महाभारत (वनपर्व) से मिलता है। उसमें लिखा है कि राक्षसोंके नये अयाज्ञिक धर्ममें दीक्षित होनेसे पहले उनकी नाडियोंमेंभी आर्य रक्त बहनेके कारण वे लोग केवल वेदोंमेंही निष्णात नहीं थे, किन्तु धार्मिक कर्मोंके करनेमेंभी दत्तचित्तसे लगे रहते थे " सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे सुचारितव्रताः " उसी तरह रावणभी वेदोंका पण्डित था, वह उनका स्वाध्यायभी करता था (ब्रह्मघोष मुदीरयन्–रामा० ३–४६–१४) । परन्तु इस नये अयाज्ञिक धर्मके ग्रहणकरलेनेके बादसे वे लोग पतित हो गये । उन्होंने वैदिक कर्मोंका करना छोड दिया, सोम यागोंको भ्रष्ट कर दिया ब्राह्मणोंकी हत्याएँ की और रावणके साथ रहकर सब प्रकारके अत्याचार किये (मंत्रैरभिष्टुतं पुण्यमध्वरेषु द्विजातिभिः ॥१९॥ हविर्धानेषु यः सोममुपहन्ति महाबलः[1] । प्राप्तयज्ञहरं दुष्टं ब्रह्मघ्नं क्रूरकारिणम् ॥ २० ॥ रामा० ३–३२–१९; २०) हमारे साधु वैदिक पूर्वपुरुषोंने इन दुष्कर्मोंको घोर पाप, अमानुषीय और विद्रोहात्मक माना । तब इन लोगोंने अयाज्ञिक राक्षसोंको बहुतही घृणाकी दृष्टिसे देखा । यद्यपि ये लोग आर्य रक्तके थे, यही नहीं किन्तु उन लोगोंके बन्धु-बान्धवभी थे; तोभी इन लोगोंने पूर्णरीतिसे उन लोगोंकी संगतिका परित्याग कर दिया । फलतः राक्षसोंकी एक अलग जाति बन गई. ये लोग अपने नीच और निर्दयकर्मोंका

---

१. विभीषण तथा दूसरोंकी सदृश राक्षस भी साधु और वैदिक कर्मों तथा यज्ञोंका करना पसन्द करते थे. महाभारतमें भी विरूपाक्ष नामक राक्षस राज बहुतही साधु बतलाया गया है । उसने हजार ब्राह्मणोंको भोज दिया था (महा० भा० १२-१७० (South Indian Texts 1908)

-सम्पादन करनेके लिये यज्ञप्रेमी आर्योंसे अलग बहुत दूर पहाडियों और घाटियोंमें, वनों और जंगलोंमें रहते थे तोभी इनकी बोल चालकी भाषा संस्कृतही मालूम पडती है। यह बात जरूर है कि वह टूटी फूटी और अपभ्रंशकी स्थितिमें परिणत होगई थी।

बारहवां अध्याय.

सप्तसिन्धु देशमें आर्योंके देवता।

जैसा तृतीय कालीन युगके हमारे आदिम आर्य-पूर्वपुरुष आर्यावर्तके मूल अधिवासी थे, वैसेही हमारे देवताओंकी उत्पत्तिका स्थानभी यही देश मालूम पडता है। परन्तु भिन्न भिन्न लेखकोंने इस बातके विपरीत अपना मत प्रकट किया है। क्योंकि वे लोग उत्तरी ध्रुव सिद्धान्त या योरपीय कल्पना अथवा मध्य एशियाई प्रश्नके समर्थक हैं अतएव देवताओंकी उत्पत्तिभी ये इन्हीं भूखण्डोंमें मानते हैं। कहीं मैं यहाँ मुख्य मुख्यही आर्य देवताओंका समुचित वर्णन और बताऊँगा कि वे आर्यावर्तमें ही उत्पन्न हुये थे अथवा हमारे तृतीय कालीन युगके पूर्व पुरुषोंने अपनी उत्पत्तिके इसी देशमें उनका पहले पहल दर्शन किया था।

अग्नि.

मैं पहले अग्नि देवतासे आरम्भ करता हूँ- हमारे वैदिक युगके प्रधान देवताओंमें अग्नि देवताभी एक हैं। हमारे ऋग्वैदिक युगके पूर्वपुरुष और उनके बापदादेभी उनकी भक्ति और पूजा करते थे। (अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। ऋ० वे० १-१-२) देवताओं और मनुष्योंके बीचमें दूत और मध्यस्थ, सर्वश्रेष्ठ याज्ञिक और यज्ञके ब्रह्मा और देवताओंको आहुति लेनेको बुलानेवाले माने जाते थे (... पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजं। होतारं ... ऋ० वे० १-१-१, देवनां दूतः ... तैत्त० सं० २-५-८-५, २-५-११-८) देव-

ताओंके सब प्रधान पुरोहितकी पदवी उन्हें प्राप्त थी (अग्निर्देवो देवानामभवत्पुरोहितः...... ऋ० वे० १०–१५०–४) यही नहीं किन्तु वे देवताओंमें देवताभी कहलाते थे (देवो देवानां... ऋ० वे० १–३१–१, देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ऋ० वे० ४–१५–१, अमृतो... होता ... ऋ० वे० १–५८–१) । परंतु मुख्य प्रश्न अग्निकी जन्म-भूमिका है, अर्थात् पहले पहल वह कहाँ जलाई गई थी और हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंने उसे कहाँ देखा था ? शतपथ ब्राह्मणकी एक बहुतही अपूर्व और ऐतिहासिक घटना-सूचक मनोहर गाथासे हमें ज्ञात है कि अग्निकी उत्पत्ति सबसे पहले सरस्वतीनदीके देशमें हुई थी इस गाथाका उल्लेख हम पीछे कर आये हैं । उसमें लिखा है कि माथव विदेघ उस समय सरस्वती नदीके देशमें उपस्थित था जब उसने उस समय अग्निको अपने मुखमें रक्खा था (विदेघो ह माथवोऽग्निं वैश्वानरं मुखे बभार ।) और उसके पुरोहित रहूगण गोतमके " हे घृतके टपकानेवाले, हम तुझसे प्रार्थना करते हैं (तं त्वा घृतस्नवं ईमहे... । ऋ० वे० ५–२६–२) इत्यादि अर्थसूचक ऋक्-मंत्रोंका उच्चारण करनेके बाद "अथाऽस्य घृतकीर्तावेव"... वह वहाँसे प्रज्वलित होकर (अस्य मुखान्निष्पेदे) नीचे पृथ्वीपर गिरपडी थी (स इमां पृथिवीं प्राप) इसी सरस्वती नदीके देशसे वह आगेको फैली थी । जिसका पूरा वर्णन गाथाकी व्याख्यामें पीछे किया जा चुका है। इस तरह शतपथ ब्राह्मणमें हमें इस बातका सङ्केत मिलता है कि माथव विदेघ तथा रहूगण गोतमने पहले पहल सरस्वती नदीके देशमें अग्निको उत्पन्न करके प्रज्वलित किया था । परन्तु ऋग्वेदसेभी यह स्पष्ट मालूम पडता है कि अग्निको (त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिः १ ३१–१, ... प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविः १-३१-२)–अंङ्गिरसोंने पूर्व दिशामें (पूर्वमनयन...१–३१–४) सर्व प्रथम प्रज्वलित किया था और उसको आहुतियाँ प्रदान की थी (आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः... १-८३-४) ऋग्वेदमें लिखा है (४-१५-४) कि पूर्व-

कालमें (पुरः) अग्निसृञ्जयके देवताके पुत्रके घरमें जलाई गई थी (अयं यः सृंजये पुरो दैवराते समिध्यते । ऋ० वे० ४-१५-४) और इसके सिवा ऋग्वेदमें यहभी लिखा है कि देवश्रवस् और देव वात अग्निके उत्पादक हैं "अमंथिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः" (ऋ० वे० ३-२३-२) वही अग्नि प्राचीन कालमें दृपद्वती, अपया और सरस्वती नदियोंके देशमें (नित्वां दधे... दृपद्वत्यां अपयायां सरस्वत्यां ... ऋ० वे० ३-२३-४) संघर्षणसे उत्पन्न की गई थी (पूर्व्यं सीमजीजनत्सुजातं मातृपु... ऋ० वे० ३-२३-३) इसके सिवा उसी ग्रन्थके एक दूसरे स्थलमें एक वैदिक कवि हमें बताता है कि अग्नि उपाओंसे उत्पन्न हुई है (एता उत्या उषसो विभातीः । अजीजनन्... अग्निं... ऋ० वे० ७-७८-३) और इन्हीं उपाओंको हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंने सर्व प्रथम वैदिक विपाशानदी (आधुनिक व्यास) पर अथवा आर्यावर्त सप्तसिन्धुदेशकी सतलज नदीकी पश्चिमोत्तरी सहायक नदीपर देखा था । परन्तु जिन लोगोंने अग्निको सर्व प्रथम उत्पन्न किया था और उसे जलाया था अथवा जिस साधनसे यह वस्तु प्राप्त की गई थी यद्यपि उनमें इस प्रकारका भेद है तोभी मुख्य और वास्तविक बात अटल और ज्योंकी त्यों है । अर्थात् अग्निकी उत्पत्ति पूर्वमें और सरस्वती नदीके देशमें हुई थी ।

इसके सम्बन्धमें प्रसिद्ध प्राच्यविदोंका क्या मत है ? इस लिये मैं पहले प्रोफेसर वेबरका कथन उद्धृत करूंगा. पूर्वोक्त गाथाके सम्बन्धमें उनका यह मत है-वैश्वानर अग्नि (वह अग्नि जो सब लोगोंके लिये जलती है ।) के नामकी आडमें ब्राह्मणोंकी यागीय पूजाका भाव छिपा हुआ है । इस गाथामें राजाके हिस्सेका जो कार्य पुरोहितने किया है वह अद्भुत है । मेरी समझमें इसका मतलब यह है कि पूर्व दिशामें इस आर्य पूजाका प्रचार करनेके लिये राजाने उसको बाध्य किया था । परन्तु सदानीरा नदी उनके कार्यमें बाधक हो गई । यह बाधा उसके

प्रचण्ड प्रवाह अथवा उसके पार करनेकी कठिनाईके रूपमें ही नहीं थी नदीके पार करनेकी कठिनाईका अनुभव गंगा और यमुना पार करके उन्होंने पहलेही कर लिया था, किन्तु वह इस रूपमें थी कि, आगेका देश वसने योग्य नहीं था, क्योंकि 'स्रवितारम् (कुछ कुछ टपकने वाली) शब्दसे यह सूचित होता है कि वह भूभाग दलदल था। मालूम होता है कि माथव विदेघके उसपार उतर जानेपर ब्राह्मण लोग (इस स्थानमें थे आर्य कहे गये हैं) उसके इसीपार पश्चिमी किनारे पर वहुत दिनोंतक वसे रहे और जव राजाने अपने अनुचरोंकी सहायतासे उस देशको जोता वोया तव बहुसंख्यक ब्राह्मणोंने उस नदीको पार किया। वह देश शतपथ ब्राह्मणके समयमें ऐसा समुन्नत हो गया था कि उसकी सामुद्री उत्पत्तिके सम्बन्धकी गाथा एक अस्पष्टरूपकमेंही शेष रह गई (Ind. Stud 1 pp. 178, 179) म्यूर कहते हैं कि, उस गाथाका आशय सरल और स्पष्ट है "अर्थात् ब्राह्मण अपनी पूजाके सहित सरस्वती नदीके पूर्व विहार तथा बंगालकी ओर गये थे" (Muir's O. S. T. Vol 2 p. 405 Ed. 1871)

सोम, इन्द्र, सरस्वती और सूर्य।

यद्यपि ऋग्वेदमें इस वातका संकेत है कि इन भिन्न भिन्न देवताओंमें कोईभी छोटा वडा नहीं है, (न हि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारक ऋ० वे० ८-३०-१) सवके सव श्रेष्ठ हैं (विश्वे सतो महान्त इत्। ऋ० वे० ८-३०-१) तोभी ऋचाओंके पढनेसे यह स्पष्ट मालूम पडता है कि हमारे वैदिक देवताओंमें छोटाई-वडाईका कुछ भेद वास्तवमें था। अतएव इस वातका समुचित विचारकरके ही हमने अग्निको प्रथम स्थान दिया है, क्योंकि वे ऋग्वेदमें देवताओंके देवता (देवो देवानां ऋ० वे० १-३१-१) माने गये हैं। पाठकोंके सामने हमने इस वातके भी समुचित प्रमाण उपस्थित किया है कि उनकी (अग्निकी) उत्पत्ति

सरस्वती नदीके देशमें हुई थी। अग्निके बाद जिन दूसरे देवता-ओंकी ओर हमारा ध्यान जाता है वे सोम, इन्द्र, उषा, सरस्वती और सूर्य हैं ' परन्तु इनके सम्बन्धकाभी विशेष विवरण पहलेही छठें और सातवें अध्यायमें दे दिया है उससे यह माल्रुम हो जायगा कि उनकी उत्पत्ति आर्यावर्तमें हुई थी। फलतः यहां उन बातोंको दुह-रानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तदनुसार दूसरे महत्त्व पूर्ण वैदिक देवताओंका वर्णन करनेको हम आगे बढते हैं । इनकी उत्पत्तिभी सप्तसिन्ध देशमेंही माल्रुम पडती है। N. P. यह अनुमान किया गया है कि इन सब देवताओंमें आश्विनोंका उदय सबसे पहले हुआ है । वे स्वाभाविक रीतिसे प्रकाशके हरवल माने गये हैं, क्योंकि वे उषासे पहले उदय होते हैं और उसका मार्ग परिष्कृत करते हैं। वास्तवमें अश्विन जो गहरा अन्धकार रातमें छाया रहता है उसमें सर्व प्रथम-प्रकाशकी पहली छटा फैलाते हैं और यह प्रतीत होता है कि, प्रकृ-तिकी यह अद्भुतवस्तु केवल यास्कके समयमेंही नहीं देखी गई थी, किन्तु तृतीय कालीन युग और ऋग्वेदके प्रारम्भिक कालके अतीत भूतकालमें भी। यास्करने अपने निरुक्तमें यह लिखा है-" अश्रेणीके अनुसार दूसरे देवताओंका क्रम आता है। इनमें आश्विन सर्व प्रथम हैं......उनके उदयका समय अर्द्धरात्रिके बाद है। इस समय प्रका-शके प्रकट होनेमें विलम्ब रहता है। क्योंकि बीचमें उनके उदय हो जानेसे अन्धकार आडे आता है " .... (१२-१), "और जब सूर्य उदय होता है तब उनका लोप हो जाता है (१२-४) [तयोः काल उर्ध्वमर्धरात्रात्प्रकाशी भावस्यानु विष्टम्भ मनु। नि० उ० ६-१तयाः कालः सूर्योदयपर्यन्तः....। नि० उ० ६-५] उसी तरह ऋग्वेदकी एक ऋचामें अश्विनोंको संबोधन करके कहा गया है, "हे नासत्यो हमारे यज्ञोंके लिये सविता तुम्हारा रथ उषाके उदयके पहले भेजता है। यह रथ भिन्न भिन्न रंगका होता है और घृतसे परिप्लुत रहता है"

स्पष्टरीतिसे इसका अर्थ यह है कि अश्विनोंका प्रकाश उषाके पहले प्रकट होता है (युवोर्हि पूर्वं सविता उषसोरथं ऋताय चित्रं घृतवन्तामिष्यति ऋ० वे० १–३४–२०) ऋग्वेदमें और दूसरी ऋचायें भी हैं जिनसे यही बात, अर्थात् उषाके पहले आश्विनोंका उदय या उनके प्रकाशका प्रकट होना सिद्ध होती है। अतएव मैं मूलग्रन्थसे कुछ प्रमाण यहाँपर उद्धृत करताहूँ–" तेरे प्रकाशके बाद उषाका उदय होता है " (युवोरुषा अनुश्रियम्..... उपाचरत्। ऋ० वे० १–४६–१४) " हे अश्विनों....रातके पिछले पहर में मददके लिये तुमसे प्रार्थना करताहूँ " (....अश्विना...। अहूत्ये.... निह्वये.... ऋ० वे० १=११२–२४); आकाशकी पुत्री उपाके आगेका प्रकाश देख लिया गया है। वह (सारी–वस्तुओंको प्रकाशमान करनेको ऊपर आरही है (अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ ऋ० वे० ७–६७–२) हे अश्विनों, जिस रथको ऋभसूने तुम्हारे लिये बनाया है उस परचढकर विचारकी गतिकी अपेक्षा अधिक शीघ्र गतिसे आओ। इसीके जुतनेपर आकाशकी पुत्री (उषा) का जन्म होताहै " (.... आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वां ऋभवश्चक्रुरश्विना। यस्य योगे दुहिता जायते दिवः....। ऋ० वे० १०–३९–१२ इत्यादि)। मैंने पहलेही बतला दिया है कि, अश्विन् नामधारी देवता केवल प्रकृतिकी एक अद्भुत वस्तु हैं। ये प्रकृतिकी अद्भुत वस्तुयें उसी तरह स्वाभाविक और साधारण हैं तथा प्रतिदिन उदय होती रहती हैं जैसे कि उषा और सूर्य अथवा प्रकाश और दिन एवं अन्धकार और रात्रि जो परस्पर अनुगामी हैं। हमारे ऋग्वैदिक कवि तथा भाषा–वैज्ञानिक यास्क सदृश विद्वान्भी अन्तरिक्षके इन देवताओंको केवल प्राकृतिक अद्भुत वस्तुयेंही मानते हैं और पाश्चात्य विद्वानोंकी भी यही सम्मति है. उदाहरणके लिये प्रोफेसर गोल्डस्टकर अश्विनोंको ' प्रकाशकी अद्भुतवस्तु ' कहते हैं। जेड० ए० रागोजिन

कहते हैं कि "अश्विनोंका अश्वके साथ सम्बन्ध होनेसे इस बातका अश्वासन मिलता है कि वे अन्तरिक्षकी प्रकाशमान् अद्भुतवस्तुयें हैं। .... वही सबसे पहले उदय होते हैं और प्रातः यज्ञके समय उषासे पहले उन्हींका दर्शन होता है। इसके बाद उषाभी तुरन्त दृष्टिगोचर होती है। (Vide, Vedic India pp. pp. 230 231 Ed 1885

अस्तु इस दशामें महत्त्वके ये प्रश्न उठेंगे-

क-क्या यह अद्भुत वस्तु हालके युगमें देखी गई थी या उसका यह निरीक्षण वही है जिसे बहुतही प्राचीन कालके हमारे पूर्वपुरुषोंने किया था ?

ख-यह अद्भुत वस्तु कहाँ देखी गई थी अथवा इसका निरीक्षण पहले पहल किस देशमें कियागया था ?

ग-जिस देशमें हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंने इस अद्भुत वस्तुको पहले पहल देखा था, क्या उससे आर्य मूलस्थानपर प्रकाश डालनेका काम किसी तरह निकलेगा ?

उपर्युक्त प्रश्नोंके सम्बन्धमें हमें पता लगता है कि अश्विन नाम अत्यन्त प्राचीन कालकी पौराणिक गाथाओंका केवल जालही नहीं बिछा है, किन्तु विपत्तिसे बचायेगये आदमियों अथवा आपदासे मुक्त कियेगये तथा अश्विनों द्वारा दया कियेगये पुरुषों स्त्रियों और पशुओंके सम्बन्धकी भूतकालीन युगकी कई एक गाथाओंका वर्णन बारबार ऋग्वेदमें आया है और वह भी विनोद तथा उत्साह एवं स्वच्छ विचारके साथ स्पष्टरीतिसे इसका कारण यह है कि अश्विन बहुत पुराने (प्रत्ना) समयके तथा प्राचीन समयमें उत्पन्न (पुराजा) कहे गये हैं। यह बात आगे दियेगये मूल पुस्तकके उद्धृतांशसे प्रकट हो जायगी:-(ता....दस्रा.. प्रत्ना) ऋ० वे० ६-६२-५, पुराजा ....ऋ० वे० ३-५८-३, ७-७३-१)

क-अतएव इस अवतरणसे अश्विनोंकी केवल प्राचीनताही नहीं

सिद्ध होती है, किन्तु इसके सिवा हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंद्वारा स्वयम् उनके निरीक्षणकी प्राचीनताभी प्रमाणित होती है । क्योंकि अर्द्ध-रात्रिके उपरान्त तथा उषाके उदयके पहले गहरे अन्धकारमें उन्होंने प्रकाश या धुँधली झलकसी देखी थी । इसे उन्होंने मनुष्य जातिके अस्तित्वके पहलेके युगमें अश्विनोंके नामसे अभिहित किया था और इन अश्विनोंने उनके मनमें स्वाभाविक रीतिसे मृदुल भावना, यही नहीं किन्तु प्रेम, अनुराग और भक्ति जाग्रत कर दी थीं । अतएव उन्होंने इनको अन्तरिक्षके देवताके रूपमें माना था । फलतः उन्होंने स्वयम् इनका नमन विनम्रता तथा भक्तिके साथ किया, इनकी संरक्षा और सहायताकी याचना की और अपने आपको इनकी दयाके अधीन कर दिया था । हमारे आदिम पूर्व पुरुषोंने अश्विनों या प्रकाशकी इस अद्भुत वस्तुको भूत कालीन युगमें अर्द्धरात्रिके उपरान्त और उषाके उदयके पहले अन्तरिक्षमें देखा था । अश्विनोंने अपने कई एक भक्तोंको मदद देकर या उन्हें आपदाओंसे उबार कर सहारा देनेवाले अपने हाथोंको दीनोंकी ओर बढाया था और अपने प्रियजनों या प्रतिपालितों पर श्रेष्ठ वरदानोंकी वरषा की थीं । प्राचीनतम अत्यन्त मौलिक और यथार्थ ऐतिहासिक

१. अध्यापक मैक्समूलर ' वेदों ' को ' अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ ' मानते हैं । (India, what it can teach us ? p. 116 Ed. 1883)

२. " यह वही है जिसे मैं शब्दके वास्तविक अर्थमें इतिहास मानताहूं " । और " जो इस अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक पुरातन ग्रन्थ-समूहमें परिश्रम करना पसन्द करता है उसे खोज करनेको अगणित बातें मिल जायँगी । " (Ibid pp. 25, 26, 27) तब यह मेरा निश्चय है कि मनुष्यों या आर्यमानव जातिका अध्ययन करनेके लिये वेदोंके समान महत्त्वपूर्ण और कोई दूसरी वस्तु नहीं है । और जो मनुष्य अपने बाप-दादोंकी, अपने इतिहासकी तथा अपनी मानसिक समुन्नतिकी परवाह नहीं करता, उसके लिये वैदिक साहित्यका अध्ययन अत्यावश्यक है और उदार शिक्षाके तात्त्विकरूपमें यह बे बलन और फारसके बादशाहोंके

ग्रन्थ ऋग्वेदमें समुचित रीतिसे इन बातोंका उल्लेख मालूम पडता है। इस प्रकारका उल्लेख या तो आकस्मिक ढंगसे जैसे १-३-१-३-१-२२ १-४-१-३०,१७-१८; १,९२,१६,१८, १,११२, १-१७,१९,२५; १,१३९,३-५;४-१५-९१० में या कभी कभी पूरी ऋचामें इन देवताओंके आश्चर्य पूर्ण कार्योंका वर्णन हुआ है. जैसे कि, १-३४; १-४६- ४७; १-११६-१२०; १-१५७-१५८; १-१८०-१८४; ४-४३, ४५; ५-७३-७८; ६-६२-६३; ७-६७-७४;८-५, ८,९-१०, १८, २२, २६,३५,७४,७५,७६, ९० १०-३९-३,४,७,८,९,१०,११ में। अस्तु-अश्विनोंके सम्बन्धका पहला सवाल हल हो गया। यह बात निश्चित हो गई कि वे बहुत प्राचीन हैं अथवा यही बात दूसरे शब्दोंमें इस तरह है कि प्रकाशकी इस अद्भुत वस्तुको हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंने अर्द्धरात्रिके उपरान्त और उषाके उदयके पहले प्राचीन कालमें और तृतीय कालीन युगमें भी, जब हमारे अतीत कालीन पूर्वपुरुषोंका अस्तित्व वास्तवमें था, क्षितिज पर देखा था।

अब हम अवशिष्ट प्रश्नों की जांच करनेको आगे बढेंगे जैसा कि पहले कहा गया है वे ये हैं:—

ख—अश्विनोंका उत्पत्ति स्थान था दूसरे शब्दोंमें वह भूभाग जहाँ उपर्युक्त अद्भुत वस्तुका दर्शन हमारे आदिम पूर्व पुरुषोंने

शासनकी अपेक्षा बहुतही अधिक महत्त्व पूर्ण और बढानेवालाहै, यही नहीं किन्तु जुदा और इस राइलके अनेक बादशाहोंकी तिथियों और कार्योंकी अपेक्षा भी।" (Ibid p. 112)

१. मैक्समूलर कहते हैं,—" यदि कुछ समालोचक आदिमशब्दसे बिलकुल सबसे पहले आनेवालोंका लेवें तो मानों वे एक ऐसी वस्तु मांगते हैं जो उन्हें कभी न मिलेगी। (India, what it can teach us ? p. 113)

२, मैक्समूलर लिखते हैं, " आदिम शब्दसे हमारा मतलब मानव जातिकी प्रारम्भिक अवस्थासे है और जैसा कि उसका रूप है हम उसके सम्बन्धका ज्ञानः

पहले पहल किया था या उन्हें करना पडाथा और आर्योंका मूलस्थान जो उन पहलेके दिनोंमें उस अद्भुत वस्तुके दर्शन या वैदिक साहित्यसे तर्कपूर्वक निकाला जा सकता है। जो प्रत्यक्ष प्रमाण हम अभी उपस्थित करेंगे उनके सिवा अप्रत्यक्ष प्रमाणसे भी यह बात स्पष्टरीतिसे प्रकट होती है कि अश्विनोंकी उत्पति आर्यावर्तमें हुई है। जिन अधिकांश महत्त्वपूर्णा देवताओंके दलमें वे शामिल मालूम पडते हैं और जो सप्तसिन्धु देशमें उत्पन्न हुए थे उन्हींके साथ वे भी उत्पन्न हुए थे। उदाहरणके लिये उषा, सूर्य, सोम, इन्द्र अग्नि और यहाँतक कि आर्यावर्तकी 'सप्तसिन्धवः' या विपर्ययसे 'सप्तस्रवसः' नामसे प्रसिद्धनदियोंके साथ अश्विनोंका घनिष्ठ सम्बन्ध है वे उषा और सूर्यके आगे आगे चलनेवाले बतायेगये हैं और इनके साथ सोमरस पानकरनेको उनसे प्रार्थना कीगई मालूम पडती है (ऋ० वे० ८-३५-१,३)। ऋग्वेदमें (८-२६-८) इन्द्रके साथ उनकी भी प्रार्थना की गई है। इन्द्र नासत्या और वे नमुचिके साथ युद्धमें और वृत्रके विनाशमें सहायता देतेहुएभी वर्णित हैं जिसके कारण सम्भवतः उन्होंने 'वृत्रहन्तमा' या

प्राप्त करनेकी आशा कर सकते है। और सारी आर्यजातियोंके उन शब्दोंके खजानेमें जो सर्वत्र एकरूपमें मिलते हैं प्रत्येक शब्दके संयुक्तकरनेवाले मूलके रूपमें तथा भाषाके गुप्त कोनेमें छिपे हुए इन प्राचीन रूपोंके बाद ऋग्वेदका नम्बर है। इसकी अपेक्षा सच्चे नृविद्या-ज्ञाता और मानव जातिके सच्चे विद्यार्थीके लिये अधिक शिक्षा जनक कोई दूसरा साहित्यक प्राचीन चिह्न नहीं है।" (Ibid p. 113)

१. वे फिर लिखते हैं, "उसमें (प्राचीन वैदिक साहित्यके एक नये संसारमें एक खूबी है। वह असली है, उसकी स्वाभाविक वृद्धि हुई है और सब वस्तुओंकी भांति वह भी स्वाभाविक वृद्धिको पहुंचा है। मेरा विश्वास है कि उसका गुप्त उद्देश है। वह हम लोगोंको कुछ ऐसी शिक्षायें देना चाहता है जो सीखनेके योग्य हैं और जिन्हें हम अन्यत्र नही सीख सकते हैं।" (P. 95 Ibid)

वृत्रका वध करनेवाला (ऋ० वे० ८-८-२२) और इन्द्रतमकी (ऋ० वे० १-१८२-२) भी उपाधि प्राप्तकी थी। हम यहभी जानते हैं कि वे सोमरसका पान और उपभोग करनेको बुलाये जाते थे (ऋ० वे० १-४६-५, ८,१२, १३, १-४७,११, ३) और द्रुतगामी होनेके कारण सप्तसिन्धु देशके ऊपर उनका यात्रा करनाभी उल्लेख किया गया है (... परिवां सप्त स्रवतो रथोऽगात् । ऋ० वे० ७-६७-८) इसके सिवा हमारे भारतीय आर्योंके तेंतीस देवताओंमें उनकाभी गिनाजाना प्रतीत होता है, क्योंकि हमारे ऋग्वैदिक पूर्व-पुरुषोंने अश्विनोंसे " अपने साथ मधु पीनेको आनेके लिये" प्रार्थना की थी (आनासत्यात्रिभिरेकादशैरिह देवभियातं मधु पेयमश्विना । ऋ० वे० १-३४-११)। जिस प्रत्यक्ष प्रमाणकी ओर हमने संकेत किया है और जिसे हम यहाँ उपस्थित करनेका वादा कर चुके हैं उसकी ओर ध्यान देनेपर हम देखते हैं कि ऋग्वेदमें (१-४६-२) अश्विन्, जो ' नासत्या ' और ' दस्रा ' के नामोंसेभी अभिहित होते हैं, सिन्धुनदीके पुत्र कहलाते हैं। ' सिन्धुमातरा ' में बहुव्रीहि समास होनेसे उसका अर्थ " वे जिनकी माता सिन्धु है " होता है या उससे सिन्धुकीसी सन्तानें यह अर्थ व्यक्त होता है अर्थात् सिन्धु-र्नाम नदी माता ययोस्तौ सिन्धुमातरौ या सिन्धुमातरा जैसा कि ऋग्वेदके मूल पाठमें है (१-४६-२)। अतएव मैं यहां यह कह सकता हूँ कि जैसे अश्विन सिन्धुकी सन्तान कहलाते हैं क्योंकि वे उसके असीमपाटके ऊपरसे आतेहुये या उसपर उदय होतेहुये माल्म पड़ते हैं (सिन्धुमातरा ... ऋ० वे० १-४६-२) उसी तरह वे अन्त-रिक्षके पुत्रभी मानेगये हैं (दिवो न माता ... ऋ० वे० १-१८२-१; १-१८४-१)। क्योंकि वे उसीसे प्रकट होते माल्म पडते हैं। परन्तु इस अवस्थामें यह प्रश्न स्वाभाविक रीतिसे उठ खडा होगा कि अश्विन सिन्धुके पुत्र क्यों कहलाते थे ? या उनकी माता सिन्धु

क्यों कर थी ? इसका उत्तर खुला है। क्योंकि हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंने पहले पहल उन्हें सिन्धु नदीपर देखा था अथवा इस तरह कहें कि अर्द्धरात्रिके उपरान्त जो प्रकाश दिखाईदेता है उसे उन्होंने समुद्र सदृश विशाल सिन्धुनदीके विस्तृत पाटकी क्षितिजपर उदय होते देखाथा (अपस्तमपस्तमा ... ऋ० वे० १०-७५-७) अतएव सिन्धु-नदी उसी तरह अश्विन या अर्द्धरात्रिके उपरान्तके प्रकाश-उषाके पहले उदय होनेवालेकी माता या उत्पादिका अनुमान की गई थी जैसे उषाका आकाशकी दुहिता होना कल्पित कियागया था (दुहित-र्दिवः । ऋ० वे० १–३०–२२, ४८-१, ८-९, ४९-२, ५-७९-२, ७-८१,३, ७-४७-१४, १०-१२७-८) या सूर्य अन्तरिक्षका रक्तवर्ण-वाला बचा अभिहित हुआ था। (अरुपं ... दिवः शिशुं । ऋ० वे० ४–१५–६) । जो सिन्धुमातराशब्द यहां उद्धृत किया गया है उसके सिन्धुशब्दको हम सिन्धुनदीके अर्थमें लेते हैं। हम उसे समुद्रके अर्थमें नहीं लेते जैसा कि सायणने किया है। और सम्भवतः सायणकाही अनुकरण करतेहुये कुछ प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों-नेभी भ्रम पूर्वक यही कल्पनाकी है। अतएव इस सम्बन्धमें जो हमारा मत है उसे पाठकोंके लिये यहां उल्लेख करदेना अनुपयुक्त होगा। पहली बात यह है कि अश्विन सिन्धुनदीसे जन्म लेने या उससे उत्पन्न होनेके कारण वास्तवमें किसी न किसी रूपमें मिलेहुये हैं जैसा कि अभी प्रकट किया जायगा। वे सिन्धुके तथा उसकी सहायक नदियोंके साथ साथ जब तब उल्लेख कियेगये प्रतीत होते हैं। उदाहरणके लिये ऋ० वे० के १–११२–९ में अश्विनोंसे यह प्रार्थना कीगई है कि वे उन सहायताओंके साथ आवें जिनसे उन्होंने सिन्धु नदीको मीठे और ताजे जलसे परिपूर्ण किया है (याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं ... । ... ताभिरूषु ऊतिभिरश्विनागतम् ॥)· इसके सिवा दूसरे स्थलमें (ऋ० वे० १–११२–१२) सिन्धुकी

सहायक रसानदीकाभी उल्लेख हुआ है और अश्विनोंसे उन्हीं सहायताओंके सहित आनेकी फिर प्रार्थना कीगई है जिनसे उन्होंने उस नदीको जल पूर्ण किया था (याभी रसांक्षोदसोद्रः पिपिन्वथुः ...) अस्तु-सहायक नदी रसा और सिन्धुके साथ अश्विनोंके मेलसे सूचित होता है कि सिन्धुशब्दका पञ्जावकी प्रसिद्ध नदी अटकसे मतलब है और ऋग्वेदमें (१–४६–२) कविका न तो किसी साधारण नदीसेही मतलब है और न किसी समुद्रसेही अश्विनोंका ऐसाही मेल सोम और सुदासके साथभी दिखलाई पडता है। अतएव ये इस मतको वरावर पुष्ट करते हैं कि प्रारम्भमें वेभी इस देशके देवता थे। क्योंकि ऋग्वेदमें (१-४७-१, ३, ५, ८-७४,१,९, ८-७६-१, २, ४, ५ इत्यादि) लिखा है कि सोमरस उन्हें प्रदान किया गया है और उस रसका पान करनेकी प्रार्थनाभी उनसे कीगई है। ऋ० वे० १-४७-६ में वे सुदासको काफी भोजन प्रस्तुत करतेहुये माल्हम पडते हैं। अस्तु, हम पहलेही लिख चुके हैं कि सोम सप्तसिन्धु देशका है। और यह वात ऋग्वेदसे और अधिक स्पष्ट माल्हम पडती है कि सुदास त्रित्सुका देशी आर्य राजा था और सप्तसिन्धु देशमें उसकी कीर्ति फैली हुई थी (ऋ० वे० ७-१८-२४) यही उसने इन्द्र और वरुणकी सहायतासे दस[1] अयाज्ञिक[2] राजाओंके सम्मिलित दलको (ऋ० वे० ७–८३–७, ८, ९) तुरक्षके सहित (ऋ० वे ७-१८-६) पराभूत किया था (वृत्राणि ... समिथेषु जिघ्नते ॥ ऋ० वे० ७-८३ ९)। इन राजाओंने अपनी सेनाओंको सुदासके विरुद्ध गहरी पुरुष्णिनदी (आधुनिक रावी) के किनारे समवेत[3] किया था। परन्तु वे

---

१. दश राजानः समिताः। ऋ० वे० ७-८३-७)

२. अयज्यवः। ऋ० वे० (७-७३-७)

३. दाश राज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षितम् ॥...
धिया धीवन्तो असपंततृत्सवः ॥ ऋ० वे० ७-८३-८ ॥-

लोग उस नदीको पार करनेको प्रयत्न करते समय डूब गये थे। फलतः इस दुर्घटनाके कारण विपक्षी दलको अपनी निजकी मूर्खताके लिये अपने आपको धन्यवाद देना पडा और उस नदीकी वेग गतिको जिसमें उनकी सेना डूबगई थी अभिशाप करना पडा था (ऋ० वे० ७-१८-५)। परन्तु यह सब कुछ होनेपरभी महाराज सुदास उस नदीके पूरके जलको पार करनेके समर्थ होगये थे (सुपारा ऋ० वे० ८-१८-५) अतएव उन्होंने उस नदीको (ऋ० वे० ७-१८-८, ९)

--"हे इन्द्र-वरुण ! तुमने अपनी सहायता सुदासको प्रदान की जब कि युद्धमें दस राजाओंने उसे तथा धार्मिक तृत्सु लोगोंको चारों ओरसे घेर लिया था। स्तुतियों तथा भूमिसे ये तुम्हारी पूजा करते हैं। " यह घटना महाराज सुदासके साथ ' दस राजाओंके युद्ध ' (दासराज्ञः समिथः) के नामसे प्रसिद्ध है । यहां राजकुल पुरोहितकी हैसियतसे वशिष्ठने अपने स्वामी या आश्रय दाताके लिये स्वभावतः इन्द्रकी सहायता प्राप्तकी थी (ऋ० वे० ७-१८-४) । इसी घटना रूपी निर्बल ढांचेसे तथा बलुई भूमिपर कुछ विद्वानोंने एक इमारत खडी करनेका प्रयत्न किया है और उसे दस अनार्य राजाओंके साथ महाराज सुदासके युद्धके रूपमें प्रकट किया है। परन्तु ऐसा करते समय उन्होंने शायद इस बातकी उपेक्षा की है या किसी तरह इसे भुला दिया है कि जो उपाधि उन दस राजाओंके लिये प्रयुक्त हुई है और जो वास्तवमें ध्यान देने योग्य है, वह ' अनार्य ' नहीं है, किन्तु ' अयज्यवः' है । क्योंकि ऋचामें कहा गया है-दश राजानः समिता अयज्यवः...॥ (सम्मिलित दस अयाज्ञिक राजाओंने) ऋ० वे० ७-२३-७। अतएव ' अयज्यवः' शब्द या उपाधि सम्भवतः उन पारसीक-आर्योंके लिये व्यवहृत होती मालूम पडती है, जिन्होंने अपनी अयाज्ञिक प्रवृत्तिके कारण आर्यावर्तसे निकाल दिये जानेपर महाराज सुदासके विरुद्ध अपनी सेना दस सरदारों या राजाओंके अधीन भेजकर शायद उस देशका अधिकार फिर प्राप्त करनेका प्रयत्न किया था। स्पष्ट रीतिसे ये दसों राजा अयाज्ञिक नवीन जोरास्टरीय मतके अनुयायी थे । ऐसी अवस्थामें वे स्वधर्म त्यागी आर्य थे। जैसा कि मूल ऋचामें वर्णित है। इन्हें महाराज सुदासने घोर रूपसे पराजित किया था ।

पार करके शत्रुको पूर्ण रीतिसे पददलित किया और उनपर निश्चित विजय प्राप्त की थी (ऋ० वे० ७-१२-८, ९, १५)।

जो सिन्धुनदी अश्विनोंकी माता तथा उत्पादिका मानीगई है उसके प्रति ध्यान देकर हम यहां पर यह कहनेका साहस करते हैं कि ऐसे दूसरे वलवान् कारण मौजूद है जिनसे हम 'सिन्धु' का अर्थ समुद्र नहीं किन्तु अटक नदी करनेको वाध्य हैं। क्योंकि ' सिन्धुमातरा' प्रयोगके उपरान्त ऋग्वेदमें अश्विनोंके सम्बन्धमें जो दूसरे प्रयोग मिलते हैं वे ये हैं—"तुम्हारा दैवी रथ (वा दिवः....रथः) अटक नदीके किनारे खडा है (तीर्थे सिन्धूनां) और उसमें (घोडों तथा पशुओंके सदृश) सोम जुते हैं (युयुज्र इन्दवः। ऋ. वे० १-४६-८)। मालूम होता है कि ऋग्वेदके १-११२-९ में 'मधुमन्तम्' का प्रयोग जानबूझकर किया गया है। यह वात विशेषकरके ध्यान देने योग्य है। क्योंकि इससे केवल सिन्धुके जलका गुण सूचित होता है और यह प्रकट होता है कि सिन्धुशब्दसे केवल विशाल अटकका वोध होना चाहिये। उससे समुद्रका अर्थ बिलकुलही न लेना चाहिये जैसा कि कुछ प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानोंने किया है। ऐसी दशामें इस शब्दकी व्याख्याका समुचित विवरण यहाँ दे देना वहुतही अधिक आवश्यक प्रतीत होता है। हम ऋग्वेदमें (१-४६-८) यह देखते हैं कि अश्विनोंका दैवी रथ सिन्धुनदीके किनारे खडा है और उसमें घोडोंके सदृश सोम जोते गये हैं। यहां यह प्रश्न स्वभावतः उठेगा कि 'सिन्धुनदीके किनारे खडे अश्विनोंके रथमें सोम क्यों जोते गये ? सौभाग्यसे इस प्रश्नका उत्तर हमें कहीं दूर नहीं खोजना है। क्योंकि दैवी सोमके (दिवः.....इन्दवः। ऋ० वे० १-४६-९) श्येन द्वारा (श्येनः....सोमं भरद्दिवः....ऋ० वे० ४-२६-६) इस पृथ्वीपर लायेजानेके वाद वह केवल हिमालय पर ही नहीं, किन्तु

शर्यणावत झील तथा सिन्धु नदीके किनारोंपर भी उगता था। वह इस नदीपर खूब उगता था और उसकी लहरोंमें लहराया करता था [कविः (मेधावी सोमः) सिन्धोरूर्मान्यक्षरत्। ऋ० वे० ९–३९–४]।

अस्तु-सोमका पौधा सिन्धुनदीकी सन्तान है और वह उसके किनारोंपर प्राप्त होता है। अतएव जो सोम (इन्दवः) या सोमके पौधे घोडों या पशुओंके रूपमें प्रकट किये गये हैं वे अश्विनोंके रथमें आनन्द तथा सोरमसका पान करनेके लिये स्वभावतः जुतेमालूम पडते हैं। सोमरसका व्यवहार अश्विन सदा करते थे. उसे पीनेके लिये वे बहुधा बुलाये भी जाते थे, तथा वहांसे जगत्प्रसिद्ध सप्त-सिन्धु देशके सारे प्रदेशोंकी यात्राके लिये स्वाभाविक रीतिसे उसका जोता जाना मालूम पडता है। क्योंकि हम देखते हैं कि उनका रथ वास्तवमें इस सप्तसिन्धु देशके बडे बडे प्रदेशोंके उपरसे घूमा था (....परिवां सप्त स्रवतो रथोऽगात्। "तुम्हारा रथ सात नदियोंके ऊपर घूमा था।" ऋ० वे० ७–६७–८) एक और भी कारण है। पशुओं और घोडोंके सदृश सोम अश्विनोंके रथमें सिन्धु नदीके किनारे क्यों जोता और सजाया गया था। बात यह है कि अश्वि-नोंके सदृश सोमभी सिन्धुनदीमें उत्पन्न हुए थे। क्योंकि हम देखते

---

१. उदाहरणके लिये हम यह ऋचा उपस्थित करते हैं, "......नासत्या... पानं सोमस्य धृष्णु या॥" हे सत्यवादी अश्विनो, इस बलकारक सोमके रसका पान करो" ऋ० वे० १-४६-५; मदे सोमस्य पिप्रतोः॥ "जो (अश्विन्) सोमके नशेके आनन्दमें (उपासकोंकी) भलाई करते हैं" १-४६-१२; सोमस्य पीत्या...॥ आगतम्॥ (हे उपकारी अश्विनों) सोमरस पान करनेको आओ। १-४६-१३; अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमः...॥ तमश्विनापिबतं...॥ "यह अत्यन्त मधुर सोम है, तुम्हारे लिये ही निचोडा गया है। अतएव इसे तुम पिओ। १-४७-१। अस्तु ऋग्वेदकी ये तथा दूसरी ऋचाएँ (८-३५-१८,१९,२०,२१ इत्यादि) सोमरसके प्रति अश्विनोंका प्रेम सूचित करती हैं।

हैं कि सिन्धु अश्विनोंके सदृश ऋग्वेदमें (९-७१-७) सोमकीभी माता उल्लेख कीगई है। इस सम्बन्धमें 'सिन्धुमातरम्' प्रयोगका अर्थ 'सिन्धुर्नाम नदी माता यस्य (एतादृशम् सोमम्)' किया जाता है। अतएव अश्विन् और सोम भाई भाई हुए। अश्विनोंने सोमको अपने साथके लिये ले लिया था और उन्हें सजाया था। सोमके साथमें होनेसे वे केवल प्रसन्नही नहीं होते थे, किन्तु हर्षितभी। सोमका रस पान करनाभी उनके लिये आनन्द दायक था। इसके सिवा उपर्युक्त 'सिन्धुमातरम्' प्रयोगमें जो सिन्धुशब्द है और जो ९-६१-७ में सोमके लिये प्रयुक्त हुआ है, वह सिन्धु नदीका बोधक है, समुद्रका नहीं है। क्योंकि यदि सिन्धुशब्दसे समुद्रका अर्थ होता तो खारे महासागर समुद्रमें सोम न उत्पन्न हो सकता और न वह इसकी वृद्धिके लिये लाभ दायकही अनुमान किया जासकता। क्योंकि सोमतो केवल आर्यावर्तके पर्वतों और मैदानोंमेंही उगा करता था। हिमालय, कुरुक्षेत्रकी मीठे जलवाली शर्येणावत झील और पंजाबकी सिन्धुनदी इसके उत्पत्ति स्थान थे। सिन्धुनदीसे अश्विनोंकी उत्पत्ति सम्बन्धी प्रमाणकी ओर ध्यान देकर और ऋग्वेदमें (१-४६-२) उनके सम्बन्धमें व्यवहृत सिन्धुमातरा' प्रयोगका उल्लेख करके हम देखना चाहते हैं कि इस प्रयोगमें सिन्धुशब्द 'नदी' का बोधक है या महासमुद्रका ? कुछ प्राच्य तथा पश्चात्य विद्वानोंने तो इसमें यहां समुद्रकाही अर्थ लिया है। हम पहलेही लिख चुके हैं कि सिन्धुनदी और उसकी रसा[1]नदीके भी साथ ऋग्वेदमें (१-११२-१२) अश्विनोंका उल्लेख बहुधा हुआ है और ऋग्वेदके १-११२-९ में उनसे सहायताके लिये आनेकी

---

१. इसे डाक्टर मूर भी स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं, " अनितमा, रसा और श्वेती सिन्धु नदीकी सहायक नदियाँ समझनी चाहिये। (Vide, muir's O.S.T. Vol. 2. p. 348 Ed. 1871)

प्रार्थना कीगई है। इस प्रार्थनामें इस बातकी ओर सकेत है कि उन्होंने मीठे जलवाली सिन्धुनदीमें बाढ लादी (सिन्धुं मधुमन्तं सश्चतं)। इस प्रार्थनाका यह वाक्यांश बहुतही महत्त्वपूर्ण है और विशेषकरके ध्यान देने योग्य है। जब एक स्पष्ट शब्द (मधुमन्तम्) द्वारा सिन्धुनदीका जल मीठा बता दियागया है तब जरासाभी संदेह नहीं रहजाता कि इस सिन्धु शब्दका मतलब नदीसे है, समुद्रसे नहीं है। क्योंकि मधुमन्तम् प्रयोग ही स्पष्टरीतिसे सरल और असंदिग्ध भाषामें अपना भाव व्यक्त करता है और सिन्धुके जलकी मिठासकी घोषणा करता है। ऐसी दशामें उपर्युक्त सिन्धुमधुमन्तम् वाक्यांशका सिन्धुशब्द निस्सन्देह सिन्धु-नदीका बोधक है। महासागरका भाव इससे किसी तरह भी नहीं निकल सकता. यदि वह शब्द समुद्रके अर्थमें लिया जाय जैसा कि कुछ प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानोंने किया है जिनके विचार हम अभी पाठकोंके सामने उपस्थित करेंगे, तो सिन्धुशब्दके लिये जो मधुम-न्तम्का प्रयोग हुआ है, समुद्रका भाव व्यक्त करते समय वह भ्रामक और निरर्थक हो जाय। अत एव इसका स्पष्ट कारण यह है कि महा-सागर तथा समुद्रका जल सदासे खारी है। वह मीठा कभी नहीं रहा है। अतएव इस विषयकी सारी बातोंकी ओर ध्यान देनेसे एक मात्र यही बात मालूम होती है कि सिन्धुसे नदीकाही तात्पर्य है। सिन्धुशब्द सिन्धुनदीका बोधक है, यह छोडकर कोई दूसरा अर्थ निकालनेमें हम बिलकुल असमर्थ हैं और यह बात मधुमन्तम् प्रयोग-सेभी उतनाही अधिक सिद्ध हो जाती है। इसका प्रयोग ठीक सिन्धु शब्दके बाद ही हुआ है। मीठेजलकी विशेषता नदीपर ही घटित है। यही नहीं उसका यह स्वाभाविक गुण है। परन्तु इस प्रमाणके सिवा, जो हमारे परिणामोंको पुष्ट करनेके लिये काफी तौरसे स्वयम् बलवान है, और भी ऐसे प्रमाण हैं जो हमारी दलीलको दृढ करते हैं

और हमारे मत पर प्रकाश डालते हैं। हमारे मतमें सिन्धुशब्दका अर्थ सिन्धुनदी है। क्योंकि जिस ऋचामें (१-११२-९) सिन्धु-शब्द आता है उसके वादकी ऋचामें (१--११२--१२) रसा नदी सिन्धुकी सहायक नदीका उल्लेख हुआ है। मालूम होता है कि यहां भी अश्विनोंसे इस वातकी प्रार्थना कीगई है कि वे कृपाओंके सहित आवें। इस प्रार्थनामें सिन्धुनदीकी भांति उनके इस नदीमें भी वाढ लानेकी वातका संकेत हुआ है। याभी रसां क्षोद सोद्गः पिपिन्वथुः.... । ताभिरु उपुतिभिरश्विनागतम् ॥ ऋ०वे० १-११२-१२ ॥ हे अश्विनों, जहां तुमने (सा में पूरकर दिया ... यहां हमलोगोंके वीज .... उन सहायताओंके साथ ... आओ (Griffith) अतएव यदि मूलपाठ विशेपप्रयोगके लिये तथा सम्भवतः किसी सन्देहात्मक अथवा स्पष्टशब्दके शुद्ध अर्थके लिये विश्वसनीय पथदर्शक हैं तो यह वात कि सिन्धु मधुमन्तम् या मधुरके विशेषणसे अभिहित हुई है या किसीकदर यह कहागया है कि उसका जल मीठा है और खारी नहीं है और इसके सिवा इस वातसे कि वह अपनी सहायक अर्थात् रसानदीके साथ (१-११२-१२; ४-४३-६; ५-५३-९) प्रयुक्त हुई है, यह प्रमाणित और निश्चित

---

१. इस नदीके सम्बन्धमें भी ग्रीफिथ इस तरह लिखते हैः-"रसा-रसा वास्तवमें एक सच्ची नदीका नाम था। यह नदी जोरास्टर लोगोंको रणहा नामसे विदित थी (The Hymu of Rig Veda Vol. 1 p. 146 Ed. 1896) यहां म्यूरने रसाको सहायक नदी मानाहै (O. S. T. Vol. 2 p. 348 Second Ed. Revised)। मि० वी० जी० तिलक रसाको रंघा मानते हैं। वे लिखते हैं, " रंघा संस्कृतकी रसा है और ऋग्वेदमें (१०-७५-६) रसां नामसे एक संसारिक नदी क्रुभ क्रुम और गोमतीके साथ उल्लेख की गयी है। ये सवकी सव सिन्धुकी सहायक नदियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। (The Arctic Home in the Vedas p. 362 Ed. 1903)

होता है कि उपर्युक्त वाक्यांशमें सिन्धुशब्दका मतलब सिन्धुनदीसे है। महासागर (या) समुद्रसे नहीं है.

अब हम थोडी देरके लिये अपना ध्यान सायण-ऋग्वेदके प्रसिद्ध भाष्यकारकी ओर फेरेंगे और तब उन सम्मातियोंपर विचार करेंगे जो कि प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानोंने इस बातके सम्बन्धमें निर्धारित की हैं ऋग्वेदके १–४६–२ में सायण 'सिन्धुमातरा' को 'समुद्र मातृकौ' या समुद्रकी सन्तानके अर्थमें लेते हैं। तिसपरभी वे ऋग्वेदमें १-११२ ९ के सिन्धुशब्दकी 'स्यन्दनशीलाम् नदीम् अर्थात् बहतीहुई नदी एवं तत्संबन्धी 'मधुमन्तम् ' प्रयोगकी ' मधुसदृशेनोदकेन पूर्णां ' (शहदके सदृश मीठे जलसे पूर्ण) जैसी व्याख्या करते हैं। एस.पी. पण्डित तथा आर. टी. एच. ग्रीफिथ सायणके अनुकरणपर 'सिन्धुमातराका अर्थ महासागर या समुद्रकी सन्तान और ' सिन्धु मधु मन्तम् ' का ' मिठाससे पूर्णा नदी ' या ' अत्यन्त मीठे जलवाली तथा निरन्तर बहनेवाली नदी' कहते हैं। (Vide Pandit's Vedartha yatna Vol. 1 p. 600 and Vol. 2 p. 785; Gaiffithu's Hyms of the Rig Veda Translaced Vol. 1 p. 63. 146 परन्तु. बी० जी० तिलक इन दोनों स्थलमें, अर्थात् ऋग्वेद १–४२–२ और १-११२-९ में, सिन्धुसे महासमुद्रका ही अर्थ लेते हैं। वे लिखते हैं कि " १-४३-२ में वे (अश्विन् 'सिन्धुमातरा' के नामसे अभिहित हुए हैं, अथवा उनकी माता महासमुद्र है "... " अश्विनोंने अत्यन्त मधुर सिन्धु या महासमुद्रको विक्षुब्ध कर दिया था " । इसका अर्थ यह होता है कि उन्होंने महासमुद्रके जलको आगे बहाया" (१-११२-९) और उन्होंने दैवी रसानदीमें बाढ लादी "... '(१-११२-९, (Vide, his work the Arctic home in the Vedas p. 300 Ed. 1903)

डाक्टर म्यूर लिखते हैं कि अश्विन् "१०४६-२ में महासमुद्रकी सन्तान सिन्धु मातरा हैं (चाहे वे दैवी हों या संसारी हों) । (Vide muir's O.S. T. Vol. 7. p. 325 Ed. 1860)

यहां पाठकोंको यह बात तुरन्तही ज्ञात हुई होगी कि प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानभी 'मधुमन्तम्' को सिन्धुका सूचक ही स्वीकार करते हैं और इस शब्दका अर्थभी 'मधुर' करते हैं। अतएव यदि सिन्धु मधुर कहागया है और जो इस रूपमें स्वीकृतभी हुआ है तो उसका अर्थ समुद्र या महासमुद्र कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि समुद्रका जल सदासे खारी है और वह कभी मीठा नहीं रहा है। ऐसी दशामें महासमुद्रको मीठे जलवाला कहना असंगत होगा, क्योंकि उसका गुणतो इसके विपरीत होता है। अस्तु—एक स्थानमें डाक्टर म्यूर यह संकेत करते हैं कि, समुद्र या तो पारलौकिक हो सकता है या लौकिक. (Vide muir's O. S. T. Vol. 2 p. 235 Ed. 1870) परन्तु यदि वह भौतिक है तो खारी होनेसे वह कदापि मीठा नहीं हो सकता। और यदि वह पारलौकिक है तो मधुमन्तम् विशेषण जो पारलौकिक समुद्रके लिये प्रयुक्त हुआ है, वास्तवमें निरर्थक हो जाता हैं; क्योंकि उसका असीम विस्तार न तो मीठा ही होता है और न खारी ही। मिस्टर तिलककी दलीलकी ओर ध्यान देनेपर हम देखते हैं कि वे उपर्युक्त ' सिन्धुमातरा' तथा 'सिन्धुमधुमन्तम्' प्रयोगोंके सिन्धुशब्दका अर्थ महासमुद्र करते हैं और इतने परभी वे उसे 'अत्यन्त मधुर मानते हैं (The Arctic home in the Vedas p. 300) । यही नहीं किन्तु विचित्रता तो यह है कि वे रसाको दैवी नदी नहीं मानते। (जो स्पष्टरीतिसे भौतिक तथा सिन्धुकी सहायक नदी है) । वे स्वयम् इस बातको अपने ग्रन्थमें (365 p.) स्वीकार करते हैं कि, "ऋग्वेदमें (१०–७५–६) कुभा, क्रुम और गोमतीके साथ रसानामकी एक भौतिक नदीका उल्लेख हुआ है।

ये सबकी-सब सिन्धुकी सहायक नदियाँ हैं।" परन्तु इसके सिवा वे आगे यह दलील देते हैं कि, "उन संदिग्ध शब्दोंका अर्थ निश्चय करनेमें यदि मूलपाठ किसी तरहभी मार्गदर्शक माना जाता है...... तो यह बात बहुतही सुन्दर ढंगसे तय हो जाती है जब कि हम रसाको सिन्धुकी दूसरी सहायक नदियोंके साथ ऋग्वेदमें उल्लेख कीगई पाते हैं" (Vide Arctic home in the vedas p. 214)। अतएव स्पष्ट रीतिसे सिन्धुशब्दको 'मधुमन्तम्' के साथ लेनेसे अवश्यही सिन्धु नदीका बोधक होगा, समुद्र या महासमुद्रका नहीं। अस्तु-शब्दोंके प्रसंगकी ओर, यही नहीं किन्तु वाक्योंके पारस्परिक सम्बन्ध तथा इस विषयकी पूर्वोक्त बातोंकी ओर समुचित ध्यान देते हुए पहले उल्लेख किये गये सिन्धुशब्दका अर्थ सिन्धुनदी है और अश्विन इस नदीकी सन्तान हैं अथवा दूसरे शब्दोंमें सिन्धु अश्विनोंकी माता है। अतएव अश्विनोंके सिन्धुनदीकी सन्तान अभिहत होनेसे यह बात स्पष्ट रीतिसे प्रमाणित होती है कि वे सिन्धु नदीमें उत्पन्न हुए थे। अथवा दूसरे शब्दोंमें अर्द्धरात्रिके उपरान्त और उषाके उदयके पहले प्रकाशकी इस अद्भुत वस्तुको हमारे आदिम बापदादोंने सिन्धुनदीके देशमें उसके किनारेपर क्षितिजपर देखा था। तदनुसार पूर्वोक्त बातोंके प्रकाशमें यह विचार निश्चित होता है कि आर्य देवताओंका अथवा प्रातःकालीन देवताओंका उत्पत्तिस्थान, जिसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है, प्रारम्भमें सप्तसिन्धुदेशमेंही रहा है और किसी दूसरे देशमें नहीं रहा है अर्थात् न तो उत्तरी ध्रुवमें और न योरप तथा मध्य एशियामें।

तेरहवां अध्याय.

तृतीय कालीन युगके आर्य कृषक थे।
आर्यावर्तके मूल अधिवासी।

अबतक हमने आर्यावर्तमें आर्योंकी उत्पत्ति प्रमाणित करनेका प्रयत्न किया है। तृतीय कालीनयुगके हमारे आर्य पूर्वपुरुष इस देशमें सदा सरलता और शान्तिसे अपना जीवन बिताते थे वे जन्मसे ही विचारशील और दार्शनिक स्वभावके थे। वे इस अनित्य संसारकी क्षितिजके परे, दृश्यके आगे अदृश्यकी, परिमितके आगे अपरिमितकी और प्राकृतिकके आगे अप्राकृतिककी झलक पालेनेके लिये सदैव देखा करते थे ऐसी दशामें जैसा कि ऋग्वेदमें वर्णन किया गया है वे अपनी रुचि या झुकावके अनुसार स्वाभाविक रीतिसे शान्ति पूर्ण धन्धों और जीवनके भिन्न भिन्न उद्यमोंमें लगे रहते थे। (नानानं वा उनोधियो वि व्रतानि जनानाम् ऋ० वे० ९-११२-१) "हमारे विचार और प्रयत्न भिन्न भिन्न हैं और भिन्न भिन्न मनुष्य भिन्न भिन्न उद्यम करते हैं।" ऐसी स्थितिमें कृषि, जैसा कि ऋग्वेदके ही प्रमाणसे स्पष्टरीतिसे प्रतीत होता है, पूर्ववैदिक कालमें हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंका और वैदिक कालमें हमारे वैदिक बापदादोंका अत्यन्त आदरणीय तथा प्रिय धन्धा था। परन्तु इसके सिवा उनके देवता तकभी कृषिके पेशोंसे विशेष प्रीति और प्रेम रखते थे। उनके प्रधान देवताओंने इसबातके विशेष आदेश दिये थे कि वे लोग

---

१ अगले अध्यायमें हम प्राचीन समयके अपने उपनिवेशीय साम्राज्यकी ओर एक विहंगम दृष्टि डालनेका प्रयत्न करेंगे। उससे यह बात तुरन्त मालूम होजायगी कि उत्तरी ध्रुवदेशोंके हमारे उपनिवेश पिछले विशाल हिमयुगके आगमनके पहले तृतीय कालीन युगमेंही सम्भव थे. इसी कारण हमने अपने आदिम पूर्वपुरुषोंको तृतीय कालीन युगके कहनेका साहस किया है।

कृषि-कर्मको अंगीकार करें (कृषिमित्कृषस्व...., ऋ० वे० १०–३४–१३)। इन बातोंसे हम केवल चकित होकरही नहीं रहजाते किन्तु ये हमारे समुचित आदर तथा प्रशंसाकी पात्र हो जाती हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि मूर्व ऋग्वैदिक युग जैसे प्राचीनकालमेंभी हमारे देवताओं तथा ऋक् कवियोंने कृषिके लिये भूमि जोतनेका आदेश दिया था (कृषस्व) उन्होंने जोती गई भूमिकी उपजके उपयोगकी व्यवस्था भी करदी थी (कृषिमित्...वित्ते रमस्व) और यह नियम कर दिया था कि कृषिकी सम्पत्तिका संग्रह तथा कृषकके जीवनका आनन्द प्राप्त करना चाहिये। गृहस्थका वास्तविक धन उसके पशुओंका वाडा है (तत्रगावः) जिस स्त्री और सन्ततिसे (तत्रजाया) गार्हस्थ्य जीवन आनन्दमय बनता है वह सब कृषिकी समुन्नति तथा भूमिकी खरी जोताईपर निर्भर है। उदाहरणके लिये ऋग्वेदमें (१०-३४-१३) कवश ऋषि लिखते हैं, "भूमिको जोतो (कृषस्व), कृषिको अपनी सम्पत्ति समझो और उससे प्राप्त धन या लाभका आनन्दके साथ उपभोग करो (कृषिमित्...वित्ते रमस्व) पशुओंकी आवश्यकता कृषिकेही लिये होती है (तत्रगावः) और इन पशुओंको वास्तविक सम्पत्ति समझना चाहिये। इनमें तुम्हें आनन्द प्राप्त करना चाहिये। (कृषिमित्. वित्तेरमस्व)." वही ऋग्वैदिक कवि आगे लिखते हैं, "कृषिकी ही बदौलत हम गृहस्थीका आनन्द तथा सुख उपभोग करते हैं (तत्रजाया)" यही नहीं, किन्तु जिसमें उनपर अतिशयोक्तिका दोषारोपण न कियाजाय. इस लिये उन्होंने हमें इस बातकी सूचना देनेमें बडी सावधानी रक्खी है। कृषिके लाभोंके सम्बन्धमें जो घोषणा उन्होंने ऊपर की है वह उनकी खास कल्पना नहीं है। इस सम्बन्धमें सूर्य देवताने जो कुछ उनसे कहाथा उसे उन्होंने दोहरा भर दिया है। वे लिखते हैं, "स्वयम् सविता देवताने यह सब कुछ मुझसे कहा है" (तन्मे

विचष्टे सवितायमर्यः) N.P. मैं यहां सानुवाद मूल-ऋचाको उद्धृत करता हूँ। वह ऋचा वहुतही महत्त्वकी है। इससे वह अनुराग टपकता है जिसे हमारे अतीत कालीन पूर्वपुरुषोंने कृषि कर्मके प्रति व्यक्त किया था—

"अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व वहुमन्यमानः।
तत्रगावः कितव तत्र जाया तन्मे विचष्ट सवितायमर्यः॥"
(ऋ० वे० १०-३४-१३)

"पाँसे मत खेलो। अपनी भूमि जोतो। उस सम्पत्तिमें[1] आनन्द प्राप्त करो जो कृषिकी पैदावारके लाभोंसे मिलती है। क्योंकि उसीसे (तत्रे[2] अर्थात् कृषिसे) पशु (गाय और बैल—गावः) [सदावढते] रहेंगे। उसीसे[3] (तत्रे[4] अर्थात् कृषिसे) स्त्री (और सन्तान) का गार्हस्थ्य सुखप्राप्त होता रहेगा। यही नहीं, स्वयम् सविताने यह वात मुझसे कही थी" सम्भवतः कुछ विद्वान् यहाँ यह दलील उपस्थित करेंगे कि ऋग्वेदका दसवाँ मण्डल उसका आन्तिम संकलन[5] है। परन्तु इस-पर मैं यह कहूँगा और सिद्ध करूंगा कि ऋग्वेदकी केवल एकही अथवा एक मात्र उदाहरण नहीं है जिससे हमारे अतीत कालीन

---

१ इस ऋचाकी व्याख्यामें मैंने सायणका अनुधावन किया है। भाष्यकारने 'वित्ते रमस्व' का अर्थ 'कृष्या सम्पादिते धने रमस्व मतिं कुरु' किया है अर्थात् कृषिसे प्राप्त सम्पत्तिके उपभोगमें आनन्द प्राप्त करनेका (प्रयत्न करो)।

२ तत्र कृषौ गावो भवन्ति।

३ 'उसी' तत्रके लिये प्रयुक्त हुआ है।

४ तत्र जाया भवन्ति गावो भवन्ति।

५ डाक्टर हाग लिखते हैं......" ऋग्वेदका पिछला खण्ड (एक मात्र यही उपसंहार होनेसे सम्पूर्ण पुस्तकके वादका वना है) ... Vide Hang's Essays on the Sacred writing & Religion of the Parsees p. 227 E d. 1862)

पुर्वपुरुपों या तृतीयकालीन वापदादों तथा उनके अधिक पुराने देवताओंकी प्रीति कृपिकर्मसे प्रकट होती हो, वरन भूमिकी खेती सम्बन्धी अगणित प्रमाण मौजूद हैं और उसकी वातोंका सर्वत्र उल्लेख हुआ है। यही नहीं यवका उल्लेख सर्वत्र मालूम पडता है और ऋग्वेदके पहलेके खण्डोंमें किसी रूपमें यवका

१ ऋग्वेदके दसवें मण्डलको कुछ विद्वानोंने पिछले समयका वनाहुआ माना है और उसे सम्पूर्ण पुस्तकका पिछले समयमें वनायागया उपसंहार जैसा कल्पित किया है'। ऋग्वेदके शेप मण्डल पहले समयके वने कहे जाते हैं (ऋ०वे०२·३४-४; ७-९९-५ '... Vide Dr. Hang's Parsee Religion p.227 E d 1862. परन्तु इस सम्बन्धमें प्रसिद्ध प्रसिद्ध योरपीय विद्वानोंमेंभी मतभेद है। क्योंकि उन्होंने पुरुपसूक्तकी ऋचाओंकी प्राचीनता दृढताक साथ और स्पष्ट-रीतिसे कायम रक्खी और यह सूक्त ऋग्वेदके उसी दसवें मण्डलका है और अत्यन्त प्राचीन तथा प्रामाणिक है।अतएव उन विद्वानोंके कथनके कुछ अंशोंका उल्लेख करना यहां अनुपयुक्त न होगा। डाक्टर म्यूर लिखते हैं-"....पुरुपसूक्तमें चारों वर्णोंका उल्लेख हुआ है। परन्तु कुछ विद्वान् इसे ऋग्वेदकी संहिताका वहुतही हालका संकलन मानते हैं। दूसरे लोगोंका मत विलकुल इसके विपरीत है"। (Vide O. S. T. Vol. 2. p. 454, 445 Ed. 1871) इसके सिवा पुरुपसूक्तका जो वाक्य ऋग्वेदके दसवें मण्डलकी ९० वीं ऋचामें है उसक वारेमें डाक्टर हाग लिखते हैं, " अस्तु यह वाक्य अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक है। ब्राह्मणधर्म तथा साधारण वर्ण व्यवस्थाकी उत्पत्तिका ज्ञान इससे हमें हो जाता है। उस आदि पुरुपके मुखसे ब्राह्मणही नहीं निकल पडा है, किंतु उस पुरुपका मुखही ब्राह्मणवर्ण वन गया है अर्थात् स्वयम् पुरुपही मुखमें परिणत हो गया है निस्सन्देह यह वाक्यही रूपकालङ्कार है। मुख वाक् शक्तिका स्थान है। इस तरह यह रूपक इस वातका संकेत करता है कि मानवजातिका शिक्षक और गुरु ब्राह्मण है" (Vide Dr. Hang's tract on the Origin of Brahmanisn p. 4; 1863) कुछ विद्वान् यह दलील करते हैं कि मंत्र, रूपक, दार्शनिक और कर्मकाण्ड होनेके कारण उक्त सूक्त हालका समझा जाता है। परन्तु ऋग्वेदके प्रमाणका समुचित ध्यान रखतेहुए यही कहना पडता है कि सत्यसे परे इस कल्पनाकी अपेक्षा और कोई

वर्णन विखरा हुआ है। ऋग्वेदके १-२३-१५ में, सोमरस द्वारा पूषन् देवताकी प्रेरणासे छहों ऋतुओंका पुनरागमन और यवकी

—बात नहीं हो सकती। अतएव उपर्युक्त दलीलका खण्डन करनेकी दृष्टिसे मैं यहां डाक्टर हागके लेखका कुछ अंश उद्धृत करूँगा। हरतरहसे इस विषयपर प्रमाणपूर्वक बोलनेके योग्य हैं। वे लिखते हैं कि जो विद्वान् वेदके अध्ययनमें लगे रहे हैं वे एक स्वरसे इस सूक्तको हालकी वैदिक रचना कहते हैं, परन्तु इस बातको सिद्ध करनेके लिये पर्याप्त प्रमाण उनके पास नहीं हैं। इसके विपरीत ऐसे कारण दिये जासकते हैं कि वह सूक्त प्राचीन है। वह सूक्त मंत्र माना जाताहै, इससे वह आधुनिक हुआ यह भी कोई दलील है। ऐसे रूपकोंसे युक्त सूक्त उस ऋग्वेदकी मंत्र संहिताके प्रत्येक मण्डलमें मिलते हैं। यही संहिता ऋग्वेद कहलाता है। जिन ऋषियोंने इन सूक्तोंकी रचना कीथी वे इस प्रकारके विचारोंमें मग्न रहते थे। जो यागीय क्रियायें वे नित्य करते थे उन्हींके द्वारा वैसे सूक्त उन्हें सुझाये जाते थे (Vide Dr. Hang's Tract on the origin of Brahmanism p. 5 Ed. 1813) इस विषयमें मैक्समूलरने लिखा है—"सभ्यताकी प्रारम्भिक दशामें रीतिरवाजोंके वारेमें अन्ध विश्वासकी भावनायें स्वाभाविकही हैं और ऋग्वेदमें अगणित ऐसी ऋचायें हैं जो अत्यन्त पहलेके समयकी बताई जानी चाहिये तिसपरभी इनमें हमें ऐसे भाव मिलते हैं जो अत्यन्त वढे हुये रीति-रवाजोंके पक्षपातियोंके अनुकूल कहेजासकते हैं।" वही सावधानी एक दूसरो कसौटीके सम्बन्धमें भी बहुत आवश्यक है जो कुछ ऋचाओंको आधुनिक कालकी सिद्ध करनेके लिये व्यवहृत हुई है। वह कसौटी दार्शनिक विचारोंका उसके अस्तित्वका सिद्धान्त और अमरत्वकी आशा व्यक्तकी गई है, निश्चयपूर्वक उसका आधुनिक समझना एक दस्तूर हो गया है। सम्पूर्ण दसवाँ मण्डल मुख्य करके इस कारण पिछले समयका बना बताया गया है कि उसमें अनेक ऋचायें ऐसी हैं जिनकी भाषा उपनिषद तथा उससे [भी [पीछेके] दर्शन शास्त्रोंके दार्शनिक मुहावरोंसे मिलजाती है। यह अशुद्ध है" ।(pp. 556, 557) " अतएव मैं नहीं समझता कि केवल एकेश्वरवादके विचारों तथा दूसरे ऊँचे दार्शनिक भावोंके आजानेसे किसी विशेष ऋचाको हालकी बतादेना काफी सबूत है" (p. 569) History of Ancient Sanskrit Literature

वार्षिक पैदावारकी पुनरावृत्तिके बीच तुलना की गई है। यह पैदावार स्पष्टरीतिसे खेतीसे प्राप्त हुई थी। बैलोंसे खेत जोत कर भूमिमें बीज बोया गया था। ऋग्वेदका यह खण्ड बहुत पहलेका माना जाता है। अतएव उससे यह प्रकट होता है कि हमारे वैदिक बापदादोंके आदिम पूर्वपुरुषोंको खेती केवल ज्ञातही नहीं थी, किन्तु वास्तवमें वह एक दीर्घकालसे कार्यमें परिणतभी थ। फलतः कृषिकी दृष्टिसे उक्त ऋचा वास्तवमें बडे महत्त्वकी है। उसे मैं यहाँ उद्धृत करता हूँ–

" उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्तां अनुसेषिधत्।
गोभिर्यवं न चर्कृपत् ॥ ऋ० वे० १-२३-१५"

और वह (पूषन्) उस व्यक्तकी भांति यव लाता है, जो बैलोंसे

–Ed 1859. by Maxmuller, इसके सिवा पुरुषसूक्तमें वर्णव्यवस्थाके उल्लेख तथा मानवजातिको वर्गोंमें विभाजित होनेकी प्राचनिताके सम्बन्धमें डाक्टर कर्नके विचार भी बहुतही स्पष्ट, महत्त्वपूर्ण और रोचक हैं. वे लिखते हैं, " हम बेधडक पूंछ सकते हैं कि जो भाव उस ऋचामें मोजूद हैं, चाहे वे अपने आपके लिये हों या उनका सम्बन्ध सम्पूर्णके साथ हो, क्या वे यह अन्दाज लगानेका जराभी कारण नहीं प्रस्तुत करते कि उस कविने एक नवीन संस्थाको लिपिबद्ध या उसको प्रचलित करनेकी सिफारिश की थी। वास्तवमें यदि कोई बात उक्त सारी कवितामें स्पष्ट है तो वह यही है कि प्रणेताकी सम्पतिमें जातियोंका विभाजन उतनाही प्राचीन या जितना कि सूर्य तथा चन्द्र इन्द्र तथा अग्नि और घोडा तथा गायका। सारांशमें, वह उतना प्राचीन था जितनी कि सृष्टि। ऐसे लाक्षणिक सिद्धान्तोंके उठ सकनेके पहले जातियोंकी ऐतिहासिक उत्पत्तिकी सारी स्मृतियां अवश्य भूल गई होंगी। (Vide Dr. kerus' Dissertation in respect of the confiquity of canstes read before the royal Academy of seince at amsterdam on the 13 th. of march 1871)

जोतता है, (सोमकी इन बूंदोंसे छहों (ऋतुओं) को समुचित रीतिसे मेरे पास लावे ।" (Grffith) उपर्युक्त ऋचामें 'इन्दुभिः' शब्दका अर्थ सायणने 'यागहेतुभिः सोमैः' किया है और 'षड् युक्तान्' का 'षड्वसंतादीनृतून्' तथा 'गोभिर्यवं न चर्कृषत् का बलीवर्दैः....यथा यवमुद्दिश्य भूमिं प्रति संवत्सरं पुनः पुनः कृषति तद्वत्" किया है। इस तरह यह ऋचा बडे महत्त्वकी है। यह हमारी दृष्टिके सामने विशिष्ट भावपूर्वक दो मुख्यबातोंको उपस्थित करती है। इन बातोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, और न सरसरी तौरसे इनका त्यागही किया जा सकता है। इनमें पहली बात (क) छहों ऋतुओंका उल्लेख और दूसरी (ख) खेतीका स्वाभाविक प्रेम है। खेतीके प्रति तो आदि कालमेंभी अधिक अनुराग व्यक्त किया गया था। पहली बात स्पष्ट रीतिसे छहों ऋतुओंके देश या आर्यावर्तका संकेत कर रही है। इन ऋतुओंका अनुभव हमारे तृतीय कालीन युगके पूर्वपुरुषोंने यहाँ अपने प्रारम्भिक कालसेही किया था। अतएव इसका विवरण हम इस पुस्तकके पन्द्रहवें अध्यायमें देंगे। दूसरी बात कृषि-सम्बन्धी है और यही इस अध्यायका विषय है। अब हम थोडी देरके लिये अपना ध्यान ऋग्वेदकी एक दूसरी ऋचाकी ओर देते हैं। यह ऋचाभी बडे महत्त्वकी है। इसमें युगके देवता अश्वि-नोंका उल्लेख है। ये देवता निस्सन्देह बहुतही प्राचीन हैं और कृषिमें स्पष्टरीतिसे खूब मन देते थे। मनुष्योंके लिये खाद्य उत्पन्न करनेको (इषं दुहन्ता मनुषाय....ऋ० वे०० १-११७-२१) ये स्वयम् भूमि जोतते (वपन्ता) और उनमें यव बोते थे (यवं वृकेण.... वपन्ता...)। इस तरह एक प्रकारसे हमारे आदिम पूर्व पुरुषोंको कृषिके धन्धेमें दीक्षित करते और अपने अस्तित्वके उस प्रथम काल-मेंभी ये मानों उन्हें कृषि-विज्ञानके व्यवहारिक पाठ देते हुए मालूम पडते हैं। परन्तु इसकी अपेक्षा हम अश्विनोंको यहभी करते

देखते हैं। जो आदमी उनका नहीं होता था उसके लिये वे कुछ भी नहीं करते थे। वे अपने प्रियआर्योंके लियेही सब कुछ करते थे (आर्याय। ऋ० वे० १-११७-२१)। आर्योंने यज्ञ किया था (दाश्वांसं... । ऋ० वे० १-४७-३) इसलिये उन्होंने उसके लिये (ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्य वे ॥ ऋ० वे० १-१८२-३) दिन किया था (उरुज्योतिश्चक्रतुरार्याय ॥ ऋ०वे० १-११७-२१)और यह इसलिये किया था कि उन्होंने अपने वज्रसे दस्युका नाशभी किया था (अभि दस्युं व कुरेण धमंता....) क्योंकि वह अधार्मिक तथा अयाज्ञिक था (अहविः ऋ० वे०१-१८२-३) उसका विनाश तथा उसका (अधार्मिक दस्युका) जीवनभी लेनेकी (अतिक्रमिष्टं जुरतं पणे रसुं...ऋ० वे० १-१८२-३)प्रार्थना बहुधा उनसे (अश्विनोंसे) की जातीथी। इसके सिवा अश्विनोंके सम्बन्धमें प्रत्यक्ष प्रमाणभी है। बहुत प्राचीन कालमें जब अश्विन् स्वर्गमें मनुपर कृपा करते और उनकी सहायता करते थे तब वे स्वयम् भूमि जोतते और उसमें यव बोते थे। स्पष्टरीतिसे उस समय साधारण खाद्य यवही था (पच्यते यवो... । ऋ० वे० १-१३५-९) और भूमि जोतना उस समय प्रधान काम था। ये दोनों बातें उस समय सप्तसिन्धु देशमें आम तौरसे प्रचलितथीं। क्योंकि किसानी इस देशका धन्धाही था। वह बाहरी या विदेशी धन्धा नहीं था। सब श्रेणीके हमारे आदिम पूर्वपुरुष ऊंच नीच, गरीब-अमीर, पढे-अनपढे खेतीके धन्धेमें निपुण थे। अतएव ऐसी दशामें कृषि-सम्बन्धी वस्तुओंके साथ समय समयपर तुलनायें की जाती थीं और उस दशामें भी जब कि तुलनीय बातका सम्बन्ध धर्मसे[1] हो अथवा किसी दूसरे उच्चतर

---

१. उदाहरणके लिये ऋग्वेद (१-१७६-२) में लिखा है " हमारी प्रार्थना उसतक पहुँचन दो जो बुद्धिमानोंमें केवल एक है और जिसके लिये पवित्र भोजन अर्पित किया जाता था। क्योंकि बैलोंद्वारा जोतेभये (खेतोंमें) यव बोया जाता है। "—

विचारसे हो, अन्य साधारण बातोंका तो कुछ कहनाही नहीं। इस प्रकारकी तुलनाके समय कृषि-सम्बन्धी वरदान सर्व श्रेष्ठ समझे-जानेवाले ईश्वरसे स्वेच्छापूर्वक माँगे जाते थे और वह उन्हें देता था. एक और वात है इसकीभी उपेक्षा नहीं की जा सकती। ऋग्वेदके चौथे मण्डलकी सत्तावनवीं ऋचा स्पष्टरीतिसे कृषिकी प्रशंसामें लिखी गई है। इसके अधिष्ठातृ देवता या तो रुद्र हैं या अग्नि है अथवा इसके देवता बिलकुल एक स्वतंत्रही देवता हैं। ये क्षेत्रपति कहलाते हैं इसके सम्बन्धमें एक प्रमाण है, " रुद्रं क्षेत्रपतिं प्राहुः केचिदग्नि

—"तस्मिन्नावेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम्।
अनुस्वधायमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा: ॥ ऋ० वे० १-१७६-२

१. क यह—अग्नि देवताके सम्बन्धमें है। ऋग्वेदमें लिखा है, " जो अध्वर्युके आगमनमें उसी तरह प्रसन्न होता है जैसे यव (की फसल) मेघके आगमनमें।" (तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥ ऋ० वे० २-५-६)

ख—इसके आगे फिर ऋग्वेदमें लिखागया है कि पके यवकी भाँति अग्नि बहुतही उपयोगी है। (यवो न पक्वः)

ग—ऋग्वेद ५-२५-३ में कवि कहता है, ' जगदीश्वर (वरुण) पृथ्वीको जल पूर्ण करता है, जैसे मेघ-वृष्टि यवकी खेतीको तर करती है। " उस ऋचाका अन्तिमार्द्ध यहाँपर मैं उद्धृत कियेदेता हूँ—"तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टि व्युनात्ति भूम" ऋ० वे० ५-२५-३।

२. उस तरहके कुछ दृष्टान्त नीचे दिये जाते हैं:—

क—सन इन्द्रः...यवमत् ॥ उरु धारेव दोहते। ऋ० वे० ७-९३-३; " यह इन्द्र हमको विस्तृत नदीकी धाराके रूपमें (घोडे गाय और) यव (की सम्पत्ति) भेजता है "।

ख—अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र....ऋ० वे० १०-४२-६; हे इन्द्र गाय-बैल और यवकी सम्पदा हमें प्रदान करो "।

ग—वर्धति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥ ऋ० वे० १०-४३-७; " यज्ञस्थलोंमें ऋषिगण उसकी (इन्द्रकी शक्ति बढाते हैं जैसे कि जलवृष्टि यवकी खेतीको हरी भरी करती है। "

मथापरे। स्वतंत्र एव वा कश्चित् क्षेत्रस्य पतिरुच्यते" ॥ अतएव इस ऋचामें कृषिके इस उपकारी देवतासे भोजन सामग्रीकी प्रार्थना की गई है (क्षेत्रस्य पतिना हितेनेव)। क्योंकि वैदिक या पूर्व वैदिक-कालमें हमारे एकमात्र धन था कृषिकी सम्पत्ति गाय-बैल (गाम् .... पोषयित्वा ... । ऋ० वे० ४-५७-१) हीं माने जाते थे और हमारे आदिम पूर्वपुरुष इस धनको पशुओंके रूपमें इन्द्रादिक देवताओंसे सदा माँगा करते थे (आतू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवी मघ ॥ ऋ० वे० १-२९-१, ७, ... अग्ने[2] पुरुदंसं सनिं गोःशश्वत्तमं हवमानाय साध। ऋ० वे० ३-२३-५, सनो[3] अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥ ऋ० वे० ३-२६-३) मालूम होता है कि उसी तरह खेतीके अधिष्ठातृदेवता (क्षेत्रस्य पतिः ऋ० वे० ४-५७-३) इस हेतुसे माधुर्यसे पूर्ण रहनेके लिये प्रार्थना कियेजाते थे कि हमारे आदिम पूर्वपुरुष विना हानि उठाये उनका अनुधावन करें (मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ऋ० वे० ४-५७-३) इसके आगेकी स्तुतियाँ औरभी अधिक अर्थ गर्भित मालूम पडती हैं। क्योंकि खेतीके पशुओं (शुनं वाहाः) तथा कृषकों (शुनं नरः) की मंगल कामना, भूमिके उपजाऊपने और उसके जोतने बोनेसे प्राप्त समृद्धि (शुनं कृषतु लाङ्गलं। ऋ० वे० ४ ५७-४) के लियेभी उनमें उत्कण्ठाके साथ प्रार्थना की गयी है।

१. "हे इन्द्र! हे अत्यन्त धनाढ्य, क्या तू हमें सहस्रोंकी संख्यामें घोडों और गायोंके मिलनेकी आशा देगा?

२. हे अग्नि, अपने प्रार्थना करनेवालेको भोजनकी भाँति तू सदा टिकनेवाली तथा आश्चर्यपूर्ण पशुधन हमे दे।"

३. "जो अग्नि अमर देवताओंमे जागती रहती है वही हमें वीरता द्योतक शक्ति तथा श्रेष्ठ घोडोंके रूपमें धन प्रदान करे।" (Griffith) (चिन्हित वाक्यों ग्रन्थकर्ताका)

यही नहीं किन्तु हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंने भूमि, कृषि या सीता (सीतांवंदामहेत्वा) को देवता मानकर उनके सामने अपने मस्त कभी झुकाये थे। उन्होंने प्रार्थना की थी कि वे अपनी उपस्थितिसे उनपर कृपा करें (अर्वाची सुभगं भव) इसके सिवा उन्होंने इस बातकी याचना कीथी कि वे उन्हें अपने परिश्रमका फल उपभोग करनेके लिये समर्थ करनेका अनुग्रह करें (यथा नः सुभगासासि यथा नः सुफलाससि ऋ० वे० ४-५७-६)। स्पष्टरीतिसे वे लोग उन लोगोंसे पूर्णतया परिचित थे जो भूमिकी खेतीसे प्राप्त होते थे। वे उस उत्तरोत्तर बढतीहुई वार्षिक पैदावारकी प्रशंसा भी करते थे जो खेत जोतने तथा समुन्नत कृपिसे निरन्तर उत्पन्न होती थी। इस सम्बन्धमें एक ऋक्कवि जो लिखता है वह मानो खेतीके सारे रूपों तथा अवस्थाओंसे भली प्रकार परिचित है। वह लिखता है। इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानु यच्छतु। सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समा ॥ ऋ० वे० ४-५७-७ "हे इन्द्र, तू जोतीहुई भूमिको (जलवृष्टिसे नरम करके) नीचे बैठा दे। पूषन् उसका मार्ग ठीक ठीक बतावे।" "यह (सीता या भूमि) हम लोगोंके लिये प्रत्येक आगामी वर्षमें वैसेही जलसे सींची जाय, जैसे कि वह दूधसे परिपूर्ण है।" (Griffith) और सबके परे जुताईके कामोंका प्रत्यावर्तन (शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिं) खेतीके पशुओंके साथही किसानोंकी शुभकामना (शुनंकीनाशा अभियन्तु वाहैः) और फसलके उगनेके लिये पर्याप्त जलवृष्टि (शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः) की याचना खेतीके देवताओं-शुना और सीरा-से की गई थी (शुना सीरा शुन मस्तु धत्तम् ॥ ऋ० वे० ४-५७-८) अतएव यह बात अबसे पहले उपस्थित किये गये प्रमाणसे स्पष्टरीतिसे मालूम पडती है कि हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंके आदिम बापदादे उस आदिकालमेंभी न तो खानेबदोश थे और न उन्हें खेतीका काम करनाही अज्ञात था।

किन्तु आर्यावर्तके मूल निवासी होकर उन लोगोंने स्वयमही वहां खेतीका अभ्यास वास्तवमें किया था। यही नहीं किन्तु ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने उसमें क्रमशः और वहभी प्रशंसनीय उन्नति की थी। क्योंकि उस बातको प्रकट करनेके लिये प्रर्याप्त और पक्का प्रमाण विद्यमान है कि फसलोंका प्रत्यावर्तनभी उन्हें ज्ञात था और वे खेतीका काम बारी बारीसे तथा अनुक्रम पूर्वक भिन्न भिन्न बीजोंको बोकर अच्छी तरहसे किया करते थे (यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। ऋ० वे० १०-१३१-२) अर्थात् एक वस्तु के बाद दूसरी वस्तुका बोना तथा ठीक समयमें पैदा वारको काटकर उसका संग्रह करना उन्हें ज्ञात था। वे अच्छी तरह जानते थे कि, भिन्न भिन्न प्रकारके बीज भिन्न भिन्न ऋतुओंमें बोये जाते हैं और जब फसल पककर तैयार होजाती तब उसकी पैदावार ठीक समयमें इकट्ठा कर लीजाती है। यह बात नीचे उद्धृत की भई ऋचासे विदित हो जायगी। कुविदंग यववन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। ऋ० वे० १०-१३१-२ " जिन लोगोंके खेत यवसे पूर्ण हैं वे अपनी पकी फसल काटते हैं और अन्न विधिपूर्वक माडलेते हैं। " (Griffith) सायण ' यवंचिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ' का 'अर्थ यवं गोधूमादी- ननुपूर्वं यो यो धान्यविशेषः प्रथमं पच्यते तेनानुपूर्व्येण वियूय प्रथक्कृत्य यथा कुविद बंहुल दन्ति लुनन्ति' करते हैं। संक्षेपमें इसका अर्थ यह है कि बार बार आनेवाली फसलें उसी खेतमें उत्पन्न कीजाती थीं। अपनी फसलके समय भिन्न भिन्न धान्योंके बीज बोये जाते थे और फसल तैयार होनेपर यथासमय काटली जाती थीं। इसके सिवा ऐसाभी मालूम होताहै कि हमारे पूर्व पुरुषोंको खेतीका आरम्भिक या असली ज्ञान था। इस बातको प्रोफेसर मैकडानेलने भी स्वीकार किया है। वे लिखते हैं, " उन लोगोंको (वैदिक आर्योंको)…. खेतीका कमसे कम आरम्भिक

ज्ञान था । यह बात इससे प्रकट होती है कि भारतीयों और ईरानियों दोनोंके यहाँ जोतना (कृश्) शब्द प्रचलित है । ऋग्वेदके समयमें खेतीका पेशा पशु पालनके बाद दूसरे दर्जेका गिना जाता था" (Vide, History of Sanskrit Literature by A. Macdonell p. 166) अस्तु,-सारी वातोंका संक्षेप केवल यह है कि खेती सप्तसिन्धु देशकी वस्तु है और इस रूपमें वह हमारे बाप दादोंको पहलेहीसे विदित थी । वैदिक तथा पूर्व-वैदिककालमें कृषि कर्मका पूर्ण प्रचार था हमारे आदिम पूर्वपुरुष फसलोंके प्रत्यावर्तनसे भले प्रकार परिचित थे । वे लोग उसका व्यवहार बडी बुद्धिमानी और चतुरताके साथ करते थे । वैदिक तथा पूर्व वैदिककालमें भी गाय और घोडेही मुख्य सम्पत्ति समझे जाते थ । अतएव गायको बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है । ऐसी दशामें हमारे आदिम आर्य पूर्व पुरुषोंके जीवनमें यह बातभी बडे महत्त्वकी थी । हम सब लोग जानते हैं कि गाय एक पशु है और वह खानेबदोशीका जीवन नहीं सहन कर सकती है. चरागाहोंकी खोजमें एक स्थानसे दूसरे स्थानको भ्रमण करना उसके स्वाभाविक जीवनके विरुद्ध है । जिनेडी ए० रागोजिन लिखते हैं-" क्योंकि भेंडके विपरीत गाय खानेबदोशीके जीवनके अयोग्य है और निरन्तर परिवर्तन तथा यात्राके कष्टोंके वहन करनेमें वह असमर्थ है । जो लोग बैलोंसे बोझा ढोने तथा खीचनेवाले पशुओंका काम लेते हैं वे अच्छी तरह जानते हैं कि बैलको धीरे धीरे हाकना पडताहै और उनसे छोटी छोटी मंजिलें ही तय होती हैं । इसके सिवा सात या आठ दिनके भीतरही उन्हें कमसे कम पूरे एक दिनके विश्रामकी आवश्यकता पडती है. यदि हमें उनको आरामके साथ रखना है । बैल भी अपने चारादानाके सम्बन्धमें बडे तुनुक मिजाज होते हैं । उनकी सेवा-सुश्रूषामें जरासी ढिलाई होजाने तथा अधिक कामका दबाव पडनेसे उनका

शरीर दुर्बल होजाता है और वे उत्साह हीन होजाते है। उनके खुरोंमें वेदना युक्त घाव होजाते हैं और बीमारीसे उनकी मृत्यु शीघ्र होजाती है ” (Vide, 'Vedic India' by L. A. Rego zins p. 63 Ed. 1895) स्पष्ट रीतिसे गाय हमारी बहुत प्राचीन पवित्र तथा आदरणीय सम्पत्ति रही है। अनेक कारणोंसे हम उसे ऐसाही समझते आये हैं। पहली बात यह है कि वह कई प्रकारकी सम्पत्ति देनेवाली रही है (दुहाना धेनुः...शतिनं पूरुरूप भिषणि ऋ० वे० २-२-९)। दूसरे, सोमरस तथा सोमयागके लिये आवश्यक दूध दही और घृतका वह साधन रही है (परिस्रवः...घृतंपयः ऋ० वे० ९-६२-९; परि...गोभिरंजानो अर्षति। .. (सोमो) हरिः ॥ ऋ० वे० ९-१०३-२) और तीसरे उससेही वे पशु उत्पन्न होते रहे हैं जिनकी आवश्यकता जोतने तथा खेतीके दूसरे कामोंमें होती है। क्योंकि खेतीके लिये आवश्यक पशुओंकी मंगल कामनाके लिये उससे प्रार्थनायें की गाई हैं। (शुनं वाहाः ऋ० वे० ४-५७-४)। यजुर्वेदमें भा हम कृषिको पूर्ण रूपसे प्रचलित पाते हैं । अतएव ऐसी दशामें भूमिकी खेती तथा खेतोंके जोतनेका कार्य खूब विस्तारके साथ किया गया प्रतीत होताहै (देखो शुक्ल यजु० १२ वां अध्याय, ६८, ७०, ७१ ऋचाएँ)। यही नहीं, खेतीके सुखोंकी प्रशंसामें भी दिल खोल कर की गई है। यजु १२-७१ में लिखा है, “अच्छी तरह काम लिये गये हलसे सुखही मिलता है।” सप्तसिन्धु देशमें खेतीके हमारे आरम्भिक देशी पेशा होनेके विषयकी अत्यन्त प्राचीन परम्परायें केवल ऋग्वेदमें ही सर्वत्र नहीं मिलती हैं, किन्तु वे उत्तरोत्तर दृढताके साथ अथर्ववेद और उसके बादके साहित्यमें भी प्राप्त होती हैं। अथर्व वेदमें लिखा है–“ सिन्धु नदीका यह देश ” (अर्थात् सिन्धु द्वारा जलपूर्ण किया गया यह देश यस्यां ...सिन्धु...१२-१-३) हिमाच्छादित पर्वतोंका (गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तः पृथिवि १२-१-११)

और यज्ञोंके देश (यस्यां सदोहविः ... । ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः । ... १२-१-३८) की कृषि उसका देशीधन्धा था (यस्यां कृष्टयः संबभूवुः । १२-१-४) एवं उस देशके बीज तथा अन्न भी देशीही थे (यस्यामन्नं... । १२-१-४) इसका अर्थ यह है कि स्वयम् कृषिकी उत्पत्ति और वृद्धि आर्यावर्त अर्थात् वैदिक सप्तसिन्धु देशमें हुई थी । अतएव यह बात स्पष्ट है कि खेतीका धन्धा इस देशमें बाहरसे नहीं आया है, किन्तु वह देशकाही है । न तो फसलोंके प्रत्यावर्तनका विचार और न स्वयम् कृषिविज्ञानही किसी प्रकारसे इस देशमें किसी दूसरे देशसे लाया गया था । यही नहीं किन्तु वास्तवमें ये बातें तथा कृषिकी दूसरी उन्नतियाँ सबकी सब इसी देशमें सोच निकाली गई थी । अतएव वे देशीही ठहरती हैं । प्रोफेसर विलसन लिखते हैं–" कुछ प्रसिद्ध विद्वानोंका यह एक प्रिय सिद्धान्त रहा है कि वैदिक ऋचाओंके संकलनके समय हिन्दू खानेवदोश और चरवाहे थे । यह सम्मति केवल उन्हीं स्तुतियोंपर निर्भर करती मालूम पडती है जिनमें भोजन और घोडों तथा पशुओंके लिये प्रार्थना कीगई है । इनके सिवा और किसी अधिक ठीक बातसे इसका समर्थन नहीं होता हिन्दुओंके निश्चित आवासों, ग्रामों और नगरोंक बार बार संकेत किये जानेके उल्लेखसे यह बात स्पष्ट है कि हिन्दूलोग खानेबदोश नहीं थे । हम लोग उनको उनके वर्बर शत्रुओंसे कठिनताके साथ हीन मानेंगे जिनके अगणित नगरोंको उन्होंने विध्वंस किया था और जिसका उल्लेख बारबार हुआ है । हाँ, कुछ सीमातक वे खानेवदोश माने जा सकते हैं, परन्तु वे लोग कृषकभी थे और वहभी उच्च कक्षाके । उन्होंने जलके अधिक बरसने और भूमिके उपजाऊ होनेकी स्तुतियाँ की हैं और खेतीकी पैदावार विशेष-करके यवकाभी उल्लेख किया है । इससे सिद्ध होता है कि वे लोग कुशल कृषक थे " (Vide Wilsons Translation of

Rigveda, Intro pp, XI, XLI 1866) वे यहभी लिखते हैं– " वे लोग (आदिम ऋग्वैदिक और पूर्व ऋग्वैदिक आर्य) शिल्पकारभी थे। क्योंकि कपडा बुनना, वढईके काम और सुनहले तथा लौह कवचोंके निर्माणका उल्लेख किया गया है और अधिक आश्चर्यकी वात तो यह है कि वे लोग नाविक और व्यापारीभी थे। " इसके सिवा उन लोगोंने " ज्योतिष सम्बन्धी गणनामेंभी एक पग आगे वढाया था। " (P.X Ibid) वे आगे लिखते हैं–" इन सूक्तोंसे केवल इसी वातका पता नहीं चलता है कि वे महासागरों तथा उनकी अद्भुत वस्तुओंसे केवल परिचितही नहीं थे, किन्तु हम देखते हैं कि व्यापारी लोग जहाजोंपर सवार होनेको आतुर होते थे और जहाजोंके डूब जानेसे उन्हें एक आक्रमण परित्यागकर देना पडा था। यह आक्रमण एक विदेशी टापू या महाद्वीपपर किया गया था " (p. 307) (Vide, Welson's Translation of Reg- veda Intro p. XLI.) अतएव हमारे आदिम आर्य पुरुखोंके सम्बन्धकी पहलेकी इन वातोंसे उनकी खानेवदोशीकी हालत जराभी नहीं प्रकट होती है। इसके विपरीत हमारे जिन आदिम पूर्वपुरुषोंके जीवनका चित्र ऋग्वेदमें अंकित है उनके जीवनसे खानेवदोशी एक भिन्न वस्तु है। हमें ऐसे खानेवदोश वास्तवमें देखनेको नहीं मिले हैं जो (क) आदिकवि तथा दर्शन शास्त्री, (ख) उच्चकोटिके धार्मिक तथा स्वाभाविक योगी, (ग) यज्ञकर्ता तथा भक्त, (घ) ज्योतिर्विद तथा विचक्षण प्रकृति निरीक्षक, (ङ) वैज्ञानिक तथा ललितकला-प्रेमी, (च) सहज व्यापारी तथा नौशक्ति सम्पन्न, (छ) सभ्यतामें समुन्नत तथा शासन कलामें प्रवीण और (ज) संगठन शक्तिमें निपुण तथा-अपने राष्ट्रकी उच्चताके न्यायोचित अभिमानी रहे हों। वास्तमें ऐसे

विचार शील लोगोंसे इस वातकी आशा नहीं की जासकती कि वे भ्रमणशील अथवा इधर उधर घूमते रहनेमें जराभी प्रवृत्त रहे हों।

अस्तु—हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंको कभी 'खानेवदोशी' की दशामें प्राप्त रहनेका कोईभी स्वतंत्र प्रमाण नहीं मिलता है। फलतः जब 'खानेवदोश' शब्दका प्रयोग हमारे आदिम आर्य पूर्वपुरुषों तथा वैदिक वापदादोंके लिये होता है तब निस्सन्देह वह एक असत्य नामही प्रतीत होता है। परन्तु इन वातोंके भी होते अनेक प्रसिद्ध विद्वानोंने हमारे भारतीय आर्य आदिम पूर्वपुरुषोंको खानेवदोशके नामसे प्रसिद्ध किया है। परन्तु इसका समर्थन करनेके लिये कोई भी प्रमाण नहीं है किन्तु जैसा कि पहले विस्तारके साथ वर्णन किया गया है, विलकुल इसका उलटाही सिद्ध कियागया माळूम पडता है। तोभी मुख्यतः अवस्तिक धर्म ग्रन्थोंपर जिनमें वेन्दीदाद नामका ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है, निर्भर रहतेहुए डाक्टर हागने अपनी 'इसेज आनदि पारसी रिलीजन' नामकी पुस्तकमें संकेत किया है कि

---

१. इस वातको विदेशियोंने भी माना हैं। मैक्समूलर लिखते हैं " उसका (हिन्दूका) चरित्र, एकसा, गम्भीर, विचार शील, शान्त तथा विचारपूर्ण रहा है, (History of Ancient Sanskrit Literature p. 16 Ed. 1859)

२. उदाहरणके लिये, उनके सम्बन्धमें मैक्समूलर लिखते हैं—" साहसी खाने वदोश, " (History of Ancient Sanskrit Literature p. 12. Ed. 1859) मार्टीन हाग लिखते हैं, " पहलेके वैदिककालमें प्राचीन आर्यजाति तथा ब्राह्मण जातियाँ उस समय खानेवदोशीका जीवन विताती थीं जब वे पंजावके ऊपरी भागमें वसती थीं जहांसे वे मुख्य हिन्दुस्थानमें आकर वसीं (Religion of the Parsees p. 249 Ed. 1862) इसाक टेलर उन्हें, " हालके खानेवदोश वताते हैं (The Oriegin of the Aryans p. 23 Ed. 1906)

वैदिक ब्राह्मण कृषिकर्मके विरुद्ध थे। परन्तु यह बात ऋग्वेदके पूर्वोक्त प्रमाणोंसे पूर्ण रीतिसे खण्डित और अस्वीकृत करदी गई है। उन प्रमाणोंमें हमें कृषिकर्ममें लगे रहनेका कठोर आदेश दिया गया है (कृषिमित्कृषस्त्र । १०-३४-१३) । परन्तु इसके सिवा हमें अभी यह बात याद रखनी है कि अवस्तिक प्रमाण हमें सदैव बड़ी सावधानीके साथ स्वीकार करना चाहिये । हमको उन्हें वहींतक स्वीकार करना चाहिये जहाँ तक वे उपयुक्त हों। विशेष करके उन हेय अभियोगोंके सम्बन्धमें जिनको शत्रुताके कारण ईरानियोंने हमारे वैदिक आर्योंके सिरथोपा है। उस शत्रुताकी उत्तेजनाकेही लिये इस ईरानी धर्मग्रन्थ—वेन्दीदादकी जैसा कि उसके नामसे सूचित होताहै, रचना हुई थी । हमारे उन वैदिक पूर्वपुरुषोंके विरुद्ध जिनको ईरानी घृणासे देव कहते थे, सब तरहकी बेढँगी बातों, विषैली अपकीर्ति, निराधार अभियोग और कठोर कलंकके प्रचारके स्पष्ट उद्देशसे यह ग्रन्थ निर्माण किया गया था । पाश्चात्य विद्वानोंने भी इस बातको स्वीकार किया है। डाक्टर हाग लिखते हैं—" इस मतकी दीक्षा लेते समय जोराष्टर-पन्थ आज दिनभी स्पष्ट रीतिसे 'अदैविक' कहकर स्वीकार किया जाता है (यस्न-१२)। उनकी पवित्र पुस्तकोंमें एकका नाम वी-दैवो-दात है (इसीका अपभ्रंश वेन्दीदाद है) अर्थात् जो देवोंके विरुद्ध या उनको दूर करनेके लिये दिया गया है " (Vide, Dr. Hang's Religion of the Parsees p. 226. 1862) यह बात आपही स्पष्ट है। इसपर टीका करनेकी कोई जरूरत नहीं है। अतएव खेतीके विनाशक होनेका जो अभियोग हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंपर लगाया गया है वह बुरी नियतसे मढा गया है वह किसी तरह विश्वसनीय नहीं है। इसके विपरीत वास्तविक प्रमाण ऋग्वेदमें विद्यमान हैं। ये प्रमाण कृषि सम्बन्धी हमारे अनुरागको सिद्ध करते हैं और साथही

यह भी प्रकट करते हैं कि हम लोग खानेवदोश नहीं थे। उन्हें खाने वदोश कहना एक झूठा नाम रखना है।

चौदहवां अध्याय.

आर्यावर्तके बाहर देशान्तर गमन और उपनिवेशीय साम्राज्य।

इस अध्यायमें वदिककालीन साम्राज्यके विस्तार तथा आयावर्तसे लगाकर सारे भूमण्डलभरमें फैले हुए उत्तरी ध्रुव तथा अन्यत्रके विस्तृत उपनिवेशोंका विवरण एक विहङ्गम दृष्टिसे पाठकोंके सामने उपस्थित करनेका मेरा विचार है। हमारे पूर्व पुरुषोंने अपने समयकी प्रचलित सारी प्राचीन परम्पराओंको बुद्धिमानीसे कायम रक्खा था। ऐसी दशामें उनका ध्यान अत्यन्त प्राचीन याज्ञिक कृत्यों और रीतियोंपर सदा लगा रहता था। वे श्रद्धालु थे और अपनी धुनके पक्के थे। वे अत्यधिक साहसी और निर्भीक थे। अतएव दूरदेश गमन तथा विदेशमें विजयकी नई भावनासे प्रेरित होनेपर हमारे पुरातन पूर्वपुरुषोंने स्वभावतः सारे देवताओंके राजा इन्द्रसे (प्रथमो.. देवो.. ऋ० वे० २-१२-१) गम्भीरता पूर्वक प्रार्थना की थी कि आप हमारे पूर्वी और पश्चिमी, उत्तरी और दक्षिणी सारे शत्रुओंको खदेड दें। यह बात निम्नलिखित ऋचासे प्रकट होती है:-

---

१. क्योंकि ऋग्वेदके ३-४-१ में लिखा है. " हे इन्द्र वृत्रहन्ता, तुझसे बडा कोई नहीं है अथवा तेरी अपेक्षा अधिक बलवान् कोई नहीं है। सत्य ही तेरे सदृश कोई भी नहीं है।

" न किरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन्।
न किरेवा यथा त्वम्॥ ऋ० वे० ४-३०-१॥ "

और फिर उसके ६-३०-४ में लिखा है, " यह तो सत्यही है कि तेरे सदृश कोई भी नहीं है। हे इन्द्र, तुझसे श्रेष्ठ न तो कोई देवता ही है और न मनुष्यही " "सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान्"(ऋ० वे० ६-३०-४)

" अप प्राच इन्द्र विश्वाँअमित्रान्द्रपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अपशूरा धरा च उरौ यथा तव शर्मन्मदेम ॥
ऋ० वे० १०-१३१-१ ॥

तदनुसार अन्तिम हिमयुगके पहले और तृतीय कालीन युगके पिछले भागमें हमारे तृतीयकालीन युगके पूर्व पुरुषोंने आर्यावर्तका परित्याग करके हिन्दूकुशका उल्लंघन किया एशियाके विस्तृत उच्च-सम-भूमिको पार किया और सुदूर उत्तरीध्रुव देशतक जा पहुँचे थे। क्योंकि उत्तरी ध्रुव देश उस युगमें बसनेके योग्य था और वहाँका जल वायुभी सुखप्रद था। वहाँ वे लोग दीर्घ काल तक बसे भी रहे थे। उन्होंने वहाँके लम्बे लम्बे आनन्द दायक दिनोंका उपभोग किया। जिन लगातार उषाओंकी प्रभा दिन दिन बढती रहती थी और जो महीनोंमें समाप्त होती थीं उनको देखकर उन्होंने आश्चर्य प्रकट किया था (नव्या नव्या युवतयो भवंतीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ऋ० वे० ३-५५-१६) और लगभग समाप्ति-रहित रातोंके सम्बन्धमें (न यस्याः पारं ददृशे। अ० वे० १९-४७-२), जो लम्बे लम्बे दिनोंके बाद आती थी, (दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ॥ ऋ० वे० ५-५४-५) उन्होंने अपने भारी भयकोभी प्रदर्शित किया था। इस भयका यह परिणाम हुआ था कि महाहिमयुगके आनेपर वे लोग एवं दूसरे प्रवासीभी तुषारकी संहारक बाढके कारण किसी समयके सुखदायक भूभागोंका सहसा परित्याग करने और अपने मूलस्थान सप्तसिन्धु देशको लौटने या उन देशोंमें जो उन्हें आश्रय दे सके बसनेको बाध्य हुये थे। N.P. इन बातोंके सम्बन्धमें अखण्डनीय प्रमाण मौजूद हैं। अतएव उन्हें पाठकोंके सामने उपस्थित करना आवश्यक प्रतीत होता है। भूगर्भ शास्त्रके ज्ञाताओंने एक मत होकर स्वीकार किया है कि उत्तरी ध्रुवदेशोंका जलवायु महाहिमयुगके आगमनके पहले अधिक मृदुल था और तृतीय कालीन युगमें तो वे भूभाग सुखप्रद जलवायुके कारण बसने योग्य

होगये थे। अतएव तभी हमारे प्राचीनतर पूर्वपुरुषोंने अपने मूल-स्थान सप्तसिन्धु देशका परित्याग करनेके उपरान्त वहाँ विस्तृत उपनिवेश स्थापित किये और दीर्घकाल तक बसे रहे थे। यह बात वैदिक तथा अवस्तिक प्रमाणोंसे प्रकट होती है। हम इन्हें आगे उपस्थित करेंगे। ऋग्वेदमें हम ऋग्वैदिक ऋषियोंको, अन्तर्हित उषाओं (शश्वत्पुरोषा ... ऋ० वे० १-११३-१३) आकाशके मध्यमें अपना रथ ढाल देनेसे सूर्यके कारण जो लम्बे लम्बे दिन हुये थे उनके (विसूर्यो मध्ये अमुचद्रथं ... ऋ० वे० १०-१३८-३) तथा लगातार अन्धकारही बनाये रखनेवाली लम्बी रातों (दीर्घाः-,.. तमिस्राः ॥ ऋ० वे० २-२७-१४) के सम्बन्धमें कथन करतेहुये पाते हैं। यही नहीं, उन्होंने छः महीनेके दिन और छः महीनेकी रात तथा अक्षांशके अनुसार लम्बाईमें घटने-बढनेवाले दिनों और रातोंके सम्बन्धमेंभी कहा है (शुक्रं ते अन्यद्यजन्ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ॥ ऋ० वे०, ६-५८-१) मानो उन्होंने वास्तवमें इन अद्भुत वस्तुओंका निरीक्षण किया था और उन जैसी घटनायें हुई थीं उन्हें तद्वत् स्वयम् देखा था। ऋग्वेदमें (५-७९-४) उषा या आकाशकी दुहिता (दुहितार्दिवः) से बहुत विलम्ब न करने या देरतक न ठहरनेके लिये प्रार्थना कीगई है (मा चिरं तनुथा)। इससे स्पष्ट संकेत होता है कि हमारे पूर्व पुरुषोंको क्षितिजपर सूर्यका उदय देखनेकी उत्कृष्ट अभिलाषा थी इसके सिवा उनकी यह इच्छाभी दृढताके साथ व्यक्त होती है कि उषाको वहाँ देरतक न ठहरना चाहिये। यही भाव दूसरे स्थलमें फिर व्यक्त हुआ है कि क्षितिजपर उषाके प्रथम आगमन तथा उसके अनुगामी सूर्यके उदयके ठीक बीच कई दिनोंका समय लग गया है (तानीदहानि बहुलान्यासन् या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य)। " वस्तुतः सूर्योदयके पूर्व उषाओंकी अधिक संख्या थी " (ऋ० वे० ७-७३-३) ऋ० वे० के १-

११३-१० में कवि अपने आश्चर्य जनक भावको यह कहतेहुये एक वार और व्यक्त करता है, " कितने लम्बे समयसे उषाएँ उदय हैं! कितने समय तक वे उदय रहेंगी (कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान्) । इसके सिवा हमारे वैदिक वापदादों तथा उनके पूर्व पुरुषोंने उषाको सर्व कालीन कहा है और यह कहा है कि प्राचीन समयमें उषा देवी लगातार या हर समय उदय रहती थी । (शश्वत्पुरोषा व्युवास देवी । ऋ० वे० १-११३-१३) और जव उषाओंका उदय प्रत्येक समय वना रहता था तवतो वे नई चौंधानेवाली प्रभा और अतुलनीय चमक दमकके साथ लगातार कईदिनों तथा महीनोंतक एकसी वनी रहती थीं । इन अद्भुतवस्तुओंके कारण उनके मनमें स्वभावतः आश्चर्य पैदा होगया था, विशेष करके इस वातसे कि ये उनके लिये विलकुल नई वस्तुएँ थीं । क्योंकि जव वे अपनी मातृभूमि आर्यावर्तमें रहते थे तव उन्होंने इन्हें इसके पहले कभी नहीं देखा था। अतएव आश्चर्यसे चकित होकर वे कह उठे " देवताओंका महान् देवत्व अतुलनीय है ". (महद्देवानामसुरत्वमेकम् । ऋ० वे० ३-५५-१६) । उसी तरह लम्वे दिन और रातोंके सम्वन्धमें ऋग्वेदमें अतर्क्य प्रमाण हैं । एक स्थानमें यह कहा गया है कि, " सूर्यने अपनी दैनिक यात्राको असाधारण दीर्घ समयतक जारी रक्खा (दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् । ऋ० वे० ५-५४-५) । दूसरे प्रमाणसे यह प्रकट होता है कि "सूर्यने आकाशके मध्यमें और आर्यने (अर्थात् भारतीय आर्योंके मित्र सहायक और प्रधान देवता इन्द्रने) आर्योंके शत्रु दासोंके लिये एक दूसरे उपायको प्राप्त किया । यह ऋचा इस तरह है:-"विसूर्यो मध्ये अमुचद्रथं विददद्दासाय प्रतिमानमार्यः। ऋ० वे० १०-१३८-३" अर्थात् "स्वर्गके मार्गके वीचमें सूर्यने अपना रथ खोल दिया, आर्यने अपने दास शत्रुका सामना करनेको प्रस्थान किया । (Griffith) उकतानेवाली अत्यन्त लम्वी भयंकर

रातोंके सम्बन्धमें कि " ऋग्वेदमें (१-४६-६) दोनों भाई अश्वि- नोंसे कवि और उपासकको ऐसी शक्ति प्रदान करनेकी प्रार्थना की गई है जिससे वे अन्धकारसे निकल जायँ (या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः । ऋ० वे० १-४६-६) । ऋग्वेदके २-२७- १४ में कवि कहता है "हे इन्द्र, मुझे खूब देरतक भयहीन प्रकाश मिलता रहे । दीर्घ कालव्यापी अन्धकारका सामना हम लोगोंको न पडे ।" (उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मानो दीर्घा अभिनशन्त- मिस्राः ७-६७-२) में कवि कहता है-"अन्धकारका अन्त मिल गया है (उपोऽदर्भ्र तमसश्चिदन्ताः)" । और फिर (१०-१२४-१) में अग्निसे कहा गया है कि वह अन्धकारमें बहुत देरतक जलती रही (ज्योगेवदीर्घतम आशयिष्ठाः) । इसके सिवा एक दूसरे स्थलमें हमें इस बातके सम्बन्धमें एक स्पष्ट कथन मिलता है । मालूम होता है कि उसमें इस बातकी प्रार्थना रातसे कीगई है कि वह बिना कठिनाईके सरलतापूर्वक कटने योग्य हो जाय ।" (....उर्म्ये । अथा नः सुतराभव ऋ० वे० १०-१२७-६) । इसी प्रकार अथर्व- वेदमें एक बहुत स्पष्ट कथन है । इसमें रातकी लम्बाई और उसके उकतानेवाले अन्धकारकी बात कही गई है, जिससे हमारे आर्य पूर्व पुरुष वास्तवमें भयभीत थे। क्योंकि जब वे पूर्व-वैदिक या वैदिक कालमें अपने मूलस्थान आर्यावर्तमें रहते थे तब इस तरहके अन्धकारका अनु- भव उन्हें नहीं हुआ था। अतएव उन लोगोंको ऐसा भावव्यक्त करना स्वभावतः पर्याप्त है । उन्होंने बहुतही चकित और निराश होकर कह दिया-इसके (रातके) अन्तका छोर हमें नहीं देख पडता" (न यस्याः पारं ददृशे । अ० वे० १९-४७-२) । इसके सिवा तैत्तरीय संहितामेंभी उल्लेख हुआ है। यह उल्लेख हमारे पुरातन पूर्व पुरुषोंके मुँहकी बात है । उस समयके एक कविने रातसे प्रार्थना करते हुए इस तरह कहा था—हे चित्रावसु, अपनी समाप्ति तक

मुझे पहुँचने दे" (चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय । तै० सं० १-५-५ ४) । इसके बाद आगे इसी संहितामें उस घटना और उसके कारणकी व्याख्या स्पष्टरीतिसे हुई है । वह इस तरह है-" चित्रावसु (का अर्थ) रात है । भूतकालमें यह अनुमान किया गया था कि रात्रिकी समाप्ति न होगी । अतएव ब्राह्मण इस भयमें थे कि अब प्रभात न होगा" यह मूल ऋचा बडे महत्त्वकी है, इसे मैं यहां उद्धृत करता हूं । "रात्रिर्वै चित्रावसुरव्युष्टयै वा एतस्यै पुरा ब्राह्मणा अभैपुः । (तै० सं० १-५-७-५) जब कभी सूर्य नहीं उदय होता था, जैसा कि आशा कीजाती थी, तब देवताओंको तप या प्रायश्चित्त करना पडता था । इस ऋचासे हमें उसी तप तथा प्रायश्चित्तकी याद हो जाती है । इस बातके सम्बन्धमें समुचित प्रमाण और व्याख्या हमको तैत्तरीय संहिता प्रस्तुत करती है । क्योंकि उसमें लिखा है कि ऐसे अवसर पर देवताओंको तपस्या करनी पडती थी । "असावादित्यो न व्यरोचत तस्मै देवाः प्रायश्चित्तमैच्छन् । (तै० सं०, २-१-२-४) यहां इस बातका विचार करना अनुपयुक्त न होगा कि उत्तरी ध्रुवमें छः महीनेके दिनके सदृश लगातार छः छः महीने तककी लम्बी लम्बी रातें निर्बाध बनी रहती थीं । इस तरह पूरा वर्ष एक लम्बी रात और एक लम्बे दिनका होता था जो कि प्रत्येक छः छः महीनेके होते थे । अतएव जो परम्परा तैत्तरीय ब्राह्मणमें मिलती है उसकां समर्थन इस बातसे होजाता है । वह यह है कि, "जो एक वर्ष होता है और जो केवल देवोंका एक दिन है । अर्थात् एक वर्षका एक अर्द्ध प्रकाशमान और दूसरा अन्धकारमय होता है । " एकं वा एतद्देवानामहः यत्सम्वत्सरः " (तै० ब्रा० ३-९-२२-१) इसके सिवा तैत्तरीय अरण्यकमें और ऋग्वेदमेंभी वर्ष पुरुषव्राची माना गया मालूम पडता है। और तैत्तरीय अरण्यकके मूलपाठमें यह स्पष्ट कथन प्रतीत होता है कि वर्षरूपी देवताके दाहने और बायें

ओर प्रकाशमान और अन्धकारमय दिन होते हैं जैसा आगे दियेगये प्रमाणसे विदित होगा:—" शुक्लकृष्णे सम्वत्सरस्य दक्षिणवामयोः पार्श्वयोः। तस्यैषा भवति। तै० आ० १-२-४। " वर्षके प्रकाशमान और अन्धकारमय (रूप वर्ष देवताके) दाहने और वायें पार्श्व हैं। " परन्तु हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंका निरीक्षण एक बहुतही विस्तृत क्षेत्रमें होता हुआ मालूम पडता है। अर्थात् (क) उत्तरी ध्रवमें (ख) ध्रुवके आस पासके देशोंमें एवं (ग) उनसे अधिक निचले अक्षांशोंमें स्थित देशोंमे। इन सारे निरीक्षणोंमें वे अधिक यथार्थ वात औरअपने धेयतक पहुंचेहुये मालूम पडते हैं। क्योंकि उन्होंने ध्रुव तथा उसके आसपासके देशोंके चिह्नोंको अतुलनीय संक्षेप और विचित्र शुद्धताके साथ अंकित किया है। विशेष करके जब हम उस अत्यन्त दूरके समयको चित्तमें लाते हैं जो तृतीय कालीन युगके अन्तिम भागतक पहुँचता है और जब कि ये निरीक्षण हुये थे। क्योंकि ऋग्वेदमें लिखा है:-"शुक्रंते अन्यद्यजन्त ते अन्यद्विपुरूपे अहनी द्यौरिवासि ॥ ऋ० वे० ६-५८-१) " तेरा एक (रूप) प्रकाशमान है, दूसरा याज्ञीय (अन्धकारमय) है। भिन्न भिन्न रूपोंके दो अहन हैं। तू द्यौके सदृश है। " यदि हम इस ऋचाको तैत्तरीय आरण्यककी पूर्वोक्त ऋचा (१-२, ४) के साथ पढें तो हम स्पष्टरीतिसे यह बात समझनेमें समर्थ होंगे कि अहनिद्वारा व्यक्तकियागया दिन और रातका जोडा उत्तरी ध्रुवदेशोंके छः छः महीने लम्बे दिन और उतनी ही लम्बी रातके संकेतार्थ किया जानेको ह। अहनिके दो भाग वर्षदेवताके दाहने और वायें पार्श्वही ठीक ठीक प्रकट करते हैं और उनसे उत्तरी ध्रुवका वर्ष या देवताओंके एक पूर्ण दिनका बोध होता है (एकं वाएतद्देवानामहः यत्सम्वत्सरः। तै० ब्रा० ३-९-२२-१) परन्तु हम देखते हैं कि तैत्तरीय आरण्यकमें इससे अधिक कहा गया है। उसमें लिखा है, " वर्षके एकशिर और कई मुँह होते हैं" (एक हि शिरो-

नाना मुखे)। इसके साथ समुचित व्याख्याकी दृष्टिसे यह कहा गया है, "यह सब ऋतु सम्बन्धी लक्षण" या प्रकृतिकी अद्भुत वस्तुयें हैं।(कृत्स्नं तद्वत् लक्षणम् तै० आ०१-२-३) में यहां पूर्वोक्त 'विपुरूपे' पदका विचार करूँगा। यह पद विशेष रीतिसे ध्यान देनेके योग्य है। क्योंकि जब उत्तरी ध्रुवमें "शुक्रं ते अन्यत्" से छः महीनेका प्रकाशमान् अर्द्ध वर्ष और "यजंत ते अन्यत्" से छः महीनेका अन्धकारमय अर्द्धवर्ष सूचित होता है तब उसके पीछेके जानेबूझे 'विपुरूपे' पदसे उत्तरी ध्रुव और उत्तरी ध्रुव कटिबंधके देशोंके प्रकाशमान दिनों और अन्धकारमयी रातोंकी घटने बढने-वाली लम्बाई सूचित होती है जो कि अक्षांश विशेषके स्थानके अनु-सार छः महीनेसे कम किन्तु २४ घंटेसे अधिक होती है। इसके बाद वर्षके अवशिष्ट कालमें साधारण दिन और रात होती रहती है। अर्थात् एक दिन और एक रात दोनोंका समय २४ घंटेसे अधिक नहीं होता। इसके सिवा हमें यह ज्ञात होता है कि ऋग्वेदके दूसरे स्थलमें भी (१-१२३-७, विपुरूपे अहनी संचरेते) विपुरूपेका प्रयोग हुआ है। उसी तरह 'विरूपे' "नानावपूंषि" "पुरु, रूपावपूंषि" जैसे प्रयोग ऋग्वेद १--११३-१३; ३-५५--११ और ३-५५-१४ में क्रमानुसार आते हैं। ये दिन-रातके सम्बन्धमें प्रयुक्त हुये हैं और इनका प्रयोग एक मात्र विस्तार समय या दिन तथा रातकी लम्बाई सूचित करनेके उद्देशसे हुआ है। क्योंकि यहांके दिन-रात उत्तरी ध्रुव या भूमध्य रेखाकी भांति समान कालके नहीं होते। स्थान विशेषके अक्षांशके अनुसार वे या तो छोटे होते हैं या बडे होते हैं। और एक अहनिमें छः महीनेका दिन और उतनीही रात होती है। जब ऋग्वैदिक युगके हमारे ऋषि उत्तरी ध्रुवको गये थे और वहांके विस्तृत प्रदेशोंको आवाद किया था तब उन्होंने इस अहनिको देखा था। अतएव इस बातकी परम्परा केवल

पिछले समयके वैदिक ग्रन्थोंमेंही नहीं मालूम पडती है किन्तु (क) महाभारत, (ख) मनुस्मृति और (ग) सूर्यसिद्धान्त जैसे ज्योतिषके ग्रन्थोंमें भी इसका उल्लेख हुआ है.—

क--बभूव रात्रिर्दिवसश्च तेषां संवत्सरेणैव समानरूपः ॥ १३ ॥
(महा भा० ३–१६५–१३) S. I. T. 1908.

ख–दैवे रात्राहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ।
अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥
मनु० स्मृ०, १--६७.

ग–मेरौ मेषादि चक्रार्द्धे देवाः पश्यन्ति भास्करम् ।
सकृदेवोदितं तद्वदसुराश्च तुलादिगम् ॥
सू० सि० १२--६७.

अतएव हमारे वैदिक प्रमाणसे यह सब प्रकट और प्रमाणित करता है कि एक ऐसा समय था जब हमारे प्राचीनतर पूर्वपुरुष उत्तरी ध्रुव और उसके आसपासके देशोंमें रहते थे और उस स्थानकी बिलकुल नई नई अद्भुत वस्तुओंका निरीक्षण करके उन्होंने बुद्धिमानीके साथ उनकी ओर ध्यान दिया था और उन्हें बहुतही दुरस्तीके साथ लिख लिया था।यही नहीं. किन्तु जब वे वहां आबाद थे तब उन्होंने अभूतपूर्व दृश्योंकी ओर कुतूहल पूर्वक यह कहकर आश्चर्यभी प्रकट किया था कि, " देवताओंका महान् देवत्व अप्रतिम है " (महद्देवानामसुरत्वमेकम् । ऋ० वे० ३–५५) । क्योंकि जब वे लोग अपने मूलस्थान आर्यावर्तमें रहते थे तब वे दीर्घकाल व्यापिनी उषा और लम्बे दिनों, देरतक स्थिररहनेवाली सान्ध्यकालीन प्रकाशच्छटा और लम्बी रातोंसे बिलकुलही परिचित न थे। ये रातें तो भयंकर और अन्तरहित समझी जाती थी । इसके सिवा हमें एक ऐसा प्रमाण मिला है जिसके मिलनेकी आशा नहीं थी । वह प्रमाण अवस्तिकधर्म पुस्तकको छोडकर और दूसरेका नहीं है,

यह धर्म पुस्तक स्पष्टरीतिसे प्रमाणका एक स्वतंत्र स्रोत है। वह हमारे उत्तरीध्रुवके विस्तृत उपनिवेशोंके सम्बन्धकी बातोंका समर्थन करती है और आर्यावर्तीय आवास तथा सप्तसिन्धु देशमें आर्यमूल स्थानके सिद्धान्तकोभी पुष्ट करती है। अतएव इस प्रमाणको मैं पाठकोंके सामने उपस्थित करनेका साहस करता हूं। ऐसा करनेका साधारण कारण यह है कि उससे निम्नलिखित बातें सूचित होती हैं—

१—ईरानियों या पारसीक-भारतियोंकी आवास भूमिका नाम सप्तसिन्धु रहा है। अतएव जेन्दमें उसका अपभ्रंश हप्तहेन्दु हो गया है (देखो पृ. १४६ और ८ वां अध्याय।

२—धार्मिक मतभेदसे और तत्पश्चात् सप्तसिन्धवः या हमारे बन्धु-बान्धवोंके मूलस्थानसे निकालेजानेसे ये लोग हमारे वैदिक पूर्वपुरुषों द्वारा असुर कहलाये और तदनन्तर ईरानी या पारसीक-आर्यके नामसे प्रसिद्ध हुए।

३—उत्तरी ध्रुव या उसके तथा उसके आसपासके देशोंमें उनका निवास, लगातार छः महीनेके दिन और छः महीनेकी रात अथवा उनका एक अहर्निका, जो पूरा एक वर्ष होताहै, और छः महीनेसे कम किन्तु चौबीस घंटेसे अधिककी घटने बढानेवाली लम्बाईकी रातों तथा दिनोंका और इनके बादके वर्षके शेष समयमें होनेवाले साधारण दिनों और रातोंका अक्षांशके अनुसार उनका अनुभव।

४—महान् हिमयुगके आगमनके कारण ईरानियोंका हमारे साथ उत्तरी ध्रुवके उपनिवेशोंका परित्याग करना और अन्तमें उनका ईरानमें बस जाना।

वेन्दीदादके पहले फर्गार्दमें ईरानके प्रधान देवता अहुर मज्द द्वारा रचेगये सोलह देशोंका विवरण दिया गया मालूम होताहै। दूसरे

देशोंके साथ इनमें (१) हरहेती, (२) हप्तहेन्दु और (३) रंघा नामके देशोंकी गणना भी कीगयी मालूम पडती है। ये देश क्रमपूर्वक (१) सरस्वती, (२) सप्तसिन्धु और (३) रसा मालूम पडते हैं।इनका उल्लेख स्पष्ट रीतिसे ऋग्वेदमें(१०-७५-५-६) किया गया है। वैदिक–पौराणिक गाथाके साथ अवस्तिकके इस मेलसे तथा ईरानियोंके पवित्र ग्रन्थ वेन्दीदादमें इन नदियोंके उल्लेखसे यह ज्ञात होता है कि ये लोग नदियों, पर्वतों, आसपासकी भिन्न भिन्न वस्तुओं और उस समय सप्तसिन्धवः नामसे प्रसिद्ध यथार्थमें सम्पूर्ण आर्यावर्तसे पूर्ण रीतिसे परिचित थे। वहां धार्मिक मत भेदके कारण दो दल हो गयेथे। निर्वल दलको (ईरानियोंको) आर्यावर्त छोडना पडाथा और वे उत्तरी देशोंको चलेजानेके लिये वाध्य हुए थे। क्योंकि वलिष्ठ दल अर्थात् भारतीय आर्य उन्हें वहां खदेड लेगये थे। यही भारतीय-आर्य सप्तसिन्धु देशपर शासन करते थे और ऐसी दशामें वे निर्वलदलवालोंको अपनी वात मनानेको लाचार करते थे। ईरानियोंको अपनी मातृभूमिसे निकाल दियेजानेके वाद ईरानको उनका यह पलायन, जिसे उन्होंने आवाद कियाथा और अपना घर वना लिया था और जिससे उनका नाम ईरानी पडगया, जेन्दभाषाके ग्रन्थोंसे अर्थात् अवस्ता, वेन्दीदाद गाथाओं, यस्न इत्यादिसे साफ साफ ढूंढ निकाला जासकता है। इनमें इस वातका सुन्दरताके साथ वर्णन हुआ है परन्तु इसके सिवा इन पवित्र अवस्तिक ग्रन्थोंसे यह वातभी स्पष्टरीतिसे मालूम की जासकती है कि हमारे ईरानी भाईभी तृतीय कालीन युगके पिछले भागमें और महा-

---

१. सप्त सिंधवः या आर्यावर्तकी जगत प्रसिद्ध सात नदियाँ (१) गंगा, (२) यमुना, (३) सरस्वती, (४) सतलज या वैदिक शतद्रु, (५) रावी, परुष्णी या इरावती, (६) चेनाव, चन्द्रभागा या असिक्नी और (७) सिन्धु जो पाश्चात्योंको इन्डसके नामसे प्रसिद्ध हैं।

हिमयुगके आगमनके पहले उत्तरी ध्रुवदेशोंमें दीर्घकालतक आबाद रहे थे जब कि उस स्थानोंका जलवायु सहनीय और सुखप्रद था। क्योंकि वेन्दीदादमें स्पष्ट लिखा है, "(४०) वर्षमें एकही वार वहां (अर्थात् उत्तरी ध्रुवदेशमें) लोग नक्षत्रों, चन्द्रमा और सूर्यका उदय देखते हैं + + +." । "(४१) और वे लोग दिनको एक वर्ष समझते हैं।" (Vide, Vendidad, Chap 2, as also Dr. Hang's Parsee Religion p. 205. 1862) इसके सिवा वेन्दीदादके १-४ में लिखा है कि, "आर्यवैजोमें दस महीनेका जाडा और दो महीनेकी ग्रीष्म ऋतु होती है।" (Vide Dr. Hang's ParseeReilgion p. 210)। स्पष्टरीतिसे ये सब वाते ध्रुवदेशीय तथा उसके आस पासके देशोंके यथार्थ चिन्ह हैं। ये एकही साथ यह बात प्रमाणित करती हैं कि एक समय ईरानीलोग इन देशोंमें दीर्घकाल तक रहे थे और छः महीनोंका दिन तथा शीतकालीन भयंकर रातका पूरा अनुभव उन्हें हुआ था। परन्तु यह सब होनेपरभी हमें यह बात सदा याद रखनी चाहिये। क्योंकि कदाचित् हम इस बातको भूलजायँ कि हमारीही भांति हमारे ईरानी भाई उत्तरी ध्रुवकी भूमिपर अपना पैर रखने और वहांके पञ्चाङ्ग तथा प्रवर्तित अवस्थाके ज्ञाता होनेके पहलेभी, दोदो महीनोंवाली छः ऋतुओंके प्राचीनतर आर्यावर्तीय पञ्चाङ्गसेभी परिचित थे[1]। क्योंकि

---

[1] डाक्टर हाग लिखते हैं कि, "ऋतुका प्राचीन नाम रतु था जो कि संस्कृतके वर्तमान ऋतुशब्दमें रक्षित है। (वैदिक ग्रन्थोंमें छः ऋतुओंका उल्लेख सृष्टिकर्ता प्रजापति या ब्रह्माके प्रतिनिधियोंके रूपमें बहुधा कियाजाता है। परन्तु जब इस शब्दका उपयोग अधिक साधारण अर्थमें होने लगा तब उनका अर्थ यारे शब्दसे व्यक्त होने लगा था। इस शब्दका रूप स्पष्ट रीतिसे अंगरेजीके 'ईयर' शब्दसे मिलता है (Vide, Dr. Hang's Essays of the Religion of the Parsees p. 173, Note 1. En. 1862)

विसपरद इरानी धर्म ग्रन्थ–में " वर्षके छः सिरों या छः ऋतुओंकी विशेष गणनाका उल्लेख हुआ है । (Vide Dr. Haug's the Religion of the Parsees p. 173) स्पष्टरीतिसे ईरानीलोग पहलेहीसे इनसे परिचित थे जब कि वे हमारे साथ–भारतीय आर्योंके साथ धार्मिक मतभेद और उत्तरी ध्रुवदेशोंमें बसनेके पहले मूलस्थान सप्तसिन्धु देशमें रहते थे ।

---

१. अवास्तिक और वैदिक दोनों प्रकारके ग्रन्थोंमें छः ऋतुओंके विशेष उल्लेखके महत्त्वके कारण यहां इस बातका विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है कि हमारा असली और प्राचीन तम पञ्चाङ्ग छः ऋतुओंका है और वही हमारे मूलस्थान सप्तसिन्धु देशका है । और अथर्ववेदके पृथ्वीसूक्तसे जो हमारे ' प्रियदेश ' भारत वर्षके ऊपर लिखा गया है, यह ज्ञात हो जाता है कि उसमें उक्त बात स्पष्ट रीतिसे अंकित करली गयी है । क्योंकि उक्त सूक्तमें भारतवर्ष सिन्धु नदी द्वारा सींचा गया (यस्यां......सिन्धुः ...॥), केवल कृषि तथा धान्य् पूर्ण देशके ही रूपमें नहीं वर्णित है (यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः । अथर्व० वे० १२-१-३), किन्तु यज्ञोंका (यस्यां... हविः १२-१-३२) और छः ऋतुओंका देशभी कहा गया है (ग्रीष्मस्ते भूमेर्वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ॥ ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिविनोदुहाताम् ॥ अथं० वे० १२-१-३६) । परन्तु इससे अधिक संसारके प्राचीनतमग्रन्थ ऋग्वेदमें भी छः ऋतुओंके सम्बन्धका उल्लेख मिलता है और वहभी उसके आरम्भिक और अत्यन्त प्राचीन अंशोंमें उदाहरणके लिये हम ऋग्वेदके उल्लेखोंको नीचे उद्धृत करते हैं:-षड्युक्ताम् अनुरोपिधत् ॥ ९-२२-३५ पव्र आहुरर्पितम् ॥ १-१६४-१२; षलिदंयमोदेवजा...॥१-१६४-१२; इत्यादि) इस तरह वैदिक धर्मग्रन्थ एवं उनके समर्थक अवास्तिक प्रमाण इस कल्पनाके लिये बलवान् कारण उपस्थित करते हैं कि छः ऋतुओंका पञ्चाङ्ग प्राचीनतम वस्तु है और मुख्य करके सप्तसिन्धु देशहीकी है । इसके सिवा यह परम्परा अथर्ववेदमें चतुरताके साथ संरक्षित मालूम पडती है जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है और ऋग्वेदके ऐतरेय ब्राह्मणमें भी है (षड्वाऋतवः २-४१, ४-१६) । अतएव यह सिद्ध होता है कि उस बातका सिलसिला जारी रहा है । हम उसे विस्तारके साथ दूसरे अध्यायमें लिखेंगे ।

अतएव यह माल्म पडता है कि भारतीय आर्य एवं भारतीय-आर्य-समुदायके ईरानी और दूसरी उपजातियाँ भी अपने मूलस्थान सप्तसिन्धुका परित्याग करनेके बाद तृतीय कालीन युग या पूर्वहिम-युगमें दीर्घकालतक आर्यावर्तके उत्तरी ध्रुवके उपनिवेशोंमें किसी समय आबाद रही थी और जब तुषार तथा हिमकी मोटी मोटी तहें उत्तरी प्रदेशोंमें विशेष करके उच्चतर अक्षांशोंपर सहसा जम गईं तब हमारे उत्तरी ध्रुवके प्रवासी भारतीय आर्य अपनी मातृभूमि सप्तसिन्धु देशको उत्तरी पर्वत (एतमुत्तरं गिरिं) के नामसे प्रसिद्ध उच्चतम हिमालयको सदा अपनी दृष्टिमें रखते हुए लौट आये, क्योंकि तृतीयकालीन युगके द्वितीय भागके हिम प्रलयके समय एकमात्र मार्ग दर्शक यही था। परन्तु ईरानीलाग अपने नये बसाये ईरान देशको वापस गये और दूसरी आर्य उपजातियाँ उन देशोंमें जा बसी जहां तुषार और हिमका प्रवर्तन नहीं हुआ था और इस तरह वे सर्वनाशसे बचगयीं। इसके सिवा अवस्तिक धर्मग्रन्थोंसे यह बात

---

१ हमारे सप्तसिन्धु देशके हमारे आदिम पूर्वपुरुष मानवजातिकी आर्य-उप-जातियों अर्थात् पारसीक आर्यों और योरपीय आर्योंके माता-पिता थे। इस बातको विद्वान् खोजियों और पाश्चात्य पण्डितोंने भी मान लिया है। उदाहरणके लिये कर्जन लिखते हैं, "प्राचीन फारसवालोंने... अपनी भाषा आर्यों (मुख्य भारतके हिन्दुओं) से ली और स्वयम् भी उन्हीं लोगोंकी सन्तान थे. ये लोग अपने भाइयोंसे पृथक् हो गये थे और पश्चिममें जा बसे थे। अथवा धार्मिक मतभेद जन्य घरेलू युद्धके कारण अपनी जन्मभूमिसे निकाल दिये गये थे (Vide, the Journal R. A. S. of Great Britain a4nd Ireland Vol. XVI. 1854 p, 194. 195)। मोशियो लुईजैको लियर्ट लिखते हैं, "योरपकी जातियाँ भारतीय उत्पत्तिकी हैं और भारत उनकी मातृभूमि है। इसका अखण्डनीय प्रमाण स्वयम् संस्कृत भाषा है।" आदिम भाषा-(संस्कृत)-"जिससे प्राचीन और अर्वाचीन मुहावरे निकले हैं." "...यह पुरातन देश (भारत) गोरीजातियोंका उत्पत्ति स्थान था. और जगतका मूलस्थान है.

मालूम पडती है कि हिमयुगके आगमनके बहुत पहले विकराल शीत और प्राणहारक तुषारके आगमनके स्पष्ट चिह्न ज्ञात होने लगे थे। यही नहीं किन्तु समयानुसार इस ढंगकी भविष्यद्वाणीभी की गई थी कि, सर्वनाशकारी तुषारका पडना शीघ्रही प्रारम्भ होगा और पहाडियाँ तथा घाटियाँ नदियाँ तथा झीलें, मैदान तथा पर्वत, वास्तवमें सारी पृथ्वी उससे आवृत हो जायगी। क्योंकि यह बुद्धिमत्तापूर्ण कथन वेन्दीदादमें इसतरह लिखा मिलता है:-" अहुर मज्दने यिमासे कहा-हे प्रसन्नचित्त यिम विवाह्वन, प्राणधारी जीवोंके जगत्पर शीतजन्य विपत्तियाँ आवेंगी। फलतः सर्वसंहारक तुषारसे वह आच्छादित हो जायगा " (Vide Dr. Haug's Religion of the Parsees p.204) यह कठोर शीत या प्राणघातक तुषार तृतीयकालीन युगके अन्तका हिमयुग छोडकर और कुछ नहीं था। यह विवरण महत्त्व पूर्ण है। अतएव मैं यहां संक्षेपमें उसका उल्लेख करना आवश्यक समझता हूं। इस बातमें जराभी सन्देह नहीं मालूम पडती है कि हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंको महा हिमयुगका ज्ञान था। परन्तु हमारे वैदिक ग्रन्थोंमें यह घटना प्रलयके नामसे अभिहत होती मालूम पडती है। प्राचीनतम प्रलयके वृत्तान्त शतपथ[१] ब्राह्मणमें (१-८-१-१, १०) लिखे हैं। परन्तु एक प्रश्न स्वाभाविक रीतिसे उठेगा कि

---

१. इस ग्रन्थकी भारी प्राचीनताके सम्बन्धमें ' ओरिअन ' और दिआर्कटिक होम इन दिवेदाजके रचयिता मि० तिलक लिखते हैं, " जलप्लावनकी कथा शतपथ ब्राह्मण जैसी प्राचीन पुस्तकमें मिलती है। इसका समय ईसाके पूर्व २५०० वर्ष उधरका अनुमान किया गया है। क्योंकि इस पुस्तकसे यह बात निश्चित होती है कि कृत्तिकाएँ पूर्वमें उदय होती हैं। अतएव यह बात स्पष्ट है कि जलप्लावनकी कहानी आर्योंने कही है और ऐसी दशामें जलप्लावनके अवस्तिक तथा वैदिक विवरणोंका स्रोत वहींसे ढूंढना चाहिये। (Vide, The Arctic Home in the Vedas p. 387)।

जिस जलप्लावनका विवरण शतपथब्राह्मणमें है वह जलवृष्टिका परिणाम स्वरूप कोई स्थानिक जलकी वाढ होगी। क्योंकि मत्स्य गाथामें कहीं हिम या तुषारका किसी प्रकारका उल्लेख नहीं कियागया मालूम पडता है। तोभी इस विषयके सम्बन्धमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है क्योंकि उपर्युक्त ब्राह्मणमें जिस जलप्लावनका संकेत कियागया है वह हिमावृत प्रदेशोंके पिघलेहुये हिम या तुषारके वहा ले जानेवाले बूडेसे उपस्थित हुआ था और यह मालूम पडता है कि मनु उत्तरी गिरिके नामसे प्रसिद्ध तथा अभिहित हिमालयकी ओर मत्स्यद्वारा दिखलायेगये मार्गसे एक जहाजमें सवार इस जलकी वाढमें वह गये थे। अतएव मि० तिलक ठीकही लिखते हैं। "तोभी यह मालूम पडता है कि जलप्लावनकी भारतीय कहानी उसी दुर्घटनाका संकेत करती है जो अवस्तामें वर्णित है। उससे जल या मेहके किसी स्थानिक जलप्लावनका आशय नहीं है। क्योंकि यद्यपि शतपथ ब्राह्मणमें केवल एक बूडे (औघः) का उल्लेख है तोभी पिछले संस्कृत साहित्यमें प्रलय शब्द तुषार, पाला, या हिमका बोधक है। पाणिनि (७-३-२) इस शब्दको प्रलय (जलप्लावन) से निकालते हैं। इस शब्दसे इस बातका संकेत होता है कि जलप्लावनके साथ हिमका सम्बन्ध पहले भारतीयोंको अज्ञात नहीं था। यह तो वादको उसकी उपेक्षा की गई है, ऐसा प्रतीत होता है (The Arctic Home in the Vedas 387 p.)

इसके सिवा शतपथब्राह्मणकी मत्स्यके शब्दोंकी भांति वेन्दीदादमें ईश्वरी दूतके शब्दोंसे जिसके समुचित अवतरणोंका उल्लेख हम अभी करेंगे तथा उन्हें उद्धृत भी करेंगे, इस बातका समर्थन होता है कि भारतीय-आर्योंकी जलप्लावन सम्बन्धी कथा उसी सर्वनाशका संकेत करती है जो महाहिमयुगके आगमनके बाद हिम और तुषारके तूफानोंने उपस्थित किया था। उसका मतलब किसी दूसरे स्थानिक

जलप्लावनसे नहीं है। क्योंकि शतपथब्राह्मण और वेन्दीदाद्में वर्णित जलप्लावनकी गाथाओंमें घनिष्ठ समानता है, यही नहीं किन्तु उक्त घटना तथा उस कथाके कुछ मुख्य मुख्य नायकोंके नाम तकके साम्यसे इस वातका प्रमाण औरभी अधिक प्रासङ्गिक तथा पुष्ट होजाता है। उदाहरणके लिये एक ओर आनेवाले जलप्लावनके सम्बन्धमें मत्स्य मनुको सावधान करता है और उसे पार करनेको उससे एक जहाज बनानेके लिये कहता है, तो दूसरी ओर अहुरमज्द यिमको (अवास्तिक धर्मग्रन्थोंमें यह एक वडा धनशाली राजा कहा गया है) ईश्वरी दूतकी आज्ञाके रूपमें आनेवाले शीत कालीनके तुषारके तूफानके सम्वन्धमें सावधान करता है और उसे सव प्रकारके वीज रखलेनेके लिये एक घर या वाडा वनवानेकी सलाह देता है। उसके सिवा इस विषयके सम्वन्धकी सारी वातोंका समुचित ध्यान रखकर मैं इस वातका विचार अभी और करना आवश्यक समझताहूं कि वैदिक या भारतीय यम और अवस्तिक या ईरानी यिम एकही व्यक्ति हैं। इसका जो दूसरा नाम अवस्तिक धर्मग्रन्थोंमें लिखा है उससेभी बहुत कुछ मतलव हल हो सकता है। इसका दूसरा नाम विवन्हन है और जो कि ऋग्वेदमें प्रयुक्त वैवस्वतका अपभ्रंश है। वहीं हम यहभी लिखा पाते हैं कि मनुहीका नाम विवस्वान् है और वैवस्वत तथा यम मनुके पुत्रके केवल भिन्न भिन्न नाम हैं। जो अवतरण आगे उद्धृत है उससे यह वात स्पष्टरीतिसे मालूम पडेगी।

क—"यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रोपिबः सुतम्"। (८–५२–१)

ख—"वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य।"

ऋ० वे० १०–१४–१।

ग—"अंगिरोभिरागहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व।
विवस्वंतं हुवे यः पितातेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्यानिषद्य॥"

ऋ० वे० १०–१४–५।

क-"हे शक्र, जैसे तू मनुके साथ, जो विवस्वान् भी कहलाता है, सोम रसका पान करता है।"

ख-"विवस्वान्के पुत्र महाराज यमका सत्कार करो। तेरी आहुतियाँ पाकर वह मनुष्योंको एकत्र करता है।"

ग-"हे यम, पवित्र अंगिरसोंके साथ यहां आओ। तू यहां विरूपकी सन्तानके साथ आनन्द कर। हमारी इस पूजामें कुशोंपर बैठनेके लिये मैं तेरे पिता विवस्वान्कोभी बुलाता हूं।" (Griffith)

अतएव शतपथब्राह्मणका जलप्लावन और अवस्तिक धर्म ग्रन्थोंका शीतऋतु जन्य तुषारकाल एकही वस्तु है और ये दोनों कथाएँ स्पष्ट रीतिसे तृतीयकालीन युगके दूसरे[1] भागका संकेत करती हैं या उस हिमयुगका, जो एक दीर्घसमयके अनन्तर समाप्त हुआ था और

---

१ जो समय तृतीय कालीनयुगकी समाप्तिसे और उस युगसे, जिसमें हिम युगका अन्त हुआ था, अबतक बीता है उसे पाठकोंको बतानेके विचारसे मेरी समझमें प्रसिद्ध भूगर्भशास्त्रियों और विद्वानोंकी सम्मतियां यहां दे देना अनुपयुक्त न होगा। डाक्टर कालके मतसे २,४०,००० वर्ष पहिले हिमयुगका प्रारम्भ हुआ था और उसकी समाप्तिके लगभग ८०,००० वर्ष बीत चुके। उसके पीछे ही चतुर्थ कालीन युग या पूर्व हिमयुग आरम्भ हुआ था। हिमयुग लगभग १,६०,००० वर्षतक प्रवर्तितरहा। बीचबीचमें सहनीय तथा उष्ण प्रधान तापक्रमके भी परिवर्तन होते रहे हैं। (Vide, Dr, Crolls Climate & Tune, and Climaet & Cosmotagy) परन्तु अमरीकाके अनेक भूगर्भशास्त्रियोंकी सम्मति कि पिछले हिमयुगकी समाप्त इतना अधिक पहले न हुई होगी और वे लोग इस पिछले हिमयुगकी समाप्तिके लिये केवल ८, वर्ष ही पर्याप्त समझते हैं। परन्तु प्रोफेसर मैकी तथा दूसरे भूगर्भशास्त्री इसके विरुद्ध हैं। क्योंकि वे लोग समझते हैं कि उस समय पांच हिमयुग और चार अन्तर हिमयुग हुए थे और इन सबका पूर्ण समय लगभग ८,८०,००० वर्षका होना चाहिये। सरचार्लस लायल जिन्होंने सन् १८४१ में नियागारा जलप्रपात देखा था, खोजके सम्बन्धकी उन सारी कल्पनाओंका अध्ययन तथा सावधानीके साथ पुनर्विचार करनेके बाद,

उसके बाद तृतीयकालीनयुगका चौथा भाग या पूर्व हिमयुग प्रारम्भ हुआ था। अब मैं मत्स्य-गाथाकी ओर आता हूं और पाठकोंको उसकी उत्पत्ति तथा महान् हिमयुगके साथ उसका सम्बन्ध समझानेकी दृष्टिसे संस्कृतके मूलपाठके कुछ अवतरण देनेके बाद थोडेमें उसका वर्णन करता हूं:—"मनवे ह वै प्रातः अवनेग्यमुदकमाजह्रुः...। एवं तस्यावने निजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे ॥ १ ॥ सहास्मै वाचमुवाद। विभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीति। औघे इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति। कथंते भृतिरिति ॥२॥ सहो वाच। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति। कुंभ्यां मा अग्रेविभरासि। स यदा तामतिवर्धा...अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि। तर्हिवा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति ॥३॥ शश्वद्ध झष आस। स हि ज्येष्ठं वर्धतेऽथेतिथीं(?)समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्य उपासासै। औघ उत्थिते नावमापद्यासै ततस्त्वा पारयितास्मीति ॥ ४ ॥ तमेवं भृत्वासमुद्रमभ्यवजहार। सयतिथीं तत्समां परिदिदेश ततिथीं समां नावमुपकल्प्योपासांचक्रे। स औघ उत्थितेनावमापेदे। तं स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे। तस्य शृङ्गे नावः पाशंप्रतिमुमोच। तेन एतमुत्तरं गिरिमाधिदुद्राव ॥ ५ ॥ .... औघो ह ताः सर्वाः प्रजा निरुवाह। अथेह मनुरेव एकः परिशिशिषे ॥ ६ ॥ स अर्चन् श्राम्यँश्चचार प्रजाकामः। तत्रापि पाकयज्ञेन ईजे ॥ ६ ॥ (श० प० ब्रा० १–६–३–८, १)।

—जिनसे भूगर्भ सम्बन्धी समय वर्षोंमें निर्धारित किया जा सकता है, इस परिणामको पहुँचे है कि हिमयुगको समाप्त हुए सम्भवतः ३१,००० वर्ष बीते हैं। और विचित्र बात तो यह है कि प्रोफेसर जे० डब्ल्यू० स्पेन्सर भी इसी परिणामको पहुँचे ह जो स्पष्ट रीतिसे लायलके परिणामसे मिल जाता है, अर्थात् उनकी संख्या ३२००० वर्ष है। इस सम्बन्धमें मेरी (ग्रन्थकर्ताकी) पुस्तक 'दिवैदिक फादर्स आव जिआलोजी' देखो जिसमें भूगर्भ शास्त्रकी दृष्टिसे वेदोंकी महान् प्राचीनताका विचार किया गया है।

यहां नीचे मैं संस्कृतके उद्धृतांशका अनुवाद, जैसा अंगरेजीमें मिस्टर म्यूरने अपनी ओरिजनल संस्कृत टेक्स्टसमें किया है देता हूं (Vol. 1 p. 182-3, Ed. 2nd.) " प्रातःकाल वे मनुके लिये जल लाये...... जब वह हाथ मुँह धो रहा था तब एक मछली उसके हाथमें आगयी (जो उससे बोली), "मुझे बचाओ, मैं तुझे बचाऊंगी" (मनुने पूंछा) तू मुझको किससे बचावेगी (मछलीने उत्तर दिया) " एक जल प्लावनमें यह सारी सृष्टि जलमग्न हो जायगी उससे मैं तुझे बचाऊँगी "। (मनुने कहा) तुझे किसतरह बचाऊँ (मछलीने उत्तर दिया) जबतक हम छोटी रहती हैं तबतक हम बडी जोखिममें रहती हैं। क्योंकि मछली मछलीको हडपजाती है। (अतएव) तुझे मुझको एक घडेमें रखना होगा। इसके बाद तू एक खन्दक खोदावे और

मुझको उसमें रखना। जब मैं उस खन्दकसे भी बडी होजाऊँ तब तू मुझे समुद्रको लेजाना। उस समय म जोखिमसे निकल जाऊँगी. धीरे धीरे वह एक विशाल मछली हो गयी, क्योंकि वह तेजोंके साथ बढती जाती थी। (तब मछलीने कहा) " इस प्रकारके वर्षमें (परन्तु जो निश्चयपूर्व स्पष्ट नहीं कियागयाथा) जलप्लावन आवेगा। अतएव तुझे एक जहाज बनाना होगा और उसको मेरे पास लाना होगा। जब जल बढेगा तब तुझे उसपर चढना होगा और मैं तुझे उस जलप्लावनसे बचाऊंगी। अस्तु—मनु उस मछलीको रखकर बडी होजानेपर समुद्रको ले गये। तब ठीक उसी साल जिसे मछलीने निर्दिष्ट कर दिया था. मनुने एक जहाज बनवाया और उसके (मछलीके) पास ले गये. जब जल बढा तब मनु जहाजपर सवार हो गया। वह मछली उसकी ओर तैर आई। उसने जहाजका रस्सा उसके सींगोंसे बांध दिया। इस उपायसे वह उत्तरी—पर्वतकी ओर चल पडा (और उसतक पहुंच गया) इस जलप्लावनमें सारी सृष्टि डूब गयी थी अकेले मनुही बचरहा था। सन्तानकी इच्छासे वह पारि-

श्रम साध्य धार्मिक क्रियाओंमें निरत रहा। इनमें उसने पाककी आहुतियोंसे भी यज्ञ किया ....। यहां हमें यह बात याद रखनी चाहिये और मुख्यकरके इसे हृदयङ्गम करलेनी चाहिये कि, शतपथ ब्राह्मणकी उपर्युक्त मत्स्य गाथामें उत्तरी पर्वतका जो विशेष उल्लेख हुआ है वह स्पष्टरीतिसे तुषारावृत विशाल हिमालयपर्वतमाला है। और उत्तरं गिरिंसे भाष्यकारभी आर्यावर्तके उत्तर ओरके हिमवत् या हिमालयको ही समझता है। पहले वैदिककालमें आर्यावर्त सात नदियोंका देश (सप्तसिन्धवः) कहालाता था और बादको वह धीरे धीरे भारत, भारतवर्ष, भारतखण्ड या इंडिया कहलाने लगा. इसके सिवा उत्तरं गिरिंसे उस विशाल तुषारावृत पर्वतकी केवल भूतकालीन भव्य स्मृतिका संकेत होता है. जिसे हमारे प्रचीनतम पूर्वपुरुषोंने तृतीयकालीनयुगके प्राचीन कालमें सप्तसिन्धवः के नामसे प्रसिद्ध सातनदियोंके उस देशके उत्तरमें देखाथा जो आर्योंका मूलस्थान था और हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंकी जन्मभूमि थी। वहींसे हम चारों ओर विजयके हेतु फैलथे। और उत्तरी ध्रुवके विशाल देशोंमें उपनिवेश स्थापित किये थे. जो कि बादको महाहिम युगके उपस्थित हो जानेपर आबाद रहनेके अनुपयुक्त हो गया था. अतएव हम लोग अपने साज सामानके साथ उच्चतम हिमालयकी प्राची-न आर्यावर्तकी उत्तरी सीमा थी. अतएव जो उत्तरी प्रर्वत कहलाता था—के मार्गसे होकर अपने घरलौट आनेको बाध्य हुए थे इसी हिमालयकी महानता हम लोगोंके लिये सबकुछ थी. क्योंकि इसने मनुको आश्रय दिया था और महाहिम युगके जलप्लावनके समयमें उनके प्राण बचाये थे। अतएव उसका (पर्वतका) नाम

1. क—यस्येमे हिमवन्तो महित्वा...आहुः (ऋ० वे० १०-१२१-४)
ख—गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तः.... । (अथर्व वे० १२-१-११)

मनुकी चढाई रक्खा गया है (मनोरवसर्पणम्) अथवा वह जहां जके अड्डेके नामसे प्रसिद्ध है (नौबन्धनम्) । मैं यहां इस बातका वर्णन करनेका साहस करता हूं कि जलप्लावनकी यह कथा कुछ परिवर्तनों तथा नामोंकी भिन्नताके साथ आर्योंकी दूसरी उपजातियोंकी उन पौरा-णिक कथाओंसे भी मिलती है, जिसे उन्हें स्पष्ट-रीतिसे प्राचीनतम ग्रन्थसे लिया है और जो शतपथब्राह्मणमें है । उदाहरणके लिये इस सम्बन्धका कुछ रोचक विवरण यूनानके इतिहासमें मिलता है, अतएव उसकी तुलना करनेके लिये मैं उसे यहां उद्धृत करता हूं । " जैसा कि, अपोलोडोरस लिखता है कि तत्कालीन पीतलके रंगवाली जातिके अथवा जैसा कि दूसरे लोग कहते हैं, लिकाओनके पचास राक्षसी पुत्रोंके घोर पापसे पृथ्वी कलुषित हो गयीथी। अतएव ज़िअस क्रुद्ध हो गया और उसने जलप्लावन उपस्थित कर दिया । अविश्रान्त और भयंकर जल वृष्टिसे सम्पूर्ण यूनान जलमयहो गया । केवल पर्वतोंके उच्चतम शृंग डूबनेसे बच गये थे. इन्हीं पर कुछ भगोडोंको आश्रय मिलाथा ड्यूकालिअन एक बडी नावमें बैठकर बच गया था, जिसे बनानेके लिये उसके पिता प्रोमिथिअसने उसको पहलेसेही सावधान कर दिया था । नौ दिनतक पानीमें उतराते रहनेके बाद वह अन्तमें परनाससपर्वतके एक शृंगपर उतरा । जिअसने हरमीजको उसके पास यह कहनेको भेजा कि, जो कुछ वह मांगेगा वह उसे मिलेगा । तब उसने प्रार्थना की कि, मेरे एकान्तवासमें मनुष्य और साथी भेजे जायँ । तदनुसार जिअसने उसे और पिरह (उसकी स्त्री) दोनोंको अपने अपने सिरोंपर पत्थर रखनेकी आज्ञा दी । जिन पत्थरोंको पिरहने रक्खा वे स्त्रियां बन-

---

१. तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमिति । (शत० प० ब्रा० १-८-१-६)

२. सा बद्धा तत्रनौस्तूर्णं शृङ्गे हिमवतस्तदा ।
तच्च नौबन्धनंनाम शृङ्गं हिमवतः परम् ॥ महा० भा० ३)

गयी और जिनको ड्यूकालिअनने रक्खा वे पुरुष हो गये....ड्यूक लिअनने नावसे उतरनेके उपरान्त जिअस फिक्सिअस या वचावके देवताको कृतज्ञता द्योतक बलि प्रदान की। उसने ओलिपसके वारह वडे देवोंके नामकी वेदियाँ भी बनवाई (Grolis History of Greece Vol. 1 Ch. V.) इस तरह यह मालूम हो जायगा कि तृतीय कालीन युगके पिछले भागमें उत्तरीध्रुवदेशोंमें हमारे बड़े वडे उपनिवेश थे और महाहिमयुगके आगमनके कारण तथा हिम और तुषारके मोटी तहोंसे आवृत होजानेपर हम उनका परित्याग करनेको बाध्य हुए थे। एशिया तथा अफ्रीकाके एवं योरप तथा अमरीकाके भी सुदूर देशोंमें हमारे देशान्तर गमन करनेके सम्बन्धमें भी बहुत प्रमाण मिलते हैं। यही नहीं, किन्तु हमारे विस्तृत उपनिवेशोंके स्थापित कियेजाने और हमारी प्राचीन सभ्यताके प्रचारके सम्बन्धमें भी मिलते हैं. इस वातका समर्थन प्रसिद्ध पाश्चात्यविद्वानों तथा इतिहासकारोंने भी किया है। एम० लुई जैओ लिअटने इस सम्बन्धमें इस तरह लिखा है, " भारत संसारका मूलस्थान है। बडे बडे राज्य धूलमें मिल जायँ और अपने पीछे नक्काशी कियेहुए स्तम्भोंके भग्नावशेषोंके सिवा और कोई चिह्न न छोडजायँ; पहली जातिकी राखसे नयी जातियाँ उत्पन्न हो प्राचीन नगरोंके स्थानपर नये शहर सब प्रकारसे फलें फूलें, परन्तु समय और विनाश दोनों मिलकरभी उनकी (भारतीय-आर्योंकी) सभ्यताकी उत्पत्तिके स्पष्ट चिह्नोंको मिटानेमें असफल रहे " जिसे उन्होंने (भारतीय आर्योंने) प्रचलित किया था। कौजिनने किसी स्थलमें कहाहै, " भारतीय दर्शनका इतिहास संसारके दर्शनका संक्षिप्त इतिहास है "। (Vide, La Bible Dans L' Inde pp, VII, VIII. IX) उसी तरह मैक्स-मूलरभी लिखते हैं, " जैसा कि हमने देखा, पिछले समयमें भारतमें आर्यनाम जातीय नामके रूपमें विस्मृतिके गर्तमें पडगया और अब

उसका अस्तित्व केवल आर्यावर्तशब्दमें है, जिसका अर्थ आर्योंका वासस्थान है। परन्तु जोरास्टीरियोंने इस नामको बहुत अधिक वफादारीके साथ संरक्षित रक्खा। ये जोरास्टरी लोग भारतहीसे उसके पश्चिमोत्तर ओर चले गये थे और हम लोगोंको जाननेके लिये उनका धर्म जिन्दावस्तामें सुरक्षित है। हां, यह बात जरूर ठीक है कि वह अपूर्ण उपलब्ध है। (Seience of Language Vol. 1 Fifth Edition Page 268) हमारे मिस्रके आबाद करनेके सम्बन्धमें×नेशन्स आवू एन्टी कैटीके लेखक कुकटेलर लिखते हैं " वास्तवमें यह अनुमान किया गया है कि मिस्रियोंने अपनी सभ्यताकी व्यवस्था हिन्दुओंसे ली होगी और इन दोनों जातियोंकी संस्थाओंके बीच निस्सन्देह अनेक विचित्र समानताएँ विद्यमान हैं " ..... सिन्धु नदीके मुहानेसे लेकर अफ्रीकाके किनारे तक, जहांसे वे नीलनदी तथा मिस्रकी सीमाके दक्षिणतक फैल गये थे, छोटे छोटे उपनिवेश स्थापित होनेके वास्तविक प्रमाणभी हैं "...... " वर्ण व्यवस्था....हिन्दुओं और इस जातिमें एकसी है " (p. 11, 12) वे अन्तमें लिखते हैं, " हम देखते हैं कि जो समयके अनेक परिवर्तन उस समयसे अबतक हुए हैं उनसे हिन्दुओंकी सामाजिक संस्थाओंमें कठिनतासेही रद्दो बदल हुआ है और इससे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि उनकी सभ्यताकी व्यवस्थाका रूप इतना मौलिक और इतना पक्का है कि, वह बहुत प्राचीन युगकी सिद्ध होती है और प्राचीन मिस्रकी सभ्यतासे उसका सम्बन्ध होना कुछ भी असम्भव नहीं है। " (The Students Manual of Aucient History 6 th Edition p. 826) यूनानमें जो हमारे उपनिवेश थे उनके सम्बन्धमें मैं, समय और स्थानकी कमीके कारण पोकाककी ' इंडिया इन ग्रीस, या ट्रुथ इन मैथालोजी ' नामक पुस्तकसे केवल कुछही अवतरण यहाँ उद्धृत करूंगा। वे लिखते हैं,

" अस्तु (यूनानमें) समाजकी सारी दशा मुल्की और जभी दोनों किसीको भी एशियाई ही जँचेगी और उसमें भी अधिक अंश भारतीय मालूम पड़ेगा । " " मैं उन घरानोंकी बातोंका उल्लेख करूँगा जो कि पश्चिमी भारतसे तो लुप्त होगये पर भारतीय उपनिवेश संस्थापनके चिह्नोंके साथ वहीं अपने धर्म तथा भाषाके सहित यूनानमें फिर प्रकट हुए थे । " p. 12 " यूनानी भाषा संस्कृतसे निकली है । अतएव संस्कृत भाषाभाषी अर्थात् भारतीय यूनानमें अवश्य रहे हैं....वे लोग,...अर्थात् भारतवासी ही आदिम निवासी रहे हैं p. 19. " उत्तरमें हिमालय पर्वतमालाके उस पार तथा दक्षिणमें अपने अन्तिम सुरक्षित स्थान लंकाको खदेड़ दिये गये थे । पश्चिमोत्तरमें सिन्धुनदीकी तराई पार करके जो उत्पीडित लोग आगे बढे थे वे अपने साथ योरपीय विज्ञान और कलाके बीजोंको लेते गये थे । शक्तिशाली मनुष्योंकी यह बाढ पञ्जाबकी सीमाओंको पार करके जगतमें नैतिक उत्कर्षके अपने लाभदायक कार्यको पूरा करनेके लिये योरप और एशियाके अपने नियत मार्गकी ओर अग्रसर हुई । ब्राह्मणों और बौद्धोंके धर्म एशियाके एक बडे भारी भागपर आज दिनभी अपना सिक्का अलग अलग जमाये हैं । इस लम्बे युद्धमें दो बडे नेता थे । इन दोनोंमें ब्राह्मणधर्मकी विजय हुई । बौद्धधर्मके नेता खदेड़ दिये गये जिन्हें अपने उत्पीडनका खेवालोंसे बचनेके अभिप्रायसे उनकी पहुंचके बाहर आश्रय लेना पडा था । वे लोग बैक्ट्रिया, फारस, एशिया-माइनर, यूनान, फैनीशिया और ग्रेट ब्रिटेनको चले गये और अपने साथ पहलेके अपने ऋषियोंकी श्रद्धा और विचित्र दर्जेकी व्यापारिकशक्तिके साथ ज्योतिष और तंत्र विद्याकी अनोखी योग्यता भी लेते गये थे p. 26. " बौद्धधर्मका रक्षक और उपदेशक उसकी एक शिक्षा और भाषा थी वह भाषा परिष्कृत संस्कृत थी । और यद्यपि यूनानियोंके स्वीकार

करलेनेसे उसका असलीरूप बिगडगया है जोकि इस समय अपने बिगडेरूपमें है तोभी मेरे कथनकी सत्याताके लिये उसमें काफी प्रमाण मिलते हैं "। " .... यद्यपि भारतका यह शक्तिशाली देशान्तर गमन यूनानकी पहलेकी वस्तियोंके साथ बडी घनिष्ठतासे संयुक्त हुआथा तोभी-वह हीनदर्जेकाहीं रहा "। p. 27. इसके सिवा इस तर्कयुगके लिये और अपने पूजनीय पूर्वपुरुषों तथा अपने विस्तृत उपनिवेशीय साम्राज्यके सम्बन्धमें अतिशयोक्तिके अपयशसे अपने आपको निर्दोषी ठहरानेके लिये मैं पाठकोंका ध्यान-पोकाककी-उन दलीलोंकी ओर आकर्षित करूंगा जिनको उन्होंने फारस, वैबिलोनिया, पलेस्टाइन, कोलचिस, अरमीनिया, सीरिया, यूनान, इटली, जर्मनी, स्कैंडीनेविया, स्काटलेंड, मिस्र इत्यादि, संक्षेपमें, एशिया, यारप, अफ्रीका और अमरीकाके हमारे उपनिवेशोंके सम्बन्धमें पूर्वोक्त-' इंडिया इन ग्रीस ' नामकग्रन्थमें सन् १८५६ के संस्करणके ४१० वें पृष्ठमें अपने परिणामके समर्थनमें करनेके लिये दी हैं।

इसके सिवा आयर्लैन्ड-सुदूरपश्चिममें पुरातनकालका हमारा उपनिवेशके सम्बन्धमें मैक्समूलर लिखते हैं, " कुछ विद्वानोंका विश्वास है कि, वह (प्राचीन-जातीय आर्यनामका चिन्हहै) आर्य देशान्तरगमनके-अत्यन्त पश्चिमी आयरलेंडके नाममें (अर्थात् आर्य भूमि या आर्यनलेंड) स्थिर रक्खा जासका है ..... और ओरेलीने यह बात स्वीकार की है, यद्यपि दूसरोंने नहीं-स्वीकार की है, कि आयरिश शब्दमें ' इर ' संस्कृत आर्यशब्दके सदृश श्रेष्ठके अर्थमें प्रयुक्त है "। इसके सिवा मैक्समूलर एक दूसरी टिप्पणीमें यह सुझाते हैं कि, " इस ' इर ' (लेटिनके अवरनसकी भांति) का सम्बन्ध संस्कृतके ' अवर '-'पिछला' ' पश्चिमी' के साथ कायम किया जासकता है (Seience of Language Vol. 1 275, 2765th Ed.) सुदूरपश्चिम अर्थात् अमरीकाके हमारे उपनि-

वेशोंके सम्बन्धमें मिस्टर कोलमैन लिखते हैं, :" प्रसिद्धजर्मनयात्री और विज्ञान शास्त्री वैरन हैम्बोल्ट हिन्दुओंके बचेहुए चिन्होंके अस्तित्वका उल्लेख करते हैं " जो इस समय भी अमरीकामें प्राप्त हैं (Hindu mythology p. 350) मिस्टर हार्डी भी लिखते हैं कि, " मध्य अमरीकामें चीचेनकी प्राचीन इमारतोंमें भातके स्तूपोंका विलक्षण सादृश्य विद्यमान है " (Eastern monachism) मिस्टर स्कार कहते हैं कि, " दक्षिण भारतके और भारतीय द्वीप-पुञ्जके द्वीपोंके बौद्ध मन्दिर, जिनका वर्णन एशियाटिकसोसायटीके विद्वान्सदस्योंने और हिन्दुओंकी प्राचीनता और धर्मपर लिखनेवाले अगणित लेखकोंने हमारे लिये किया है, मध्य अमरीकाके मन्दिरोंसे सारी आवश्यक सूरतों और अनेक–छोटी छोटी बातोंमें बहुत अच्छीतरह मिलते जुलते हैं " (Sepent Symbol) डाक्टर जर-फीका कहना है कि " आर्यों द्वारा बनाईगई इमारतोंके समूहमें हम विचित्र विचित्र मन्दिर, दुर्ग, पुल और नहर अमरीकामें मिलते हैं (A mannal of Historical Developement of art.) यह बात प्रसिद्ध है कि मेक्सिकोबासी एक ऐसे देवताको पूजते थे जिसका धडतो मनुष्यका और सिर हाथीकाथा। अतएव वैरन हम्बोल्ट ठीकही विचार करते हैं कि, यह बात हिन्दुओंके गणेशके साथ अपूर्व और स्पष्ट रीतिसे असंयोगिक सादृश्य उपस्थित करती है "। पेरूबासियोंके सम्बंधमें सर विलियमजोन्स कहते हैं–राम सूर्यके वंशज और सीताके पति बताये गये हैं। यह बात बडी-अपूर्व है कि पेरूबासी, जिनके इनका लोग उसी उत्पत्तिके होनेका गर्व करते हैं, अपने त्योहारको राम–सित्वके नामसे अभिहत करते हैं। इससे हम अनुमान करसकते हैं। कि दक्षिण अमरीकाको उसी जातिने आबाद किया था जो एशियाके सुदूरभागोंसे रामका गत्या-त्मक-इतिहास तथा रीतिरस्में अपने साथ लेती गयी थी "

(Asiatic Researches Vol.1p. 426) अन्तमें 'मैं यहां हालके उस लेखपर अपना ध्यान दूंगा जिसे न्यूयार्कके लेटिन-अमरीकन चैम्बर आव् कामर्सके सभापति आनरेबुल अलेक०डेल मारने 'दि हिन्दू डिस्कवरी-आव अमेरिकाके नामसे लिखाहै । मैं उक्त लेखसे कुछ अवतरण भी उद्धृत करूंगा, जो निस्सन्देह सुदूर पश्चिममें भूतकालीन समयके हमारे उपनिवेशीय साम्राज्यके विस्तारपर भारी प्रकाश डालेंगे । क्योंकि मिट्टीकी बडी बडी इमारतें और टीलें, जो अपने आप हिन्दुओंके बनाये प्रकट होते हैं, मिसीसिपी और उसकी तराईमें फैलेहुए पायें गये हैं, और इस तरह जगतके दूरके, दूरतम न सही, पश्चिमी भागतकमें ब्राह्मणोंके प्रभाव और उन्नतिकी प्रत्यक्ष झलक-प्रकट करते हैं । एक यह भी-बात मालूम पडती है कि ब्राह्मणधर्मके निश्चित और पक्के-चिन्ह केवल मेक्सिकोमेंही नहीं, किन्तु मध्य और दक्षिण अमरीकामें भी पायेजाते हैं । इन मिट्टीके धुसोंमेंसे एककी खोदाई सन् १८४१ क नवम्बरम हुई थी । यह खोदाई उस स्थानके धुसमें हुई थी जो फिफ्थ और माउंडस्ट्रीट सिनसिनाटी, ओहिओके एक दूसरेसे अलग होनेवाले स्थानपर था । इसमें अमरीकाके इन धुस बनानेवालोंकी एक कौतूहलवर्द्धक तख्ती निकली थी । अभी हालमें यह भेद खुला है कि वह समयसूचक पत्थरकी एक पटिया है। वहां मिट्टीके अगणित धुस और टीले हैं और उन झीलोंके पाससे मेक्सिकोकी खाडीतक फैले हुए हैं । परन्तु जो धुस सियायी नामकी एक छोटी नदीके किनारे पर हैं, वे दससे पचीस फुटतक ऊँचे हैं और लगभग चार मीलके घेरेमें हैं । इनमें कुछतो युद्ध विद्या सम्बन्धी दृष्टिसे बनाये गये सूचित होते हैं अर्थात् वे बचावकी किलेबन्दी जैसे हैं और दूसरे धार्मिक तथा दूसरे मतलबसे बनाये गये

प्रतीत होते हैं। आनरेबुल अलेक्स० डेल मार लिखते हैं कि ये घुस "ईसाके पूर्व तेरहवीं सदी या उसके पहलेके हैं" (p. 706) । "इन घुसोंके बनानेवाले तूरानी लोग थे या कोई दूसरे लोग थे पर उनकी कारीगरी–तथा उनके धार्मिक–विचार स्पष्टरीतिसे भारतीय थे"।

"घुसोंमें हिन्दू-देवता"

यह सम्मति इस बातपर निर्भर है–कि बुद्ध या कृष्णकी–कई एक मूर्तियां (इनमेंसे वे चाहे जिसकी हों अमरीकाके इन घुसोंमें मिली है । " यह मूर्तिवास्तवमें अत्यन्त महत्त्ववाली है, क्योंकि उसी देशके कछुएके खपडे पर खुदी है । अतएव सम्भवतः किसी हिन्दू कारीगरहीने उसे अमरीकामें खोदाहोगा । उस मूर्तिकी पतली कमर, पलथिका आसन .... पट्टी या कडोंकी तीन लकीरें इत्यादि उसकी भावभंगी उत्तरी अमरीकाके किसीभी ढंगसे बिलकुल नहीं मेल खाती है । उससे इस मूर्तिकी हिन्दू उत्पत्तिका ही संकेत होता है । उसका कमरबन्द..... और सबसे परे उसी वस्तुके बने 'स्वास्तिक' से जो मूर्तिके साथ ही मिले हैं, हिन्दू सम्बन्ध और प्रभावके बलवान् प्रमाण सिद्ध होजाते हैं । सन् १८८२ ई० में यह प्राचीन चिह्न गनरो कन्ट्री, टेनेसीके विथटोको माउंडसे यू० एस० ब्यूरो आव् इथनालोजीके मिस्टर इम्मर्ट द्वारा खोदा गया था । ... डाक्टर विलसन (of the W. S. Nat Hist mu. Smithsomian Insfitute Washington 1866) (p. 707–708) कहते हैं कि इन वस्तुओंकी सत्यताके सम्बन्धमें कुछभी सन्देह नहीं

---

१. Vide "Indian Revienue, Madras for September 1912, pp. 706–710) इस संख्यामें 'डिस्कवरी आव् अमरीका' नामका लेख आनरेबल अलेक्स० डेल० मारको लिखा हुआ निकला है ।

हो सकता और न उनके वहां पाये जानेके विरुद्धही कुछ कहा जा सकता है जहांके सम्बन्धमें उनके साथके कागजोंमें उनके मिलनेका उल्लेख है। " P.707-708.

देशान्तरगमनका मार्ग।

एशियासे अमरीका जानेका मार्ग " प्रशान्त महासागरसे मिसीसीपी " तक अनुमान कियागया है और प्रतीत होता है।कि लगभग १५० वर्ष पहले फरासीसी पादडियोंने यह बात पुष्ट की थी और इसका समर्थन किया था। उन्होंने उस स्थानमें जाकर इस बातकी अच्छी तरह खोजकी थी। क्योंकि सन् १७५० में प्रशान्त महासागरसे एक मार्गके विषयकी बात सुनकर उन लोगोंने उस समाचारका तथ्य जांचनेके लिये उसी स्थानके एक इंडियनको वहां भेजा था। उससे उन्हें मालूम हुआ था कि उसने मिसौरा और कोलम्बिया नामकी नदियोंसे लेकर महासमुद्र तक यात्रा की थी और उसे कोलम्बियानदीके संगमपर एक खेई जातीहुई जंक नौका और चीनी मल्लाह मिले थे वे लोग सोना निकालनेके लिये उस नदीकी बालू धोनेमें दत्तचित्त थे। और अन० अले० डेल० मार लिखते हैं कि, " तबसे उसी प्रकारके जहाजोंके नष्टप्राय अंश ब्रिटिश कोलम्बिया, ओरगन और कैलीफ़ोर्नियाके किनारोंके भिन्न भिन्न स्थानोंमें एकत्र-कर लिये गये हैं। " p. 710. परन्तु इसके सिवा ऋग्वेदमेंभी स्पष्ट प्रमाण है (ऋ० वे० १०-१३१-१)। अपने उपनिवेशोंको बढाने, अपनी सभ्यताको फैलाने, पूर्व तथा पश्चिम उत्तर तथा दक्षिण चारों ओर अपने शत्रुओंका विनाश करनेके हेतुसे अपने विजयी अस्त्रोंको भूमण्डलके प्रत्येक देशमें ले जानेके लिये हमारे निश्चित उद्योगसे यह बात स्पष्टरीतिसे प्रकट होती है। क्योंकि हम देखते हैं कि जो शत्रु इन स्थानोंमें रहते थे उन्हें खदेड बाहर करनेको इन्द्रसे प्रार्थना की गयी

थी। अपने शत्रुओंको वशीभूत करने, उनके दुर्ग छीन लेनेके लिये यही नहीं किन्तु चारों ओरके देशोंको जीत लेनेके लिये पूर्वोक्त ऋचामें इन्द्रसे प्रार्थना की गई है। और वह प्रार्थना अभिलषित फल देती मालूम पडती है उदाहरणके लिये ऋग्वेद (६-६१-९) में बहुत स्पष्टरीतिसे सूचित होता है कि अत्यन्त पवित्रने-सरस्वतीने हमें फैला दिया था और हमारी अधिकृत भूमिके क्षेत्रफलको सारे शत्रुओं और उन नदियोंके परे बढाया था जो स्वयम् उसे मिलाकर आर्यावर्तकी सात नदियोंके नामसे प्रसिद्ध थीं-अर्थात् उसके पूर्वमें गंगा और यमुना और पंजाबकी मुख्य चार नदियां अर्थात् सतलज (शतद्रु), रावी (इरावती, परुष्णी), चेनाब (चन्द्रभागा या असिक्नी) और अपनी सहायक नदियोंके सहित सिन्धु जो कि पंजाबकी पांचवीं नदी है-" सा नो विश्वा अतिद्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी अतन्न हेव ॥ ऋ० वे० ६-६१-९ " इस ऋचाका अनुवाद ग्रीफिथने अंगरेजीमें उस तरह किया है:-उसने (सरस्वतीने) हमें सारे शत्रुओंके परे और अपनी बहनोंके परे जैसे सूर्य दिनको फैलाता है, फैलाया है। वह एक पवित्र नदी है"। हमारे प्राचीन कालके पूर्व पुरुषोंके वीरोचित कार्योंके लिये तथा जो विजयचिह्न उन्होंने प्राप्त किये थे उनके प्रति (प्राप्त किये गये विजय चिन्होंके प्रति) प्रसन्नताकी गहरी भावना तथा हार्दिक आनन्दका स्वतंत्र प्रकटीकरण इस ऋचासे स्पष्ट व्यक्त होता है। क्योंकि एक ओर उन लोगोंने चारों दिशाओंमें अपने शत्रुओंको पराजित किया था और सिन्धुके पश्चिममें विस्तृत देशोंपर अपना अधिकार जमा लिया था।

अस्तु-सप्तसिन्धु देशकी सीमाके परे अतीत कालके हमारे अधिकृत बडे बडे देशों तथा विस्तृत उपनिवेशोंके सम्बन्धमें ऋग्वेदमें केवल

---

१. यहां मैं इस बातका विचार करूंगा कि जो परम्परागत कथायें ऋग्वेदमें लिखी हैं, वे सब सत्य हैं और ऐसी दशामें उनमें ऐतिहासिक तथ्य भी

पर्याप्त प्रमाणही नहीं है, किन्तु बहुतही प्राचीन कालकी यह अमूल्य पुस्तक हमें बहुतही ध्यान देने योग्य एक दूसरा समाचारभी प्रस्तुत करती है। उसमें लिखा है कि एक दूसरे महाद्वीपपर यहांसे एक समुद्री 1 चढाई हुई थी। उस चढाईके नेता स्वयम् राजा भुज्यु थे। परन्तु जहाजके डूबजानेसे वह चढाई न कीगई और राजा भुज्यु बहुतही विलक्षण रीतिसे डूबनेसे बच गये। ऐसा कोई स्वतंत्र कारण नहीं देख पडता जिससे हम उपर्युक्त प्रमाणका अविश्वास करें। क्योंकि जब पाठक योरपकी सम्पूर्ण प्राचीन किस्से कहानी विश्वास करते हैं, यही नहीं किन्तु जब वे फ्रीजियन देवताओंकी गाथाओं

—है। तो भी यदि पाठक इस विनानमक मिर्चके कथनपर सन्देह करनको प्रवृत्त हैं, यह बात आवश्यक होगी कि हम पाठकोंका ध्यान म्यूर तथा राथके कथन और मेक्समूलरके कथनकी टिप्पणी पीछे दी है जिसमें उन्होंने वेदोंको "अत्यन्त पुरातन ऐतिहासिक लेख समूह बताया है और भी आकर्षित करें उक्त विद्वान् प्रोफेसारने इसके आगे जो लिखा है, वह नीचे दिया जाता है:— "वेदोंमें दो प्रकारकी बातें हैं। उनमें एक तो जगतका इतिहास है और दूसरे भारतका है। जगत्के इतिहासके सम्बन्धमें वेद उस अभावकी पूर्तिकरते हैं जो किसीभी भाषाका कोई ग्रन्थ नहीं कर सका। वे हमें पीछेकी ओर उस युगतक पहुँचाते हैं जिसके सम्बन्धमें हमें और कहीं कोई लेख नहीं मिलता और वे हमें तत्कालीन मनुष्योंके शब्द-शब्दतक प्रस्तुत करते हैं जिनके सम्बन्धमें यदि वेद न होते, हम अटकल और अनुमानके द्वारा केवल स्थूल कल्पनामर कर सकते थे। जबतक मनुष्यको अपनी जातिके इतिहाससे प्रेम है और जबतक हम प्राचीन युगके चिन्ह पुस्तकालयों और अजायबघरोंमें संग्रह करते हैं तबतक उन पुस्तकोंकी लम्बी पंक्तिमें जिनमें मानवजातिकी आर्य उपजातिका इतिहास लिखा है, ऋग्वेदको सर्वथा शीर्ष स्थान प्राप्त रहेगा।" (Vide Max-Muller's History of Sanskrit literature p. 63 Ed. 1859)

1. Vide, Wilson's Translation of the Rig-Veda Introduction p. XLL, 2 nd. Ed. 1866.

केल्टजातिकी पौराणिक कथाओं और ट्यूटन लोगोंकी पुराणोंकाभी विश्वास करते हैं, जैसा कि प्रोफेसर रीस तथा दूसरे लोगोंने लिखा है, तब तो ऋग्वेदमें लिखी परम्परागत कथाओंका विश्वास उन्हें केवल इस मुख्य कारणसे करना चाहिये कि वह ' एक पीढीके मनुष्योंके शब्द प्रतिशब्द उपस्थित करता है, जिनके सम्बन्धमें केवल ऊट पटांग विचार और कल्पनाएँही व्यक्त की जा सकती. यदि ऋग्वेदके स्रोतका असलीरूप अधिक पूर्ण, स्वच्छतर और सत्यतर न रहा होता और वह अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ यदि न विद्यमान होता । परन्तु इसके सिवा हम रामायण और महाभारतमेंभी विदेशोंमें अपनी विजयोंका सिलसिला जारी रहनेके सम्बन्धमें और प्रमाण पाते हैं। उदाहरणके लिये राम द्वारा कीगई लंका तथा दूसरे देशोंकी विजय और अर्जुन द्वारा की गई दिग्विजय । (रामायण ६–१०८, ४–१०, २७; महाभारत १४–७४, ७६, ७७, ७८, ७९, ८३, ८४, ८५, । अतएव इन सब प्रमाणोंसे विजयोंके प्रति हमारा अनुराग तथा विदेशोंमें यात्रा करनेका हमारा उत्साह प्रकट होता है । इसी बातके कारण भारतकी सीमाओंके बाहर हम अपने बडे बडे उपनिवेश स्थापित करनेमें समर्थ हुये थे । ऐसी अवस्थामें हमारे उपनिवेशीय साम्राज्यके संस्थापन सम्बन्धी ऋग्वेदके अवतरण न तो पौराणिक गाथायें समझी जासकती हैं और न किस्से कहानीही । इसके विपरीत वे सच्ची घटनायें मालूम पडती हैं–ऐसी घटनायें जिन्हें हमारे अतीत कालीन पूर्व पुरुषोंने–ऋग्वैदिक कवियोंने–अपनी आखोंसे देखकर स्वतंत्रतासे कही थीं । इसके सिवा ज्यों ज्यों हमारी विजयोंका कार्य, उपनिवेश संस्थापन और उनका दृढीकरण किसी प्रकारकी विघ्न बाधाके विना शीघ्रताके साथ वढता गया त्यों त्यों पूर्ण किये गये कार्योंका प्राप्त की गई विजयोंके चिन्हों और उससे उपस्थित की गई शान्ति–स्थापनोंको लेखबद्ध रखना आवश्यक प्रतीत

होने लगा था। और आश्चर्यके साथ हम उक्त लेखका एक बहुत सुन्दर चित्र प्रसिद्ध धर्म निर्णेता मनुकी स्मृतिके रूपमें पाते हैं। क्योंकि वे ऐसे भिन्न भिन्न नियम बतलाते हैं जिनसे विजित देशोंमें शान्ति स्थापित की जानेको थी। उनके नियमोंसे ज्ञात होता है कि सब लोगोंको क्षमा प्रदानकर दी जाती थी और इस उपायसे शान्ति कायम की जाती थी। सम्भवतः इन नियमोंका अनुभव वैदिक कालमेंही करलिया गया था और मनुके पहलेभी ये नियम प्रभावोत्पादक और सफल प्रमाणित हुये थे। अतएव मनुने उन्हें प्रामाणिक मानकर उनका उल्लेख करने और अपनी लगभग पूर्ण स्मृतिमें उन नियमोंको हमारे राष्ट्र तथा आनेवाली पीढियोंको पथदर्शकका काम देनेके लिये सावधानीके साथ उन्हें संयुक्तकरलेनेको अपने अवसरका उपयोग किया है। क्योंकि वे लिखते हैं कि दूसरे उपायोंके साथ विजित देशोंमें सबको क्षमाकी घोषणा कर देनी चाहिये (स्थापयेदभयानि च ॥ मनु० ७-२०) और पराजित राजाके वंशधरको उक्त राज्यकी गद्दीपर फिर बिठा देना चाहिये (स्थापयेत्तत्र तद्वंश्यं.... । मनु० ७-२०२) परन्तु उसे गद्दीपर बिठानेके पहले कुछ शर्तें करलेनी चाहिये। उनको पूरी करानेके लिये समुचित प्रतिबन्ध लगा देना चाहिये। (कुर्याच्च समयक्रियाम् । मनु० ७-२०२)। इसके सिवा, जैसा कि इतिहास अपने आप सदा दुहराता रहता है, हम देखते हैं कि मनुस्मृतिके समयके बाद अथवा धीरे धीरे तथा मध्यकालीन युगमें हमारे पूर्वपुरुषोंने भारतीय द्वीप पुञ्ज, और चीन, अफ्रीका और फारसके आगेके देशोंको यदि नहीं विजय किया था तो इनको तो जरूरही जीता था। सम्भवतः यहां पाठक प्रमाण मांगेंगे। अतएव पूर्वोक्त प्रमाणके साथही उनके संतोष और ज्ञानके लिये मैं पाश्चात्य विद्वानों, इतिहासज्ञों और पुरातत्त्वज्ञोंके लेखों या पुस्तकोंके प्रमाण यहां उद्धृत करूंगा। मौर्य-शासन कालमें (३२१–१८४ ईसाके पूर्व) जिस हिन्दूसाम्राज्यका

विस्तार भारतकी सीमाओंके परे पहुंच गया था, उसके सम्बन्धमें विंसेंट स्मिथ लिखते हैं, "काबुल और कन्धार बहुधा हिन्दूसम्राटोंके अधिकारमें रहेहैं और ये देश भारतकी प्राकृतिक सीमाके भाग हैं। हीरात (अरिया) निस्सन्देह बहुत दूर हैं, परन्तु वह शक्ति उसे सरलतासे अपने कब्जेमें रख सकती है जिसके अधिकारमें काबुल और कन्धार हो"। p. 142 .... निस्सन्देह सल्यूक्सने (ग्रेड्रोसिया प्रदेशका पूरा अधिकार उसको (चन्द्रगुप्त) सौंप दिया था और अधिकांश लेखकोंका यह मत है कि अरिया, अरचोसिया, और परोपनिसदाईके साथ यह प्रदेशभी भारतमें शामिलकर लिया गया था।" (Vide Early History of India 2 nd Ed. 1908 p. 142)

'टाइम्स आफ् इंडिया' और 'दि बाम्बे गजेट'—जो दोनों दैनिक पत्र प्रभावशाली समझेजाते हैं, उनमें नीची लिखी बाते छपचुकी हैं:—"यह बात बहुत दिनोंसे ज्ञात है कि, भारतीय द्वीपपुञ्ज तथा सुदूर फिलीपाइन टापुओंमें कुछ ऐसी स्पष्ट जातियां रहती हैं जिनमें भारतीय प्रवासियोंकी तथा उनके प्रभावकी स्पष्ट झलक प्रतीत होती है। परन्तु ज्ञानलिप्साकी प्रेरणासे फरासीस सरकार जो मसाला एकत्र किया था। उसका अध्ययन करके कर्न, वार्थ, वरमैनी और सिनार्ट आदि विद्वान् उस विस्मृत भूतकालकी बातोंको प्रकाशमें लानेके लिये बहुत आगे बढगये हैं। उन्होंने उस सम्पूर्ण विस्मृत भूतकालके इतिहासको खोज निकाला है। बुटलरने लिखा है, ऐसा प्रतीत होता है कि सुदूरपूर्वके देशोंमें चीन और जापानकी भांति बौद्ध संन्यासियोंने अपनी सभ्यताका प्रचार नहीं किया था, किन्तु उन देशोंको सम्भवतः पश्चिमी भारतके ब्राह्मणोंके वीरोंने तलवारके बलसे जीत लेनेके बाद उन्हें अपनी सभ्यताकी दीक्षा दी थी। नव विजित देशोंमें बसनेके लिये मनुके आदेशसे परिचित योद्धागण अपने साथ अपनी सभ्यता और अपना धर्म विद्वान् ब्राह्मण और भिन्न भिन्न

कलाओंमें निपुण कारीगर लेकर वहां आवाद हुये थे । वहां साम और ऋग्‌का स्वाध्याय होता था महाभारत और रामायणके पारायण होते थे। उस सुदूरपूर्वमें शिव और विष्णु उसी प्रकार पूजे जाते थे. जैसे स्वयम् आर्यावर्तमें । उनके मन्दिरोंके भग्नाव शेष आज भी अपनी भारतीय उत्पत्ति प्रकट कर रहे हैं और दर्शक उन्हें देखकर इस समयभी मुग्ध होजाते हैं और उनकी प्रशंसा करते हैं । Tines-of India Oct. 1 st. 1892) वाम्बे गजटमें प्रकाशित हुआ है कि, "भारतीय द्वीपपुञ्जमें यहांतक कि फिलीपाइन टापुओं तकमें भारतीय उपनिवेश थे यह वात उन खोजोंसे सिद्ध हो सकती है जो अभी हालमें विद्वानोंने की हैं । सुमात्रा, जावा, वोर्नियो, कम्बोडिया एवं स्याममें भारतके ब्राह्मण योद्धाओंने बौद्धमतके प्रचारके वहुत पहले उपनिवेश स्थापित किये थे। वौद्धोंने तो अभी पिछले समयमें इन सारे देशोंमें अपने उपदेशक भेजे थे और सम्पूर्ण सुदूरपूर्वमें भारतीय धर्मका प्रचार करादिया था जहां वह इस समय या वर्तमान है। जो भारतीय नेता अपने अनुयाई लेकर दूर देशोंको जीतने और वहीं आवाद हो जानेको गये थे उन्होंने पहले सुमात्रा और जावा द्वीपका विजय किया था । वादको कम्बोडिया और कोचीन चीनके दक्षिणी भागभी जीत लिये गये थे । अव हमारे समयमें फरासीसी लोग वहां एक दूसरा भारत रचरहे हैं। कम्बोडिया और चम्पामें पायेगये शिला-लेखोंसे यह अनुमान किया जाता है कि इन देशोंकी राजभाषा संस्कृत थी और राजदरवारके कवियोंकी भाषा भी वही थी । मातृभूमिकी भांति यहां भी शिव और विष्णुकी पूजा होती थी और पवित्रतासे धर्म ग्रन्थोंका पाठ होता था । भारतीय स्थापत्यकी शैलीके वने मन्दिरोंके भग्नावशेष इस समगभी वहां मिलते हैं। इन्हें देखकर यात्री लोग चकित हो जाते हैं" । संख्यामें तीन ऐतिहासिक इंडीज थे-हिन्द सिन्ध और जंग जंगनाम जंजीवार द्वीपके नाममें वर्तमान है और

हिन्द तथा सिन्ध तो हिन्दुस्तान तथा सिन्ध प्रदेश स्पष्टही है। भारतीय उपनिवेश उत्तरमें फारसकी खाडी और लाल सागरके किनारों तक और पश्चिम तथा दक्षिणमें अफ्रीकाके समुद्री किनारे किनारे जंजीबार द्वीपतक पाये जाते हैं। इस बातका विश्वास करनेका कारण है कि बौद्ध युगमें, यदि उसके पूर्व युगोंमें नहीं, अफ्रीकाके दाक्षिणा पूर्वी किनारे और पश्चिमी भारतके बीच खूब अधिक आवागमन था। सर जार्जवर्डउडने पश्चिमी घाट नामकी पहाडियोंके जंगलोंमें ऐसे वृक्ष और झाडियाँ पाई हैं जो भारतके दूसरे भागोंमें हैं ही नहीं। ये जंगल उस पवित्र कुञ्जके बचे खुचे अंश हैं जिनका केन्द्र कार्लीकी गुफायें हैं। परन्तु जो वृक्ष इन जंगलोंमें मिलते हैं वे उसी प्रकारके हैं जैसे कि अफ्रीकाके जंजीबारके समुद्री किनारेपर अबभी मिलते हैं (The Bomday Gazetter 3 rd. Oct. 1892) इसके सिवा अरमीनियाके हमारे उपनिवेशों और विजयोंके सम्बन्धमें नृवंश शास्त्र सम्बन्धी प्रमाण हमारे पास हैं। क्योंकि:' ईसाके पूर्व सातवीं सदीमें ६४० और ६०० के बीच आर्यजातिने इस देश (अरमीनियाँ) को जीत लिया था उसने पराजित जातिको अपनी भाषा सिखाईथी और सम्भवतः अपने नामोंके अनुकरणपर वहांवालोंका नाम करणभी किया था। उसने वहां कुलीन सैनिकोंका शासन प्रचलित किया था। ऐसे शासक ईरान और पर्थियासे वहां सदा भेजे जाया करते थे।" (Encyclopidœa Britanica Vol. XXV p. 639 th Ed.) चन्द्रगुप्तके साम्राज्यकी संघटन प्रक्रियाकी और स्थल मार्गसे पश्चिमी जातियों तथा जलमार्गसे पूर्वीजातियोंके साथ व्यापार करनेसे जो उन्नति हुई उसकाभी उल्लेख करते हुए मिडोज टेलर लिखते हैं कि हिन्दुओंने जावा और स्याममें अपने उपनिवेश स्थापित किये थे और इन देशोंमें अपना धर्म प्रचलित किया था। (History of India p. 50 1896) दूसरे प्रामाणिक

व्यक्तियों और इतिहासकारोंके प्रमाणके अवतरणोंसे मैं अब इस पुस्तकको भरना नहीं चाहता। मैं केवल एक फरासीस विद्वान्- प्रोफेसर टेरियन डीलाकोपरी, पी. एच. डी, लिट, डी०-के ग्रन्थका एक और अवतरण यहां उद्धृत करूंगा। क्योंकि इन्होंने चीन और उसकी सभ्यताका अध्ययन विशेष रीतिसे किया है। इस अवतरणसे यह प्रकट होगा कि ईसाके पूर्व सातवीं सदीमें भारतके हमारे योद्धाओं निर्भय क्षत्रियों, उद्योगी वैश्यों एवं दूसरे हिन्दू व्यापारियों और सौदागरोंने चीनके प्रदेशोंको आवाद किया था और उसके समुद्री किनारे पर शक्तिशालिनी नौ वस्तियाँ वसाई थीं। यही नहीं किन्तु उन लोगोंने पूर्वी देश या चीनमें अपना पहला सिक्का भी चलाया था और कई सदियों तक हिन्दुस्तान-अपनी मातृभूमि-और चीनके बीच उन्नति शील व्यापार करतेहुए और उसकी सभ्यता पर आश्चर्यपूर्वक लाभ दायक प्रभाव डालते हुए बहु संख्यक शत्रुदलके विरुद्ध वे अपनी प्रतिपत्ति स्थायी रखनेमें समर्थ हुये थे। वास्तवमें घटनाओं तथा उपर्युक्त फरासीस प्रोफेसरके लेखों और प्रमाणोंसे इस वातका समर्थन हुआ है। उन्होंने अपने वेस्टर्न ओरिजिन आव दी अर्ली चायनीच सिविलीजेशन नामक ग्रन्थमें यह लिखा है कि " भारतीय महासागरके समुद्री व्यापारियोंने अरवसागरके नाविकोंको अपने दलमें शामिल कर लिया था। परन्तु उनके नेता हिन्दूही होतेथे। उनमेंसे कूतलू नामक एक व्यक्तिका भारी तथा असाधारण स्वागत (दक्षिणमें शान्तुंग प्रायद्वीपकेलूके) चीन राजाके दरबारमें ईसाके ६३१ वर्ष पूर्व हुआ था। यह वात एक गायकी कहानीके रूपमें प्रकट हुईहै (p. 89) सुदूरपूर्वमें उनका प्रधान उपनिवेश उन्नतावस्थामें होनेसे वह व्यापारकी मण्डी वनगया था और भारतीय नामसे वह लंका कहलाता था वादको वह नाम विगडकर लंग-गया लंग-या हो गया था। हमारे प्रवासियोंका एक टकसालघर तथा उनकी एक वाजारकि आओ-

चाओकी खाडीके उत्तर एक दूसरे स्थानमें थी । वह उस समय दूसी मीहयासि-मोह कहलाताथा । ईसाके ६८० वर्ष पूर्व या उसके कुछ इधर उधर इस उपनिवेशका स्थापित किया जाना प्रतीत होता है । (Vide the " Daure " for June 1910 p. 94, 95) सिक्कों और ताम्रपत्रोंके खोजनेकी विद्यासे यह बात और अधिक स्पष्ट होती है कि इन हमारे प्रवासियोंने चीनके समुद्री किनारे पर नई बस्तियाँ बसाईथीं । वहां बहुत ही शक्तिशाली मण्डल स्थापित कर-लिया था । ईसाके लगभग ६७५–६७० वर्ष पूर्व उन लोगोंने वहां एक ऐसी टकसाल खोलदी थी जिसके धातुके सिक्कोंपर अंक खुदे रहतेथे और इस संस्थाके चल निकलनेपर शीघ्रही चीनराज्यके एक पडोसी राजाने, जो हमारे प्रवासियोंसे मित्रभाव रखता था, अपने राज्यमेंभी टकसाल खोल दी थी । कियावचावकी खाडी शान्तुंग प्रायद्वीपके दक्षिण ओरकी बस्तियोंकी रक्षा और उनकी खबरदारी ईसाके पूर्वकी तीन सदियों तक (६७५–३७५) हमारे साहसी व्यापारी ही बहुधा करते रहेथे । परतु कभी कभी उनकेप्रयत्न दैवकी प्रतिकूलतासे विफल होजाते थे । फलतः राजघरानोंके बदलने भयंकर घरेलू युद्धों तथा देशकी गडबडीका हमारे उपनिवेशोंकी सुख समृद्धि पर उस समय यदि सदाके लिये न सही, गहरा प्रभाव पडा था अतएव प्रवासियोंको अन्तमें अपना स्थान बदलना पडा और वे अना-मके समुद्री किनारे पर आबसे (ईसाके १४०–११० पूर्व) । (Vide Western Origin of the early ChineseCiviliz asion p. 237-240) अतएव ये सब बातें वीरताके कारनामें विदे-शोंकी जीतों तथा उपनिवेश स्थापित करनेकी उमङ्ग, अदमनीय उद्योग संघटनकी आश्चर्य जनक शक्तियोंकी स्थिरता श्रेष्ठतापूर्वक प्रकट करती हैं । हमारे प्राचीनतर पूर्वपुरुष और ब्राह्मण योद्धा इन गुणोंसे अलंकृत थे उतनाही नहीं किन्तु उन्होंने वास्तवमें काम भी कियेथे

और सुदूरदेशोंमें देशान्तर गमन भी किया था। वहां उन्होंने अज्ञात साम्राज्योंका विजय किया था। दूरतमदेशोंको आबाद कियाथा और सारे भूमण्डलपर अपने आपको प्रतिष्ठित किया था। इस तरह वे लोग एक ऐसे विस्तृत साम्राज्यके अधिकारी हो गये थे जिस पर सम्भवतः सूर्य भी कभी नहीं अस्त होता था।

पन्द्रहवां अध्याय.

छः ऋतुओंका पञ्चाङ्ग और उत्तरी ध्रुवमें वसनेके बाद उसमें किये गये परिवर्तन।

पूर्वके अध्यायसे पाठक यह जाननेमें समर्थ होंगे कि पुराने जमानेमें आर्यावर्त या वैदिक सप्तसिन्धुके साम्राज्यका विस्तार कितना भारी था। क्योंकि उस समय भूमण्डलके समीप तथा दूरके उन सब भागोंमें उसके विशाल उपनिवेश स्थापित हो गये थे जो इस समय एशिया तथा योरप, अफ्रीका तथा अमरीकाके नामोंसे प्रसिद्ध हैं। जिस सरस्वतीके मूलस्थानसे निकलकर प्रवासियोंने उन उपनिवेशोंको स्थापित किया था उसमें वर्षकी छहों ऋतुओंमें दिन और रात सदा समान होते रहे हैं। परन्तु प्राचीन कालमें आर्यावर्तने अपने वीर पुत्रोंको जिन दूरतम उत्तरी ध्रुव देशोंमें आबाद होनेके लिये भेजा था वे देश अपनी लम्बी लम्बी दिन-रातोंके कारण भयंकर अन्धकारसे व्याप्त समझे जाते थे। अतएव इन दूरतम उपनिवेशोंमें समयकी गणनाकी दृष्टिसे उत्तरी ध्रुवदेशके पांच ऋतुओंके अनुसार नये पञ्चाङ्गका जन्म हुआ। इस पञ्चाङ्गका उल्लेख हमें ऋग्वेदमें भी मिलताहै और उसके साथही वहीं छः ऋतुओंके असली आर्यावर्तीय पञ्चाङ्गकाभी उल्लेख है। इसका समुचित विवरण धीरे धीरे यहां विस्तारके साथ दिया जायगा.

ऋग्वेदहीके प्रमाणसे यह बात मालूम होती है, कि हमलोग उस देशमें उत्पन्न हुए थे जहाँ छः ऋतुएँ होती थीं और प्रत्येक ऋतु दो महीनेकी होती थी। (षड्वा ऋतवो मासद्वयरूपाः..... । सायण, ऋ० वे० १-१६४-१५) अतएव हमारे असली वर्षमें बारह महीने होते थे और प्रत्येक महीना दो पक्षोंका (एक पक्ष शुक्ल और दूसरा कृष्ण) या तीस दिनका होता था। स्पष्ट रीतिसे यह चान्द्रमासी पञ्चाङ्ग था और इसमें ३६० अहोरात्र या ७२० दिन-रात होते थे, जिसमें दिन बारह घंटेके और रातभी बारह घंटेहीकी (मोटे हिसावसे) होती थी। हमारे आदिम पूर्वपुरुषों तथा वैदिक बापदादोंने चान्द्र-मास पञ्चाङ्गको इस लिये स्वीकार किया था, क्योंकि उनके सारे कर्म और याग एकमात्र नये तथा पूर्णचन्द्रके उदयपर निर्भर थे तथा उनका सम्बन्ध इन्हींसे था। इसी कारण ऋग्वैदिक कवि यहाँ तक कहने लग गये थे कि, " चन्द्रमाही महीने और वर्ष बनाता है" (समाना मास आकृतिः ॥ ऋ० वे० १०-८५-५) और " वह ऋतुओंको आज्ञा देताहै और फिर उत्पन्न होता है " (ऋतूरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥ ऋ० वे० १०-८५-१८)। परन्तु इस बातको वे लोग जानते थे। वे इस बातसे अच्छी तरह परिचित थे कि चान्द्रवर्ष मोटे हिसाबसे सौर वर्षसे लगभग पांच दिन छोटा है।

---

१. छहो ऋतुओंके नाम नीचे दिये जाते हैं:-

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद् हेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिविनोदुहाताम् ॥

(अथ० वे०, १२-१-३६)

" पृथ्वी, तेरी ग्रीष्म, तेरी वर्षा, और शरद, तेरा हेमन्त और तेरा शिशिर और वसन्त, हे पृथिवी और नियमबद्ध ऋतुयें और दिन तथा रात हमारे लिये अधिक रीतिसे प्रस्फुरित हों। " (Griffth)

२. क्योंकि चान्द्रमास साढे उनतीस दिनका या और ठीक ठीक २९ दिन,

अतएव चान्द्र-पञ्चाङ्गको शुद्ध करनेकी दृष्टिसे और फलतः उस सौरके समान करनेके लिये उन्हें एक अधिक मास जोडना पडता था और यह पद्धति भारतमें ऋग्वेदके पुरातन कालसे इस समय तक बराबर चली आती है। जैसे यह उनकी तीक्ष्ण दृष्टिका एक उदाहरण है वैसेही ज्योतिष विद्या-सम्बन्धी उनके ज्ञान एवं तद्विषयक उनकी गहरी खोजका परिचायकभी है। हमारे प्राचीन ऋग्वैदिक पूर्व पुरुष उस समयभी इस योग्यतासे पूर्ण थे। मैं यहाँ उस वैदिक ऋचाका उल्लेख कर सकताहूँ। क्योंकि उससे हमारे असली चान्द्रमास पञ्चाङ्गके प्रत्यक्ष सम्बन्धपर स्पष्ट प्रकाश पडताहै। ऋक्कवि लिखता है, " जो (वरुण) अपने पवित्र विधानके प्रति पक्का है वह बारह महीनोंको उनकी सन्तानके सहित जानता है। यही नहीं, किन्तु वह उनके साथ जन्म लेनेवाले (अधिकमासके तेरहवें) महीनेको भी जानताहै।" "वेदमासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः।वेदाय उपजायते॥", ऋ० वे० १-२५-८ ऋग्वेदके एक दूसरे प्रमाणकी ओर दृष्टि डालने पर हम देखते हैं कि हमारा प्राचीनतम तथा मौलिकपञ्चाङ्ग उस देशको है जिसमें केवल छः ऋतुएँ ही नहीं होती थी, किन्तु दिन और रात समान भी होते थे। रात-दिनकी संख्या इकट्ठे मिलानेपर ७२० होती थीं या ३६० अहोरात्र होते थे, मोटे हिसावसे रात बारह घंटेकी होती थी एवं दिनभी उतनेहीके होते थे। वे निरन्तर विना किसी विघ्न-बाधाके आते जाते रहते थे। उदाहरणके लिये ऋग्वेदमें (१-२३-१५) छः ऋतुओंका उल्लेख है। मेधातिथि कहते हैं, " इन बूंदोंद्वारा वह (पूषन्) छहोंको (ऋतुओंको)

—१२ घंटे, ४४ मिनिट और २. ८७ सिकेंडका होता है और सौरमास ३०, दिन १० घंटे, २९ मिनट और ५ सिकेंडका होता है। (Vide Webster and Charles Aunundale's English Dictionaries)

एक साथ वंधीहुई मेरे लिये लावे (उतो स महामिन्दुभिः षड्युक्तां अनुसेपिधत्)। और आगे (१-१६४-१२) में तो छः ऋतुओंका स्पष्टही उल्लेख है। दीर्घतम कहते हैं, "छः ऋतुओंका वर्ष होता है" (षळर आहुरर्पितम् ॥) परन्तु इससे अधिक वही कवि इसके आगे कहताहै (१-१६४-१५) "यह केवल छः ऋतुएँही थीं जो मूलतः वनी रहीं" षळिद्यमा ऋषयः) "विशेष करके वे कृत्रिम या मनुष्य रचित ऋतुओंके विपरीत मानो प्राकृतिक या मौलिक अर्थात् देव निर्मित (देवजा इति) थी। प्रसिद्ध भाष्यकार सायण इसका अर्थ करते हैं, "वास्तवमें वर्षने केवल छः ऋतुओंके अपने मार्गको तै किया (अर्थात् उनसे गुजरा) ('ऋषयः' ऋसे गमन अर्थमें अथवा उनसे संयुक्त था) षडेव ऋतवो मासद्वयरूपा ऋषयो गंतारः। ऋ० वे० ३-५५-१८में भी छः ऋतुओंका संकेत है (षोळहा युक्ताः) (१) छः ऋतुओंके सिवा ऋग्वेदसे यह वात और भी मालूम पडती है कि (२) वर्ष सदा वारह महीनेका होता है, उनसे कमका नहीं (द्वादशारं न हि तज्जराय) और (३) उसमें ३६० अहोरात्र (मिथुनासः) होते हैं या वरावर वरावर-वेट वहें ७२० दिन-रात(अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः॥ऋ० वे० १-१६४-११) अतएव ये सव वातें हमारे प्राचीनतम पञ्चाङ्गके अत्यन्त पुरातन चिह्न हैं।

अस्तु—सप्तसिन्धु देशमें रात्रिका समय केवल वारह घंटे होनेसे वह स्वाभाविकरीतिसे विश्रामके लिये पर्याप्त समझा गया था, विशेष-करके जव कि वारह घंटोंके कार्य-निरत दिनके उपरान्त वह सदा आता रहता था। इसी कारण उत्तरी ध्रुव देशोंको आवाद करनेके पहले हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंको रात्रि प्रिय थी। उन्होंने उसे वडे प्रेमके शव्दोंसे सम्बोधित किया है। यही नहीं, किन्तु वडी भक्तिसे उन्होंने उसकी प्रार्थनाभी की है। क्योंकि उसने सारे परिश्रम निरत जगत्को विश्राम दिया था। इसी सम्बन्धमें एक ऋग्वैदिक कवि इस

प्रकार कहता है–"ह्वयामि रात्रिं जगतो निवेशनीम्"...। ऋ० वे०. १ ३५–१ " मैं उस रात्रिको बुलाता हूँ जो सारे कार्य-निरत जगत्को विश्राम देती है। " (Griffith) रात्रिकी यह स्तुति वास्तवमें उस समयके हमारे आदिम आर्य पूर्वपुरुषोंकी है जब उन्होंने आर्यावर्तका परित्याग नहीं किया था और उन्हें उत्तरी ध्रुवकी लम्बी रातोंका अनुभव या ज्ञात नहीं था। किन्तु उत्तरी ध्रुवदेशोंमें उनके बस जाने-पर उन्हें वहाँकी रातोंका पर्याप्त अनुभव होजानेके बाद वे उनको अत्यन्तही उकतानेवाली और भयकारी प्रतीत हुई थीं। क्योंकि उनके अन्धकारका कभी अन्तही न सूझ पडता था (न यस्याः पारं ददृशे। " उनके आगेकी सीमा नहीं दिखाई देती है " अथ० वे०, १९–४७–२)। इसी कारणसे ऋग्वैदिककालीन कवियोंने जब वे तृतीय कालीन युगके उपनिवेशोंमें आबाद थे " ऊर्म्ये " या रात्रिसे तत्प-रताके साथ विनयकी थी कि " जिसमें वह पार करनेके योग्य हो जाय " (ऊर्म्ये। अथानः सुतरा भव। ऋ० वे०,१०–१२७–६) अतएव कवियोंके इन दो कथनोंमें जो अन्तर है, अर्थात् एकमें रात्रिको " बुलानेकी प्रार्थना है (ह्वयामि रात्रिं " और दूसरेमें इसके विपरीत उसके समाप्त होजाने तथा वितानेके योग्य होजानेकी विनीत प्रार्थना है" (अथानः सुतरा भव) उसका निस्सन्देह कुछ अर्थ है। उस अन्तकी ओर वास्तवमें हमारा ध्यान जाना चाहिये। विशेष-करके इस बातसे कि वह उस समयकी वास्तविक दशाके परिणामों-पर प्रत्यक्ष प्रकाश डालता है अर्थात् उससे प्रकट होता है कि प्रार्थना कीगई रात्रिके बाद उस रात्रिके समागमका क्रम प्रकट होता है जिसके हट जानेकी प्रार्थना की गई थी। सम्भवतः इस बातका यहाँ उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा कि जलप्लावनके पहले या भूगर्भ-शास्त्रकी पारिभाषिक भाषामें चतुर्थ कालीन युग (प्राचीन वस्तुओंके उस संग्रहके समयका नाम जो तृतीयकालीनयुगके पूर्वकी समझी

जाती है) और महाहिमयुगके आगमनके पहले हमारे तृतीयकालीन पूर्वपुरुष विलकुल उत्तर अर्थात् उत्तरी ध्रुवदेशमें रहते थे। यह स्पष्ट है कि, वे लोग आर्यावर्त या वैदिक सप्तसिन्धु देशके प्रवासियोंके रूपमें वहाँ आवाद थे। इसी रूपमें वे उत्तरी ध्रुवमें वसे रहे, वहाँ वडी वडी वस्तियां वसाई और दीर्घकालतक निवास किये रहे। अतएव यह वात वहुत स्वाभाविक है कि सौ जाडे जैसे वाक्य (शतं हि याः, ऋ० वे० १–६४–१४, शतहिमाः ऋ० वे० १–७३–९) और उत्तरी ध्रुवके उसी तरहके दूसरी परम्पराएँ उस समय ऋग्वेदमें अंकित करली गई होंगी जव कि वे लोग अपने इन उत्तरी ध्रुवके उपनिवेशोंमें रहते थे। तव यह वात स्पष्ट है कि तुषार और हिमकी मोटी मोटी तहोंसे उत्तरी ध्रुवके किसी समयके मनोहर भूभाग सहसा आवृत होगये थे, जिससे वहांके हमारे प्रवासी भाई उनका परित्याग करने और वहांकी सारी परम्पराओंके सहित वापस लौटनेको वाध्य हुये थे। वे अपनी मातृभूमि सप्तसिन्धु देशको विशाल हिमालय-पर्वतसे होकर लौट आये थे. यह पर्वत जलप्लावनके समयमेंभी उत्तरी पर्वतके नामसे विदित था। क्योंकि वह आर्यावर्तके उत्तरमें था जहां हमारे आदिम पूर्वपुरुष उत्पन्न हुये थे, या जो उनका मूल स्थान था। ऐसी दशामें यह कल्पना करना भ्रम मूलक होगा कि हमारे आदिम आर्य पूर्व पुरुष "उत्तरी जाति" के लोग थे जैसा कि प्रोफेसर एच० एच० विलसन तथा दूसरे लोग अनुमान करते हैं और हमेंभी विश्वास कराते हैं। उन लोगोंको ऐसा अनुमान करनेका कारण केवल

---

१. ऋग्वेद संहिता Translated by H. H. Welson Introduction p.9 XLII Ed. 1866)

2 Max-Muller's Last Results of the Turania-Researches last Results of Ancient Sanskrit Researches. Chip fr0m a German workship Vol. 1 etc.

यही है कि, कुछ वैदिक कवियोंने सौ जाडोंके जीवनके सम्बन्धमें किसी समय प्रार्थना की है और कुछ दूसरे लोगोंने उत्तरी तथा उत्तरी ध्रुवकी परम्पराओंका उल्लेख किया है। परन्तु इन बातोंके उपस्थित करनेका निराकरण मैं पहलेही कर चुका हूँ और जब एक बार पाठक स्मरण करेंगे कि हमारे प्राचीन पूर्वपुरुषोंने अपनी मातृभूमि–आर्यावर्तका परित्याग करनेके बाद उत्तरीध्रुवके विस्तृत भूखण्डोंको आबाद किया था और दीर्घकालतक वहाँ बसे रहे थे तब "सौ जाडों" जैसे कथनों तथा उसी प्रकारकी दूसरी परम्पराओंके सम्बन्धके सम्पूर्ण सन्देहोंकी निष्पत्ति आपही हो जायगी। इसके सिवा यदि किसी समय 'सौ जाडों' के सम्बन्धमें उनके प्रार्थना करनेके एकमात्र कारणके आधारपर प्रोफेसर विलसन तथा दूसरे विद्वान् यह समझते हैं कि हमारे पूर्वपुरुष उत्तरी जातिके लोगथे तो ऋग्वेदमें ऐसे भी कथन मिलते हैं जिनमें रात्रिका आह्वान किया गया है और उसकी प्रार्थना की गई है. जो जाति लम्बी तथा भयंकर रातोंके उत्तरी देशोंसे आई और जिनकी समाप्तिका अन्त वह (हमारे पूर्वपुरुषोंकी जाति) न पासकी तदनुसार उनसे प्रार्थनाभीकी गयी थी कि वे पार होने योग्य बनजायँ वह निस्सन्देह उनकी स्तुति तथा उनका स्वागत कभी न करेगी। और न कभी वह उन रातोंको जगत्के विश्रामका साधन कहनेकोभी तैयार होगी. जब कि उत्तरी देशोंमें ये रातें अत्यन्त लम्बी, उकतानेवाली और भयंकर तक समझी जाती थीं। जिस रात्रिका कविने उल्लेख किया है वह स्पष्टरीतिसे थोडे समय या बारह घंटेकी होती थी। इस प्रकारकी रात्रिका अनुभव उस देशमें हुआ था जहां दिन और रात्रि समान होती थी अतएव वह सदा एक न्यामत, यही नहीं किन्तु जगत्को विश्राम तथा सुख देनेवाली समझी जाती थी। स्पष्टरीतिसे यह आर्यावर्त या सप्तसिन्धु देशकी बात है। जिस कविने इस

भावको व्यक्त किया है वह इस देशका आदिम निवासी समझ पडता है। क्योंकि हमें अनेक परम्पराएँ ऐसी मिलती हैं जिनसे, यह मेरी विनीत धारणा है, यह वात पर्याप्त रीतिसे प्रमाणित तथा निश्चित होजाती है। अतएव हमारी उत्तरी उत्पत्तिके सम्बन्धमें प्रोफेसर विलसन तथा दूसरे विद्वानोंकी दलील समुचित प्रमाणके अभावसे कट जाती है। हमने पहलेही विचार किया है कि छः ऋतुओं और समान दिनों तथा रातों या ३६० अहोरात्रोंके आर्यावर्तके असली पञ्चाङ्गके साथही वैदिक कालमें किन्तु महाहिमयुगके आगमनके पहले पांच ऋतुओंवाला उत्तरी ध्रुवका पञ्चाङ्ग भी प्रचलित था। इसमें सूर्यके प्रकाशके दिनोंका घटने वढनेका समय पांचसे दस महीनेतक वताया गया है। फलतः यद्यपि आर्यावर्तका छः ऋतुओंवाला असली पञ्चाङ्ग सप्तसिन्धु देशमें जोरोंके साथ प्रचलित था तोभी उत्तरी ध्रुवदेशोंकी हमारी सभ्यतामें हमें धार्मिक कर्मोंकी आवश्यकताके कारण उत्तरी ध्रुवके पांच ऋतुवाले पञ्चाङ्गका आश्रय लेनेको विवश होना पडाथा। उदाहरणके लिये ऋग्वेदमें पांच ऋतुओं या दसमहीने तक सूर्यका प्रकाश वने रहनेवाले दिनका उल्लेख हुआ है (पञ्चपादं.... १–१६४–१२; पंचारे चक्रे परिवर्तमाने .... १–१६४–१३; पञ्च पञ्चा वहन्ति .... ३–५५–१८) और ऋग्वेद १–१६४–१५ में सातवाँ ऋतुथा तेरहवाँ अधिकमासभी अपने रूपमें उपस्थित है (सप्तथमाहुरेकज) इसके १–५०–८ में सूर्यका अपने रथमें सात हरित अश्वोंको जोतेरहनाभी वताया गया है (सप्तत्वा हरितो रथे वहन्ति देवं सूर्य।); और १–१६४–२ में कहा गया है कि वह सात भिन्न भिन्न नामोंवाले घोडा अपने रथमें जोते हैं (सप्त युजन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्त नामा)। वास्तवमें उसी प्रकारके भावकी पुनरुक्ति १–१६४–३। "सप्तचक्रं-सप्तवहन्त्यश्वाः" में तथा दूसरी ऋचाओंमें भी प्रतीत होती है। इसके

सिवा १-१६४-१४ में कहागया है कि उक्त अविनाशी चाकको दस घोडे खींचते हैं (दशयुंक्ता वहन्ति) और १०-६३-९ में फिर उल्लेख हुआ है कि सूर्य दस घोडोंको जोते हैं (उतत्या हरितो दश सूरो अयुक्तयातवे)। अतएव इन एवं दूसरे प्रमाणोंसे भी यही सूचित होता है कि छः ऋतुओंवाला पञ्चाङ्ग प्राचीनतम तथा मौलिक है और पांच ऋतुओंवाला केवल संयोजक है। यह पञ्चाङ्ग पीछेसे प्रचलित हुआ था और आर्यावर्तके असली पञ्चाङ्गमें संयुक्त किया गयाथा। और यह संयोजन चाहे उसे पूर्ण करने और अपने उपनिवेशों तथा मातृभूमिके सारे व्यावहारिक कार्योंको लाभदायक वनानेके लिये हुआ हो अथवा इस लिये हुआ हो कि उसका ऐसा रूप हो जाय कि वह उस आवश्यकताकी पूर्ति करे जो उस समयके हमारे विस्तृत वैदिक साम्राज्यके दूरतम उत्तरी ध्रुवके उपनिवेशोंमें वसने वाले हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंके यज्ञोंका ठीकठीक अनुष्ठान करनक कारण उत्पन्न हों। अस्तु-आर्यजातिका मूलस्थान सरस्वती नदीका देश था अतएव मालूम होता है कि पाँच ऋतुओंवाला पञ्चाङ्ग स्पष्टरीतिसे पीछेसे प्रचलित हुआ था और उसकी संयोजना की गईथी तोभी हम इस वातको पुष्ट करनेके लिये और अधिक प्रमाण ढूंढनेका प्रयत्न करेंगे। ऋग्वेदकी ओर ध्यान देनेसे हमें १-११३-२० में क्षितिज पर लगातार कई दिनोंतक उषाओंकी उपस्थितिके सम्वन्धमें आश्चर्यका उद्गार व्यक्त हुआ मिलता है। कवि कहता है, "उषाओंको क्षितिजपर उदय हुए कितना लम्बा समय बीत चुका है अभी ये कितने समयतक उदय रहेंगी अभीतक हमारे लिये प्रकाश प्रस्तुत करनेकी इच्छुक-ये उषाएँ उनका कार्य सम्पादनकर रही हैं जो उसके आगमनके पहलेही अस्त होगये थे और जो इनके वाद आवेंगे। उनके साथ ये खुव प्रकाशित होती आगे वढरही हैं" इसी प्रकारका कथन ७-७६-३ में फिर मिलता है। यद्यपि उसकी

शब्दयोजना भिन्न प्रकारकी है। कवि कहता है, " क्षितिजपर उषाके प्रथम प्रकट होने और उसके पीछे आनेवाले सूर्यके वास्तविक उदयके बीच कई दिनोंका समय लग गया है" । परन्तु लम्बी उषाओं (३-५५-१,१६) लम्बे दिनों (३-५५-६), घटने बढनेवाली लम्बाईके

१. क-"उषसः पूर्वा अध यद् व्यूषु... । महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १ ॥"

ख-"नव्या नव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम्" ॥ २ ॥

क-"उषायें पहलेही उदय और प्रकाशित हुई थीं। देवताओंका महान् देवत्व अनुपम है "।

ख-" गायें (अर्थात् उषाएँ-धेनवः) नई और युवा होकर तथा ताजी होकर देवताओंका महान् देवत्व है जो अनुपम हैं।" (ऋ० वे०, ३-५८-१) धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहाना...,६-६४-३; वहन्ति सीमरुणासो रुशंतो गावः सुभगां...) में तथा दूसरे स्थलोंमें उषा गायके नामसे अभिहित हुई हैं।

२. "शयुः पस्तादधनुद्विमाताऽबन्धनश्चरति वत्स एकः । ....महद्देवानाम-सुरत्वमेकम् ॥ ६ ॥"

" दो माताओंकी सन्तान सूर्य-जो पश्चिममें शयन करता है निर्विघ्न अकेला भ्रमण करता है...देवताओंका महान् देवत्व अनुपम है।"

सूर्यके निर्विघ्न भ्रमणका संकेत छः महीनेके लम्बे दिनसे है, क्योंकि वह (सूर्य) ध्रुवदेशोंकी क्षितिजपर अस्त हुये तथा निम्न देशान्तर रेखाओंके देशोंमें गये विनाही महीनोंतक निर्विघ्न उदय रहता है। (ऋ० वे० १०-१३८-३)

३, क-"नाना चक्राते यम्या वपूंषि तयोरन्यद्रोचते कृष्णमन्यत् ।
श्यावी च यदरुषी च स्वसारौ महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ ११ ॥"

ऋ० वे०, ३-५५-११

ख-"पद्यावस्ते पुरुरूपा वपूंषि... । महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १४ ॥"

ऋ० वे०, ३-५५-१४

क-स्पष्ट रीतिसे उत्तरी ध्रुवकी यह एक अद्भुतवस्तु है और इस ऋचाका अर्थ मिस्टर तिलकने ठीक ही किया है (Vide, Arctic Home in the Vedas p. 137) । अतएव मैं कृतज्ञतापूर्वक उनके अनुवादको यहां उद्धृत करता हूँ । " वह जुडिआँ जोडा (प्रथम जोडा) अनेकरूप (लम्बाइयां-

दिन तथा रात (३-५५-११): और पांच ऋतुओं (३-५५-१८) को देखनेसे ऋग्वेदमें इससे अधिक आश्चर्य और अचम्भेका प्रकटीकरण (महद्देवानामसुरत्वमेकम्) हुआ है। स्पष्टरीतिसे उत्तरी ध्रुवके हमारे प्रवासियोंकी आवश्यकताके लिये ही इस पांच ऋतुवाले पञ्चाङ्गमें सुधार करना पडाथा, क्योंकि जो छः ऋतुओंवाला असली पञ्चाङ्ग मूलस्थान सप्तसिन्धु देशमें जारी था वह उत्तरी ध्रुवके लिये अनुपयुक्तथा। इससे यह साफ प्रकट होता है कि मूल स्थान सप्तसिन्धु देशमें जहां समान दिन तथा रातें जलदी २ बीत जाने-

---

–नानावपूंपि), धारण करता है इन दोनोंमें एकमें प्रकाश रहता है और दूसरेमें अन्धकार, ये दोनों परस्पर वहिने हैं, श्यावी या अंधकार और अरुषी या प्रकाश (द्वितीय जोडा) "। देवताओंका महान् देवत्व अनुपम है।

ख--पृथ्वीके देश विभिन्न स्वरूपके होते हैं अर्थात् उनमें वदलती रहनेवाली लम्बाईयोंके दिन और रातें होती हैं। यहभी उत्तरी ध्रुवकी विशेपता है जिसके सम्बन्धमें हम पहलेही विस्तारसे लिख चुके हैं।

१. "पंच पंचा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥" ऋ० वे०, ३-५५-१८ "यद्यपि ऋतुयें असलमें छः मालूम पडती हैं, परन्तु उत्तरी ध्रुवकी आवश्यकताओंके लिये वे घटाकर पांच करदी गई हैं (पंच पंचा वहन्ति) देवताओंका महान् देवत्व अनुपम है। जो असली छः ऋतुयें आर्यावर्तमें होतीथीं, वही उत्तरी ध्रुवमें आवश्यकताके कारण दो ऋतुओंको मिलाकर पांच करदीगई मालूम पडती हैं (हेमन्त और शिशिरको एक करके: "पंचर्तवो हेमन्तशिशिरयोः समासेन तावान् संवत्सरः" (ऐ० ब्रा० १-१), परन्तु कोई दो ऋतुओंके मिलादेनेका यह उपाय छः ऋतुओंके मालिक समूहको घटाकर पांच कर देनेके हेतुसे उपयुक्त नहीं समझा गया था और न सब कोई उसे स्वीकार करनेको उससे प्रेरितही हुये थे और न वह सुभीतेकाही साबित हुआ था। क्योंकि ऐतरेय ब्राह्मणमें इसका विरोध किया गया है. और यह लिखा गया है कि " कोई ऋतु किसी दूसरी (ऋतुके) घरमें नहीं रहती है।" (नर्तुर्ऋतोर्गृहे वसतीत्याहुः...ऐ० ब्रा०, ५-९ (Dr. Hang's p. 118)

वाली उषाओं और सन्ध्याओंके सहित होती हैं, लम्बी उषाओं जैसी अद्भुत वस्तु, जो क्षितिजपर कई दिनोंहीतक नहीं किन्तु महीनोंतक बराबर बनी रहतीथी कभी नहीं देखीगई है और नवीन तथा अनभ्यस्त लम्बी तथा लगातार बनीरहनेवाली उषाओंके दृश्यसे (पूर्वोक्त लम्बे दिनों और रातोंके सम्बन्धमें तो अभी कुछ कहनाही नहीं है) हमारे वैदिक पूर्वपुरुष स्वाभाविक रीतिसे चकित हुये थे जब कि उन्होंने उत्तरी ध्रुव देशोंमें उपनिवेश स्थापित किये और वे उनमें आबाद हुये थे । क्योंकि उन्होंने एकके बाद दूसरी लगातार तीन उषायें और वह भी अखण्डित तथा अबाधित रूपमें प्रकट होती देखी थीं जैसा कि तैत्तिरीय संहिताके निम्नलिखित अवतरणोंसे प्रकट होगा:-

१. " इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छत् ..... ।
त्रय एनां महिमानः सचन्ते ॥ "

२. " छन्दस्वती उषसा पेपिशाने .... ।
विचरतः .... केतुं कृण्वाने अजरे .... ॥."

३. " ऋतस्य पन्थानमनु तिस्र आगुः.... ।
प्रजामेका रक्षत्यूर्जमेका व्रतमेका रक्षति देवयूनाम् ॥ "

४. " चतुष्टोमो अभवद् या तुरीया .... ॥ ....

५. त्रिंशत्स्वसार उपयन्ति निष्कृतश्समानं केतुं प्रतिमुंचमानाः॥२॥"

(तै० सं० कां ४, प्र० ३, अ० ११)

१. "यह वही है (उस पंक्तिकी पहली उषा) जो सर्व प्रथम उदय हुई। तीन बडी उषाएँ उसके बाद आई। "

२. " दो उषायें (अर्थात् दूसरी उषा और पहली, इसतरह मिलकर संख्यामें दो हो गईं) गीतोंसे संयुक्त इधर उधर घूमरही हैं । वे सलग्न और सुसज्जित हैं । उनके झंडे गडे हैं ।

३. "(तब तीसरी उषा क्षितिजपर आती है और पहलेकी दो उषाओंमें मिलजाती है) तीन कुमारिकायें (इस तरह) रित (लौकिक क्रम) के मार्गसे आयी हैं। (इनमेंसे एक संतानकी रक्षा करती है,) दूसरी शक्तिकी और तीसरी व्रतधारियोंके नियमोंकी"।

४. "जो चौथी है वह चतुर्थ सोम स्तोम बनगयी हैं।"

५. "तीनों बहिनें वही झंडा धारण किये। (इस तरह एकके बाद दूसरी प्रकट होती हुई) लक्ष्य स्थानकी ओर जाती हैं।"

उत्तरी ध्रुवदेशकी वस्तुओंके नवीन क्रमकी यह नूतनता और उनके आश्चर्यजनक स्वरूप, जिन्हें हमारे पूर्वपुरुषोंने अपने मूलस्थान सप्तसिन्धु देशका परित्याग करनेके बाद देखा था, उन असाधारण अद्भुत वस्तुओंको प्रमाणित करती हैं जो वहां उनके देखनेमें आयी थीं। उत्तरी ध्रुवके उपनिवेशोंमें रहते समय उन्होंने उन वस्तुओंके अनोखेपनका निर्देश किया थां जो उनके आसपास थी तथा जो उनकी निगाहमें आयी थीं।

अब हम अपना ध्यान एक दूसरे प्रमाणकी ओर देते हैं। वह हमारे मूलस्थान आर्यावर्तके छः ऋतुओंवाले असली पञ्चाङ्ग तथा पीछेके पांच ऋतुवाले पञ्चाङ्गको, जो हमारे उत्तरी ध्रुवके उपनिवेशोंके लिये उपयुक्त था, प्रमाणित करता है। मैंने पहले ही विचार किया है छः ऋतुयें देवानिर्मित होनेसे (ऋ० वे० १—१६४—१५) प्राकृतिक और असली थीं। इसके समर्थनमें हम ऐतरेयब्राह्मणमें यह भी लिखा पाते हैं कि प्रजापति (या स्रष्टा) वर्ष है जिसमें बारह महीने होते हैं। इस तरह छः ऋतुओंमें विभाजित एक वर्ष होता है (द्वादश वै मासाः संवत्सरः संवत्सरः प्रजापतिः (ऐ० ब्रा० १—१३; भवंति षड्वा ऋतवः.... । ऋतुश एव वत्संवत्सरमाप्नुवन्ति.... ऐ० ब्रा० ४—१६). परन्तु जब हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंने उत्तरीध्रुवदेशोंमें उपनिवेश स्थापित किये तब उन्होंने

देखा कि आर्यावर्तमें प्रचलित छः ऋतुओंवाला या बारहमहीनेके सूर्य प्रकाशका पञ्चाङ्ग, यहां उत्तरी ध्रुवके उपनिवेशोंमें काम नहीं देगा। अतएव वैदिक याज्ञिकोंने उत्तरी ध्रुवकी आवश्यकताके लिये बारह महीनोंके सूर्यके प्रकाशके छः ऋतुओंको दस महीनोंके सूर्य प्रकाशके पांच ऋतु करदिये। उन्होंने दो ऋतुओंको अर्थात् हेमन्त और शिशिरको मिलाकर एककरदिया था। परन्तु यह एक नूतन परिवर्तन और बिल्कुल नया उपाय था। साधारण तौरसे वह सबको पसन्द न हुआ। अतएव इस विषयमें उस समयभी स्वाभाविक रीतिसे मतभेद और विभिन्न सम्मतियाँ हो गईं। क्योंकि जब एक ओर, हमारे पूर्वपुरुषोंको अपने मूलस्थान आर्यावर्तका परित्याग करने और उत्तरी ध्रुवको आबाद करनेके बाद, जहां उत्तरी ध्रुवकी आवश्यकताओंकी ओर उन्हें समुचित ध्यान देना पडता था कुछ लोग हेमन्त और शिशिरऋतुओंको एकमें करनेकी रायमें थे जैसे कि ऐतरेय ब्राह्मण और तैत्तरीय संहितासे प्रकट होता है तब दूसरी ओर शतपथब्राह्मण वर्षा और शरद ऋतुओंको एकमें शामिल करताथा। इस तरह यह मालूम होता है कि ऐतरेय ब्राह्मण और तैत्तरीय संहिता उपर्युक्त छः ऋतुओंकी दो ऋतुएँ एकमें मिलाकर पांच कर देनेके सम्बन्धमें शतपथ ब्राह्मणसे सहमत नहीं थी। परन्तु किसी भी प्रामाणिक ग्रन्थमें प्रस्तावित मिश्रण या दो मुख्य ऋतुओंको चुननेके लिये तर्क संयुत कारण नहीं प्राप्त होते हैं और न कहीं मतभेदहीका कोई कारण उल्लेख किया गया है।

---

१. द्वादशमासाः पञ्चर्तवो हेमन्तशिशिरयोः समासेन तावान्संवत्सरः। १-१

२. हेमन्तशिशिरावृतूनां प्रीणामि तौ मा प्रीता प्रीणीताम्॥ (तै० सं० १-६-२-३)

३. पंचर्तवः संवत्सरः...... (श० प०, १२-१-१०-२)
वर्षाशरदावृतू...... (श० प०, १६-६-१-१०)

अतएव परिणामकी मुख्य बात न तो 'ऋतुओंका समूह है जो छः ऋतुओंको पांच कर देनेमें प्रयुक्त हुई थी' और न यही बात है कि 'वहां छः ऋतुओं या पांच ऋतुओंवाले पञ्चाङ्ग प्रचलित थे, किन्तु वह यह है कि इन दोनों पञ्चाङ्गोंमें कौन प्राचीनतम और असली है। क्योंकि हमारे मूलस्थानका निर्णय यही बात करेगी। इस बातमें तो किसी प्रकारका सन्देहही नहीं है कि हमारे परम्परागत यज्ञोंके कार्यों और तत्कालीन आदर प्राप्त रीति रीवाजों तथा प्रचलित धार्मिककृत्योंके अनुष्ठानके लिये आर्यावर्त और उसके उपनिवेशोंमें छः[1] ऋतुओंवाला पञ्चाङ्ग पांच ऋतुओंवालेके साथ साथ प्रचलित था। क्योंकि हम देखते हैं कि ऋग्वेदके पुरातन युगमें भी छः ऋतुओंवाला पञ्चाङ्ग पांच ऋतुओंवालेके सदृश भिन्न भिन्न स्थानोंमें अर्थात् पहला आर्यावर्त या मूलस्थान सप्तसिंधु देशमें और दूसरा पूर्व हिमयुगवाले उत्तरी ध्रुवके उपनिवेशोंमें पूर्णरीतिसे प्रचलित था। ऐसी दशामें स्वाभाविक रीतिसे दो मत थे। और वे उपयोगी समझे जाते थ। अतएव अब हम यह विचार करेंगे कि ये मत कौन कौन थे? मैं यह पाठकोंके सामने मुख्य मुख्य वैदिक वाक्योंके अवतरण उपस्थित करनेका साहस करूंगा। क्योंकि वे केवल रोचकही नहीं हैं, किन्तु अत्यंत शिक्षाप्रदभी हैं। छः ऋतुओंवाले पञ्चाङ्गके सम्बन्धमें प्रकाश डालते हैं और इस तरह आर्यावर्तके मूलस्थान होनेकी बातको सिद्ध करते हैं। ऋग्वेदकी ओर मुडनेपर पहले मैं उसकी एक ऋचा उद्धृत करूँगा और तब कोष्ठकोंमें आवश्यक व्याख्या देकर उसका अक्षरसः अनुवाद करूँगा—

"पंच पादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।
अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम्॥"

ऋ० वे० १-१६४-१२.

---

१. द्वादश मासाः वै संवत्सरस्य...... (श० प० १२-१-१०-२) षड्वा ऋतवः संवत्सरस्य संवत्सरो यज्ञः प्रजापतिः (श० २-२-२-३)

वे कहते हैं (आहुः अर्थात् कुछ लोगोंकी सम्मति है) कि वह पिता (पितरं) जिसके बारह स्वरूप हैं (द्वादशाकृतिं) अर्थात् या सूर्य वर्षरूपी देवता या बारह महीने या छः ऋतुओंका चक्र) पांच पैरवाला या पांच ऋतुओंवाला (भी) और वाष्पोंसे (पुरीषिणं) पूर्ण है । जब आकाशके (दिवः) अगले अर्द्ध भागमें (परे अर्द्धे) होताहै । दूसरे लोग (अथेमे अन्य) भी यह मानते हैं (आहुः) ;(कि) वह दूरदर्शी (विचक्षणम्) है । क्योंकि वह दस महीनेके आगे भी देखता है (अतएव वर्षके बारहों महीनों पर पूर्ण दृष्टि रखता है) और छः ऋतुओं या छः कही गई वस्तुओं (षडरे) पर स्थित है । और सात[1] (रंगवाली किरणोंके) चक्र (सप्तचक्रे) आकाशके समीपस्थ अर्द्ध भागमें " ।

अस्तु—पाठकोंने जान लिया होगा कि जो ऋचा ऊपर उद्धृत कीगयी है उससे यह बात स्पष्ट विदित होजाती है कि उसमें छः ऋतुओंका या बारह महीनोंवाला पञ्चाङ्ग जो भूमण्डलके एक भागमें प्रचलित था— निर्भ्रान्त उल्लेख है एवं पांच ऋतुओं या दस महीनेवालेका भी जो दूसरे अर्द्ध भागमें प्रचलित था (दिवः परे.. अर्द्धे..पंचपादं..) अतएव यह एक बहुतही समयानुकूल प्रश्न आपही उठ खडा होता है, " इन दोनों पञ्चाङ्गोंमें कौन प्राकृत असली, देव निर्मित या प्राचीनतर है और कौन मनुष्य निर्मित, कृत्रिम पीछे या हालका है ? " ऐसी दशामें यह देखना आवश्यक मालूम पडता है कि इस विषयके

---

१. स्पष्ट रीतिसे ज्ञात होता है कि यह संकेत सात क्षेत्रवाले सात रंगोंसे सम्बन्ध रखता है जिसमें आकाशकी एक किरण एक क्षेत्रसे होकर गुजरनेमें शामिल है । ये रंग लाल, पीला, नीला, नारंगी, हरा, नीला और बैजावी हैं । स्पष्टरीतिसे ऋग्वैदिक तथा पूर्व ऋग्वैदिक कालमेंभी (ऋ० वे९, १ १६४-१) ये रंग विज्ञानपर एक प्रकारकी गहरी नजर डालते हैं । अथर्ववेदमें भी सूर्यकी सात प्रकाशमान किरणोंका उल्लेख हुआ है (सप्त सूर्यस्य रश्मयः ७-१०७-१) ।

सम्बन्धमें क्या ऐसा कोई प्रमाण मिलसकता है जो हमें अभिलषित परिणाम प्रदान कर दे।

मैंने पहलेही बतला दिया है कि ' षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति ' (ऋ० वे० १-१६४-१५) यह वाक्य विशेष अर्थगर्भित है। इससे हम समझ सकते हैं कि केवल छः ऋतुयेंही देवनिर्मित या ईश्वरसे उत्पन्न हैं। अतएव इसका यह अर्थ है कि वे असली या प्राकृत हैं और वे कृत्रिम या समयकी आवश्यकता पूरी करनेके लिये बनावटी नहीं थी। उदाहरणके लिये हेमन्त और शिशिर दो ऋतुओंको एकमें मिलाना और इस तरह चार महीनेका एक संयुक्त ऋतु बना लेना जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण और तैत्तरीय संहितामें वर्णित है या वर्षा और शरदका उल्लेख जैसा शतपथ ब्राह्मणमें है। दूसरे वैदिक प्रमाणोंकी ओर ध्यान देनेसे हम देखते हैं कि ऋतुओंकी यथार्थ संख्या या महीनोंके सम्बन्धमें पक्ष या विपक्षका पूर्ण विचार करके जब प्रश्न उठा था कि-कितने सूर्य होते हैं ?–(कतम आदित्या इति) तब इस आशयका उत्तर मिलाथा कि " बारह महीने होते हैं " और " वर्षके बारह सूर्योंके ये प्रतिनिधि हैं " (द्वादश मासाः संवत्सरः सैत आदित्याः। श० प० ब्रा० ११-६-३-८) क्योंकि वे प्रजापतिद्वारा निर्मित बारह बूंदोंसे उत्पन्न हुएहैं और भिन्नभिन्नदेशोंमें कायम किये गये हैं (स द्वादश द्रासान्गभ्यभवत् । ते द्वादशादित्या असृ-ज्यन्त तान्दिक्षूपादधात् । श० प० ब्रा० ६-१-२-८)। अतएव इससे यह बात स्पष्ट होजाती है कि प्रजापतिद्वारानिर्मित महीनोंकी यथार्थ संख्या बारह थी। इन्हींसे दो दो महीनेके ऋतुएँ स्पष्ट बन गयीं. महीनोंकी वास्तविक संख्या दश नहीं थी. या वैसेही ऋतुओंकी पांच नहीं थी यह भी इसीसे सिद्ध होजाता है। क्योंकि शतपथ ब्राह्मणके मूल पाठमें स्पष्ट अंकित है, " वह (प्रजापति बारह बूंदोंसे संगर्भित हुआ था। और इन्होंने बारह आदित्योंको उत्पन्न किया था;

जो कि (आकाश) के भिन्नभिन्न स्थानोंमें स्थापित किये गये थे।”
अतएव प्रजापति या स्रष्टा द्वारा पहले वारह महीनोंके निर्मित होनेकी
वातसे यह सिद्ध होती है कि छः ऋतुवाला वर्ष या वारह महीनों-
वाला पञ्चाङ्ग असली तथा प्राचीनतर था, और पांच ऋतुओंवाला
या दस महीनोंवाला पीछे तथा हालका है जो कि वादको उत्तरी
ध्रुवकी आवश्यकताओंके अनुसार और वहांके हमारे प्रवासियोंके
सुभीतेके लिये अङ्गीकार किया गया था। इस वातको और भी दृढ
करनेके लिये हमें एक दूसरे प्रमाणका आश्रय लेना पडेगा और हम
उन सत्रोंसे इस वातका साक्ष्य देनेका प्रयत्न करेंगे जो ‘वार्षिक
यागिय अयन’ कहेजासकते हैं। इनमें (१) आदित्यानाम-
यनम् (२) अङ्गिरसामयनम् (३) गवामयनम् इत्यादि अधिकतर
मुख्य हैं। ये वहुत पुरातन हैं और इनमें एक दूसरेसे परस्पर कोई
भिन्नता नहीं है। ये एकही आदर्श, एकही ढंग या एक वस्तुके परि-
वार्द्धितरूप या उसके भेदमात्र हैं। अस्तु—गायका चलना या
गवामयनम् नामके यागीय अयनमें आदित्योंका चलना या
आदित्यानामयनम् सत्र भी शामिल है। क्योंकि गायें, आदित्य
या महीनोंके देवता हैं जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है—
“गावो वा आदित्या आदित्यानामेव तदयने नयन्ति (४–१७)।
अतएव हम यहां इस दृष्टिसे ऐतरेय ब्राह्मणका अवतरण देकर यथार्थ
विवरण देगें कि, पाठक इस वातको जाननेमें समर्थ हो जांय कि कौन
पञ्चाङ्ग असली और प्राचीनतर है, छः ऋतुओं और वारहमही-
नोंवाला पञ्चाङ्ग है या पांच ऋतुओं और दस महीनोंवालाहै?
“गावो वै सत्रमासताशफाँ शृङ्गाणि सिषा सत्यस्तासां दशमे मासि शफाः
शृङ्गाण्यजायन्त। ता अब्रुवन् यस्मै कामायादीक्षामुह्यावाम तमुत्ति-
ष्ठामेति ता या उदातिष्ठंस्ता एताः शृङ्गिण्योऽथ याः समापयिष्यामः
संवत्सरमित्यसततासामश्रद्धया शृंगाणि प्रावर्तन्तता एतास्तूपरा ऊर्जं।

त्वसुत्वंस्तस्माद्गुता: सर्वानृतून्प्राप्त्वोत्तरमुत्तिष्ठंत्यूर्जे ह्यसुन्वन् सर्वस्य वै गाव: प्रेमाणं सर्वस्य चारुतां गता:.... (ऐ० ब्रा० ४–१७)

उपर्युक्त अवतरणका जैसा अनुवाद डाक्टर हागने अंगरेजीमें किया है उसका भावार्थ मैं नीचे देता हूं:–" खुर और सींग प्राप्त करनेकी इच्छासे गायोंने (एकवार) सत्र कियां ॥ (अपने) सत्रके दसवें महीनेमें उन्होंने खुर और सींग प्राप्त किये। उन्होंने कहा कि हमारी उस इच्छाकी पूर्ति हो गयी है जिसके लिये हमें यज्ञके अनुष्ठानमें दीक्षित होना पडा। अव हमें उठना चाहिये। (यज्ञ समाप्त हो गया) जब वे खडी हुई तव उनके सींग हो आये थे। पर उन्होंने सोचा, ' आओ हम लोग इस वर्षको पूरा करदें ' और सत्र फिर प्रारम्भ हुआ। उनके अविश्वासके कारण उनके सींग लुप्त हो गये। फलत: वे सींग रहित हो गयीं। (अपना) सत्र जारी रखते हुए उन्होंने प्रतिमा (ऊर्ज) प्रकट की तवसे (वारह महीनेतक यज्ञ करते रहने और) सव ऋतुओंको प्राप्त करनेके अनन्तर वे (फिर) उठीं। क्योंकि (जव सींग खुर इत्यादि मुरझा रहे थ तव इन्हें फिर उत्पन्न करनेके लिये उन्होंने दृढता दिखलायीथी। वे गायें आपही सारे (जगत) की प्रिय वनगयीं और सवलोग उन्हें संवारते हैं (सजाते हैं। ऐत० ब्रा०) (Translated by Dr. Hang p. 287 Vol. 2 Ed. 1863) उपर्युक्त अवतरण और उसका अनुवाद स्पष्ट है। उससे प्रकट होता है कि पुरातन कालमें एक समय छ: ऋतुओं या वारह महीनेका पञ्चाङ्ग पांच ऋतुओं या दस महीनेके पञ्चाङ्गके साथ प्रचलितथा। और जो एकमात्र प्रश्न हल होनेको रहजाता है वह यह है कि " उपर्युक्त दोनों पञ्चाङ्गोंमें कौन प्राचीन तर है" पूर्वोक्त अवतरणमें " समापयिष्यामः संवत्सरम्" आओ हम लोग वर्ष पूरा करें इस आशयका गायोंका जो वाक्य है, वह वास्तवमें गम्भीरअर्थसे गर्भित है। यही नहीं

किन्तु इसके साथही यह वातभी है कि अपने संकल्पके वाद गायें वास्तवमें बैठी थीं और सत्रका प्रारम्भ फिर किया था। इस वातसे वारहमहीनेके पूर्ण वर्षकी जानकारी तथा परिचयकी ही पूर्व कल्पना नहीं व्यक्त होती, किन्तु इसके सिवा यह भी प्रकट होता है कि वे दीर्घकाल तक इस वारह महीनेवाले वर्षहीसे अभ्यस्त रहीं है। यह वात उस समयके पहलेकी है जब उनकी घनिष्ठता उत्तरी ध्रुवदेशोंसे हुईथी और जहां केवल पांच ही ऋतुएँ होतीथीं या दसमहीनेका सूर्य प्रकाश होता था। क्योंकि यह वात स्पष्ट है कि जो गायें बैठीथीं और जिन्होंने विना उठेही सत्रका आरम्भ फिर कर दिया था उन्होंने अपनी जानकारी तथा निजके अनुभवके कारण वैसा किया था. क्योंकि दस महीनेका समय, (दशमे मासि) जिसमें कुछ गायोंकी इच्छा (जिन्होंने सम्भवतः वस्तुओंके प्राचीन क्रमको पहले कभी नहीं देखाथा, क्योंकि वे उस देशमें नहीं थीं जहां छहों ऋतुये होती हैं।) पूर्ण हुई थी और उनके खुर तथा सींग दसमहीनेके भीतरही हो आये थे (दशमे मासि शफाः शृङ्गाण्यजायन्त) वहुतही अल्प था और वह (वारह महीनेका) साधारण तौरसे असली तथा पूर्ण वर्ष पूरा करनेके लिये विलकुल पर्याप्त नहीं था। अतएव वारह महीनों या छः ऋतुओंकी यह स्मृति तृतीयकालनियुगके उस पुरातन पञ्चाङ्गका अत्यन्त प्राचीन चिह्न माल्हम पडती है जो कि सप्तसिन्धु देशमें पहलेहीसे प्राप्त थी। जव हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंने उत्तरी ध्रुवदेशोंको आवाद किया था और जव वहां नौ वस्तियाँ स्थापित हो गयी थीं तव हमारी धार्मिक क्रियामूलक आवश्यकताओंके कारण हमारे वैदिक पूर्वपुरुषोंको छः ऋतुओं या वारह महीनोंके प्राचीनतर पञ्चाङ्गमें समुचित परिवर्तन करने और उसे हमारे उत्तरी ध्रुवके उपनिवेशोंकी वस्तुस्थिति एवं उसकी आवश्यकताओंके

उपयुक्त बनानेको पांच ऋतुओं या दस महीनेवाला पञ्चाङ्ग तैयार करना पडा था। पूर्वोक्त यागीय अयन, जो गवामयनम् या गायकी चालके नामसे प्रसिद्ध है और जिसका उल्लेख ऐतरेयब्राह्मणमें हुआ है, अपने ढंगका एक अकेला उदाहरण नहीं है। क्योंकि तैत्तरीय संहितामें, जो यागीय क्रिया-कर्मोंके सम्बन्धमें अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ है और जो अत्यन्त प्राचीनभी माना गया है. हम देखते हैं कि " गायोंकी चाल " यद्यपि कुछ परिवर्तनके साथ, उसी तरह वर्णित है। हम इसका विचार अभी आगे करेंगे। उक्त संहितामें यह वर्णन भी आता है कि 'गवामयनम्' दस या बारह महीनेमें, यज्ञ करने-वालेकी जैसी इच्छा हो, पूर्ण किया जा सकता है। उल्लेख करनेके सुभीतेके विचारसे उक्त ग्रन्थका अवतरण उसके अनुवादके सहित मैं यहां उद्धृत करता हूं। क्योंकि समुचित तुलनाके लिये यह अवतरण उपयोगी होगा—

"गावो वा एतत्सत्रमासताशृंगाःसतीः शृंगाणि नो जायंतां इति कामेन। तासां दशमासा निषण्णा आसन्नथ शृंगाण्यजायंत ता उदतिष्ठन्नरात्स्मेत्यथ यासां नाजायंत ताः संवत्सरमाप्त्वोदतिष्ठन्न रात्स्मेति। यासां चाजायंत यासां च न ता उभयीरुदतिष्ठन्नरात्स्मेति।"
तै० सं० ७-५-१-१, २.

"इस अयनका समारोह गायोंने इस इच्छासे किया, कि हम शृंगरहि-तोंकें शृंग होजायँ। उनका सत्र दस महीने (तक) में समाप्त हुआ. जब सींग हो आये तब वे यह कहतीहुई उठीं, 'हमने पा लिया'। परन्तु वे गायें जिनके सींग नहीं हो आये थे वे वर्ष पूरा करनेके बाद यह कहतीहुई उठीं, 'हमने पा लिया है'। जिनके सींग हो आये थे और जिनके नहीं हो आये थे ऐसी दोनों प्रकारकी गायें यह कहती उठीं, 'हमने पा लिया है'। फलतः एकबार फिर इसी प्रश्नका

उल्लेख हम तैत्तरीय संहितामें पाते हैं और उसके साथही इस बातका संकेतभी हुआ है कि यागीय अयनोंका अनुष्ठान करनेसे उद्देशकी सिद्धि हो गयी है। (यज्ञसे) गायें चाहें दसवें महीनेमें उठे या बारहवेंमें। मूल प्रमाण महत्त्वका है। अतएव उल्लेख करनेके सुभीतेके विचारसे उक्त अवतरणका उल्लेख उसके अनुवादके सहित मैं यहां उद्धृत करता हूं:—

"गावो वा एतत्सत्रमासताश्रृंगाः सतीः श्रृंगाणि सिषासंतीस्तासां दशमासा निषण्णा आसन्नथ श्रृंगाण्यजायंत ता अब्रुवन्नरात्स्मोत्तिष्ठामाव तं काममरुत्स्महि येन कामेन न्यपदामेति तासामुप्त्वा अब्रुवन्नर्धा वा यावतीर्वाऽऽसामहा एवेमौ द्वादशौ मासौ संवत्सरं संपाद्योत्तिष्ठामेति तासां द्वादशेमासि श्रृंगाणि प्रावर्तन्त श्रद्धया वाऽश्रद्धया वा ता इमा यास्तूपरा उभय्यो वाव ता आघ्नुवन् याश्च श्रृंगाण्यसुन्वन् याश्चोर्जमवारुंधतध्नोति दशसु मासूत्तिष्ठन्नृध्नोति द्वादशसु य एवं वेद पदेन खलु वा एते यंति विदंति खलु वै पदेन यन्तद्धा एतदृद्धमयनं तस्मादेतद् गोसनि। (तै० सं० ७-५-२-१, २)

" सींग रहित होनेसे गायोंने और सींग प्राप्त करनेकी इच्छासे इस यागीय अयनका अनुष्ठान किया। उनका अयन इस महीनों (में) समाप्त हुआ। जब सींग हो आये तब उन्होंने कहा, ' हमने पा लिया है, हमें उठना चाहिये। हमारी वह इच्छा पूरी हो गयी जिसके लिये हम बैठी थीं (अयन आरम्भ किया) आधी या उनकी आधी या उतनी ही गायोंने कहा, ' निस्सन्देह हम बारहवें महीनेतक बैठेंगी और वर्ष पूरा करनेपर उठेंगी। विश्वासानुसार उनमें कुछको बारहवें महीनेंमेंसींग हुये। और अविश्वासके कारण वे गायें जो शींग रहित दिखायी पडतीं हैं (जैसी की तैसी रहगईं) जिनको सींग हो आये और जिनमें दृढता आगई ऐसी दोनों प्रकारकी गायोंने अपना उद्देश इस तरह सिद्ध किया था। जो कोई इसे जानता है वह फलता फूलता है। यज्ञसे वह चाहे दसवें महीनेमें

उठे या बारहवें में। वास्तवमें वे राहपरही जाते हैं। जो मार्गसे जाताहै वह वास्तवमें (उद्देश) प्राप्त करता है। अर्थात् वह अयन सफल होता है। अतएव यह गोसनि अर्थात् गायोंको लाभकारी है। इस तरह यह बात स्पष्टरीतिसे ज्ञात हो जायगी कि पूर्णवर्ष सदा बारह महीनेका माना जाता था और दस महीनेवाला वर्ष अधूरा

१ क—"समापयिष्यामः संवत्सरम्...(ऐ० ब्रा० ४-१७)"

ख—"यासां दशमे मासि नाजायन्त ताः संवत्सरमाप्त्वोदतिष्ठन्नरात्स्मेति" (तै० सं०, ७-५-१-१-२,)

ग—"आसामहा एवेमौ द्वादशौ मासौ संवत्सरं संपाद्योत्तिष्ठामेति" तै० सं० ७-५-२, १२ यहां यह बात भी समझलेनी चाहिये कि संवत्सरशब्द केवल बारहमासी वर्षके लिये प्रयुक्त मालूम पडता है और यह बात ऐतरेय ब्राह्मणमें दृढतासे कही और दुहरायीगयी है कि एक वर्षमें बारह महीने होते हैं (द्वादश मासाः संवत्सरः...ऐ० ब्रा० १-१; १-१३, २-२१, ६-१९) अतएव यह स्पष्ट सिद्ध हुआ कि बारहमासी वर्ष प्रजापतिका वर्ष है या दूसरे शब्दोंमें देवनिर्मित तथा प्राकृतिक है और दसमासी मनुष्य निर्मित तथा कृत्रिम है अथवा जो समयानुसार काम निकालनेहीके लिये बनाया गया था। गायोंके सम्बन्धमें तो मैं पहलेही कह आया हूं कि उस शब्दका अर्थ क्या है ? अतएव अध्यापक मैक्समूलरके कथनको उनकी सम्मति जाननेके लिये यहां मैं उद्धृत करता हूं। वे लिखते हैं, " इस तरह वहां तीन प्रकारकी गायें थीं, यथार्थ गायें, काले बादल (मेघरूपी दूध) की गायें और वे गायें जो रातके अन्धकारके स्थानसे निकल रही हों (प्रभातकी किरणें)। वेदमें इन तीनोंको पहचान लेना सरल काम नहीं है। यही नहीं किन्तु जब हम स्वाभाविक रीतिसे उन्हें पहचाननेका प्रयत्न करते हैं तब स्वयम् कविही उन्हें गडबडीमें डालदेनेमें प्रसन्न मालूम पडता है। उपर्युक्त उद्धृत अवतरणमें (१-३२-११) हमने देखा है कि वेदमें जलकी तुलना उन गायोंसे कैसे दी गयी है जिन्हें जलने (निरुद्धः आपः पतिनैव गावः) चुरा लिया था। परन्तु वेदमें जिस वस्तुकी तुलना कीजाती है वह शीघ्र पहचान लीजाती हैं। उषाके सम्बन्धमें, सो केवल गायसे उसकी तुलना ही नहीं कीगयी है वरन् वह स्पष्ट गाय कही गयी है। अस्तु—जब हम ऋग्वेद (१-९२-१) पढते हैं, " इन

तथा त्रुटिपूर्ण. और जिन बारह महीनोंसे वर्ष पूरा होता है, दस महीनोंसे नहीं, उनकी परम्परा ताण्ड्यब्राह्मणमें मिलती है और जैसा कि, उसमें वर्णन हुआ है कि (यद्यपि कुछ) गायोंको दसवें महीनेमें सींग हो आये थे, दूसरी गायोंने दस महीने बीत जानेके बाद कहा कि, हम शेष दो महीनोंतक और बैठी रहेंगी, बारहमहीनोंका पूर्ण वर्ष बिता डालनेको (जो आवश्यक है) बैठी रहेंगी (गावोवा एतत्सत्र मासत। तासां दशसु मास्सु शृङ्गाण्यजायन्त...(४-१-१)...तासन्त्वेवाब्रुवन्मासा महा एवेमौ द्वादशौ मासौ स्८ संवत्सरमापयामेति । (तां० ब्रा० ४-१-२) इस तरह पाठक अपने सामने उपस्थित इन सारी बातोंसे सरलता पूर्वक जान जायँगे कि संहिता और ब्राह्मणोंके रचयिता वास्तवमें उस समय भी जब ये ग्रन्थ निर्मित हुये थे इस बातसे परिचित थे कि पांच ऋतुओंवाले पञ्चांग या दसमासी वर्षके साथ एक समय छः ऋतुओंवाला पञ्चांग या बारहमासी वर्ष प्रचलित था अतएव ऐतरेय ब्राह्मणकी

—उषाओंने आकाशके पूर्वार्द्धको प्रकाशित कर दिया। ये अपना प्रकाश फला रही हैं प्रकाशमान गायें माताओंके पास जा रही हैं" तब गायें केवल उषायें हो सकती हैं। उषा वहां सदा बहुवचनमें प्रयुक्त हुई हैं जहां हम उसे एक वचनमें प्रयुक्त करना चाहते हैं"। ऋग्वेदके दूसरे स्थलोंमें मिलती है, जैसे (१-६२-३; १-९३-४; २-१९-३; २४-३; २-२८-२; २-३४-१; ४-५२-२; ५-१४-४;) इत्यादि दूसरी जातियोंके पुराणोंके सम्बन्धमें लिखते हुए अध्यापक मैक्समूलर आगे कहते हैं, 'परन्तु जो बात महत्त्वकी है और उस बातको निश्चित करती है वह यह है कि ये गायें या उषाकी ये गायें या बैल या उदीयमान सूर्यकी उल्लेख दूसरी पौराणिक गाथाओंमें भी हुआ है और वहां उनका अर्थ स्पष्ट रीतिसे दिनोंसेही है। वे १२×३० जैसे गिने गये हैं अर्थात् १२ चान्द्रमासोंके ३० दिन..."। (Contribution to the Science of my thology Vol. 2 p. 761)

यह घोषणा ज्योंकी त्यों कायम रही कि, असली आदिम और पूर्ण वर्षमें छः ऋतुयें या बारह महीने होते हैं और पांच ऋतुओं या दस महीनेवाला वर्ष कृत्रिम, अपूर्ण और दोष युक्त है। क्योंकि छः ऋतु-ओंको घटाकर पांच ऋतुयें नहीं कीजासकती न और कोई दो ऋतुयें एकमें मिलाई ही जा सकती हैं। क्योंकि उसमें लिखा है, " कोई ऋतु किसी दूसरी ऋतुके घरमें नहीं रहती " (अर्थात् कोई दो ऋतु मिलाकर एक ऋतु नहीं बनायी जा सकती) (नर्तुर्ऋतोर्गृहे वसतीत्याहुः। ऐ० ब्रा० ५-९.)

अस्तु-ऐतरेयब्राह्मणकी इस आशयकी सूचना कि वर्ष छः ऋतुओं या बारह महीनेका होता है इस कारणसे नहीं दी गई मालूम पड़ती कि उसका निर्माता मनमौजी या निरंकुश था अपनी कल्पनाकी हवस मिटाने तथा दूसरोंकी मन मौजको प्रोत्साहित करनेके लिये उसने उसका उल्लेख नहीं किया है, किन्तु उसने इस कारण किया है कि वह उन अत्यन्त समादृत रीतियों और अत्यन्त प्राचीन परम्पराओंसे प्रेरित हुआथा जो केवल शतपथब्राह्मणमें ही नहीं मिलती हैं, किन्तु स्वयम् ऋग्वेदमें भी अंकित हैं। उस ऋग्वेदमें जिसे प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वानोंने भी जगतका प्राचीनतम ग्रन्थ कहकर स्वीकार किया है। इसके सिवा जब एक ओर शतपथब्राह्मणमें उल्लेख है कि बारहमहीनेके बारह सूर्योंको प्रजापतिने बनाया है। तब यह स्पष्ट होगया कि बारह मासी वर्ष प्राचीनतम है और उसका उपयोग होता था। तब दूसरी ओर ऋग्वेदमें भी छः ऋतुओंका उल्लेख देवनिर्मितरूपमें हुआ है और इस रूपसे सूचित होता है कि छः ऋतुओंवाला या बारहमासी वर्ष असली और अत्यन्त प्राचीन था। अतएव यह बात अप्रत्यक्ष रीतिसे संकेत करती है कि दस मासी पञ्चाङ्ग पीछेका था। इसे हमारे तृतीयकालीनयुगके उपनिवेशवासियोंने अपना मूलस्थान सप्तसिन्धु देशका परित्याग और विस्तृत उत्तरी-ध्रुवको आबाद कर-

नेके वाद उत्तरी ध्रुवकी आवश्यकताओंके लिये कल्पित किया था। अतएव पाठकोंको मालूम होगया होगा कि ये सारे प्राप्त प्रमाण अत्यन्त महत्त्वके समझ पडते हैं और ऐसी दशामें विचार करनेके योग्य हैं। ये सब समुचित रीतिसे उद्धृत किये गये हैं, इनका उल्लेख किया गया है और इनकी परीक्षा की गयी है। चाहे पहले दिख-लाईगई दूसरी बातोंमें ये देवनिर्मित आर्यावर्तदेशके सम्बन्धके हों या चाहे आर्यदेवताओंकी उत्पत्तिके स्थानके सम्बन्धके हों (१२ वां अध्या०) चाहे ये हमारी यात्राकी दिशा तथा पूर्वसे पश्चिम ओर हमारे निरीक्षणके क्रमके सम्बन्धके हों या चाहे हमारे उपनि-वेशों और सप्तसिन्धु आर्यावर्तदेशके आगेके देशोंमें सभ्यता फैलानेके सम्बन्धके हों; चाहे ये समान दिनों तथा रातोंके देशके सम्बन्धके हों या चाहे उन देशोंके सम्बन्धके जहां आरम्भमेंही उन छः ऋतु-ओंका उपभोग होता रहा हो जो देवनिर्मित होनेके कारण असली या प्राकृतिक थीं; चाहे ये आश्चर्य जनक रीतिसे लम्बे दिन तथा उन उकतानेवाली भयंकर लम्बी रातोंके सम्बन्धके हों जिनका छोर नहीं मिलता था या चाहे उस चिरस्मरणीय उत्तरी गिरिके सम्बन्धके हों जो महान् हिमयुगके आगमनमें जलप्लावनके समय हमारे उत्तरी ध्रुवके उपनिवेशोंके नेता मनुके लिये आश्रयका अन्तिम स्थान था। ये सब प्रमाण मानों सडक परके मील सूचक पत्थर हैं। मैं विनम्रताके साथ विश्वास करता हूं कि सप्तसिन्धुदेशमें आर्यमूलस्था-नके सम्बंन्धमें ये निश्चयात्मक तथा मार्ग सुझानेवाला प्रकाश डालेंगे।

सोलहवां अध्याय.

उन विचारोंकी प्राचीनताका विचार जो ऋग्वेदमें व्यक्त हुये हैं।

इस अध्यायमें मैं कुछ पृष्ठोंका उपयोग उन विचारोंकी प्राचीनताकी मीमांसा करनेके लिये करताहूं जो ऋग्वेदकी ऋचाओंमें व्यक्त हुये हैं। हम यह काम इस दृष्टिसे कर रहे हैं कि इससे हम निश्चय पूर्वक एक सम्भावित समय जाननेमें समर्थ हो जायंगे जिस कालमें हमारे पूर्वपुरुप विद्यमान थे, उन्होंने परिश्रम निरीक्षण और काम किया था उसका बहुत कुछ ज्ञान हमें इससे होजायगा यही नहीं किन्तु उन्होंने उस समय विभिन्न प्रकारके मौलिक विचारों तथा पृथक् पृथक् सच्ची भावनाओंका प्रकाशन स्वेच्छासे किया था और जिन बातोंको उन्होंने वास्तवमें देखा तथा जिनका विचार किया था जिनको वे जानने या पहचाननेमें समर्थ हुये थे उन्हें प्रकट करनेसे वे विरत न रहसके। उदाहरणके लिये ऋग्वेदके कुछ वाक्योंमें हम अपने अतीत कालीन पूर्वपुरुषोंको, उन अद्भुत वस्तुओंके देखनेपर जिन्हें मालूम पडता है कि, उन्होंने जब वे अपने मूलस्थान या प्रसिद्ध सप्तसिन्धु देशमें रहते थे, पहले कभी नहीं देखा था आश्चर्य और अचम्भेकीही नहीं किन्तु विस्मय और घबराहटकी भावनायें व्यक्त करतेहुये पाते हैं। हम उन लोगोंको लम्बी लम्बी उषाओं तथा लम्बे लम्बे दिनोंका उपभोग और वर्णन करते हुए भी देखते हैं एवं उन वृद्धिगत भयंकर रातोंके सम्बन्धमें अपने भयको प्रकट करते भी पातें जो कि सप्ताहोंमें क्या महीनोंमें कहीं जाकर समाप्त होती थीं, बीचमें उनका सिलसिला भंग नहीं होता था। अतएव ऐसी अद्भुत वस्तुओंका दृश्य एवं उनका यथार्थवर्णन और जो कि हमारे आदिम पूर्वपुरुषों द्वारा सारी बातोंके निरीक्षणपर निर्भर है, किसी भी व्यक्तिके

मनमें यथार्थ विश्वास उत्पन्न करदेगा कि ये स्पष्ट शब्दोंमें, निस्सन्देह उत्तरी ध्रुवदेशोंकी वास्तविक विशेषतायें हैं, चाहे वे खास उत्तरी ध्रुवकी हों अथवा उसके आसपासके देशोंकी हों—वे विशेपतायें जो भूमण्डलके दूसरे स्थानमें न उस समय मिलसकी और न इस समय दिखलाई पडसकती हैं। विशेष करके जब कि पृथ्वीपरके ध्रुव आज भी वैसेही बने हैं जैसे कि वे लाखों वर्ष पहलेथे। ऐसी दशामें ऋग्वैदिक ऋचाओं अथवा उससे निकालेगये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रमाणोंकी परीक्षा तथा उपर्युक्त निरीक्षणोंके सम्भावित समयका अनुमान करनेमें हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंद्वारा कियेगये निरीक्षण अभ्रामक पथदर्शककासा काम देते हैं।

अस्तु—यह निष्कर्ष स्पष्ट है। वास्तवमें हम तत्परतापूर्वक उन्हीं न्याय संगत परिणामोंका स्वीकार करनेको बाध्य हुये हैं जो हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषो तथा उनके पुरातन बापदादोंके उत्तरी ध्रुव देशोंमें आबाद रहनेके समयके हैं। अतएव यह बात स्वाभाविक रीतिसे पर्याप्त है कि उत्तरी ध्रुवकी अद्भुत वस्तुओंको प्रत्यक्ष देखनेका अवसर उन लोगोंको प्राप्त था जिनका अनुशीलन उन्होंनें अत्यन्त परिश्रमके साथ किया था और जिनको उन्होंने आश्चर्यजनक निर्णयके साथ अंकित भी किया था। क्योंकि वे बडे चतुर, तीक्ष्ण और अचूक निरीक्षक थे। यह बात इस पुस्तकके चौदहवें अध्यायमें दियेगये वर्णनसे ज्ञात होती है। क्रमशः मैं यहां यह विचार करसकताहूं कि, जब एकओर ऋग्वेदके अनेक वाक्योंमें उत्तरी ध्रुवके विभिन्न चिह्नोंका वर्णन विद्यमान है, मानो हमारे ऋग्वैदिक कवियों और उनके पूर्वपुरुषोंने उनको स्वयम् अपनी आंखोंसे देखा हो या वे उनकी निगाहके सामने वास्तवमें पडते रहे हों, (जैसे उदाहरणके लिये, ऋग्वेदमें (क) १-११३-१०, (ख) १०-१३८-३, (ग) १०-१२७-६; तब दूसरी ओर उसी अत्यन्त

पुरातन ग्रन्थमें कई एक ऋचायें ऐसी भी हैं जो इस वातके सम्ब-न्धमें किसी प्रकारका कोई सन्देह नहीं वाकी रखती कि प्राचीनतम वैदिक कालीन अनेक वंशोंके लिये भी हमारे उत्तरी ध्रुवके उप-वेश एवं ध्रुव या उसके आस पासके देशोंकी अद्भुत वस्तुयें और दूसरी अगणित महत्त्वपूर्ण घटनायें अतीत कालकी वातें हो गयी थीं। फलतः वे केवल परम्परागत कथाओं द्वाराही जानीगयी थीं। अत एव उन्हें पवित्र धरोहरके रूपमें सुरक्षित रखना पडा था, उसी रूपमें वे पितासे पुत्रको एक पीढीसे दूसरी पीढीको वरावर पहुंचती रहीं थीं। इस प्रकारके उदाहरणके रूपमें जहां हमारे पूर्वपुरुषोंने भूत-कालीन युगकी घटनाओंको वास्तवमें नहीं देखा था, किन्तु परम्प-रागत कथाओंके रूपमें जो सावधानीसे सुरक्षित रक्खी गयी थीं, वे वापसे वेटेको तथा एक पीढीसे दूसरी पीढीको हस्तान्तरित होती रहती थीं। इस सम्वन्धमें मैं यहां ऋग्वेदका एक वाक्य उद्धृत कर सकताहूं। उसमें इस वातका उल्लेख है कि उषा देवी पुरातनकाल (पुरा) में वरावर उदय रही। "शश्वत् पुरोषा व्युवास देवी" ऋ० वे० १-११३-१३. इसके सिवा तैत्तरीय संहितामें भीहम इस महत्त्व पूर्ण वातकी चर्चा होते पाते हैं जो कि परम्परागत कथाओंद्वारा उस समय प्राप्त हुई थी और जो सुरक्षित तथा हस्तान्तरित होती रही थी जैसा कि निम्न लिखित अवतरणसे मालूम होता है:—'चित्रा वसु (अर्थात् इसका मतलव) रात है। पुराने जमानेमें (पुरा) ब्राह्मण (या पुरोहित) भयभीत थे कि वह (रात) न समाप्त होगी।" "रात्रिर्वै चित्रावसुरव्युष्टयै वा एतस्यै पुरा ब्राह्मणा अभैषुः।" तै० सं० १-५-७-५. अतएव हमारे वापदादोंके उत्तरी ध्रुव देशोंमें वसने तथा वहां उपनिवेश स्थापित करने या किसी अंशमें निवास करनेके सम्व-न्धमें, यही नहीं किन्तु आर्यावर्तसे उत्तर तथा पश्चिम ओर हमारे देशान्तरगमनके संवत्पर केवल स्पष्ट प्रकाशही नहीं पडता वरन् इससे

हम अपने उन आदिम विचारोंके सम्बन्धमें बहुतही अधिक निश्चयके साथ विचार करनेको समर्थ होंगे जो कि प्राचीन तम ऋग्वेदमें व्यक्त किये गये हैं। क्योंकि इन बातोंसे लम्बी उषाओंके देखनेसे हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंकी प्रसन्नता और उनका आश्चर्य, लम्बे दिनोंकी अद्भुतवस्तुओंसे उनका अचम्भा और कल्पित अन्तहीन अन्धकार या किसी अंशमें उकतानेवाली वृद्धिगत रातोंसे उनका अत्यधिक भय जो एक मात्र उत्तरी ध्रुवके पक्के चिह्न हैं स्पष्ट व्यक्त होते हैं। तदनुसार इस विषयके सम्बन्धमें पाठकोंके सामने समुचित विवरण उपस्थित करनेके लिये हम प्राप्त अवसरको इस तरह आपही काममें लावेंगे और उत्तरी ध्रुवकी उपर्युक्त अद्भुत वस्तुओंके देखे जानेके संवत्के सम्बन्धमें अपनी सम्मति निश्चित करनेके लिये उन्हें समर्थ करेंगे। परन्तु उत्तरी ध्रुव देशोंमें हमारे प्राचीन पूर्वपुरुषोंके उपनिवेशों तथा उनमें उनके निवास सम्बन्धी मेरे कथनकी सचाई पर पाठक यहां निस्सन्देह प्रश्न करेंगे। क्योंकि हम इस समय इन देशोंको हिमकी मोटी मोटी तहोंसे आच्छादित पाते हैं और ऐसी दशामें यह कल्पना करना स्वाभाविक है कि ये पहले भी ऐसेही थे, यही नहीं किन्तु ये अपने इस रूपमें केवल मनुष्योंके बसनेके लिये अयोग्यही नहीं थे बरन् जीवनके भरणपोषण और किसी भी प्रकारके फ्लोरा या फौनाकी समुन्नतिके लिये भी अनुपयुक्त थे। अतएव हम इस बातको स्पष्ट करनेका प्रयत्न करेंगे और देखेंगे कि क्या भूगर्भ शास्त्रसे इस कठिनाईको हल करनेमें हमें कुछ सहायता मिलती है? हमने पहलेही भूगर्भ शास्त्रके प्रमाणोंसे प्रकट करदिया है जैसा कि पाठकोंको स्मरण होगा कि बहुत पुराने समयमें उत्तरी ध्रुव देशोंमें जीवधारी रहते थे यही नहीं किन्तु इतने पुराने समयमें जितना कि सिलूरियम काल (Vide Dana's manual of Geology p. 206 Ed.1863 Lapworths Texts Book of Geology p. 228

Ed. 1899) इसके सिवा भूगर्भ शास्त्रियोंने यह बात भी प्रमाणित करदी है कि पहले भूगर्भ शास्त्रीय कालमें उत्तरी ध्रुवके भूखण्डोंका तापक्रम केवल साधारण ही नहीं था, किन्तु वहांका जलवायु हितकरभी था। अतएव ऐसी दशामें उस समय उत्तरी ध्रुव देशोंमें फ्लोरा और फौना केवल अस्तित्वमें ही नहीं थे, किन्तु उष्णता प्रधान देशोंकी भांति अधिक रूपमें सम्वर्द्धित होते थे (Vide Danas Manual of Geology d. 224, 225) अतएव इन सब बातोंका यह अर्थ है और इनसे यह बात निर्धारित होती है कि पहलेके भूगर्भ शास्त्रीय कालोंमें उत्तरी ध्रुव देश केवल बसने योग्यही नहीं थे, किन्तु उसी भांति मनुष्यों और पशुओंके रहनेके योग्यभी थे जैसे कि दूसरे फौनाके लिये भी फ्लोराकी तो कुछ बातही नहीं। इस तरह पहले प्रश्नके हल होजाने पर स्वाभाविक रीतिसे यह दूसरा प्रश्न उठेगा कि यदि उत्तरी ध्रुव देश वास्तवमें पहले बसने योग्य था तो वह कब था और यह परिवर्तन किस कारणसे होगया था? यथार्थमें यह प्रश्नही अनर्गल है। तदनुसार हम यथाशक्ति संक्षेपमें इसका उत्तर देनेको आगे बढते हैं।

सारे भूगर्भशास्त्री इस बातको माननेमें एकमत हैं कि उत्तरी ध्रुव कटिबन्धके भूभाग अपनी मध्यम और हितकर जलवायुके कारण Palœzoic, Mesozoic और Erinozoic या तृतिय कालीन युगमें आवास योग्य थे। अतएव मनुष्यकी उत्पत्ति तृतीयकालीनयुगमें हुई। और उस समयका उत्तरी ध्रुव तृतीय कालीन युगके अन्ततक मानवजीवनका भरण पोषण करनेके समर्थ था, फौना तथा फ्लोराकी तो कुछ बातही नहीं। परन्तु जब महाहिमयुग सहसा आपहुंचा तब हमारे उपग्रहके उत्तरी भूभाग हिम तथा तुषारकी मोटी मोटी तहोंसे आवृत हो गये और पहलेकी सारी अवस्था बदल गयी। वास्तवमें पूर्व अवस्था बिलकुल लुप्त हो गयी। क्योंकि महाद्वीपकी सारी

उत्तरी भूमि हिमके नीचे दब गयी और उसका रूप हिममय होगया। मैं यहां क्रमशः अलग अलग वर्णन कर सकताहूं कि, हिमयुग या (Pleisteoene Period) के कारण अभी तक निश्चित नहीं हुए हैं। अतएव अनेक सिद्धान्त उपस्थित कियेगये मालूम पडते हैं। क्योंकि कुछ लोग अनुमान करते हैं कि भौगोलिक कारणोंसे, जैसे कि भूमिके (१) उतार और (२) चढाव एवं (३) पृथ्वीके ध्रुवोंके स्थानमें परिवर्तनसे, हिमयुगका प्रवर्तन हुआ था। इसके साथही वे लोग यह भी मानते हैं कि जब (१) और (२) से भूमि तथा समुद्रके क्षेत्रोंका कुछ कुछ भिन्न विभाजन हुआ था तब (३) से समुद्रकी लहरोंका विभाजन बिलकुल व्यवस्थाके प्रतिकूल हुआ था। परन्तु इधर डाक्टर क्रालके सदृश विद्वानोंने इस आशयकी अपनी सम्मतियां प्रकट की हैं कि ज्योतिष सम्बन्धी कारणोंसे जैसे कि पृथ्वीकी धुरियोंका अधिक लम्बी होजाना इत्यादिसे जो कि डाक्टर क्रालके सिद्धान्तका आधार हैं—हिमसम्बन्धी अवस्थाका प्रवर्तन तथा (Pleis tecen) युगका आगमन हुवा था।

चाहे जो कुछ हो। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अत्यधिक शिक्षाप्रद बात जिससे हमारा मुख्य करके सम्बन्ध है बिलकुल अतर्क्य विद्यमान है। वह स्पष्टरीतिसे यह है कि उत्तरी ध्रुवदेश केवल Palzoœoic और Mesozoic युगोंमेंही बसनेके योग्य नहीं थे, किन्तु वे तृतीयकालीन युगमेंभी थे या उस समय जब सृष्टिकी मुकुट शिरोमणि मानव जातिका आविर्भाव हुआ था। अतएव ऐसी दशामें यह प्रतीत होता है कि ऋग्वैदिक तथा पूर्व ऋग्वैदिक कालके हमारे पूर्वपुरुष उस समय वहां दीर्घकालतक आबाद रहे थे; उस समय उस स्थानकी लगातार स्थिर रहनेवाली मोहिनी उषाओंकी नवीन और यथार्थमें अनोखी अद्भुत वस्तु एवं लम्बे दिनों तथा उकतानेवाली वृद्धिंगत भयंकर रातोंके भी देखनेसे चकित होकर उन्होंने स्वाभाविक

रीतिसे अगणित मौलिक संकेतों सच्चे भावों और स्वेच्छित विचारोंको प्रकट किया था। अतएव उन्हें स्वयम् ऋग्वेदमें उचित स्थान प्राप्त है, तृतीयकालीन युगके बाद महाहिमयुग या (Pleiostecene) युगके आगमन पर उत्तरी ध्रुवदेश जलवायुकी तीव्रताके कारण मानव निवासके योग्य न रहगये थे, यही नहीं किन्तु वे जीवनकी रक्षाके लिये भी अनुपयुक्त हो गये थे और अन्तमें किसी समयके इन आनन्ददायक भूभागोंके हिम तथा तुषारकी मोटी तहोंसे आवृत होजानेपर हमारे पुरातन पूर्वपुरुषोंने बिलकुल इनका परित्यागही कर दिया था और उस आगन्तुक भयसे अपनी रक्षाके लिये वे उत्तरी पर्वतके मार्गसे आर्यावर्तको लौटनेके लिये बाध्य हुए थे। इस तरह यह प्रमाण न्याययुक्त तथा अकाट्य होजाता है कि हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंने महाहिम युगको देखा था और इस रूपमें वे तृतीयकालीन युगके लोगथे और जब वे उत्तरी ध्रुवमें थे तब उन्होंने जो विचार प्रकट कियेथे वे ऋग्वेदमें मिलते हैं। ये विचारभी उतनेही पुराने है जितना कि तृतीयकालीन युग है। उस युग या हिमयुगके आगमन और चतुर्थकालीन युगके प्रारम्भके बीच सहस्रों दशकोंकी जो संख्या बीती है वह अनुमान की जा सकती है। अमरीकावालोंकी अत्यन्त सामान्य सम्मतिके अनुसारभी, जिससे हिमयुगकी समाप्ति या यह कहो कि चतुष्कालीन युगके प्रारम्भका समय ८००० वर्षोंसे १००००

---

१ इस विषयके सम्बन्धमें मैंने प्रसिद्ध भूगर्भ शास्त्रियोंके मत पीछे टिप्पणीमें दिये हैं, यहां मैं औरभी विचार सकता हूं कि वेकवेल साहब सन् १८२९ में इस परिणामपर पहुंचे थे कि पिछले हिमयुगको बीते लगभग १०००० वर्ष हो चुके हैं और संयुक्त राज्यके भूगर्भ शास्त्रीय खोजके विभागके गिलवर्ट, डफम और दूसरे भूगर्भ शास्त्रियोंने यह मत स्वीकार करनेकेलिये झुकेहुये मालूम पडते हैं। हां उन्होंने उस कालका विचार करना छोड दिया है जिसमें हिमयुग समाप्त हुआ था। (See the Students Lyell Edited by Judd 189p. 592)

वर्षोंतक निर्धारित होता है। यह तुरन्त स्वीकार करना पडेगा कि हमारे आदिम पूर्वपुरुष, जो महाहिम युगके पूर्वकालमें विद्यमान थे और जिन्होंने उसे देखा था यही नहीं किन्तु जो तृतीयकालीन युगमें भी वर्तमान थे जैसा कि पहले दिखलाया जा चुका है निस्सन्देह १०००० वर्षकी अपेक्षा बहुतही अधिक पुरातन हैं। विशेष करके इस कारणसे कि तृतीयकालीनयुगमेंभी, जो महाहिम युगका पूर्ववर्ती था और जिसके सम्बन्धमें उनके आदिम विचार व्यक्त हुये हैं, उनके मनकी क्रिया शीलता तथा जीवनका ढंग उनकी क्षमता तथा उनका ज्ञान, उनके भिन्न भिन्न पेशों[1] तथा विज्ञान कई एक शाखाओंका ज्ञान[2] एवं

---

१ ऋग्वैदिक कालकी सभ्यताकी उन्नत दशा अच्छी तरह इस बातसे जानी जा सकती है कि उस समय भिन्न भिन्न पेशों, अनेक प्रकारके धन्धों और भिन्न भिन्न प्रकारके अगणित उद्यम, जैसे वैद्य, कारीगर, लुहार, बढई इत्यादिके, यही नहीं किन्तु याज्ञिकों और कवियोंके भी, पूर्णरूपमें प्रचलित थे। यह बात निम्न लिखित ऋग्वेदकी ऋचासे पर्याप्त रीतिसे प्रमाणित हो जायगी:-"नाना नं वा उनो धियो वि व्रतानि जनानां। तक्षारिष्टं रुतं भिषग् ब्रह्मा सुन्वंतमिच्छति ॥ १ ॥ कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवंतमिच्छति ॥ २ ॥ कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षणी-नना। नानाधियो वसूयवोऽनुगा इवतास्थिम... ॥ ३ ॥ (ऋ० वे० ९-११२) "हम लोगोंके विचार तथा हमारे प्रयत्न विभिन्न होते हैं। उसी तरह लोगोंके पेशेभी पृथक् पृथक् होते हैं। ब्राह्मण यजमानोंको, बढई लकडीको और वैद्य रोगियोंको खोजते रहते हैं" (१) "कारीगर(परिष्कृत औजारोंको लिये) धनियों-को ढूंढते हैं।" (२) मैं कवि हूं मेरा पिता चिकित्सक था।" (३) "मेरी माता अन्न पीसना आदि गृहस्थीके कामोंमें लगी है।"

२. उसी तरह संगीत सप्त स्वरोंका ज्ञान आदि ललित कलायें (ऋ० वे० १-६४-३; १०-७१-३), स्पर्श तथा इच्छा शक्ति (१०-६०-१२; १०-१३७-७) या हिप्नोटिज्म तथा मेस्मिरिज्मके-(जो योरुपमें अभी हालमें केवल १७७८ में प्रचलित हुआ है)-द्वारा रोग निवारण ज्योतिष और कई प्रकारकी नक्षत्र विद्यायें (१-१६४-१, २०, ४९; ९-११४-३) जल और वनस्पतियोंके गुणोंका ज्ञान

उनका उच्चतम दर्शनशास्त्र आदि सब बातोंसे उनकी एक उच्चश्रेणीकी सभ्यताका भेद प्रकट होता है। इस प्रकारकी सभ्यताको विकास, वृद्धि तथा उन्नतिकी पृथक् पृथक् श्रेणियोंमें प्राप्त होनेमें स्वाभाविक रीतिसे लम्बा समय लगेगा। पूर्ण रूपसे रक्षित हमारी असली परम्पराओंके सहित, यही नहीं किन्तु एक पीढीसे दूसरी पीढीको

–और किरणके सात रंग आदि पदार्थ विद्या इत्यादि (१-२३-२०, २१, २२, १०-१३७-६; १०-९७-११, १२, १८, १-१४६-१) उस समयभी समुचित रीतिसे परिष्कृत की गई मालूम पडती हैं।

१ Vide Max-Muller's History of Ancient Sanskri Literature p. 558 568 Ed. 1859.) मैक्समूलर साहब लिखते हैं, " हम स्वयम् परमात्माकी एकतामें विश्वास करनेके अभ्यस्त हैं। उन अन्तिम दर्जोंमें यह एक है जिसतक यूनानी लोग अनेकेश्वरवाद की गहराईसे जा पहुंचे थे जिस अनुसन्धान प्लेटो और आरिस्टाटलके शिष्योंने किया था। जब उन लोगोंने एथेन्समें सेन्ट पालके विचित्र उपदेशको सुना था उसके पहलेही वे लोग एक अज्ञात परमात्माके परिणामतक पहुंच गये थे। परन्तु हम यह कैसे कह सकते हैं कि विचारका वही क्रम भारतमेंभी था। सारी ऋचाओंको हम किस आधार पर आधुनिक बताते हैं जिनमें एकेश्वरवादका सिद्धान्त अनेकेश्वरात्मक वचनरूपी बादलोंसे निकल पडा है। " ये परिवर्तन धीरे धीरे तथा नियमित उन्नतिके परिणाम नहीं थे किन्तु वैयक्तिक उपंगों तथा अनूठे प्रभावोंके थे। अतएव मैं नहीं समझता हूं कि केवल एकेश्वरवादात्मक भावों तथा दूसरे बडे बडे दार्शनिक विचारोंकी उपस्थितिसे किसी श्रेणीकी ऋचाओंको आधुनिक बतादेना पर्याप्त हैं (५५९) " जिसमें गुह्य तथा आत्मविद्या सम्बन्धी विचार हैं उन्हें आधुनिक कहकर इस प्रकारके प्रत्येक पद्य तथा छन्दको छांटना और वहभी केवल इस कारणसे कि उनकी भाषा उपनिषदोंकी भाषासे मिलती है न्यायका काम नहीं हो सकता हैं। किसी दूसरी वस्तुकी अपेक्षा उपनिषदोंका साहित्य इस बातको अच्छी तरह प्रमाणित करता है कि उनकी दार्शनिक कविताके तत्त्व अधिक दूरके स्रोतेसे निकले हैं।" 566.

स्वेच्छासे हस्तान्तारित एवं प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदके सहित भी इन वातोंके हमारे सामने उपस्थित रहनेसे जो वैज्ञानिक रीतिसे स्पष्ट हैं या भूगर्भ शास्त्रसेभी जिनकी व्याख्या अच्छी तरह कीगई है. यह जानना अब अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि प्राच्य और पाश्चात्य पुरातत्त्व-खोजियोंने उपर्युक्त अमूल्य भाण्डार एवं उसमें प्राप्त बहुमूल्य कथनोंके प्रणेताओं या ऋषियोंकी प्राचीनताके सम्बन्धमें क्या कहा है ?

मिस्टर तिलक लिखते हैं, " ऋग्वेद और अवस्ताके वाक्योंसे यह भ्रमरहित" प्रमाणित होता है।कि " ऋग्वेदके कवि जलवायुकी उन अवस्थाओंसे परिचित थे जो केवल उत्तरी ध्रुवदेशोंमेंही दिखलाई पड सकती थी। " (p. 415) " मनुष्यकी प्राचीनता तृतीयकालीन युगतक पहुंचती है " (418) "तैत्तरीय संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थोंमें नक्षत्रोंका प्रारम्भ कृत्तिकासे होता है। इससे यह प्रकट होता है कि वासन्ती अयन उपर्युक्त नक्षत्रमण्डलसे उस समय ईसाके २५०० वर्ष पूर्व मेल खाता था। वैदिक साहित्यमें इस वातके संकेत मिलते हैं कि मृग या ओरिअन किसी समय पहला नक्षत्र गिना जाता था और ऋग्वेदकी ऋचाओंमें या उनमेंसे अधिकांशमें जो तैत्तरीय संहितासे निस्सन्देह अधिक प्राचीन हैं उस कालके सम्बन्धका उल्लेख है अर्थात् वह काल अन्दाजन ईसाके लगभग ४५०० वर्ष पूर्व था " (p. 420) उसी अयनका अस्पष्ट उल्लेखभी उनमें है। एक समय वह पुनर्वसुके नक्षत्र मण्डलमें होता था । इसका प्रथम नक्षत्र आदिति था । यह बात ईसाके लगभग-६००० वर्ष पूर्व रही होगी " (P. 420)। "ईसाके लगभग ५०००-या ६००० वर्ष पूर्व वैदिक आर्य एशियाके मैदानोंमें बस गये थे " (P. 420). " पुरातन वैदिक इतिहास-लेखन विद्या तथा पश्चात् क्रमसे अमरीकाके भूगर्भ शास्त्रियोंके आधुनिक मतका स्वतंत्र समर्थन

हो जाता है" (P. 420) "इस पिछले हिमयुगकी समाप्ति तथा उस हिमयुगके बादके समयका प्रारम्भ ईसाके लगभग ८००० वर्ष पूर्व हुआ था" (P. 421), "इस समयसे और ओरियन कालके बीचका अन्तर लगभग ३००० वर्षोंका है" (P.421; इस बातका विचार करतेहुये कि कृतयुगका प्रारम्भ प्रलय या जलप्लावनके बादसे मानाजाता है मनु और व्यासको प्राचीन परम्पराओंको बनाये रखनेवाले समझना चाहिये कि उनके समयसे लगभग १०००० वर्ष पहले (यह अनुमान करते हुये कि वे कलियुगके १२०० वर्ष बीत जानेपर विद्यमानथे) कृतयुगसे नयी बातोंका क्रम प्रारम्भ हुआ या दूसरे शब्दोंमें, जिस जलप्लावनने सारी प्राचीन बातें विनष्ट करदीथी, वह उनके समयके लगभग १०००० वर्ष पूर्व संघटित हुआ था" (P. 427)। मिस्टर तिलक लिखते हैं, "हमें यह परिणाम निकालना पडता है कि वस्तुस्थितिके नये क्रमका आरम्भ या इसे और अधिक पारिभाषिक ढंगसे कहनेके लिये, हिमयुगके बाद वर्तमानयुगका प्रारम्भ इस परम्पराके अनुसार ईसाके १००० वर्ष पूर्वकी अपेक्षा अधिक पहलेका नहीं मानाजा सकता है" (P. 427)। वे लिखते हैं "हम बिना किसी संशयके सारे व्यवहारिक कार्योंके लिये इस मतको स्वीकार कर सकते हैं कि अन्तिम हिमयुगकी समाप्ति और उसके बादके युगका प्रारम्भ लग भग ८००० वर्ष या कमसे कम ईसाके लगभग १०००० वर्ष पूर्व हुआ था" (P. 427) इस बातको वैदिक ऋषि स्वयम् जानते थे कि जिन ऋचाओंका गान उन्होंने किया था उनका विषय प्राचीन था, जलप्लावनके समयकी बातोंके ढंगसे विपरीत था। हां उन ऋचाओंकी वाक्यरचना उन्हींकी है" (P. 458) "यद्यपि वे वचन मनुष्योंके मुखसे निकले थे तथापि उनका विषय प्राचीन या ईश्वरीय माना जाता था" (P. 559) "यहां (वैदिक [illegible])

जिन पूर्व पुरुषोंका वर्णन आया है वे जलप्लावन कालीन पूर्व पुरुषोंके ढंगके विपरीत प्रकारके लोग थे (नः पूर्वे पितरः) जिन्होंने अपने यज्ञ सात या दस महीनेवाले उत्तरी ध्रुवदेशके वर्षमें पूर्ण किये थे" (P. 460)" संक्षेपमें जिन प्राचीन ऋचाओं कवियों या देवताओंका उल्लेख ऋग्वेदमें हुआ है उन्हें अतीत कालकेही समझने चाहिये " अर्थात् वे पुरातन कालसे परम्परा पूर्वक कवितक हस्तान्तरित होते आये हैं, उन्हें पूर्व हिमयुगकें ही न समझने चाहिये" (461) Vide Mr. Tilak's arctic Home in the Vedas Ed. 1903) इस तरह यह पता लगजायगा कि मिस्टर तिलक ऋग्-वैदिककालसम्बन्धी प्राचीनतामें वैदिक तथा पौराणिक मतोंका भी मेल मिलाते हैं और स्वीकार करते हैं कि अन्तिम हिमयुग ईसाके लगभग १०००० वर्ष पूर्व समाप्त हुआ था और तदनन्तर चतुर्थ कालीन युग प्रारम्भ हुआ था । अतएव इस दशामें पाठकोंको यह बतलाना तथा स्मरण कराना आवश्यक है कि हमारे आदिम पूर्वपुरुषोंने चाहे वे वैदिक कालके हों या पूर्व वैदिक कालके हों महाहिमयुगके नामसे प्रसिद्ध हिमकालको केवल देखा तथा उसका उपभोगही नहीं किया था, किन्तु उन्होंने तृतीयकालीनयुगके पिछले भागकाभी अवलोकन किया था । क्योंकि उन्होंने उत्तरी ध्रुव देशोंके उपनिवेशोंको उसी समय आबाद किया था और वे वहां दीर्घकालतक बसेभी रहे, यहां तक कि महाहिम युगके आगमनपर वे पीछेकी ओर उलटा लौटाये गये और अपनी उत्पत्तिके देश आर्या-वर्तका प्रसिद्ध सप्तसिन्धु देशकी सूर्यसे प्रकाशित भूमिकी ओर उलटे पैर लौटनेको बाध्य हुये थे । अतएव स्पष्टरीतिसे जिन हमारे

१. वैदिक तथा पूर्व वैदिक ' हमारे पूर्व पुरुष ' इस वाक्यका आशय पाठ-कोंके मनमें जमानेके लिये वहां मैंने अध्यापक मैक्समूलरकी पुस्तकसे एक अव-तरण उद्धृत किया है । (ग्रन्थकर्ता)

आदिम पूर्वपुरुषों एवं उनके मौलिक विचारोंकाभी उल्लेख ऋग्वेदमें उनके असली रूपमें हुआ है. वे वैदिक, अवस्तिक और भूगर्भशास्त्र सम्बन्धी प्रमाणसेभी १०००० वर्षोंसेभी अधिक प्राचीन थे। और सम्भवतः इस महत्त्वपूर्ण वातका समुचित ध्यान रख करही मिस्टर तिलक इस वातके माननेको बाध्य होते मालूम पडते हैं कि हमारे आदिम पूर्वपुरुष औरभी–अधिक प्राचीन थे। क्योंकि उन्होंने स्वाभाविक रीतिसे कहा है, " कोईभी यह प्रश्न करनेको उत्सुक हो सकता है कि क्या हम उस सीमातक-जो आर्य प्राचीनताकी अन्तिम सीमा कहलाती है-पहुंच गये हैं " (Vide arctic Home in the Vedas preface p. 2) इसके सिवा मिस्टर तिलकने यहभी विचार किया है कि, " आर्य सभ्यताका प्राचीनतम काल अदिति या पूर्व ओरियनकाल कहा जा सकता है " और मोटे हिसाबसे हम उसकी सीमा ईसाके ६०००–४००० वर्ष पूर्व ठहराते हैं। मालूम होता है कि यह वह समय था जब समाप्त हुई ऋचाएँ लोगोंको नहीं विदित हुई थी ... यूनानी और पारसियोंके पास उस समयकी कोई परम्परा नहीं है ...... और इधर भारतीय आर्य अपनी परम्पराओंको श्रेष्ठ धार्मिक विश्वास तथा बुद्धिमानीसे सुरक्षित रक्खे रहे हैं " Vide, " The oroin " p. 206Ed. 1893) सम्भवतः इस वातसे पाठकोंको वह मत ज्ञात हो जायगा जिसे प्राच्य विद्वान् तथा सच्चे खोजी उन वातोंका कारण मानते हैं जो वैदिक अवस्तिक तथा भूगर्भ शास्त्र सम्बन्धी प्रमाणोंसे प्रकट हुआ है। अतएव हम यह जाननेका प्रयत्न करेंगे कि, पाश्चात्य विद्वानोंको यह वात कहांतक स्वीकृत हुई है। थोडी देरके लिये हम अपना ध्यान उनकी ओर देकर यह जाचेंगे कि इस सम्बन्धमें उनका क्या विचार है ?

प्रोफेसर व्लूमफील्डने जान हाफकिनके विश्वविद्यालयकी अठारहवीं

वर्षगांठके अवसरपर मिस्टर तिलकके ' ओरियन ' की चर्चा करते हुये अपने भाषणमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा था, " वेदोंकी भाषा और उनका साहित्य किसीभी तरहसे इतना आदिम नहीं है कि हम उनके साथ आर्य जीवनका वास्तविक प्रारम्भ निश्चित करें। " उन्होंने कहा कि, " वह कई हजार वर्ष और अधिक पहले हुआ है और यह बात सब तरहसे सम्भव है तथा इसमें अतिशयोक्ति नहीं है। " उन्होंने यहभी कहा कि, " यह बतलाना अनावश्यक था कि जो परदा हमारी दृष्टिको ईसाके ४००० वर्ष पूर्वके उस ओर नहीं पहुंचने देता है, वह अन्तमें एक बारीक रेशमकी नकावसा प्रमाणित होजाता है. इस तरह यह बात स्पष्ट होजायगी कि प्रोफेसर ब्लूमफील्डनेभी ऋग्वेदकी भारी प्राचीनता-भूतकालीन प्राचीनताकी तो कुछ बातही नहीं-के सम्बन्धमें अपने विचारोंकी स्पष्ट घोषणा करदी है, क्योंकि वह ईसाके ४५०० वर्ष पूर्वसे परे कई हजार वर्षतक पहुंचती है। क्योंकि वे यह विचार करनेको प्रवृत्त थे कि उक्त प्राचीनता ईसाके ४५०० वर्ष पूर्व उधरभी पहुंची थी। अन्तमें मैं यहां पाठकोंके सामने भारतके एक प्रसिद्ध इतिहासकारका प्रमाणभी अपनी विशाल प्राचीनताके सम्बन्धमें जो मिस्री जातिकी स्वीकृत प्राचीनताकेभी परे पहुंच चुकी थी—उपस्थित करूंगा। क्योंकि थार्टन साहब इस तरह लिखते हैं:— नील नदीकी तराईमें पिरामिडोंको बने थोडाही समय बीता था-जब आधुनिक सभ्यताके मूलस्थान यूनान और इटलीमें अर्द्ध सभ्य लोगोंकाही निवास था तब भारत समृद्धिवान् और गौरवपूर्ण हो चुका था। " (Vide, History of India my Thorton) परन्तु हमारी इस पुरातन सभ्यताके होने परभी अनेक प्रख्यात विद्वानोंके पूर्व कल्पित विचारों तथा गहरे-जड पकडे हुये पक्षपातके कारण प्राचीन भारतकी बातोंको आधुनिक बतानेके हेतुसे जो कथन किये गये हैं और जैसी भावनायें व्यक्त हुई

हैं, वे सच्ची खोजके तथा घटनाओंके वास्तविक वर्णनके मार्गमें बहुधा एक प्रकारके व्यवहारिक अडनेके रूपमें परिणत हो गये हैं, जैसा कि पाठकोंके दिलमें बैठाने और उन्हें यह बात समझानेके लिये कि कैसे ये पूर्वकल्पित बातें ज्ञानकी उन्नति रोकने सत्यपक्षकी वास्तविक हानि करने अनेक यामक तथा भित्तिहीन विचारोंके फैलाने और इस अत्यन्त प्राचीन देशमें बोधगम्य खोजके कामके मार्गमें कांटे बोनेका कारण बनी थीं, उनका समुचित विवरण संक्षेपमें देनेके बाद हम शीघ्रही प्रकट करेंगे। क्योंकि यही विद्वान् स्वाभाविक रीतिसे एक मात्र अगुआ और ज्ञानसम्पन्न मानलियेगये हैं और ऐसी दशामें जब वे भूल करते हैं तब उस समय भी ये प्रामाणिक समझे जाते हैं। अतएव प्रोफेसर एच० एच० विलसनने बहुतही ठीक कहा है, "एक श्रेणीमें क्रमबद्ध करनेके लिये जो सामग्री रक्खी थी उसका उपयोग उतावलेपनके साथ हुआ है औरढंगसे अनेक भ्रामकमत निर्धारित हुये हैं, क्योंकि उनके उद्भावकोंके पथदर्शकही मूर्ख और अयोग्य थे।" (Vide, Vishnu Purana, Pragface)

अस्तु-हिन्दु ओं या भारतीय आर्योंकी प्रत्येक वस्तुको आधुनिक बताने और हमारे प्राचीन साहित्यको जहांतक सम्भव हो पिछले समयका ठहरानेके लिये अध्यापक मैक्समूलरके सदृश प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रणेता और प्रख्यात विद्वान्को हम इसतरह लिखते पाते हैं:—"मैं वही साधन जानना चाहताहूं जिससे हम उस संग्रहकी व्याख्या करसकें। केवल बाल-खिल्ल्याओंकी किन्तु उन दूसरी ऋचाओंकी भी जो अपने स्वरसे बहुत अधिक आधुनिक प्रातिशाख्यके समयकी अपेक्षा अधिक पिछले समयकी मालूम पडती है" (P. XXXIX) परन्तु इससे अधिक वे आगे कहते हैं, "मैं फिरभी कहताहूं कि इस विषयका विचार करते समय मुझसे भी भूलें हुई हैं और मेरा आलोचनात्मकविवेक और अधिक संतुष्ट हो जायगा यदि हम प्रतिशाख्य तथा उस सबको

पिछले समयका ठहरादें जिसको ऐसा करनेकी पूर्व कल्पना होचुकी है" (P. XI Rig-Veda Samhita. Translated by MaxMuller Vol. 1 Ed. 1869 N. P.) अतएव यदि इसप्रकारके पक्षपातसे अध्यापक मैक्समूलर ऋग्वैदिक ऋचाओंको प्राचीनताके ऊँचे आसनसे ईसाके लगभग १५०० वर्षपूर्वको खींचलाये हों और यह कहते हों कि, " वैदिक ऋचायें ईसाके १५०० तथा १००० वर्ष पूर्व-रचीगयी थीं तो कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु इनमेंसे कुछकी भारी प्राचीनता किसी तरह सब प्रकारके सन्देहोंके परे प्रमाणित हो गयी है और जो वैदिक, अवास्तिक तथा भूगर्भशास्त्रके वैज्ञानिक प्रमाणोंसे भी ईसाके ६०००, १०००० वर्षपूर्व पहुंचती है और जिसे मिस्टर तिलक और प्रोफेसर ब्लूमफील्डके सदृश प्राच्य तथा पाश्चात्य विद्वानोंने भी स्वीकार किया है। ऐसी दशामें यह केवल स्वाभाविक ही मालूम पडता है कि हिन्दुओंकी बातोंको अवैज्ञानिक रीतिसे तथा विना कारण बताये आधुनिक ठहरानेकी इस मानसिक प्रवृत्तिके कारण और जव कि वे बातें वास्तवमें बहुत प्राचीन हैं उनका क्रोध अवश्यही भडक उठना चाहिये। जिन अत्यन्त गम्भीर तथा विचारवान् प्राच्य विद्वानोंने प्रसिद्धि पायी है और इसके सिवा जो स्वयम् खोजके काममें लगे रहनेसे पुरातत्वविद हैं तदनुसार हम धीर तथा शान्त विद्वान् न्यायाधीश मिस्टर तैलङ्गको इस तरह लिखते पाते हैं, " और अब मेरा यह निश्चय है। मैं अपनी इच्छासे यह साधारण बात कहे डालता हूं। केवल डाक्टर लोरिससर्के निबन्धसे प्रेरित होकरही मैं यह नहीं लिख रहा हूं, किन्तु योरपके अत्यन्त प्रसिद्ध संस्कृतके विद्वानोंके लेखोंसे भी मुझे यह प्रतीत होता है कि इन दिनों योरपमें एक ऐसी बलवान् प्रकृतिने जड पकडी है जिससे संस्कृत साहित्यके भिन्न भिन्न ग्रन्थ तथा ग्रन्थोंके वर्ग जहांतक सम्भव होता है आधुनिक ठहराये जा रहे हैं... "इसके सिवा अध्यापक मैक्स

मूलरके उपर्युक्त कथनसे यही भावना शब्दोंके रूपमें व्यक्त होती है। कुछ तो अज्ञानतासे और कुछ जानबूझकर अधिक योरपीय विद्वान् इसी प्रकारका भाव धारण किये हैं। तोभी मैं आदर, किन्तु बहुत अधिक विश्वासके साथ मानता हूं कि उन लोगोंके विचार वैज्ञानिक विचारोंके प्रतिकूल हैं। " परन्तु उक्त विद्वान् अध्यापकसे आदरके साथ पूंछा जा सकता है कि दूसरीकी अपेक्षा किसी एक व्याख्याके प्रति अधिक 'पसन्दगी' तथा संतोष व्यक्त या अनुभव करनेका उन्हें क्या अधिकार है" (P. CXVIII) मिस्टर तैलङ्ग यह भी लिखते हैं, "मुझे ऐसा मालूम पडता है, मैं स्वीकार करता हूं, कि यह संरक्षित 'पसंदगी' और 'संतोष' और 'पूर्वोक्त परिणामही है जो कि अधिकांश दलीलोंको अग्रसर करनेके लिये पीछे डटी रहती हैं। योरपीय विद्वान् हमारे प्राचीन साहित्यके इतिहास लेखन विद्यापर प्रभाव डालनेको यथा समय इनका उपयोग करते हैं। वे यही हैं जो समय समय पर उसकी प्राचीनताके सम्बन्धमें हानि पहुंचाया करती हैं। ये पूर्वोक्त परिणाम इन विद्वानोंको सरलतासे ऐसे विचारोंकी उलझनमें डाल देते हैं जिनमें पडकर वे चिलिंगवर्थके शब्दोंमें उसी बातका स्वप्न देखते हैं जो वे चाहते हैं और जिनका वे विश्वास करते हैं और जो विचार क्रम तथा योरपीय पाण्डित्य इसका स्रोत है उसके यह प्रतिकूल है। अतएव नम्रता तथा बहुत ही दृढताके साथ वर्तमान अवसर पर यहां अपना विरोध व्यक्त करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूं" (P. CXIX) मिस्टर तैलङ्ग फिर यह लिखते हैं, "संस्कृत साहित्यके इतिहासमें समय निरूपणके पूर्णरीतिसे मनमाने ढंगके विरुद्ध विना एक प्रबल विरोध उपस्थित किये मैं इस विषयका परित्याग नहीं करसकता" "निर्बलतम सम्भवित घटनाओंके ऊपर ही केवल कल्पनाएँ नहीं की जाती, किन्तु ऐसी कल्पनाओंके ऊपर विचारकी

एक विशाल इमारत उठाई जाती है। और जब वह तैयार हो जाती है तब जीवकी मुख्य निर्बलता बहुधा दृष्टिकी ओटमें रक्खी जाती है। इन प्रयत्नोंसे सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य या उसका लगभग सम्पूर्ण भाग बहुत ही हालका बताया जा रहा है जैसाकि वह अभीतक नहीं रहा है " (P. XXXI, (theXXXII' Vide) Bhagwat GitaTranslated into English blank verse. by K. T. Telang M. N. Ed. 1875) वैसेही एक दूसरा प्राच्य विद्वान् जो उसी तरह सावधान है और जो मानासिक तरंगोंमें बिलकुल गोते ही नहीं लगाया करता, जो चौकस है और धैर्यका परित्याग कभी नहीं करता, जो प्राच्य और पाश्चात्य देशोंमें खूब महहूर है, यही नहीं किन्तु जगत्‌भरमें प्रसिद्ध है, प्राचीनताके विषयका अवैज्ञानिकरीतिके प्रतिपादन तथा योरपीय विद्वत्समुदाय द्वारा दीगयी दलीलोंकी दोष पूर्ण शैलीका स्वीकार करनेके सम्बन्धमें अपनी सम्मति तथा अपने विचार व्यक्त करते हुये मालूम पडता है। संस्कृतके उस प्रसिद्ध विद्वान्‌का नाम डाक्टर भंडारकर है। हालहीमें उसे नाइट हुडकी पदवी भी प्रदान की गयी है। 'महाभारतके समयका विचार' शीर्षक निबन्धमें कुछ विवादास्पद बातोंकी समीक्षा करते हुये डाक्टर भण्डारकर लिखते हैं, " कर्नल इलिसको वे (कारण) वजनदार नहीं समझ पडते, उन्होंने अपना मत व्यक्त किया है और उसमें कुछ कुछ अतिशयोक्तिके रूपमें प्रत्येक हिन्दू बातको आधुनिक ठहरानेवाली योरपीय विद्वानों और पुरातत्वविदोंकी प्रवृत्ति प्रकट की है "। (Vide, Journal royal Aseatic Society Bombay branch Vol X No. XYVIII p. 82) स्पष्टरीतिसे पूर्व कल्पित विचारोंका इस प्रकारका झुकाव स्वाभाविक रीतिसे एक बहुतही ओछा प्रभाव डालता है क्योंकि उतावलीसे श्रेणी बद्ध कर देनेके लिये उससे अनैच्छित भावना जागृत हो उठती है। यही नहीं किन्तु

उससे आत्मतुष्टि तथा समर्थनके साथही उन परिणामोंको स्वीकार करनेकी आदत होजाती है जो घटनाओं द्वारा प्रमाणित नहीं हुये मन अपने उचित मार्गसे अलग हो जाता है। आत्मश्लाघा द्वारा तर्क शक्ति उस समयभी विलकुल निर्बल बन जाती है. जब वह निन्द-नीय भूलोंका शिकार होजाती है और अदृश्यरीतिसे धीरे धीरे विगड जाती है। और अन्तमें ऐसी होजाती है कि झूंठसे सच्चा अथवा अशु-द्धसे शुद्ध पहचाननेमें वह असमर्थ हो जाती है। यह बात पक्षपातके उन वादलोंके कारण होती है जो उसके ऊपर मँडराते रहते हैं। इस तरह हम उन लोगोंको जो दार्शनिक या इतिहास-रचयिताके नामसे प्रसिद्ध हैं और जो मान्य ग्रन्थकर्ता तथा प्रामाणिक लेखकके नामसे प्रख्यात हैं, गहरे जड पकडेहुये पक्षपातके अनजाने शिकार हो जाते हैं। और अपने आपको दूसरोंकी आखोंमें अत्यन्त ही उपहासास्पद बना लेते हैं। हम पहले लिख चुके हैं कि किस प्रकार विलकुल एक पक्षीय यही नहीं तर्कहीन और अत्यन्त उमङ्ग पूर्ण दलीलें हैं जिन्हें इसाक्टेलरने अपने वडे भारी पक्षपात तथा योरपमें आर्योंकी उत्पत्तिसम्बन्धी अपने सिद्धान्तको स्थापित करनेके लिये पहलेहीसे मनमें निश्चित करलेनेवाली धारणाके कारण प्रयुक्त किया है। अतएव इस दृष्टिसे मैं इस अवसरका उपयोग कुछ अधिकदृष्टान्त देनेके लिये करूंगा जिसमें पूर्वनिश्चित विचारोंके हानिकारक प्रभाव एवं उनका अभेद्य अन्ध-कार पाठकोंकी समझमें आजाय। क्योंकि ये बातें उन बातोंके पहचाननेमें कारणीभूत हैं जो पर्याप्त रीतिसे उनकेभी सामने स्पष्ट हैं। डुगल्डा स्टिवर्टकी पक्षपात पूर्ण निन्दाके सम्ब-न्धमें अपनी निजकी सम्मतियोंका वर्णन करनेकी अपेक्षामें अनेक कारणसे पुराने विद्वान् एवं प्राच्यविद् अध्यापाक मैक्समूलर मतको उद्धृत करना आवश्यक समझताहूं और उस दार्शनिकके निरर्थक कथनके सम्बन्धमें जो घटनाओंकी अज्ञानतासे और सत्यकी

हत्या करके भी कियेगये हैं उनकी खास वजनदार राय उपस्थित करूँगा। यह नाम उसी दार्शनिकका है जो स्वीकृत प्राचीनताके अत्यन्त सच्चे संस्कृत साहित्य और संस्कृत भाषाको 'ब्राह्मणोंकी जालसाजी' बताकर गाली देनेमें ही खुश है। अध्यापक मैक्स-मूलर लिखते हैं, "डुगल स्टीवर्ट हिन्दुओं और स्काट लोगोंके बीच सम्बन्ध माननेकी अपेक्षा यह विश्वास करना पसन्द करेंगे कि सम्पूर्ण संस्कृत भाषा और सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य-वह साहित्य जिसका प्रसार ३००० वर्षोंके ऊपर रहा है और जो यूनान या रोम किसीके भी साहित्यसे बडा है-दुष्ट ब्राह्मण पुरोहितोंकी जाल साजी है।" (What India can teach us? p. 28 Ed. 1882) उसी तरह अंगरेजी भारत नामक इतिहासके रचयिता मिलभी, हिन्दुओंके गुणों तथा उनकी प्राचीन सभ्यताके सम्बन्धमें जो कला तथा विज्ञानके[1] उनके परिश्रम साध्य कार्योंसे परिलक्षित है, उसी प्रकारके गहरे जड पकडेहुए पक्षपातका प्रदर्शन करते हैं। यद्यपि इन बातोंको सब लोगोंने स्पष्ट रीतिसे स्वीकार किया है और स्वतंत्रताके साथ इनकी प्रशंसाभी की गयी है।

अतएव अध्यापक विलसनने अपनी एक टिप्पणीमें इस बातका बहुतंही ठीक खंडन किया है और उचित क्रोधके साथ उस पर डांटडपट की है। वे कहते है " हिन्दुओंकी इमारतका यह परिश्रम साध्य वर्णन ग्रन्थकर्ताके पक्षपातकी हठ धर्मीके कुछ विचित्र नमूने प्रदान करताहै। हिन्दुओंके गुफा-मन्दिरोंको महत्त्व हीन बना डालनेके अपने उत्साहमें वह संकेत करता है कि वे कृत्रिम नहीं है। क्योंकि

---

१. भारतके इतिहासके रचयिता लार्ड एलिफन्सटनने विना पक्षपात किये स्वीकार किया है-" पठन पाठनकी इन सारी शाखाओंमें ब्राह्मणोंकी पहले की उत्कृष्टता." (Vide, the History of India p. 90 @ 95 2nd Epition)

मिल लिखते हैं-यह कहना कठिन है कि प्रकृतिका कितना आश्चर्य जनक कार्य इन तराशीकी इमारतोंमें हो सकता है "। ब्रेएन्टके स्वरमें स्वर मिलाकर वह यह माननेके प्रवृत्त हैं कि पिरामीड बादलोंसे टपक पडे थे या पृथ्वी फोडकर निकल आये थे यह बात असम्भव नहीं है, (Mill's British India. Wilson's Note) इन बातोंके प्रकाशमें यह बात स्पष्ट मालूम पडतीहै• कि पक्षपात पूर्ण सम्मति तथा उसके पूर्व निर्दिष्ट विचार किसी सच्ची खोजके लिये तथा वस्तुओंके वर्णनके लिये जैसा कि वास्तवमें वे स्थित हो सदैव व्यवहारिक अडंगे बनते हैं। अतएव ऐसी दशामें सम्मतियोंका पक्ष-पात पूर्ण प्रकाशन सदा उतनेही महत्त्वका समझना चाहिये जितनेके योग्य वे हैं और उन्हें सावधानीके साथ अङ्गीकार करना चाहिये। किन्तु अब हमें अपने कथित विषयकी ओर आना चाहिये और उन विचारोंकी ओर ध्यान देना चाहिये जो कि ऋग्वेदमें व्यक्त किये गये हैं। पहले उपस्थित कियेगये प्रमाणोंसे यह बात ज्ञात हो जायगी कि हमारे आदि पूर्वपुरुषोंके विचार जो ऋग्वेदमें व्यक्त हुए हैं स्पष्ट रीतिसे उतनेही प्राचीन हैं जितना कि (Inter lGca ila) काल तृतीय कालीनयुगके या उसके पिछले भागके समान प्रचीन होनेकी तो कुछ बातही नहीं। क्योंकि हम देखते हैं कि हमारे ऋग्वैदिक पूर्वपुरुषोंने उत्तरी ध्रुवकी अद्भुतवस्तुयें प्रत्यक्ष देखी हैं, कभी न समाप्त होनेवाली उषाओं लम्बे दिनों और विना भग हुए महीनोंतक लगातार बनी रहनेवाली भयंकर रातोंका अनुभव उन्होंने किया है। यही नहीं किन्तु हम यहभी देखते हैं कि हमारे वैदिक पूर्वपुरुषों और कवियोंने ऐसी सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिये विनम्रता पूर्वक रातसे प्रार्थनाएँ की हैं जिससे वे अन्धकारके पार होजायँ। विशेष करके इस बातसे उन्होंने उसकी प्रार्थना की

थी क्योंकि उन लोगोंने अनुमान किया था कि उसके अन्तका छोर न दिखाई देनेसे वह अनुत्तीर्ण होगयी थी।

और मैं यहां यह कह सकताहूं कि पूर्वोक्त उत्तरी ध्रुवकी अद्भुत वस्तुओंका देखाजाना या उनका आवाद कियाजाना तथा उनकी बसने योग्य अवस्था केवल तृतीयकालीनयुगमेंही सम्भव थी और स्पष्ट रीतिसे महा हिमयुगके आगमनके प्रथम जब कि हिम और तुषारकी मोटी मोटी तहोंसे एशिया, योरप और अमरीकाके ऊपरी अक्षांशोंके देश आवृत हो गये थे, यही नहीं किन्तु तबसे उत्तरी ध्रुवदेश उनके नीचे दबे मालूम पडते हैं।

इस तरह हमारे आदिम पूर्वपुरुषों द्वारा उत्तरी ध्रुवकी अद्भुत वस्तुओंका निरीक्षण और उन देशोंका बसाया जाना बहुतही प्राचीन तृतीयकालीनयुगतक पहुंचता है। अतएव इसी कारणसे काउन्ट जर्नस जर्नाने भारतीय आर्य या हिन्दूविचार तथा ज्ञानकी प्राचीनताके सम्बन्ध निम्नलिखित कथन किया है। "यदि हिन्दुओंने बेलीकी गणनाके अनुसार ईशाके ३००० वर्ष पूर्व ज्योतिष तथा ज्यामिति सम्बन्धी इतना ऊँचे दर्जेका ज्ञान प्राप्त कर लिया था तो उनके ज्ञानका प्रारम्भ अनेक शताब्दीयों पहले हुआ होगा। क्योंकि मानवी मानसिक शक्ति विज्ञानके मार्गमें केवल क्रम क्रमसे उन्नति करती है।" (Theogony of the Hindus p. 37) वे फिर कहते हैं, "मेगास्थनीजने, जो गङ्गरीडोजके राजा कान्द्राग्गुप्सो (चन्द्रगुप्त) के यहां राजदूतके रूपमें रहता था, उस राजाकी राजधानी पाली भोतरामें रहते समय एक वंशावली खोजी थी जिसमें डिआनिसियससे लगाकर कान्द्राग्गुप्सोतक १५३ राजाओंकी नामावली दी हुई थी और उसमें प्रत्येक राजाका शासन कालभी स्पष्ट करादिया गया था जिसका जोड ६४५१ वर्ष होता

है । इससे डिओनो सियसका शासनकाल ईसाके लगभग ७००० वर्ष पूर्व पहुंचता है । फलतः यह काल मैनीथो (अर्थात् टिनाइट थिवेनी वंशके आदि पुरुष,) की मिस्री वंशावलीके प्राचीनतम राजाके पूर्व १००० वर्ष पूर्व पहुंचता है और पिरामिडके संस्थापक सौकी-स २००० वर्ष पूर्व (Theogony of the Hindus p. 45) वे आगे लिखते हैं, " इस पृथ्वीपर कोई ऐसी जाति नहीं है जो हिन्दु-ओंसे उनकी सभ्यता तथा धर्मकी प्राचीनताके सम्बन्धमें बराबरीका दावा करसके " (Theogony of the Hindus d. 80) स्पष्ट रीतिसे यह इस कारणासे हुआ कि मिस्टर इलवेदने हिन्दुओंके चार युगोंके सम्बन्धमें निर्णय करनेके बाद बडे आदरके साथ यह कहा था । " ऐसी प्राचीनताके सामने मूसाकी प्राचीनता अभी कलकी मालूम पडती है और ऐसे युगोंके आगे मेथूसेलहका जीवनकाल एक बालिश्तसे अधिक नहीं है" इसीकारण एम्लुई नैकोलियटनेभी कहा था । " मनुने मिस्री, हिब्रू, यूनानी तथा रोमन कानूनोंकी व्यवस्था की और उसकी शक्ति अभीतक हमारे योरपीय कानूनोंकी सारी व्यवस्थामें घुसी हुई है । " (La Bible Dans L' Inde p. VIII Ed. 1890)

मिसेज विसेन्टने यह लिखकर कहा कि, यूनान या रोमकी अपेक्षा भारत प्राचीनतर है । यह भारत उस समयभी प्राचीन था जब मिस्रने जन्म ग्रहण किया था, यह भारत उस समयभी प्राचीन था जब चैल्डियाकी रचना हुई थी, यह भारत जिसका इतिहास फार-सके कार्य क्षेत्रमें अवतीर्ण होनेके बहुत पहलेसे हजारों सदियों-

---

१. प्रोफेसर मैक्स डनकरका कहना है कि 'स्पतम्बस' ने जो सम्भवतः डिओनोसियसका दूसरा नाम है, " ईसाके ६७७७ वर्ष पूर्व अपना शासन प्रारम्भ किया था " । (History of Antiquity Vol IV. p. 74, 219)

तक पहुंच चुका था... । " (Mrs. Bisant on India & its mission) और यह इसी कारणसे, जैसाकि स्पष्ट रीतिसे मालूम होता है, प्रोफेसर ब्लूमफील्डने कहा था कि आर्य जीवनका प्रारम्भ ईसाके ४५००० वर्ष पूर्वकी अपेक्षा कई हजार वर्ष उधर ही पहुंचता है और जो पर्दा ईसाके ४५०० वर्ष पूर्व दृष्टिके आगे जानेमें बाधक प्रतीत हुआ, सम्भव है कि अन्तमें वह केवल बारीक रेशमका बुरका ही प्रमाणित हो । "

ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु ।

इति आर्योंका मूलस्थान.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास, "लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, कल्याण-बंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, खेतवाडी-बंबई.

आर्यांका मूलस्थानका—

शुद्धयशुद्धिपत्र ।

सूचना—लेखकके कथनानुसार फाइनल देखनेके लिये कार्यालयकी ओरसे न भेजे जानेके कारण जो अशुद्धियाँ निकली हैं उनका शुद्धयशुद्धिपत्र संमिलित कियाजाता है। जिसको पाठकलोग पढते समय सावधानीसे पढकर समझलें।

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
		उपोद्घात ।	
४	२०	परिश्रमकी	परिश्रमके
५	१७	ये	वे
,,	२०	पूर्ण तथा	पूर्णतया
,,	२४	उस	इस
६	३	इमानीदारीसे	इमानदारीसे
,,	१७	अपेक्षा	उपेक्षा
,,	१८	नहीं विना पूर्व	नहीं पूर्व
७	२३	वढा	वडा
१	११	आविर्भाके	आविर्भावके
,,	१३	वैज्ञानिकके हैं	वैज्ञानिक हैं
२	७	उनका	डानाका
,,	,,	Daya's	His
,,	,,	Ixt	Iext
३	१	है। तथा यह	है। यह
,,	१०/११	विषयमें सम्बन्ध है, भू	विषयमें भू
,,	११	शास्त्रीमें संस	शास्त्री मेसर्स
,,	१४	द्वीपकी	द्वीपके
४	१४	जिसको	जिसका
,,	१५	पूव	पूर्वी
,,	२०	इनका	इसका
,,	२३	फीटकी	फूटकी

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
५	१	तरहके	वहोंके
,,	८	नालकके	' ओलेनीलस ' के
,,	१८	कछा	कहा
६	३	ओलीनीलस	ओलेनीलस
,,	५	पहिचानें	पहिचानने
,,	६	ant	au
,,	८	और Platonce)	) और
,,	९	यारप	योरप
,,	१६	लारेटियन	या लारेटियन
७	३	कहा	कही
,,	५	आर्यावर्तम	आर्यावर्तमें
,,	६	देंगे.	देंगे ।
,,	२४	ह	है
,,	,,	Manals	Manuals
८	१५	आर	और
९	२	ल्वैन्फर्ड	व्लैन्फर्ड
,,	३	शीास्त्रयोंने	शास्त्रियोंने
,,	२०	Psendoworph	Pseudomorph
,,	२६	Oldhaw	Oldham
१०	५	भागामें	भागोंमें
११	१	प्राचीनता	प्राचीनतम
,,	६	बडतालके	पडतालके
,,	१३	थ	थे
,,	१८	निओवोलस	निओबोलस
१२	९	वहुतही अध्यापक	बहुतहीं कम अध्यापक

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
१२	१४	चट्टाल्हीं	चट्टानहीं
,,	२२	डिवनमें तथा वेलटके	डिवानमें तथा वेलटके
,,	१३	उनके	उनका
१६	६	अर्यात्	अर्थात्
,,	९	सिवा (	सिवा मिओसीन (
,,	१४	ऊपरी (	ऊपरी मिओसीन (
,,	१५	जिसके	जिनके
१७	५	मूलस्थानकी	मूलस्थान
,,	८	रंगमेंसे	रंगमें
१८	११	सात् उसके	सात् या उसके
१९	३	पुस्तकका छठाँ	पुस्तकके छठे
,,	२०	जीनाव	चनाव
,,	२२	गौरवत्वपूर्ण	गौरव पूर्ण..
२०	१६	लिये उसकी आतुर	लिये आतुर
,,	२२	उत्तर ४. क ऋग्	उत्तर ऋग्
२१	२१	स्त्रोजका	खोजका
,,	२५	ऋचाको	ऋचाके
,,	२४	हु,	है,
२३	१८	हैं और	हैं कि
२४	१२	तुषारके	तुषारकी
२५	५	सदव	सदैव
,,	१३	वाणत	वर्णित
,,	१६	इंसाक	ईसाके
,,	१७	Hretic	Aretic
२६	१३	आवस	आवास

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
२६	२५	भूमियें	भूमिमें
,,	२६	ईशान	ईरान
२९	१०	हें	हैं
,,	२६	कासिअन्न	कास्पिअन
३०	२	सूखण्ड	भूखण्ड
३१	९-१०	फोसिलसका	फोसिलोंका
,,	१९	इतनी बोट	इतनी बाढ
३२	९	मरजाय आर	मरजायँ और
३३	१०	Cans	Cans
,,	११	इन्टर	हन्टर
,,	२१	गयी	गया
३४	५	और	ओर
,,	,,	जसा	जैसा
३५	९	मानत्र	सामथ
,,	२१	तुषारकी	तुपारके
३७	११	या (or the)	या (the)
,,	,,	अवस्थाम	अवस्थामें
,,	१७	विषयमें म आर्यो	विपयमें आर्यो
३८	१	योरपाय	योरपीय
,,	१०	Eue	Eun
,,	,,	Pae	Pao
३९	१	दलीलेंकी	दलीलोंकी
,,	३	दलील यह है	दलील है
,,	८	ह कि	है कि
,,	१४	बोली है	बोली जाती है

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
३९	१७	करणक	करणका
,,	१८	मन	मैंने
४०	२३	पाठकोंके मत	मत पाठकोंके
४१	९	म	मैं
,,	११	म	मैं
,,	२५	दाक्षित	दीक्षित
,,	२६	हमारे	हमारी
४२	१	होगी	होगा
,,	१५	कन्नतककी	कन्नतककी
४३	३	निरी	निरा
,,	,,	भवत	भव
,,	११	जो आर्यजातियां मुख्य	जो मुख्य
,,	१४	Great	Grest
,,	,,	Britani	Britain
४४	१५	कहता	कहते
,,	१९	इस वात वातको	इस वातको
,,	२२	'हमें'	'हयें'
,,	,,	संस्कृत उसमें	संस्कृतमें
४५	८	यूदि थे।	यह
,,	१४	योरुपमें	योरपमें
,,	१८	क	कि
४६	६	हों	ही
,,	,,	उसम	उसमें
,,	१४	वदनाम	वदनाम
,,	१५	शिक्षा प्रद है क	शिक्षाप्रद है कि

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
४६	१९	इँग्लिडके	इँग्लैंडके
४८	३	पाते	पाते
,,	२०	१ भारतीय–आर्य	१ भारतीय–आर्य–
,,	२२	व्योरे वार	व्योरेवार
४९	७	साश	वाश
,,	८	वल्ख	दल्ख
,,	,,	फीलतक	झीलतक
,,	८-९	किरीलडे विडसने	किरीसेडेविडने
,,	९	बुद्धिस्थ	बुद्धिस्म
,,	१८	पूर्वी	पू
,,	२१	हाको	होंको
"	"	तिव्रत	तिब्बत
५०	९	देशान्तगमनकी	देशान्तर गमनकी
,,	१३	तक	तर्क
५१	७	रॅमि	सी
,,	८	आर्यभापामें	आर्यभापायें
,,	९	Hocrue's	Hocrue's
,,	,,	Primition	Primitive
,,	१७	पूर्वस	पूर्वसे
,,	२२	Faf	Fat
५२	४	वारह सिंहे यहाँ	वारहासिंहे
,,	६	मामवथ	मामथ
,,	७	वाले	वाले
५३	५	केनीका	कीनका
,,	८	और	ओर
,,	९	Inan	Inau
,,	२१	पृथक्	अथक

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
५३	२३	अवस्थामें	अवस्थासे
५४	९	कथनासे	कथनोंसे
,,	१३	टेक्सट्स	टेक्सेट्स
५६	७	कहते	करते
,,	८	हैं वे कि,	हैं कि
५७	२	हमारे	हमारे
६०	३	स्लेजलने	स्पीजलने
,,	१३	तै	तय
६१	७	आवास	आवाद
,,	२२/२३	सरस्वतीओर	सरस्वतीकी ओर
,,	१५	हुएएक	हुए,
,,	२२	सम्बम्धमें	सम्बन्धमें
६३	५–६	95 अङ्कित शब्द ग्रन्थ-कर्ताके हैं, इस	95 इस
,,	९	गालूम	मालूम
,,	,,	आरपर	आरपार
,,	१९	सरकारक	सरकारके
,,	२३	लिथू आनियाकी	लिथुआनियाकी
,,	,,	पूर्वी	पूर्वी
६५	१	दवनद्यो	देवनद्यो
,,	,,	वे	वह
,,	१६	एक युग	युग
६७	२४	जो डाक्टर	डाक्टर
६८	१५	एनीफिनस्टर	एलिफिंस्टन
,,	,,	म्यूर	म्यूरके

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
६९	३	संस्क्रतसे	संस्कृतसे
,,	२१	जातया	जातियाँ
७०	५	पूवसे	पूर्वसे
,,	८	जा	जो
,,	११	मुड	मुठ
,,	१४	तिव्वतके	तिब्बतकी
,,	२०	ह तो समझना	है तो समझना
७१	१२	आर्योंस	आर्योंसे
७३	४	विद्वान्	विद्वान्
,,	२४	सम्वान्धि	सम्बन्धी
७४	७	मुहवरे	मुहावरे
,,	२४	इन्ग्रीस	इन ग्रीस
७५	६	इजिप्ट	इजिप्ट
,,	,,	और	ओर
,,	७	जावा	जावा
,,	८	और	ओर
,,	१९	कारांने	कारोंने
७६	२	वहा	वहाँ
,,	,,	उन्हौंने	उन्होंने
,,	४	आर्यावर्त	आर्यावर्तसे
७७	१३	Societo	Societyo
,,	१९	परिमाण	परिणाम
७८	२०	वौछारके	वौछारके
,,	२४	वहांपुर्वसे	वहाँपूर्वसे
,,	,,	तश्चा	ता

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
७९	८	रक्खी	रक्खा
,,	१९	तडफ	तडप
८०	१९	समुाचत	समुचित
८४	८	ग्रीफिय	ग्रीफिथ
,,	६	इनते	इतने
,,	१७	पर्व	पूर्व
,,	,,	रूपम	रूपमें
८६	५	पेचीली भापायें	पैंचीली भाषामें
८७	७	ओर	और
,,	१७	था	थीं
,,	१९	उन्सुक्त	उन्मुक्त
८८	२०	लो	लोग
८९	१	याज्ञिय	याज्ञिक
,,	२	सोमया	सोमयांग
,,	५	In	Apyaus in
,,	८	आर	और
,,	२०	इरानी	ईरानी
९०	४	विच्छेद् और	और
,,	५	दिय	दिये
,,	६	वर्हा	वहीं
,,	८	पौधेके	पौधेका
,,	१०	वाशिय	वाशिप
,,	१३	नहीं हैं	नहीं है
९१	५	उगता	उगाता
९१	६	प्रभाव	अभाव

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
९१	१५	दूसरी	दूसरा
९२	५	सोमको	सोम
९३	१६	Spr	Spi
,,	२०	भेद	भेद और
,,	२३	इसीका	उसीका
९४	१०	लेखोंको	लेखोंका
,,	१५	वाद	वाद
९५	३	वात	बात
,,	५	उसकी	उसके
,,	१८	हैं	है
९६	५	जातिकी	जातियोंकी
,,	११	रिजल्टसू	रिजल्ट्स
९७	१९	एकही	ही
,,	२०	रागोजिनने	रागोजिन
९८	७	इन्हें	इसे
,,	८	वहींसे	यहींसे
,,	११	तो वह लोनीतर	तो लोनीतर
,,	२६	प्रमाण	प्रमाणसे
१००	२०	सिबा	सिवा
,,	२१	उगताथा...)	उगता था
१०१	१५	लिखा हैं	लिखा है
,,	२४	वेदोंक	वेदोंके
१०२	२०	वह आया था	वह आया था
१०३	८	जरासी	जरा भी
१०४	८	सव	सब
,,	१२	धात्वथभी	धात्वर्थ भी

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
१०६	२३	९ इस	१ इस
१०७	१९	कल	कूल
१०८	९	कालकी	कालके
,,	१०	होती है	होतेहैं
,,	१२	पशुयागकी	पशुयाग
,,	२३	एकमें	किसी एकमें
,,	२४	परमावश्यकता	परमावश्यक था यह
११०	१	सोमने	सोम न
,,	८	तैयार था	तैयार करने या
,,	,,	शक्तियों	शक्तियोंको
,,	९	लगाता	लगातार
,,	,,	रहीं	हीं
,,	१९	स्थान	स्थान
१११	१४	ब्राह्मणोंके	ब्राह्मणोंको
,,	१६	Hang's	Haug's
,,	२१	जिन	जिनके
,,	२७	अधिकका	अधिक कर
११२	१५	जोरास्टरकी	जोरास्टरको
,,	१६	उनका	उन
,,	१९	Hang's	Haug's
,,	२०	Ono	Onof
११३	११	Hang's	Haug's
११४	३	है	हैं
,,	४	देशके आने	देशमें जाने
,,	१४	बातोंस	बातोंसे

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
११४	२०	निवेशोंभी	निवेशोंमेंभी
,,	,,	व्यहग्र	व्यग्र
११५	५	करदेना	करदेगा
,,	२१	Hang's	Haug's
११६	१२	सोमहाराज	सोममहाराज
११७	१९	मंडियों	मंडियाँ
११८	९	आनेके	आनेके बाद
११९	१९	सत	सात
१२०	२	उतरेंगी	उतरेगी
,,	४	या	था
,,	९	जिसका	का
,,	,,	है । इस	है, जो
,,	२६	नदकि	नदीके
१२१	४	तुपारके	तुषारकी
,,	१४	तद्रत्	तद्वत्
१२२	२	सरत्वती	सरस्वती
,,	६	वह	यह
,,	२१	है । कि	है ।
१२३	२	मनुष्य लीला	मनुष्य इसी लीला
,,	१७	सरस्ती	सरस्वती
१२४	१८	पुरुपों	पुरुष
१२७	१	पवित्रताक	पवित्रताके
,,	,,	सम्बन्धामें	सम्बन्धमें
,,	२५	रह	तरह
१२९	१२	नहीं	नहीं

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
१३०	४	और	ओर
,,	५	जर्थात्	अर्थात्
१३१	८	उसने	अपने
१३२	८	वीहार	विहार
,,	११	प्रमाणसे	प्रमाणसे
१३३	१	ऋचा	ऋचाका
,,	६	सिन्धुक	सिन्धुके
,,	१३	हे	हैं
,,	२५	शतुद्री	शतद्रु
१३४	२१	विजय	विजयकी
,,	२६	तव	तब
१३५	९	ईं	हैं
,,	१४	वढ थे	वढे थे
१३६	९	इनसे	इनके
,,	१२	अव	अब
,,	२५	Gezatteer	Gazetteer
१३७	२	देशान्तर गमनकी	देशान्तरगमन
,,	११	लिखते पाते हैं,	लिखते हैं,
,,	१६	ये आर्य	इन आर्य
१३८	१	लिखते हैं,	लिखते हैं कि
,,	२	रथाके	राथके
,,	१०	वे	वे
,,	१८	देश	देशके
१३९	३	मतकसे	मतसे
,,	४	है कुभ	है कि कुभ

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
१३९	५	नदियांक	नदियोंके
,,	२२	यही नहीं	नहीं
१४०	१०	हीं उन्होंने कर	हीकर
,,	१२	चिककुल	विलकुल
,,	१५	वाली	वाले
,,	२२	स्थानस	स्थलसे
,,	२६	सावित	सावित.
१४१	५	आहत	आहत
१४२	१५	ह	है
१४६	१	थ	थे
,,	४	है	हैं
,,	६	चिह्न	चिह्न
,,	८	थ	थे
,,	११	वह	यह
,,	१३	स्थान और	स्थान
,,	१९	कहेंगे	कहेंगे कि
१४७	८	रखता है	है
,,	१६	फारसका	फारसको
१५०	६	उसका	उसके
,,	,,	अनुभव	अनुभवका
,,	१३	क्रर	क्रूर
१५२	२३	सम्बन्धका	सम्बन्धको
१५३	१७	ईश्वर	ईश्वरके
,,	१८	जीवन	जीवनका
,,	२०	Maraui hang's	Martui Haugs

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
१५३	२३	अनुयायियोंका	अनुयायियोंके
१५४	१	भारती	भारतीय
,,	६	Hangs	Haugs
,,	१६	विस्तारक	विस्तारके
,,	१७	उनक	उनके
१५५	१८	Hangs	Haugs
,,	२१	रासा	रसा
१५६	४	थे	थे तो
१५७	२५	Hangs	Haugs
१५८	१८	Hangs	Haugs
१५९	१०	आवादोंके	आवादीके
,,	१८	Hangs	Haugs
,,	२५	वैकुट्रियाको	बैक्ट्रियाको
१६०	१	Hangs	Haugs
,,	१३	ईरानका	ईरानको
,,	२५	वैरनवान	वैरन वान
१६१	२	बलख या वैक्ट्रिया	वलख या वैक्ट्रिया
,,	१२	कुछेक	कुछेके
,,	२४	वैरनवान	वैरन वान
१६२	१०/१४	“ हम ’ से	हम है)
१६३	१७	इमें	हम
,,	२०	कुछेक	कुछ
१६४	७	ह जैसा	है जैसा
,,	९	आर्यावर्तमें	आर्यावर्तसे
१६५	१	ईरान्	ईरान

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
,,	१६	इरानियोंकी	ईरानियोंकी
१६६	४	वात	वातका
,,	२६	ह कि	है कि
१६७	१३	हिमकी	हिमका
,,	२१	वस	वस
,,	२३	वस्तीयाँ	वस्तियाँ
,,	,,	हुए	हुई
,,	२५	जदाईके	जुदाईके
१६९	१	आमेके स्तम्भोंमें	यहां दिये गये कोष्ठकमें
,,	१८	असुरोंक	असुरोंके
,,	२४	थी	थीं
,,	२६	पुरुषोंक	पुरुषोंके
१७०	१६	विगड	बिगडे
,,	२०	वा	वात
,,	२५	Hangs	Haugs
१७१	४	Hangs	Haugs
,,	१५	Hangs	Haugs
१७४	२	विज्ञानके	विज्ञान
,,	१२	इसकी	इसका
,,	१६	जुपीटर;	जुंपीटर,
१७७	२	याज्ञिकोंको	याज्ञिकोंकी
,,	१८	और में	और
,,	२३	अब हम	अब
१७८	१९	किया	किया था
,,	२५	सायणकी	सायणका

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
१७९	१०	कृत्योंका	कृत्योंके
१८१	५	थी, । " क्योंकि	थी, " क्योंकि
१८४	८	हालके	हालमें
"	२५	जाते थ	जाते थे
१८६	६	स्टरंने इस	स्टरंने
"	११	Hangs	Haugs
"	१६	घणा	घृणा
१८७	२३	यज्ञादिक	को यज्ञादिक
"	२६	यास्करने	यास्कने
१८८	५	उसे	उस
१८९	"	जा	जो
१९०	९	था	या
"	१०	N. P. आर्य	आर्य
"	२१	सम्बन्धमें लिखागयाहै	सम्बन्धमें
१९१	१६	अद्ध	अर्द्ध
१९२	१५	गई थी	गई
१९२	१६	आदिप निवासियों	आदिमनिवासियों
"	२६	अबतक	अब
१९३	१	Oudh	Gudh
१९४	८	उसका	इसका
"	१८	आर्यावर्तका	आर्यावर्तकी
१९५	५	पौर्वात्य	पौरस्त्य
"	१४	माना कि	माना
"	१५	वर्वरता	बर्बरता
१९७	५	इच्छाए	इच्छाएँ

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
१९७	२२	शब्दके	शब्दका
१९९	२	था	या
,,	७	वे	थे
,,	१८	नादियाँ	नादियों
,,	२०	हुइ	हुई
२००	२१	मुहाविराही	महाविराही
,,	४	दशकी	देशकी
२०२	१७	अभागी	अभागें
,,	२५	रूपमें	रूपकी
२०३	४	मैं एक	मैं यहां एक
२०४	५	जो यज्ञ-करता है उससे	जो यज्ञ करता है और
,,	७	स ब्राह्मण	स ब्राह्मण: उससे वह द्वेषकरताहै
२०५	११	इसे	से
२०७	२३	राक्षस	राक्षसके
२०८	१५	वरन्	वरन्
२०९	३	जघन्य थ	जघन्य थे
,,	१०	जातवेदस	जातवेदस्
,,	१५	विता	विता
२१२	१३	दृष्टान्तोंम	दृष्टान्तोंमें
,,	१९	हुई हों	हुई थीं
,,	२५	उनकी	इनकी
२१३	१	उनके	इनके
,,	१८	प्रति घृणाप्रदर्शनमें,	प्रति जिन्होंने
,,	२०	विरुद्ध थे या	विरुद्ध थे घृणाप्रदर्शनमें या
२१४	१	N. P. अव	अत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
२१४	५	पारसीक ईरानी	पारसीक
,,	९	सिवाभी	सिवा
२१६	१९	सम्मति	सम्मतिका
२१७	१२	वान्धवों पाणनी	वान्धव पाणिनी लोग
,,	२२	वोलनेमें	वोलना
२१८	५	आदिमें,	आदिम
,,	६	और	और यदि थी तो
२१९	१	(रामा	रामा–५६
,,	६	दत्तचित्तसे	दत्तचित्त
,,	१८	वणाकी	घृणाकी
,,	२२	दूसरोंकी	दूसरोंके
२२१	९	हुइ	हुई
,,	१२	उसने उस समय	उसने
२२२	१३	आर्यावर्त	आर्यावर्तके
,,	१८	उत्पति	उत्पत्ति
,,	२०	वेवरका	वेवरका
२२३	१२	सम्वन्ध	सम्वन्ध
,,	२६	किया है	किये हैं
२२४	८	सप्तसिन्ध	सप्तसिन्धु
,,	,,	N. P. यह	यह
,,	१०	हरवल	हरवल
,,	११	करते हैं	करते हैं रातमें जो गहरा अन्धकार
,,	११	वास्तवमें	वास्तवमें
,,	१६	यास्करने	यास्कने

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
२२७	१६	वरपा	वर्षा
२२८	८	म	में
,,	१६	है वे	है। वे
,,	१७	था	या
२२९	१०	अश्निोंका	अश्विनोंका
,,	१९	ऋगूवेदका	ऋगूवेदका
२३१	१८	होगा	न होगा
२३२	८	ये	वे
,,	१७	यही	यहीं
२३३	१	करनेको प्रयत्न	करनेका प्रयत्न
,,	६	करनेके	करनेमें
२३४	५	है जिनस	हैं जिनसे
२३५	६	रूपम	रूपमें
,,	७	सोरमसका	सोमरसका
,,	१०	उसका	उनका
,,	१२	उपरसे	ऊपरसे
२३६	१८	मातरा	मातरम्
२३७	१	सकेत.	संकेत :
,,	३	वाक्यांश	वाक्यांश
२३८	९	(सामें	(रसामें
,,	१०	बीज	बीच
,,	२४	गोमताक	गोमतीके
२३९	१	वाक्यांशम	वाक्यांशमें
२४३	१०	वाडा	वाडा
२४४	१	N. P. मैं	नयापारा

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
२४४	२४	Hangs	Haugs
२४५	९	Hangs	Haugs
,,	११	दृढताक	दृढताके
,,	१७	पुरुपसक्तकां	पुरुषसूक्तका
,,	२५	Hangs	Haugs
२४६	४	करूँगा।	करूंगा जो
,,	९	हुआ	हुआ क्या
,,	,,	सूक्त उस	सूक्त
,,	१३	Hangs	Haugs
,,	२१	उसके आस्तित्वका सिद्धान्त और अम रत्वकी आशा व्य- क्त की गई है	उनमें अस्तित्व है जिस ऋचामें देवताके स्वरूप आस्तित्वके सिद्धान्तों और अमरत्वके भाव व्यक्त कीये गये हैं
,,	२६	एकेश्वरवादके	एकेश्वरवादके
२४७	६	थे	थी।
,,	१९	सम्पातिमें	सम्मतिमें
,,	२०	या	था
,,	२१	उतना	उतनाही–
,,	,,	Kerus	Rerns
,,	२३	Canstes	Caps
,,	२४	Scin	Scein
,,	२५	Amst	Hmst
२४८	२५	व्यवहारिक	व्यावहारिक
२४९	१	हैं।	है। वह यह कि
२५०	१२	मेघक	मेघके

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
२५१	४	हमारे	हमारा
,,	,,	था	या
,,	२३	देवताओंमे.	देवताओंमें
,,	२५	श्रेष्ठ	श्रेष्ठ
,,	२६	ग्रन्थकर्ताका	ग्रन्थकर्ताके
२५२	८	लोगों	लाभों
,,	१२	भलो	भले
२५३	८	वे वाद	के बाद
,,	१३	नीचे	आगे
,,	,,	भई	गई
,,	२५	नेलने	नलने
२५४	९	आर	और
,,	१०	गाय	गायें
,,	२६	दबाव	दबाव
२५५	१४	गांई हैं	गई हैं
,,	१८	प्रशंसामें	प्रशंसा
२५६	१४	खानेवदोश	खानेबदोश
,,	१८	नगरोंक	नगरोंके
२५७	१५	खानेवदोशी	खानेवदोशी
,,	२२	वैजानिक	वैज्ञानिक
२५८	३	खानेवदोशी	खानेबदोशी!
,,	११	विलकुल	बिलकुल
,,	१३	टाक्टर	डाक्टर
,,	१४	आनादि	आन दि
,,	२२	वितातो	वितावो

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
२५८	२५	Oriegin	Oria
२५९	२०	Hangs	Haugs
२६०	६	वदिक	वैदिक
,,	,,	आयावर्त	आर्यावर्त
२६१	२१	N. P.	नयापारा
२६२	११	दिन	दिनों
,,	,,	रात	रातों
२६३	१६	दिन	दिनों
२६४	१	सम्बन्धमें कि "ऋग्वेदमें	सम्बन्धमें "ऋग्वेदमें
,,	१३	वह	" वह
,,	२२	इसके	" इसके
२६६	७	ध्रवमें	ध्रुवमें
,,	२१	ह	है
२६७	१९	एकमात्र विस्तार	एकमात्र समय
,,	२०	लम्वाई	लम्बाईका विस्तार
२६८	१२	करता	होता
२६९	३	करती है	करता है
,,	४	करती है	करता है
२७१	२	उस	उन
,,	७	Hangs	Haugs
,,	२५	,,	,,
२७२	९	प्राचीन तम	प्राचीनतम
,,	२४	देशहीकी	देशहीका
,,	२५	आर	और
२७३	६	अक्षांशोंपर	अक्षांशोंमें

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
२७३	११	ईरानीलाग	ईरानीलोग
,,	१५	पूवपुरुष	पूर्वपुरुष
,,	१९	सोली	सेली
,,	२३	लुई जैको लियट	लुई जैकोलियट
२७५	२१	ब्राह्मणकी	ब्राह्मणके
२७६	९	शीतकालीनके	शीतकालीन तुषारके
२७७	२१	सम्मति कि है	सम्मति है कि
,,	,,	समाप्त	समाप्ति
२७९	९	वडी	वडी
,,	१३	उससमय म	उससमय मैं
२८०	१७	गया	गये
,,	१८	था	थे
,,	१९	लयकी	लय—जो
२८१	५	उन्हें	उन्होंने
,,	२३	पिरिहने	पिरहले
२८२	१४	जैओलिअटने	जैकोलिअटने
२८३	२५	दुथ	ट्ठुथ
२८४	१	जमी	जंगी
,,	१९	उत्पीडनका खेवालोंसे	उत्पीडनकोंसे
२८४	२१	वौक्ट्रिया	बौक्ट्रिया
,,	२४	लेवे गये थे	लेते गये थे "
,,	२५	उपदेदक	उपदेशक ?
२८५	१२	यारप	योरप
,,	१५	पुरातनकालका	पुरातनकालके
,,	,,	हमारा	हमारे

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
२८६	२	वैरंन	वैरन
,,	५	मातके	भारतके
,,	१२	Sepe	Serpc
,,	१३	हम	हमें
,,	१५	Mann	Manu
,,	१७	वैरन	वैरन
,,	२०	विलियमजोन्स	विलियम जोन्स
२८७	१५	क नवम्वरम	के नवम्वरमें
२८८	१	भोर	मार
,,	१६	वने	वने
,,	२५	आनरेवल	आनरेवल
,,	,,	मारको	मारका
२८९	१२	कोलंम्विया	कोलम्विया
,,	१७	कोलम्विया	कोलम्विया
२९०	१४	उस	इस
२९१	८	कहानी	कहानीका
२९२	१२	दिग्विजय ।	दिग्विजयहै ।
,,	१९	कहानी ही	कहानियाँ ही
,,	२५	कार्योंका	कार्योंकी
,,	२६	स्थापनाँको	स्थापनाओं
२९३	२१	आगेक	आगेके
२९४	११	आपू	आफू
,,	१६	सरकार	सरकारने
,,	२०	बुटलरने	वटलरने
२९५	४	भग्नाव शेष	भग्नावशेष

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
२९५	१०	वोर्नियो	बोर्नियो
,,	१४	या	भी ?
२९६	५	दक्षिणा	दाक्षिणी
२९७	२६	उनकी	उनका
,,	,,	वाजारकि आओ	वाजार किया व
२९८	१	चाओकी	चाव
,,	,,	थी	था
,,	१२	कियावचावकी	कियावचावकी
,,	१५	परतु	परन्तु
,,	२०	आवसे	आवसे
,,	२३	जीतों	जीतें
२९९	९	समर्थ होंगे	समर्थ हुए होंगे
,,	११	भारी था	वड़ा था
३००	६	चान्द्रमासी	चान्द्रमास
,,	२३	तेरी	तेरा
३०१	१	उस	उसे
३०२	७	प्राव्रृतिक	प्राकृतिक
३०३	६	ज्ञात	ज्ञान
,,	१९	अन्तकी	अर्थकी
३०४	४	वसे	वसे
,,	२२	Traus	Trans
,,	२५	I-ast	Last
३०५	५	मरण	स्मरण
३०६	१९	ऋतुया	ऋतु या
,,	२३	घोडा	घोडे

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
३०७	२	आरै	और
,,	९	वनानेके	बनानेके
,,	१४	नक	नेके
,,	२४	उसके	उनके
,,	,,	इनके	उनके
३०९	७	ध्रवके	ध्रुवके
,,	२२	मोलिक	मौलिक
,,	२६	Hangs	Haugs
३१०	२५	सलग्न	संलग्न
,,	,,	सुसज्जितह	सुसज्जित हैं
३११	१६	ऋतुओंवाले	ऋतुवाले
३१२	१	दृखा	देखा
,,	,,	ऋतुओंवाला	ऋतुवाला
३१३	३	ऋतुओं	ऋतु
,,	,,	ऋतुओंवाले	ऋतुवाले
,,	९	ऋतुओंवाला	ऋतुवाला
,,	,,	ऋतुओंवालेके	ऋतुवालेके
,,	१६	यह	यहाँ
३१४	१४	महिनोंवाला	महिनोंवाले
,,	,,	पञ्चांग	पञ्चांगका
३१५	५	ऋतुवेंही	ऋतुऐंही
,,	९	महिनेका	महिनेकी
,,	१७	वे	ये
३१६	२	महीनों	महीने
,,	४	ऋतुओंवाला	ऋतुवाला

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
३१६	५	महीनोंवाला	महिनेवाला
,,	१०	यागिय	यागीय
,,	२२	नोंवाला	नेवाला
,,	,,	महीनोंवालाहै	महीनेवालाहै
३१७	१६	थ	थे
,,	१९	Haugs	Haugs
,,	२४	प्राचीन तर	प्राचीनतर
३१८	२५	उसकी	उनकी
३१९	१	ऋतुओं	ऋतुओंका
,,	७	यद्यपि कुछ	कुछ
३२१	२१	प्रभातकी किरणों	प्रभावकी किरणें
३२२	१२	ऋतुओंवाले	ऋतुवाले
,,	१३	ऋतुओंवाला	ऋतुवाला
,,	१५	फळारहीं	फैलारहीं
३२३	२२	ऋतुओंवाला	ऋतुवाला
३२५	२०	लम्ते	लम्बे
,,	२२	पातें	पाते हैं
३२७	२६	वरन्	वरन
३२८	२	प्राचीन तम	प्राचीनतम
,,	१९	फ्लोरा	फ्लोरा
३२९	४	फ्लोरा	फ्लोरा
,,	११	फ्लोराकी	फ्लोराकी
,,	२२	फ्लोराकी	फ्लोराकी
३३१	२१	विचार सकता	विचार दे सकता
,,	२३	गिलवर्ट	गिलबर्ट

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
३३२	९	विज्ञान कई	विज्ञानकी कई
,,	१२	उदय	उद्यम
,,	२३	संगीत	संगीतके
३३३	१३	अनुसन्धान	अनुसन्धानको
,,	१९	उपंगो	उमंगों
,,	२६	5 "	P 5 "
३३६	४	ऋचाओं	ऋचाओंमें
,,	२२	वंतका	वर्तके
३३७	९	Arct	Aret
,,	१८	Oin	&
३३८	९	नकावसा	नकावसा
३३९	२	व्यवहारिक	व्यावहारिक
,,	,,	अडनेके	अडंगेके
,,	,,	गये हैं	गई हैं
,,	८	हम शीघ्रही	हम यहां सब
३४०	१८	पुरातत्वविद	पुरातत्त्वविद
,,	,,	तदनुसार हम	उनमें हम
३४१	१०	यह	ये
,,	१२	पीछे डटी रहती हैं	पीछे डटे रहते हैं
३४२	२१	पुरातत्वविदोंकी	पुरातत्त्वविदोंकी
३४३	३	तक	तर्क
,,	१४	इसाक्टेलरने	इसाकटेलरने
,,	२३	अपेक्षामें	अपेक्षा
,,	२४	कारणसे	कारणोंसे
,,	,,	अध्यापाक मैक्समूलर	अध्यापक मैक्समूलरके

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
३४५	३	माननेके	माननेको
,,	९	व्यवहारिक	व्यावहारिक
,,	२१	भग	भंग
३४६	४	उनका	उसका
,,	,,	उनकी	उसकी
,,	१७	शताब्दीयों	शताब्दियों
,,	१८	मानवी	मानवीय
३४७	४	पूर्व १००० वर्ष	१००० वर्ष
३४८	२	कारणसे	कारण

समाप्त।